विश्व-धर्म-परिचय

संसार के ... मत-मतान्तरों की ऐतिहासिक, सैद्धान्तिक और तुलनात्मक व्याख्या तथा उनके प्रवृत्तकों के जीवन-चरित्र आदि का ऐतिहासिक तिथि-क्रम से सुन्दर बोल-चाल का सुरुचिपूर्ण साधारण भाषा में वर्णन

मुख्य रूप से

वैदिक-धर्म,
पारसी मत, वाम-मार्ग,
नास्तिक-वाद, सनातन धर्म,
यहूदी-मत, जैन-धर्म, बौद्ध धर्म, इसाई
मत, इस्लाम मत, वेदान्त, नानक पंथ, कबीर
पंथ और दूसरे प्रचलित मत-मतान्तरों की उचित व्याख्या

लेखक—

एच० राय० गुप्त

प्रकाशक—

एच० राय० गुप्त, बामनजी रोड, सहारनपुर

प्रथमवार १०००] सन् १९५४ [मूल्य ५) रुपये

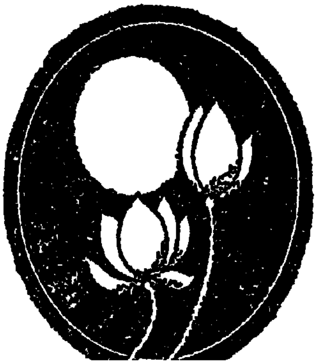
मैं इस ग्रन्थ के निर्माण में श्री कमल 'सत्यार्थी' एम० ए०
का विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने ग्रन्थ-
रचना मे हार्दिक सहयोग प्रदान किया।

मुद्रक—
श्रीवास्तव प्रिंटिंग प्रेस
सहारनपुर

मिलने का पता—
अर्जेन्ट प्रिंटिंग प्रेस, सहारनपुर

नोट:—इस पुस्तक की छपाई में कहीं कहीं अशुद्धि होगई हैं। इसका हमें खेद है। आगामी संस्करण में उसका सुधार कर दिया जायेगा।

कहां क्या है ?





एच० राय गुप्त

समर्पण

उन माता पिता के चरण कमलों में—

जिनके

ऋण से कभी उऋण नहीं

हुआ जा सकता।

—लेखक

अर्चना

असतो मा सद्गमय
तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्मा अमृतं गमयेति

हे ईश्वर ! मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चल, तू मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चल और हे जगत पिता ! तू मुझे मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चल ।

दो शब्द

१६ मई सन् १९४३ ई० का दिन था। आज से ११ वर्ष पहले इसी दिन प्रिय पुत्री कमलादेवी के स्वर्गवासी हो जाने पर दुःख के गहन क्षणों से छुटकारा पाने के लिये बरबस यह निश्चय कर डाला था कि आत्म-सन्तोष के लिये, जनसाधारण के हित और शुभ-चिन्तन के लिये सरलतम भाषा में कुछ लिखूं। सोचते-सोचते मेरा ध्यान आज कल के युवक और युवतियों के बहाव की ओर गया। मैंने देखा, आज का युवक और युवती धर्म को ढोंग, ईश्वर को भय, धार्मिक प्रथाओं को अंधविश्वास, अफवाहों का पुलिंदा और पुरानी लकीर आदि समझ कर दूसरी ओर पतन की तरफ बढ़ते चले जारहे हैं, तो हृदय तिलमिला उठा। मुझे स्पष्ट जान पड़ा कि यह सब कुछ उनके अज्ञान और धर्म के वास्तविक तथ्य को न समझने का कारण है।

मैंने इसी लिये जनसाधारण की भाषा में संसार के सभी विशेष विशेष धर्मों के गूढ रहस्यों और सिद्धान्तों का उनके इतिहास के साथ-साथ तुलनात्मक अध्ययन कराने की चेष्टा की है। निर्णय मैंने स्वयं पाठकों पर छोड़ दिया है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि पानी के प्रवाह की तरह सत्य भी अपना रास्ता स्वयं बना लेता है। मुझे आशा है कि मैं अपने इस प्रयास से उन युवक और युवतियों की दिशा को थोड़ा बहुत अवश्य मोड़ सकूँगा।

अन्त मे मैं पाठक महानुभावों से प्रार्थना करूँगा कि इस गहन विषय मे यदि मुझ से कुछ त्रुटियाँ होगई हों तो कृपया लिखें, क्योंकि इस गम्भीर विषय मे भूलों की संभावना हो सकती है। आगामी संस्करण में निश्चय करने पर उसे सुधारने का प्रयत्न किया जायेगा।

यह भी मैं अवश्य कह देना चाहूगा कि यह पुस्तक किसी प्रकार के भी धार्मिक खण्डन-मण्डन या किसी के हृदय को दुखाने के लिये नहीं लिखी गई है। इसमें प्रत्येक धर्म के (अपना निर्णय न देते हुये) जैसे के तैसे ही सिद्धान्त दे दिये गये हैं। यदि मैं इस से पाठकों का कुछ भी उपकार कर सका तो अपने परिश्रम को सफल समझूगा।

सहारनपुर
१६ मई, १९५४

एच० राय गुप्त

पूर्वाभास

धर्म क्या है ? भिन्न भिन्न दार्शनिकों ने धर्म की भिन्न भिन्न व्याख्याये की है परन्तु उन सब का तत्त्व एक ही है अर्थात् धर्म का अर्थ निष्काम कर्म से कर्तव्य पालन करना है। या यू कहिये कि सदाचार का नाम ही धर्म है और सदाचार से धर्म की उत्पत्ति होती है। समस्त वस्तुओं तथा जीवन के स्वाभाविक गुणों या नियमों का नाम धर्म है। आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध भी स्वाभाविक गुण होते हुए धर्म कहलाता है। जिसके द्वारा जीवों का हित हो, वह धर्म है। धर्म से समस्त समाज का ढांचा बँधा हुआ है। धर्म को अलग निकाल दो समस्त समाज का सङ्गठन बिखर जायेगा। मन्दिर, मस्जिद या गिरजा बनवाने तथा अन्य सार्वजनिक उपासना या उत्सव में ही किसी प्रकार भाग लेने का नाम धर्म नहीं है। धर्म तो आत्म-ज्ञान की अनुभूति (Feelings) मे ही निहित है। धर्म के अनुभव के लिये पहला आदर्श त्याग है। जैसे अन्धकार और प्रकाश सांसारिक सुख और आत्मिक आनन्द एक साथ नहीं रह सकते ठीक उसी प्रकार धर्म और अन्ध-विश्वास या प्रथाये धर्म नहीं हो सकतीं। धर्म का अर्थ मजहब (Religion) नहीं है वरन् समस्त प्राणियों के विधान (Law of Being) का नाम ही धर्म है।

मजहब क्या है ?—मजहब (Religion) का अर्थ है किसी सिद्धान्त विशेष मे विश्वास रखना। मजहब की नींव अधिकतर ज्ञान पर नहीं, वरन् अन्ध-विश्वास पर होती है। मजहब और धर्म मे भिन्नता नहीं, वरन् विरोध है। या यू कहिये कि ज्ञान और अन्ध-विश्वास में वैर-भाव है। सच्चा ज्ञान या धर्म सुख का कारण है, अज्ञान या अन्ध विश्वास दुःख का कारण है। मजहब में विचारों की स्वतन्त्रता नहीं होती। या यूँ कहिये कि मजहब स्वतन्त्रता छीनता है। परन्तु धर्म विचारों की स्वतन्त्रता में विश्वास रखता है और कहता है कि जिसकी जैसी रुचि हो, वह उसी प्रकार से विचार कर सकता है।

"One starts and ends with revelation and tradition we call it religion Dharm depends on the free exercise of reason and thought."

धर्म और सदाचार—Moral life का आपस में गहरा सम्बन्ध है। धर्म का बिना सदाचार कोई आधार नहीं। सदाचार के बिना मनुष्यता समाप्त हो जाती है और मनुष्य पशु बन जाता है। सदाचारी के लिये मानसिक (mental) तथा चरित्र की पवित्रता होना आवश्यक है। जिन कामों से जीवों को सुख और आनन्द मिले वह सदाचार और जिन कामों से दूसरों को दुःख या कष्ट पहुंचे वह दुराचार कहलाते हैं। केवल अपना आनन्द ही आनन्द नहीं, वरन् सभी के आनन्द का ध्यान रक्खा जाये। जो आनन्द किसी को कष्ट दिये बिना ही प्राप्त हो, वह ही सच्चा आनन्द है। ऐसे आनन्द की ही इच्छा करनी चाहिये और यही नीतिशास्त्र (Ethics) का लक्ष्य है। "Morality without Dharm has no legs to stand upon"

दर्शन, विज्ञान और धर्म—विज्ञान (Science) का कार्य केवल यह है कि जो कुछ हुआ है, उसे बतलादे। निषेध करना साइंस का कार्य नहीं है। विज्ञान हमे 'कैसे' How का उत्तर देता है 'क्यों' Why का नहीं। किसी घटना को स्वीकार करने से पहले विज्ञान क्रम पूर्वक एक परीक्षा के पश्चात् दूसरी परीक्षा करता हुआ उसकी दृढता की बार बार जांच करता है और इसी प्रकार उन जॉच की हुई वस्तुओं या घटनाओं को ही स्वीकार कर लेता है। जब हम किन्हीं वस्तुओ को जानना चाहते है तो हमे दो प्रश्न करने पड़ते हैं। एक प्रश्न 'कैसे' और दूसरा 'क्यों'। यह संसार कैसे बना? इसका उत्तर विज्ञान देता है। यह जगत क्यों बना? इसका उत्तर साइन्स की सीमा से बाहर है। इसका उत्तर दर्शन या धर्म दे सकता है। इन दोनों प्रश्नों के सही उत्तर के बिना हम किसी वस्तु को ठीक ढङ्ग से नहीं जान सकते। इस लिये यही मानना पड़ता है कि साइन्स और धर्म एक दूसरे के विरोधी नहीं, वरन् सहायक हैं।

साइन्स के आविष्कारों से यह प्रयोजन नही होता है कि यह

आविष्कार उत्पन्न किये गये हैं, वरन् यह बात स्पष्ट है कि प्रकृति में वह गुण सदा से चले आ रहे हैं। किन्तु उन गुणों को जान कर प्रयोग में लाने का नाम ही आविष्कार है। इस ब्रह्माण्ड के असंख्य नियमों में से जिसकी जानकारी किसी ने करली है, वही आविष्कार कहलाता है। क्या किसी वस्तु के असंख्य गुणों में से एक आध छींट मात्र जान कर इतना गर्व करना उचित होगा कि उन असंख्य गुणों के उत्पन्न करने वाले को ही भुला दिया जाये? योरुप के कुछ माननीय वैज्ञानिक इस पर सहमत हैं कि साइन्स और फिलॉसफी एक दूसरे के सहायक हैं। वह धर्म और पूर्ण साइन्स का क्षेत्र एक ही मानते हैं। अतः उन्होंने कहा है :—

"Science and Philosophy are not opposed, they are not neutrals, they are allies The region of religion and the region of a completed science are one"

"To obscure processes and to construct means is science, to criticise and co-ordinate ends is Philosophy"

कुछ उपनिषदों और दूसरे मान्य शास्त्रों ने यह शिक्षा दी है कि ईश्वर, जीव और समस्त जगत के ज्ञान प्राप्ति के यह तीन साधन हैं— (१) दर्शन और श्रवण, इसी का नाम विज्ञान अर्थात् साइन्स है। (२) मनन या चिन्तन, इस का नाम दर्शन या फिलॉसफी है। (३) निदिध्यासन अनुभव या चिन्ता विशेष Realization का नाम धर्म है। या यूं कहिये कि अनुभूत अर्थात् Realized Philosophy का नाम ही धर्म है। इसलिये मानना पड़ता है कि विज्ञान, दर्शन और धर्म में विरोध नहीं है, वरन् वह तीनों मिलकर ही उच्च जीवन के साधन हैं।

वास्तव में इन में केवल सम्बन्ध ही नहीं है, वरन् फिलॉसफी ही धर्म का प्राण है। यदि ऐसा कहें तो कुछ अनुचित न होगा कि जिस से विश्वास की पुष्टि होती है और जो जटिल से जटिल सिद्धान्तों का समाधान करने की योग्यता रखता है तथा जो हार्दिक सन्तोष प्राप्त

कराता है, उसी का नाम दर्शन या फिलासफी है। दर्शन से सचाई और वास्तविकता का पता चलता है। दर्शन ईश्वर, जीव और प्रकृति के अतिरिक्त यह भी निश्चय कराता है कि मनुष्य-जीवन का संसार में क्या उद्देश्य है।

कुछ विद्वान् दर्शन को मजहब से बिल्कुल अलग रखना चाहते हैं। उनकी सम्मति में दर्शन मजहब के लिए व्यर्थ है। वे विद्वान अपने मजहबी सिद्धान्तों को फिलॉसफी की कसौटी पर किसी दशा में भी टकराने के लिए न स्वयं तैयार होते हैं और न ही किसी दूसरे को टकराने देते हैं। वे जिन सिद्धान्तों पर एक बार अपना विश्वास जमा लेते हैं, बस उसी को उत्तम कह २ कर दूसरों से मनवाने की चेष्टायें किया करते हैं।

यदि ध्यान से देखा जाये तो किसी भी धार्मिक या मजहबी सिद्धान्तों को दूसरे के हृदय में बिठाने और सचाई निश्चय कराने के लिए दर्शन का अवश्य सहारा लेना पड़ेगा। क्योंकि धर्म या मजहब मे ऐसे बहुत से गम्भीर और कठिन प्रश्न होते है जो बिना दर्शन को काम मे लाये कदाचित् सन्तोष-जनक ढङ्ग से हल हो ही नहीं सकते और न ही उनसे किसी प्रकार का हार्दिक सन्तोष प्राप्त हो सकता है।

जो विद्वान फिलॉसफी से मजहब को अलग रखना चाहते हैं, उनका यह विचार है कि मजहब का सम्बन्ध केवल ईश्वर को बड़े से बड़ा मानने में है और उसकी पूजा उपासना करना ही मजहब का अन्तिम उद्देश्य है। वास्तव मे यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो ईश्वर के विषय मे भी उनका कोई एक निश्चित सिद्धान्त नहीं होता। वह कभी ईश्वर को सर्वव्यापक, सर्व शक्तिमान् और अन्तर्यामी मानते हैं, तो कभी उसके रहने का स्थान आकाश बतला देते हैं। वे आकाश से ईश्वर के नीचे धरती पर आने और ऊपर आकाश पर जाने के विश्वासी नजर आते हैं। दार्शनिक रूप से किसी सिद्धान्त पर विचार ही नहीं किया जाता। ईश्वर को कर्त्ता, सर्वशक्तिमान् और पूजनीय मान लिया, तो समझ लो कि सब बातों से छुटकारा पा लिया।

धर्म और मजहब क्यों बुरे हैं?—इनकी बुराई के दो बड़े

कारण बताये जाते हैं। एक तो यह कि किसी भी धर्म या मजहब को मानने से ईश्वर को मानना पडता है। ईश्वर के मानने से मनुष्य को बिना कारण उसके बन्धन में पडना पडता है। धर्म और मजहब लडाई झगडों की नींव हैं। इसीलिए उन पर चलने से लड़ाई झगड़े उत्पन्न होकर शान्ति भङ्ग होती है। दूसरे यह कि मनुष्य संसार में खाने-पीने और आनन्द भोगने के लिए जन्म लेता है। इन धार्मिक या मत-मतान्तरों के झंझट में पड़ने के लिए नहीं। धर्म या मजहब तो उन भोगों के त्याग की शिक्षा देते हैं, इसलिए धर्म या मजहब के झंझटों से दूर रहने में ही सच्चा जीवन है।

उन लोगों का ऐसा भी कहना है कि अब विज्ञान Science का युग है। साइंस ने अपने नये २ आविष्कार दिखलाकर ईश्वर की मृत्यु कर दी है। यदि कोई ईश्वर नाम की वस्तु मौजूद भी है तो उसका नाश कर देना आवश्यक है— If God really existed, it would be necessary to abolish Him

साम्यवादियों Communists का ऐसा मत है कि राजा और पूंजीपति Capitalists से लेकर ईश्वर तक का प्रभाव मिटा दिया जाये। इन विचारों के उत्पन्न होने के कुछ ऐसे कारण मिलते हैं कि कट्टर मजहबी लोगों ने दार्शनिकों और वैज्ञानिकों पर अत्याचार इस लिए किये थे, क्योंकि वह उनके धार्मिक सिद्धान्तों का उलंघन करते थे। सब से बडा कारण यही प्रतीत होता है, जिस से कि धर्म और मजहब बुरे कहलाने लगे। यदि किसी भूखे मनुष्य को कोई खांड कहकर रेत फाकने के लिए दे दे और वह भूखा रेत और खांड का निर्णय न करते हुए उसे फाक कर कष्ट अनुभव करे तो इसका यह अर्थ तो कदाचित नहीं होगा कि खांड खाने से ही कष्ट अनुभव होता है। इसलिए खांड कभी नहीं खानी चाहिए। यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि धर्म के नाम पर जो अत्याचार होते आये हैं, वास्तव में वह धर्म नहीं है बल्कि अधर्म, अज्ञान या मजहब है। यही धर्म का भेष बनाकर दूसरों पर अत्याचार करते चले आये हैं। सच्चा धर्म किसी को किसी दशा में भी लडाई झगडे अत्याचार आदि का पाठ कदाचित् नहीं पढाता। भारतवर्ष में कितने ही हिन्दू मत-मतान्तर

फैले हुए हैं और वह एक दूसरे के विरोधी भी हैं। परन्तु उन में से किसी ने भी अपने किसी विरोधी पर किसी प्रकार का कोई अत्याचार नहीं किया और न ही किसी को जबरदस्ती अपना धर्म स्वीकार करवाने का प्रयत्न किया। इसका कारण यह है कि भारतवासी यह जानते चले आये हैं कि धर्म का विषय प्रत्येक मनुष्य का अपना विशेष व्यक्तिगत कार्य है। यही कारण है कि प्राचीन भारत में धर्म के नाम पर कभी कोई लड़ाई-झगड़ा या अत्याचार नहीं हुआ। प्राचीन हिन्दू धर्म ने शङ्का और सन्देह को बलात्कार और अत्याचार आदि से दबाने का कभी कोई प्रयत्न नहीं किया वरन् प्रत्येक मनुष्य को अपने अपने स्वतन्त्र विचार रखने का पूरा अधिकार दिया।

इसके अतिरिक्त एक और विचारणीय बात यह है कि राज्य-नीति में रोटी-कपड़े और मकान के नाम पर भी तो बहुत से अत्याचार होते आए हैं। इस समग्र संसार मे जो उलट-पुलट हो रही है, उसका प्रधान कारण यह वस्तुएं ही तो हैं। किन्तु इन वस्तुओं को कभी किसी ने छोड़ने का प्रचार नहीं किया।

आजकल संसार के दो बड़े दलों अर्थात् अमरीका और रूस मे जो युद्ध का तनाव बढता जा रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि चाहे जो कुछ भी भागदौड़ कर ली जाये यह युद्ध अवश्यम्भावी है। इस महानाशकारी युद्ध में समस्त मानवता के ही विनाश का भय है। उनके सामने ईश्वर, धर्म या मजहब का तो कोई प्रश्न है ही नहीं, तो फिर इस भयङ्कर युद्ध की तैयारिया क्यों हो रही हैं?

रहा ईश्वर के मानने का प्रश्न, याद रहे कि ईश्वर के मानने से बन्धन मे नहीं पड़ना पड़ता, बल्कि ईश्वर के मानने से सद्गुणों में वृद्धि और सौन्दर्य आ जाता है। यदि हम ईश्वर को पूर्ण आदर्श मान कर कार्य करेंगे; तो हम से त्रुटि होने की कम सम्भावना होगी। मनुष्य जीवन का उद्देश्य केवल खाना-पीना और आनन्द करना 'Eat drink and be merry' ही नहीं है, बल्कि इस संसार के आनन्द के अतिरिक्त परमानन्द या मुक्ति ही सच्चा आनन्द है। इसलिये यह निश्चित है कि यदि हम ईश्वर को आदर्श मान कर उसके गुण ग्रहण करते चले जायें तो एक दिन ऐसा आ सकता है कि हम अपने कार्य में सफल होकर परमानन्द प्राप्त कर

सके। अब यह बात गम्भीरता से सोचने की है कि सच्चा सुख प्रकृति मे है या मनुष्य के अपने हृदय मे; सच्चा सुख ससार के जीतने मे है या अपने आपको जीतने मे, खाने, पीने और आनन्द करने में आनन्द है या आत्मिक बल प्राप्त करने से आनन्द मिल सकता है।

खाने, पीने और आनन्द करने मे विश्वास करने वालों के लिये रुपया-पैसा और इन्द्रिय-तृप्ति ही सब कुछ है। उनके लिये भडकीले कपडे, विलासमय रहन सहन, राजसी खाना पीना और भोग विलास करना ही सब कुछ है। यह सब वस्तुए मिल गईं तो समझ लो जीवन का उद्देश्य पूरा हो गया, यदि इन मे कुछ कमी रही तो जीवन तुच्छ और सारहीन हो गया। इन बातों से अधिक वह स्वय कुछ भी नहीं सोचते और सोचने वालों पर हसते हैं। यह बात याद रहे कि सच्चे धार्मिक मनुष्य के लिये समस्त सासारिक आनन्द तुच्छ हैं। भारतवर्ष प्राचीन काल से ही धर्म प्रधान देश रहा है। इसीलिये तो भारतवासी चाहे कितने ही दुखी, दीन-हीन और भिखारी क्यों न बन जाये परन्तु खाने-पीने और आनन्द करने के सिद्धान्त को उन्होंने कभी नहीं उभरने दिया और न ही ऐसे सिद्धान्त अपना कर उन्होंने अपना जीवन कभी भ्रष्ट होने दिया। भारतवासियों ने ईश्वर का पल्ला पकड़ कर मरना स्वीकार किया, किन्तु दूसरों का हरण किया हुआ धन उन्होंने कभी भोगने की इच्छा तक न की। संसार मे अनेकानेक जातियां उभरी और काल के अथाह बहाव मे समा गईं। हिन्दू जाति पर बहुत से आक्रमण हुए, भांति-भांति के अत्याचार किये गये परन्तु यह जाति आज भी काल प्रवाह में उसी प्रकार दृढता के साथ सिर ऊंचा किये जीवित और अमर खडी है। इसका कारण क्या है? स्पष्ट है कि पुष्ट धार्मिक विश्वास और दृढ़ आत्म बल ने इसे कभी भी इन झोंकों से विचलित न होने दिया। हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि हिन्दू जाति उस समय तक अटल और अमर रहेगी जब तक भारतवासी अपने वास्तविक धार्मिक आदर्शों का त्याग नहीं करेंगे। आज जो लोग इस देश मे नास्तिक वाद की झोंक में आकर लोगों को खाओ, पीओ और आनन्द करो के सिद्धान्त की ओर आकर्षित कर रहे हैं, हमे ऐसे लोगों और विचारों से सावधान रहना चाहिये।

संसार के धर्म और मजहब—संसार के इतिहास और साहित्य के पढ़ने से ऐसा पता चलता है कि संसार मे मनुष्य-समूह के सिद्धान्तो को दो बड़े भागों मे बांटा जा सकता है। एक तो एरियन दूसरे समेटिक (Semetic) संसार के मनुष्य समूह में जितने धर्म, मजहब या मतमतान्तर फैले या फैले हुए हैं वह सब एक या दूसरी सभ्यता की ही शाखाएं है।

एरियन सभ्यता—इस में वैदिक, पारसी, जैन, बौद्ध और पौराणिक या सनातन धर्म सम्मिलित है। ये सब एरियन सभ्यता के ही समर्थक है।

समेटिक सभ्यता—इस सभ्यता के बहुत पुराने नमूने तो इस समय उपस्थित नही है परन्तु यहूदी, ईसाई और इस्लाम मत जो इस समय मौजूद हैं और उनकी समस्त शाखाएं समेटिक या सामी सभ्यता के ही भाग माने जाते हैं।

भिन्न-भिन्न मत-मतान्तर पैदा होने के कारण—संसार मे इस समय जितने धर्म, मजहब या सम्प्रदाय फैले हुए हैं, उनके पैदा होने के कारण यों तो बहुत से हैं किन्तु उनमे से कुछ नीचे लिखे गये है—

१—जब जनता का सत-विद्याओं और सत-शास्त्रों के पढने-लिखने और उन पर मनन करने का उत्साह किसी भी कारण समाप्त हो जाता है।

२—जब विद्वान या आचार्य लोग आलसी होकर जनता को अपने सच्चे उपदेश देने और प्रचार करने के कार्य को बन्द कर देते हैं।

३—जब योग्य विद्वानों और आचार्यों की कमी हो जाती है।

४—जब आचार्यों या विद्वानों के मस्तिष्क मे स्वार्थ, लालच और अपनी सेवा-पूजा कराने की बात समा जाती है।

५—जब आचार्य या विद्वान् अनजाने ही भावना वश किन्हीं गलत विचारों मे बहकर गलत दृष्टिकोण अपनाते हुए उन्हीं के आधार पर अपना मत स्थिर कर लेते है।

६—जब राजा सत-विद्याओं, सत-शास्त्रों और सत-उपदेशों से मुह मोड लेता है और वह सच्चे और बुद्धिमान् आचार्यों का सम्मान न करते हुए उनकी शिक्षाओं के प्रति निराशा प्रकट करता है।

७—जब राजा बुद्धि-हीन होकर न्याय-अन्याय या धर्म-अधर्म का कुछ ध्यान नही करता तो वह स्वार्थी पण्डितों या सलाहकारों के इशारो पर नाचने लगता है और इस प्रकार कोई प्रतिबन्ध न होने के कारण नये मत-मतान्तर पैदा होने लगते हैं।

८—जब विद्वानों या आचार्यों में किसी धर्म सम्बन्धी विषय पर मतभेद हो जाता है और प्रत्येक हट वश अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रचार करना आरम्भ कर देता है।

९—जब धार्मिक नियम और कर्मकाण्ड इत्यादि इतने कठिन और जटिल बना दिये जाते हैं कि उनको पूरा करने में जन-साधारण बड़ी कठिनाइया अनुभव करने लगते हैं। ऐसे समय मे किसी भी मनुष्य द्वारा चला दिये गये आसान मतों या नियमों पर वह बिना सोचे समझे ही चल पड़ते हैं।

ससार में तीन प्रकृति के मनुष्य पाए जाते हैं १—निष्पक्ष बुद्धि और स्वस्थ प्रतिमा वाला मनुष्य। २—बुद्धिमान और विश्वासी। (३) अंध विश्वासी।

निष्पक्ष बुद्धि और स्वस्थ प्रतिमा वाला मनुष्य—वह मनुष्य कहलाता है जो सत्य और असत्य तथा झूठ और सच जाँचने और समझने की हर समय चिन्ता में लगा रहता है। सत्य ज्ञात होने पर तुरन्त मान कर प्रतिक्रिया आरम्भ कर देता है। इसके साथ ही दूसरों को भी चलाने का प्रयत्न किया करता है। वह सदा परोपकार और भले कार्यों को करना ही अपना कर्त्तव्य समझा करता है।

बुद्धिमान और विश्वासी मनुष्य—वह मनुष्य कहलाता है जो हठ को कदाचित् काम में नहीं लाया करता। समझने या समझाये जाने पर सचाई को तुरन्त मान लिया करता है। उन नियमों पर चलना अपना कर्त्तव्य समझना है तथा दूसरों को भी उन पर चलाने की भरसक चेष्टाए किया करता है।

को लेकर तुरन्त चले जाओ।' ताकि जब फरऔन तेरी जाति के लिए आगे बढ़े तो मैं उसको उसकी सेना समेत नष्ट कर दूं। ह० मूसा ने ऐसा ही किया. फरऔन सेना ले कर आगे बढ़ा तो ह० मूसा ने अपना हाथ समुद्र की तरफ बढ़ाया तो वह समुद्र मिल कर पहिले की भांति हो गया। इस प्रकार ईश्वर ने फरऔन और उसकी सेना को समुद्र में डुबो कर मार दिया और इसराइलयों को खुश्की पर ला कर बचा लिया। इन चमत्कारों को देख कर उसकी जाति के सब लोग ह० मूसा के चरणों पर गिर पड़े और ईश्वर तथा उस के पैग़म्बर मूसा पर ईमान लाकर ईमान को पक्का कर लिया।

ह० मूसा अपनी जाति को ले कर ईश्वर की अज्ञानुसार जंगलों और मैदानों में से गुजरते रहे और उनके खाने पीने के कष्टों को अपने चमत्कारों से हल करते रहे। इसी बीच में कभी कभी होरब और सीना पर्वतों पर ईश्वर से वार्तालाप करके उसकी आज्ञाएं पाते रहे और उन आज्ञाओं पर अपनी जाति के लोगों को चलने के लिए तैयार करते रहे। ह० मूसा ने अपनी जाति के लोगों को दूसरी जातियों के साथ युद्ध करने के लिए तैयार किया। बहुत से युद्ध हुए। जिन में बहुधा वह सफल होते रहे। कहां तक कहा जाये इसी प्रकार वह अपनी जाति को लिए हुए चालीस साल तक बराबर जंगलों और मैदानों में घूमते फिरते रहे किन्तु किनआन देश की ओर बराबर बढ़ते रहे। ह० मूसा को उस काल में कोई विशेष सफलता प्राप्त न हुई। अन्त में इसी दशा में मुआब की वादी में १२० वर्ष की आयु में मर गए। मरने से पहिले यशू को अपना ख़लीफा नियुक्त कर दिया। ह० मूसा मुआबकी वादी में दफन किए गए किन्तु उन की कब्र का किसी को आज तक कोई पता नहीं हो सका। उन्होंने कई एक विवाह किए थे और उन के यहां कई एक लडके और लड़कियां उत्पन्न हुई थीं।

ह० यशु—ह० मूसा के बाद यहूदियों के पैगम्बर यशू ख़लीफा बने। उन्होंने इस मजहब को फैलाने के लिए काफी काम किया। बहुत सी जातियों से लड़ाई झगड़े हुए और कई एक राज्यों को विजय करके उन पर अपना अधिकार किया। उन्होने लगभग सात साल

कठोर हृदय बन गया। यह देख कर मूसा ने अपना हाथ आसमान की तरफ़ उठाया तो उसी समय ओले और अग्नि की बारिश होने लगी। इस बारिश से मिश्रियों के जान और माल की अधिक हानि हुई। फरऔन ने मूसा से इन चीजों को हटाने के लिए कहा और देश छोड़ कर चले जाने की आज्ञा दे दी। ह० मूसा ने तुरन्त शान्ति स्थापित कर दी किन्तु फरऔन फिर अपने वायदे से पलट गया। ह० मूसा ने फिर हाथ ऊपर उठाया और देश भर में टिड्डियां ऊत्पन्न कर दीं। सारे देश में तीन दिन तक ऐसा अन्धेरा रहा कि किसी को कुछ दिखाई न दिया। इस पर फरऔन ने ह० मूसा से निवेदन करते हुए टिड्डियों को हटाने के लिए कहा। ह० मूसा फिर मान गए और टिड्डियों को समाप्त कर दिया गया। परन्तु इस बार फिर फरऔन ने मिश्र से निकल जाने से फिर इन्कार कर दिया। फ़रऔन के इस रग ढग को देख कर मूसा जंगल में गए और ईश्वर से फ़रयाद की ईश्वर ने इसराइलों से भेड़ और बकरियों की कुरबानियाँ मांगीं और इस प्रकार समझाया कि 'मैं रात को मिश्र में गश्त लगाऊंगा जिसके घर के सामने कुरबानी के लहू का निशान पाऊं-गा उसको छोड़ूंगा वरना सब को मार दूंगा'। ह० मूसा ने अपने घर आ कर अपनी जाति के लोगों से ईश्वर की इस आज्ञा का वर्णन किया। और सबको कुरबानियाँ करने पर तैयार कर दिया उस रात को मिश्र मे गश्त लगाया और हर एक बनी इसराइल के घर के सामने कुरबानी के खून का निशान पाया। कुरबानी न करने वाले मिश्रयों में से हर एक घर के कुछ व्यक्तियों को मार दिया गया।

बनिसराइल स्त्रियों ने अपनी पडोसिनों से गहने मांग कर पहिले से हीं तैयारी कर रखी थी। अत' उसी रात को वह अपने पशुओं और समान इत्यादि को ले कर चुपके से अपने घरों से निकल खडे हुए। फरऔन को उन की इस बात का पता चल गया। वह तुरन्त सेना लेकर उन के पीछे गया और समुद्र के किनारे पर जा कर उन सब को दबा लिया। ह० मूसा सेना को देख कर घबरा उठे। ईश्वर से फरयाद की। ईश्वर ने ह० मूसा की धीर बंधाई और सहायता करने का विश्वास दिलाया। ईश्वर ने ह० मूसा से कहा कि 'अपनी लाठी समुद्र पर मार कर उसके दो भाग कर दो और जो धरती बीच में खुश्क निकले उस पर अपनी जाति के सब आदमियों

हुए। इस पर ईश्वर ने कहा 'कि फिर छाती पर हाथ रख कर ढांप ले और बाहर निकाल।' उन्होंने ऐसा ही किया तो उन का हाथ पहिले की तरह अच्छा हो गया। ईश्वर ने उनसे कहा कि 'तेरे इन चमत्कारों को देख कर वह लोग तेरा विश्वास करेंगे और यदि इन चमत्कारों पर भी विश्वास नहीं किया तो तू दरिया से कुछ पानी ले कर सूखी धरती पर छिड़कना वह पानी रक्त बन जायेगा।' इस पर मूसा ने ईश्वर को प्रणाम किया और वहां से चलकर अपने ससुर के मकान पर आ गये। वहां से अपनी बीवी और बच्चों को लेकर तथा एक गधे पर सवार हो कर मिश्र देश में आकर अपने पिता के मकान पर पहुंचे। वहां उन्होंने ईश्वर से मिल कर वार्तालाप करने और चमत्कार इत्यादि दिखलाने का सब हाल वर्णन किया। उन लोगों ने मूसा की बात पर विश्वास कर लिया और वह सब मिश्र से निकलने के लिए तय्यार हो गए।

इसके पश्चात् एक दिन ह० अपने भाई हारून को साथ लेकर फ़रओन के दरबार में पहुंचे। फ़रओन को बहुत कुछ समझाकर यह कहा कि 'तू इसराइलों को मिश्र से निकलने की आज्ञा दे दे ताकि वह मिश्र से निकल कर ईश्वर की पूजा उपासना और क़ुरबानी इत्यादि में लग जायें'। फरओन ने आज्ञा देने से इन्कार कर दिया। ह० मूसा ने दरबार में कुछ चमत्कार दिखाए मगर उसने उनपर कोई ध्यान न दिया। ह० मूसा ने उस देश में बहुत से मेंढ़क उत्पन्न कर दिए जो सब को तंग करने लगे। इस पर फ़रओन कुछ घबराया और मेंढ़कों को समाप्त कर देने को कहा तथा मिश्र से निकलने के लिए आज्ञा देने पर तय्यार हुआ। जब मूसा ने मेंढ़कों को समाप्त कर दिया तो फ़रओन फिर पलट गया। इस पर मूसा ने जुएं उत्पन्न कीं जो सबको काट-काट कर दुखी करने लगीं। फ़रओन ने जुओं की कुछ परवाह न की। ह० मूसा ने मच्छरों के झुण्ड के झुण्ड पैदा कर दिए जो सबको बहुत हानि पहुंचाने लगे। फ़रओन ने मूसा से मच्छर हटाने को कहा और मिश्र से निकल जाने की आज्ञा दे दी। ह० मूसा ने मच्छरों को हटा दिया। उन के हटते ही फरओन ने फिर इनकार कर दिया। इसके पश्चात् ह० मूसा नेये मिश्रयों के पशुओं में वबा फैला दी और बहुत से पशु मर गए। दोनों भाईयों ने थोड़ी सी राख ले कर आसमान पर उड़ाई इस से मिश्रयों के समस्त शरीर में फोड़े फुन्सी निकल पड़े। फ़रओन ने इन बातों की कुछ परवाह न की और वह

कठोर हृदय बन गया। यह देख कर मूसा ने अपना हाथ आसमान की तरफ़ उठाया तो उसी समय ओले और अग्नि की बारिश होने लगी। इस बारिश से मिश्रयों के जान और माल की अधिक हानि हुई। फ़रओन ने मूसा से इन चीजों को हटाने के लिए कहा और देश छोड़ कर चले जाने की आज्ञा दे दी। ह० मूसा ने तुरन्त शान्ति स्थापित कर दी किन्तु फरओन फिर अपने वायदे से पलट गया। ह० मूसा ने फिर हाथ ऊपर उठाया और देश भर में टिड्डियां उत्पन्न कर दीं। सारे देश में तीन दिन तक ऐसा अन्धेरा रहा कि किसी को कुछ दिखाई न दिया। इस पर फरओन ने ह० मूसा से निवेदन करते हुए टिड्डियों को हटाने के लिए कहा। ह० मूसा फिर मान गए और टिड्डियों को समाप्त कर दिया गया। परन्तु इस बार फिर फरओन ने मिश्र से निकल जाने से फिर इन्कार कर दिया। फ़रओन के इस रंग ढंग को देख कर मूसा जगल में गए और ईश्वर से फ़रयाद की ईश्वर ने इसराइलों से भेड़ और बकरियों की कुरबानियाँ मागीं और इस प्रकार समझाया कि मैं रात को मिश्र में गश्त लगाऊंगा जिसके घर के सामने कुरबानी के लहू का निशान पाऊंगा उसको छोड़ूंगा वरना सब को मार दूंगा'। ह० मूसा ने अपने घर आ कर अपनी जाति के लोगों से ईश्वर की इस आज्ञा का वर्णन किया। और सबको कुरबानियाँ करने पर तैयार कर दिया उस रात को मिश्र में गश्त लगाया और हर एक बनी इसराइल के घर के सामने कुरबानी के खून का निशान पाया। कुरबानी न करने वाले मिश्रयों में से हर एक घर के कुछ व्यक्तियों को मार दिया गया।

बनिसराइल स्त्रियों ने अपनी पड़ोसिनों से गहने मांग कर पहिले से हीं तैयारी कर रखी थी। अन. उसी रात को वह अपने पशुओं और समान इत्यादि को ले कर चुपके से अपने घरों से निकल खड़े हुए। फरओन को उन की इस बात का पता चल गया। वह तुरन्त सेना लेकर उन के पीछे गया और समुद्र के किनारे पर जा कर उन सब को दबा लिया। ह० मूसा सेना को देख कर घबरा उठे। ईश्वर से फरयाद की। ईश्वर ने ह० मूसा की धीर बंधाई और सहायता करने का विश्वास दिलाया। ईश्वर ने ह० मूसा से कहा कि 'अपनी लाठी समुद्र पर मार कर उसके दो भाग कर दो और जो धरती बीच में खुश्क निकले उस पर अपनी जाति के सब आदमियों

हुए। इस पर ईश्वर ने कहा 'कि फिर छाती पर हाथ रख कर ढांप ले और बाहर निकाल।' उन्होंने ऐसा ही किया तो उन का हाथ पहिले की तरह अच्छा हो गया। ईश्वर ने उनसे कहा कि 'तेरे इन चमत्कारों को देख कर वह लोग तेरा विश्वास करेंगे और यदि इन चमत्कारों पर भी विश्वास नहीं किया तो तू दरिया से कुछ पानी ले कर सूखी धरती पर छिड़कना वह पानी रक्त बन जायेगा।' इस पर मूसा ने ईश्वर को प्रणाम किया और वहां से चलकर अपने ससुर के मकान पर आ गये। वहां से अपनी बीवी और बच्चों को लेकर तथा एक गधे पर सवार हो कर मिश्र देश में आकर अपने पिता के मकान पर पहुंचे। वहां उन्होंने ईश्वर से मिल कर वार्तालाप करने और चमत्कार इत्यादि दिखाने का सब हाल वर्णन किया। उन लोगों ने मूसा की बात पर विश्वास कर लिया और वह सब मिश्र से निकलने के लिए तय्यार हो गए।

इसके पश्चात् एक दिन ह० अपने भाई हारून को साथ लेकर फ़रओन के दरबार में पहुंचे। फ़रओन को बहुत कुछ समझाकर यह कहा कि 'तू इसराइलों को मिश्र से निकलने की आज्ञा दे दे ताकि वह मिश्र से निकल कर ईश्वर की पूजा उपासना और कुरबानी इत्यादि मे लग जायें'। फरओन ने आज्ञा देने से इन्कार कर दिया। ह० मूसा ने दरबार में कुछ चमत्कार दिखाए मगर उसने उनपर कोई ध्यान न दिया। ह० मूसा ने उस देश में बहुत से मेंढ़क उत्पन्न कर दिए जो सब को तंग करने लगे। इस पर फ़रओन कुछ घबराया और मेंढ़कों को समाप्त कर देने को कहा तथा मिश्र से निकलने के लिए आज्ञा देने पर तय्यार हुआ। जब मूसा ने मेंढ़कों को समाप्त कर दिया तो फ़रओन फिर पलट गया। इस पर मूसा ने जुएं उत्पन्न कीं जो सबको काट-काट कर दुखी करने लगीं। फ़रओन ने जुओं की कुछ परवाह न की। ह० मूसा ने मच्छरों के झुण्ड के झुण्ड पैदा कर दिए जो सबको बहुत हानि पहुंचाने लगे। फ़रओन ने मूसा से मच्छर हटाने को कहा और मिश्र से निकल जाने की आज्ञा दे दी। ह० मूसा ने मच्छरों को हटा दिया। उन के हटते ही फ़रओन ने फिर इनकार कर दिया। इसके पश्चात् ह० मूसा नेये मिश्रयों के पशुओं में वबा फैला दी और बहुत से पशु मर गए। दोनों भाईयों ने थोड़ी सी राख ले कर आसमान पर उड़ाई इस से मिश्रयों के समस्त शरीर में फोड़े फुन्सी निकल पड़े। फ़रओन ने इन बातों की कुछ परवाह न की और वह

पिता इब्राहीम, इजहाक और याकूब का ईश्वर हूँ'। मूसा ने डर कर अपना मुंह छिपा लिया। ईश्वर ने कहा कि 'ए मूसा डरो नहीं मैं तेरी जाति की फरयाद जो मिश्र मे कष्ट और बेगार में दुःखी है सुनी है और मै उनके दुखों को जान कर इस कारण उतरा हूँ कि उन को मिश्रयों से छुडा कर एक अच्छे और फले फूले देश मे जहा दूध और शहद की नहरे बहती हैं अर्थात् किनआइयों और यबूसियों इत्यादि के देश में पहुंचाऊं।' ईश्वर ने मूसा से यह भी कहा कि 'ए मूसा तू फरऔन के पास जा और मेरी जाति बनी इसराइल को मिश्र से निकाल ला। मैं भी तेरे साथ तेरी सहायता के लिए रहूंगा'। मूसा ने पूछा कि 'ए ईश्वर! यदि वह जाति मुझ से कुछ पूछेगी तो मैं उससे क्या कहूँगा'। ईश्वर ने उत्तर दिया कि 'तू उससे यह कहना कि मुझे अहूल्वा (ईश्वर) ने भेजा है'। इस पर मूसा ने ईश्वर से यह तीन बातें मांगीं कि 'मेरा सीना खोल दे अर्थात् मुझे क्रोध न आए, मेरा हर एक कार्य आसान कर दे, मेरी जबान साफ कर दे, मेरे भाई हारून को मेरा वजीर बना दे और उस को मेरी सहायता करने के लिए तय्यार कर दे।' ईश्वर ने यह सब बातें स्वीकार कर लीं। ईश्वर ने मूसा को और भी बहुत सी बातें समझाईं और फरऔन से मिलने को कहा। इस के अतिरिक्त ईश्वर ने मूसा को यह भी जितला दिया कि 'तुम लोग मिश्र से खाली हाथ न निकलना बल्कि ऐसा करना कि अपनी जाति की तमाम स्त्रियों से कहना कि वह अपनी अपनी मिश्री पड़ोसनों से सोने, चान्दी इत्यादि के कीमती आभूषण माग लें और उन आभूषणों को अपनी बहू बेटियों को पहना कर इस प्रकार मिश्रयों को लूट कर वहां से चलें।' इ० मूसा ने ईश्वर से फिर यह कहा कि 'मेरी जाति इस बात को कदापि नहीं मानेगी कि मुझे ईश्वर ने भेजा है'। इस पर ईश्वर ने कहा कि 'ए मूसा यह तेरे हाथ मे क्या वस्तु है?' उन्होंने कहा कि 'यह तो लाठी है।' ईश्वर ने कहा कि 'इस को धरती पर डाल दे।' उन्होंने वह लाठी पृथ्वी पर डाल दी तो वह तुरन्त एक सर्प बन कर चलने लगी यह देख कर मूसा कांपने लगे ईश्वर ने कहा कि डरो मत! इस को पकड़ लो उन्होंने उसको पकड़ लिया तो वह सर्प फिर लाठी बन गई। ईश्वर ने उन से फिर यह कहा कि 'तू अपनी छाती पर हाथ रख कर ढांप ले।' मूसा ने ऐसा ही किया। जब वह हाथ बाहर निकला तो कोढ से बर्फ जैसा सफेद निकला। यह देख कर बहुत वह दुखी

अन्ध विश्वासी— यह लोग ज्ञान, बुद्धि और विद्या से काम न लेते हुए किसी भी बात, घटना, विचार या मनुष्य से प्रभावित होकर विश्वास की उस सीमा तक पहुँच जाते है जहाँ अपने आप सोचने, समझने और मनन करने के लिये कुछ भी बाकी नहीं रहता और न यह इसकी आवश्यकता ही समझते हैं। बल्कि समझाये जाने पर बुरा मानने लगते हैं। यह लोग अपनी हट और जिद से सच को झूठ और झूठ को सच सिद्ध करने मे भाँति भाँति की युक्तियाँ और उदाहरण दिया करते हैं। उनके सिद्धान्तों को चाहे कोई झूठ, गलत तथा बुद्धि, ज्ञान और प्रकृति के विरुद्ध ही सिद्ध क्यों न करदे, परन्तु वह किसी दशा में भी अपने उत्तम सिद्धान्तों के राग अलापने मे संकोच नहीं करते। ऐसे लोगों मे केवल अनपढ और गँवार ही नहीं हुआ करते बल्कि उनमे अच्छे अच्छे लिखे पढ़े, समझदार और योग्य व्यक्ति भी होते हैं। वह योग्य पुरुष दूसरी गहरी से गहरी और बारीक से बारीक बातों को गंभीरता से सोच कर तो हल कर देते हैं परन्तु धार्मिक सिद्धान्तों के सामने आते ही उनकी वह समस्त बुद्धि, ज्ञान और समझ बूझ बेकार हो जाती है। इसका कारण यह है कि वह अपने धार्मिक सिद्धान्तों पर इस बुरी तरह से विश्वास जमाये हुये होते हैं कि उनके विरुद्ध उन्हें कुछ भी कहने का साहस नहीं हो सकता।

इन लोगों में अधिकतर संख्या ऐसे भोले, अनजान और बुद्धिहीन लोगों की होती है जिनका समझ बूझ से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वह हृदय और मस्तिष्क के इतने दुर्बल होते है कि जहाँ किसी चलते-पुर्जे, बदमाश, धोखेबाज, लुटेरे और बहरूपिये आदि ने धर्म या मजहब के नाम पर अपना उल्लू सीधा करने के लिये रूप बदलकर, सिर के बाल बढ़ा कर या मुंडवा कर, भस्म रमा कर, गेरुवे या नीले कपड़े पहन कर गुरु, पीर, मुर्शिद, सिद्ध या ज्योतिषी इत्यादि बन कर दो चार मन्त्र, कविताएँ या गीत उनके सामने पढे और ईश्वर, देवी-देवता, अवतार-कर्त्तार, नबी या रसूल, पीर और औलिया की प्रसशा करते हुये कुछ चिकनी-चुपड़ी बातें कीं और बेटा-बेटी, हानि-लाभ और स्वर्ग तथा नर्क इत्यादि के विषय में अपनी सम्मति प्रकट की, चमत्कार, सिद्धि, करामात, जादू, मन्त्र, तन्त्र, तावीज, गण्डा इत्यादि

के विषय में जहाँ दो चार सफाई के हाथ दिखलाये तो झट उनके चरणों पर गिर पड़ते हैं और उन्हीं को मोक्षदाता तथा कल्याण कर्ता समझने लगते हैं। इन लोगों में कुछ मज़हबी दीवाने ऐसे भी होते हैं जिन को मज़हबी बातें तो ज्ञात होती नहीं, परन्तु मज़हब के ठेकेदार बन बैठते हैं।

हमने इस पुस्तक में वैदिक, पारसी, वाम मार्ग, नास्तिक, सनातन, बौद्ध, जैन, यहूदी, ईसाई और इस्लाम इत्यादि धर्मों और मत-मतान्तरों का संक्षेप में वर्णन किया है। इन धर्म और मतों के सिद्धान्त और शिक्षा के विषय में वैसे तो अलग अलग बहुतसी पुस्तकें मिलती हैं किन्तु उन सब के सिद्धान्तों और शिक्षा का मूलसार किसी एक पुस्तक में अच्छे ढङ्ग से दिखाई नहीं पड़ा। हमें आशा और विश्वास है कि इस पुस्तक के पढ़ने से धर्म प्रेमियों को एक साथ संसार के समस्त धर्मों और मज़हबों का थोड़ा बहुत अवश्य ज्ञान होकर सोचने और समझने का अवसर मिल जायेगा। अतएव समस्त धर्म-प्रेमियों से निवेदन है कि वह अन्ध विश्वास त्याग कर प्रत्येक धर्म, मज़हब या सम्प्रदाय के वास्तविक सिद्धान्तों और शिक्षाओं को गहरी दृष्टि से दर्शन की चाशनी दे दे कर बार बार जाँच कर निश्चय करें। निश्चय हो जाने पर जिसकी पुष्टि अपना विवेक कर दे उसी को सच्चा धर्म, मज़हब या सम्प्रदाय निस्संकोच मान कर अपनाना चाहिये। झूठ के त्याग और सत्य के ग्रहण करने में सर्वदा तैयार रहना चाहिये। किसी सही परिणाम पर पहुँचने से प्रथम यह अवश्य देख लेना चाहिये कि जिन सिद्धान्तों को आप अपनाना चाहते हैं, वह किसी संकट या समस्या में डालने वाले तो नहीं हैं, वह दर्शन की कसौटी पर खरे और स्वाभाविक भी सिद्ध होते हैं या नहीं।

अन्त में मैं उन सभी सम्मानित ग्रन्थों के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ के रचने में मुझे पर्याप्त सहायता दी है।

सहारनपुर
१८ मई १९५२

एच० राय गुप्त

वैदिक धर्म

वैदिक धर्मावलम्बी कहते है कि वेद भगवान की एकता का विकास और भण्डार है। यह धर्म संसार के सब धर्मों और मत-मतान्तरों से प्राचीन है। उनका यह भी कहना है कि यह धर्म सृष्टि की आदि में मनुष्य के आरम्भ के साथ-साथ प्रचलित हुआ था। इस समय संसार में जितने मत-मतान्तर फैले हुये है और उनमे जितनी अच्छी और सदाचार की बातें पाई जाती हैं, विद्या, ज्ञान और विज्ञान का वर्णन मिलता है उन सबका निकास नि सन्देह इसी धर्म से हुआ है। कोई अन्य धर्म या मत-मतान्तर वैदिक धर्म के सामने अपने उच्च सिद्धान्त पेश नहीं कर सकता; क्योंकि वैदिक धर्म ही विद्या, ज्ञान, विज्ञान और सब अच्छी बातों का स्रोत है। वह यह भी कहते हैं कि संसार के आरम्भ में ईश्वर ने संसार के कार्य को चलाने, भोगने और जीवों को उन्नति के मार्ग पर लगाने के लिये अपने ज्ञान को वेदों के द्वारा चार ऋषियों के हृदय में प्रकाशित किया था। उन चारों ऋषियों से वेद के ज्ञान को ब्रह्मा जी ने पढ कर मनन किया। ब्रह्मा जी से दूसरे लोगों ने पढ़ा और विचार किया। इस प्रकार वेदों के पढने पढ़ाने और उनका प्रचार करने-कराने का सिलसिला प्रचलित होता चला गया। हजारों ऋषि, मुनि, आचार्य एवं पण्डित वेदों के ज्ञाता बन बन कर धर्म प्रचार तथा गूढ रहस्यों को हल करने लगे। लोग वेद रूपी ज्ञान को पाकर संसार के कार्यों को सरलता से चलाने मे लग गये और अपना लोक-परलोक सुधारने की चेष्टा करने लगे। बहुत से ऋषि, महर्षि और मुनि बन कर जंगलों में एकान्त स्थानों पर अपनी कुटिया बनाकर और समाधियाँ लगाकर तपस्या करने लगे। उन ऋषि-महर्षियो ने अपने शरीर, अपने मस्तिष्क और अपनी बुद्धि से ईश्वर और उसके बनाये हुये विचित्र, रङ्ग-विरङ्गे ब्रह्माण्ड के गहरे एवं गूढ रहस्यो को अपने अनुभव के अनुसार हल करना आरम्भ कर दिया, तथा उनको संसार के सामने समझने और परखने के लिये पेश करने लगे। सारांश यह है कि सृष्टि के आदि से लेकर महाभारत के महायुद्ध से लगभग चार सौ वर्ष पहिले तक अर्थात करोडों वर्ष वैदिक धर्म प्रचलित रहा। इस प्रकार संसार मे सुख और शान्ति की धारा बहती रही।

खोज करने से ऐसा पता लगता है कि वैदिक धर्म के सिद्धान्तों में महाभारत से कुछ शताब्दि पहिले कुछ हल्का-सा परिवर्तन आना प्रारम्भ हो गया था। वेदों में जिन ३३ जड (मादी) देवताओं का वर्णन किया गया है, उनमें से सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और इन्द्र इत्यादि देवताओं को लोग शक्तिशाली जान कर और हानिकारक या लाभदायक मान कर उनकी पूजा और उपासना करने लगे थे।

इस देश में पॉच हजार वर्ष से कुछ अधिक समय हुआ महाराजा शान्तनु चक्रवर्ती राजा थे। उनके समय में भी उन्हीं जड़ देवताओं की पूजा और उपासना चलती रही। उनके एक जवान लड़का था—जिसका नाम भीष्म था। वही राजा का उत्तराधिकारी था। राजा शान्तनु एक मल्लाह की लडकी सत्यवती के प्रेम में उलझ कर उससे विवाह करने के बडे इच्छुक थे। अत: उन्होंने मल्लाह को बुलाकर विवाह कर देने पर जोर दिया। मल्लाह राजी हो गया, परन्तु उसने राजा के सामने ये शर्त रक्खी—कि भीष्म को राज्याधिकार से वञ्चित कर दिया जाये और मेरी बेटी सत्यवती से जो लड़का पैदा हो उसको राज्य का उत्तराधिकारी मान लिया जाये। किन्तु राजा ने इसे अस्वीकार कर दिया। भीष्म को जब यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने अपने पिता को प्रसन्न करने के लिये मल्लाह की सब बातें स्वीकार कर लीं। किन्तु मल्लाह के यह शङ्का प्रकट करने पर कि भविष्य में तुम्हारे पुत्र सत्यवती के पुत्रों से राज्य छीन सकते है, भीष्म ने प्रतिज्ञा की कि वह अपना आयु भर विवाह न करेंगे, न ही राज्याधिकारी बनेंगे और न ही राज्य के विरुद्ध कोई किसी प्रकार का कार्य करेंगे।

सत्यवती से दो लडके चित्रागद और विचित्र वीर्य उत्पन्न हुये। शान्तनु की मृत्यु पर चित्रांगद राजा बना मगर वह थोडे समय बाद मर गया। उसके मरने पर विचित्र वीर्य, उसका छोटा भाई राजा बना। परन्तु वह भी अधिक समय तक जीवित न रहा। उसके मरने पर उसकी रानी ने व्यास मुनि से कोई सन्तान न होने के कारण नियोग करके दो पुत्र पॉडु और धृतराष्ट्र उत्पन्न किये। पॉडु ने कुन्ती और माद्री (ईरान की राजकुमारी) से और धृतराष्ट्र ने गान्धारी (कधार की राजकुमारी) से विवाह किया। पॉडु बहुत भला और अच्छा था मगर धृतराष्ट्र जन्म का अन्धा होने के अतिरिक्त कपटी और चालाक था।

विचित्र वीर्य के मरने पर पाण्डव राजा बना, लेकिन वह जल्दी ही स्वर्ग सिधार गया। पाण्डव की लाश के साथ उसकी रानी माद्री जल कर सती हुई। भारतवर्ष में सबसे पहिले सती होने की प्रथा माद्री ने कायम की थी। पाण्डव के मरने पर उनके बड़े बेटे युधिष्ठर सिंहासन पर बैठे। मगर क्योंकि वह नाबालिग थे इस लिये उनकी ओर से उनके चचा धृतराष्ट्र राज्य-कार्य चलाने लगे। इस समय में भी इन्द्र और सूर्य इत्यादि देवताओं की पूजा का अधिक ज़ोर था।

उसी समय द्वारिकापुरी में यदु वंशी श्री कृष्णचन्द्र शासन करते थे। वह वेदों के बहुत बड़े ज्ञाता, उच्च कोटि के विद्वान्; धार्मिक, बलवान एवं योगी पुरुष थे। उन्होंने उन जड़ देवताओ की पूजा का खण्डन किया। उनके समय में उन देवताओं की पूजा का रिवाज समाप्त होकर पूर्ण रूप से वैदिक सिद्धान्त सारे देश में प्रचलित हो गये थे।

लगभग पांच हज़ार वर्ष हुये दुर्भाग्यवश पाण्डवो और कौरवां में युद्ध छिड़ गया। १८ दिन के भीतर दोनों ओर के देशी और विदेशी सभी शूरवीर, योद्धा और विद्वान मारे गये। केवल श्री कृष्णचन्द्र, कृपाचार्य, कृत्तवर्मा, सात्यकी और पांचों पाण्डव जीवित बचे। इस महाभारत के युद्ध से विद्या, ज्ञान और विज्ञान को बड़ा भारी धक्का पहुंचा और भारतवर्ष का भाग्य ऐसे चक्कर मे पड़ गया कि आज तक भी उस हानि की पूर्ति न हो सकी।

महाभारत के युद्ध में पाण्डव विजयी हुये। युधिष्ठर चक्रवर्ती राजा बने। उन्होंने २६ वर्ष ८ महीने १८ दिन अति बुद्धिमानी से शासन किया। उनके समय मे वैदिक सिद्धान्तों पर पूर्ण रूप से अमल होता रहा। युधिष्ठर के पश्चात अर्जुन का पौत्र परीक्षत राजा बना। वह कुछ ज्यादा बुद्धिमान और चतुर न था। इस कारण उस पर स्वार्थी पंडितों ने अपना प्रभाव जमा लिया। वैदिक सिद्धान्तों मे फिर परिवर्तन होना आरम्भ हुआ। परीक्षत ६० साल कुछ महीने शासन करके स्वर्ग सिधार गया। उसकी मृत्यु पर उसका पुत्र जन्मेजय राजा बना। उसने ८४ साल कुछ माह शासन किया। यह राजा भी कुछ बुद्धिमान न था। इस पर भी स्वार्थी पंडितों का प्रभाव रहा। उसकी

मृत्यु पर उसके बेटे वज्रनाथ ने राज्य-कार्य सँभाला। यह राजा बहुत ही बुद्धिहीन और सत-शास्त्रों से अपरिचित था। वह दरबारी पंडितों के इशारों पर नाचने लगा और पंडित लोग बात-बात में राज्य कार्यों में बाधा डालने लगे। अब फिर सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि और इन्द्र इत्यादि देवताओं की पूजा का जोर बढ़ना आरम्भ हुआ। वज्रनाथ की दुर्बलता और अज्ञान से चक्रवर्ती राज्य छिन्न-भिन्न होता चला गया और बहुत सी छोटी बड़ी स्वतन्त्र रियासतों में विभाजित होना प्रारम्भ हो गया। उन राजाओं में बहुधा लड़ाई-झगड़े रहने लगे और वे एक-दूसरे के साथ वैर-भाव रखने लगे। उन लड़ाई झगड़ों के कारण देश में लिखने पढ़ने का रिवाज बहुत ही कम होकर लोग सत-शास्त्रों से अपरिचित होते चले गये। राजा लोग धर्म-कर्म को छोड़-छाड़ कर अधिकतर भोग-विलास में रहने लगे। उनमें बहुत-सी बुरी बातें आती चली गईं। इसका परिणाम यह हुआ कि देश में विद्या और ज्ञान की जगह अविद्या और अज्ञान ने ले ली। उस समय में कोई ऐसा योग्य और परोपकारी आचार्य या रिफार्मर उत्पन्न न हुआ कि जो बिगड़ती हुई दशा की रोक-थाम करके सुधार कर देता। देश में चारों ओर बेचैनी और अशान्ति फैलती चली गई। लोगों में धर्म प्रचार का कार्य बन्द हो गया। स्वार्थी पंडित वेद और शास्त्रों की अपना स्वार्थ पूरा करने के लिये उलट-पुलट कर व्याख्यायें करते हुये सब बुरी और खराब बातें वेद और शास्त्रों के सर मढ़ने लगे। स्वार्थी पंडित अपने अलग-अलग शास्त्रों की रचना करके उन पर लोगों को विश्वास कराने लगे। पंडितों का राजाओं और प्रजा पर ऐसा अनुचित प्रभाव स्थापित हो गया कि किसी को भी उनके सामने मुँह खोलने का साहस न हो सका। हर एक ब्राह्मण का वाक्य ब्रह्म वाक्य के तुल्य समझा जाने लगा। ब्राह्मणों को बड़े से बड़े अपराध पर भी इस भय से दण्ड नहीं दिया जाता था कि ब्राह्मण को दंड देने से अवश्य ही नरक में जाना पड़ेगा। कहाँ तक कहा जाये ब्राह्मणों का पूर्ण रूप से सिक्का जम गया। वह समय ब्राह्मण-काल के नाम से विख्यात है।

इसके पश्चात् होते-होते सारे देश में बुरी बातें और खराब रीति-रिवाज फैलते चले गये और वे सब बातें धर्म का अङ्ग बनती चली गईं। इस प्रकार वाम मार्ग मत की नींव पड़ गई। वाम मार्ग

मत का इस देश में काफी समय तक ज़ोर रहा। वाम मार्गी रस्मों और मनुष्यों की वलियों को हटाने के लिये चार वाक, जैन और बौद्ध मतों ने एक दूसरे के वाद जन्म लिया। इन मतों ने ईश्वर की हस्ती से इन्कार करते हुये वेद और सत-शास्त्रों से पूरा विरोध प्रकट किया और कहा कि वेद और शास्त्र स्वार्थी और धूर्त लोगों के वनाये हुये हैं। उनमें कोई वात अच्छी और भली दिखाई नहीं पडती। इस लिये वे सव घृणित हैं। इस प्रकार देश में वैदिक धर्म का लोप होता चला गया। लोग वेद और सत-शास्त्रों से विल्कुल ही अपरिचित होते चले गये।

जव इस देश में सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि इत्यादि देवताओं की पूजा का रिवाज चल रहा था, तव उन्हीं विचारों के आधार पर ईरान में पारसी धर्म प्रचलित हो गया था। इस धर्म का काफी ज़ोर हुआ और इसके फैलाव में खूव लडाई-झगड़े और रक्तपात हुये। वाम मार्गी मत का प्रभाव भी होते-होते सारे ससार मे फैल गया था। अतः वाम मार्गी रस्मों और पारसी धर्म के सिद्धान्तों मे सुधार के आधार पर अरव देश मे हज़रत मूसा ने यहूदी मज़हव का प्रचार आरम्भ कर दिया था। इस मजहव का अरव और उसके आस-पास के देशों में काफी फैलाव हुआ। इसके फैलाव में भी काफी लड़ाई-झगड़े रक्तपात और लूट-खसोट हुई।

जव इस देश और इसके आस-पास के देशों में बौद्ध धर्म का डङ्का वज रहा था और इस देश के दक्षिण मे जैन धर्म ज़ोरों पर था तो इस देश मे शङ्कराचार्य उत्पन्न हुये। उन्होंने नास्तिक, जैन और बौद्ध धर्मों का खण्डन किया। ईश्वर की भूली हुई हस्ती और शक्ति का इकरार ही नहीं कराया वल्कि हर एक जीव को ईश्वर ठहराया। इस प्रकार श्री शङ्कराचार्य ने इस देश मे अद्वैतवाद की नींव डाली। थोड़े ही समय मे नास्तिक और बौद्ध धर्मों को उसकी जन्मभूमि भारतवर्ष से निकाल कर वाहर कर दिया। इसी के साथ जैन धर्म की वुनियादें भी ज़ोर के साथ हिल गईं।

आस्तिक लोगो ने वाम मार्ग, जैन और वौद्ध धर्मों के देवताओं, मन्दिरों और मूर्ति-पूजा की देखा-देखी अपने अलग देवी-देवता,

अवतार, करतार कायम करके उनके लिये मन्दिर बनवा कर और उनकी मूर्तियाँ रखकर उनकी पूजा और उपासना आरम्भ कर दी। भक्ति-भाव पर ज्यादा ज़ोर दिया जाने लगा। वैदिक धर्म के कुछ सिद्धान्तों में कुछ दूसरे मत-मतान्तरों के सिद्धान्तों को सम्मिलित करके भक्ति मार्ग की नींव डाल दी गई।

उधर अरब में यहूदियों की कुछ रस्मों और पशुओं की बलियों से विमुख होकर और बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर हज़रत ईसा ने ईसाईयत का प्रचार करना आरम्भ कर दिया था। ईसाईयत का फैलाव काफी हुआ। इसके फैलाव में भी काफी लड़ाई-झगड़े, लूट-खसोट और रक्तपात हुये।

ईसा की कुछ शताब्दी पश्चात् अरब देश मे हज़रत मुहम्मद का जन्म हुआ। उन्होंने अपने देश की जहालत, बुरे रीति-रिवाज और आपसी लड़ाई-झगड़ों को हटा कर और लोगों को मूर्ति-पूजा से घृणा दिला कर केवल ईश्वर की पूजा-उपासना की शिक्षा देना आरम्भ किया और अरब देश में इस्लाम मजहब की नींव डाली। मुहम्मद साहब ने इस्लाम मजहब को सब से उत्तम बतला कर अपने को ईश्वर का नबी और पैगम्बर बतलाया। मुहम्मद साहब ने भविष्य में किसी दूसरे नबी, रसूल या पैगम्बर के आने की बाबत बन्द लगाया। इस मजहब के फैलाव मे भी खूब लड़ाई-झगड़े, रक्तपात और लूट-खसोट हुई।

मुहम्मद साहब के पश्चात् इस देश में बहुत से गुरु, आचार्य और रिफार्मर पैदा हुये। जिनमे से बहुत से शिक्षित और बहुत से अशिक्षित थे। उन सबने एक दूसरे से हेर-फेर या कमी-बेशी के साथ अपने-अपने विचारों का प्रचार करके लोगों को अपना अनुयायी बनाया और अपने बनाये हुये रास्ते पर चलने से लोगों को मुक्ति प्राप्त कराने या बैकुण्ठ में चले जाने का विश्वास दिलाया। इस प्रकार इस देश में सन्यासी, नानक पंथी, कबीर पंथी, रामानुजी और राम स्नेही इत्यादि बहुत से फिरके पैदा होकर फकीरों और भिखमंगों की सख्या में वृद्धि होती चली गई। ये जितने भी मत-मतान्तर पैदा हुये उन सब की नींव किसी न किसी पीर, फकीर, गुरु, सिद्ध, अवतार, करतार, देवी या

देवताओं की भक्ति और उपासना पर अवश्य स्थिर है। उन महानुभावों ने भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य और सभ्यता को फिर से जागृत करने के लिये पूरा परिश्रम किया मगर खेद के साथ कहना पड़ता है कि उनकी शिक्षा और सिद्धान्तों में वैदिक शिक्षा का अधिक अंश न था इसी कारण उनकी शिक्षा से देश की कोई सन्तोषजनक उन्नति न हो सकी। देश में उल्टी फिरकेबन्दी और ऊँच-नीच के विचारों ने जड़ पकड़ ली। उन सब के पश्चात् १९वीं शताब्दी में स्वामी दयानन्द का इस देश में जन्म हुआ। उस समय इस देश में वैदिक धर्म प्रायः लोप हो चला था। वेद और सत-शास्त्रों के नाम से अनपढ़ ही नहीं बल्कि काफी पढ़े-लिखे अनजान थे। वैदिक धर्म के सिद्धान्त जनता को ओपरे मालूम होते थे। हिन्दू जाति में बहुत से मत-मतान्तर उत्पन्न होकर प्रचलित हो गये थे। हिन्दू लोग आपस में एक दूसरे से ऊँच-नीच के विचारों के कारण घृणा का बर्ताव कर रहे थे। उनकी पूजा और उपासना के ढंग भी अलग-अलग थे। वह गङ्गा, यमुना, त्रिवेणी, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र आदि स्थानों पर स्नान कर लेने में ही मुक्ति मानने लगे थे। श्री रामचन्द्र, श्री कृष्णचन्द्र, विष्णु, शिव और पार्वती आदि देवी-देवताओं के नाम जपने, स्मरण करने, उनकी मूर्तियों के दर्शन करने, उन पर फूल-पत्ती चढ़ाने, घंटा-घड़ियाल इत्यादि बाजे बजाने, माथे पर तरह-तरह के तिलक और छापे लगाने; राम नाम के साफे ओढ़ने, भागवत इत्यादि पुराणों की कथा कहलाने में ही वैकुण्ठ में जाने का मार्ग समझने लगे थे। इन्हीं विचारों के आधार पर देश में बड़ी-बड़ी लागत के मन्दिर बनवाये जा रहे थे। पंडितों, महन्तों, पुजारियों और गुरुओं ने जनता को इतनी बुरी तरह से अपने जाल में फंसा लिया था कि उनकी आज्ञा के बिना कोई कान तक हिलाने का साहस नहीं कर सकता था। इस प्रकार हिन्दुओं के ज्ञान, कर्म और भक्ति की दशा बहुत अधिक बिगड़ गई थी। बाल, वृद्ध और बेमेल शादियों के कारण विधवाओं की संख्या में वृद्धि होती जा रही थी। विधवाओं का घरों में निरादर होता था और उन्हें बुरी तरह तंग किया जाता था। वह बिचारी या तो तंग आकर आत्म-हत्या कर लेती थीं या घरों से निकल कर दूसरे मतों को ग्रहण कर लेती थीं। छूत-छात के सिद्धान्तों से हिन्दू जाति को बहुत ही अधिक हानि पहुंच रही थी। अछूत लोग हिन्दुओं के अनुचित अत्याचार और घृणा के बर्ताव से

तंग आकर ईसाई या इस्लाम मतों को ग्रहण कर रहे थे। कुछ अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दू पश्चमी सभ्यता से प्रभावित होकर और हिन्दुओं के प्रचलित रीति-रिवाजों को घृणित समझ कर ईसाईयत की ओर भागे जा रहे थे। कुछ हिन्दू पादरियों की गहरी और गुप्त चालों में फँसकर धन, स्त्री अथवा सरकारी नौकरी के लालच मे डूब कर हिन्दू धर्म को त्याग रहे थे।

महर्षि दयानन्द ने १५ साल तक भारतवर्ष के कोने २ मे घूम कर इन सब बातों को होते हुये अपनी आंखों से देखकर यह अनुभव किया कि यदि हिन्दू जाति का इसी प्रकार कुछ और समय तक पतन होता रहा तो एक दिन ऐसा अवश्य आ जायगा कि इस हिन्दू जाति का नाम और निशान तक भी बाकी नहीं रहेगा।

महर्षि दयानन्द अपने गुरु श्री वृजानन्द से शिक्षा प्राप्त करके और उनकी आज्ञानुसार हिन्दू जाति को डूबने से बचाने, वैदिक धर्म को फिर से जाग्रत करने और प्राचीन सभ्यता को फैलाने के लिए लंगोट कस कर कार्य-क्षेत्र में कूद पड़े। उन्हों ने पादरियों, मौलवियों और दूसरे मत मतान्तरों के नेताओं को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। उन्होंने बहुत से विद्वानों के साथ वैदिक सिद्धातों पर शास्त्रार्थ करके उनको नीचा दिखलाया। इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने वैदिक सिद्धांतों का पुनः प्रचार आरम्भ किया। उनके भाषणों को सुनकर, लेखों को पढ़कर और पुस्तकों को समझकर बहुत से लोग वैदिक धर्म ग्रहण करते चले गये। स्वामी दयानन्द ने खुल्लम-खुल्ला लोगों को यह बताया और समझाया कि मै औरों की भांति अपना कोई अलग पंथ या फिरका बनाना नहीं चाहता हूँ और न ही ऐसा करने के हेतु प्रचार कर रहा हूँ बल्कि मै तो केवल उन सिद्धांतों को ही दौहरा रहा हूँ जिनको मैं वैदिक सिद्धात मानता और समझता हूँ, जिन सिद्धांतों का मैं वेद की चार मूल संहिताओं मे वर्णन पाता हूँ और जो सिद्धांत ब्रह्मा जी से लेकर जैमिनी तक बराबर माने जाते रहे हैं।

श्री दयानन्द ने अपने प्रचार को वेदों और ऋषिकृत ग्रन्थों पर ही निर्भर रक्खा और जिन सिद्धांतों का प्रचार किया उनका नाम भी वैदिक धर्म इसी कारण रक्खा गया।

दयानन्द सरस्वती से पहिले रिफॉर्मरों ने केवल आध्यात्मिक (रूहानी) पहलू पर ही अधिक जोर दिया था। मगर स्वामी दयानन्द ने आध्यात्मिक पहलू के अतिरिक्त धार्मिक, सामाजिक (मजलिसी) और राजनैतिक (सियासी) बातों पर भी ध्यान दिया और उनके सुधार की तरफ अपना विशेष ध्यान रक्खा। उन्होंने ऐसा इस लिये किया कि वह इन सब बातों को भी मनुष्य धर्म का एक आवश्यक अंग समझते थे।

भारतवर्ष में वैदिक धर्म का काफी प्रचार उनकी जिन्दगी में ही हो चुका था और लगभग ८० आर्य समाज देश भर में स्थापित हो चुकी थीं। उनके निर्वाण के पश्चात् देश भर के श्रेष्ठ पुरुषों ने तेजी, उत्साह और स्पिट के साथ ऋषि के मिशन को पूरा करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने भी शास्त्रों, लेखों, भाषणों और शास्त्रार्थों के द्वारा देश भर में वैदिक धर्म का प्रचार किया और वह एक सीमा तक सफल भी हुये।

२०वीं शताब्दी में इस देश के अन्दर स्वराज्य प्राप्ति के आन्दोलन ने जोर पकड़ा। बहुत से आर्य समाजी इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। इस आन्दोलन में सम्मिलित होने के कारण धर्म प्रचार का काम कम होता चला गया। देश स्वतंत्र हो जाने पर बहुत से आर्य समाजी विद्वानों ने राज्य कार्यों को चलाने के लिये राज्य पद ग्रहण कर लिये, जिससे कि उनका धर्म कार्यों को चलाना और भी कम हो गया।

वैदिक धर्म वाले इस समय सारे भारतवर्ष में मौजूद हैं। बहुत से छोटे-बड़े शहरों, कस्बों और बहुत से ग्रामों में भी उनके आर्य समाज मन्दिर स्थापित हैं। इस देश के अतिरिक्त कुछ आस-पास के द्वीपों में भी उनके धर्म का प्रचार पाया जाता है। वैदिक धर्म वालों की संख्या इस समय एक करोड़ के लगभग है। वैसे तो मूर्ति-पूजा और कुछ दूसरे सिद्धान्तों को छोडकर और बाकी वैदिक धर्म के सब सिद्धान्त सभी हिन्दू दिन प्रति दिन मानते जा रहे हैं।

वैदिक धर्म के सिद्धान्त

१—ईश्वर एक है जो तमाम संसार और लोक लोकान्तरों के रचने वाला है।

२—ईश्वर का सबसे उत्तम नाम ओ३म् है।

३—ईश्वर सर्व व्यापक, सर्व-शक्तिमान, सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, निर्भय, नित्य और पवित्र है।

४—ईश्वर के सिवाय और किसी की उपासना करना ग़लत और भ्रम है।

५—ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीनों पदार्थ अनादि और अनन्त हैं और उनके गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि और अनन्त हैं।

६—ईश्वर और जीव अपनी अपनी जाति और गुणों के अनुसार अलग अलग हैं उनके आपस में उपास्य (माबूद) और उपासक (आबिद), तथा बाप बेटे या राजा और प्रजा जैसे सम्बन्ध हैं ईश्वर का जीव को सुख दुख देने में पूरा कन्ट्रोल है और यह कन्ट्रोल अनादि काल से बराबर चला आरहा है और अनन्त काल तक ऐसा ही रहेगा।

७—ईश्वर में तीन गुण हैं अर्थात वह सत्, चित और आनन्द है, जीव में दो गुण हैं अर्थात वह सत् और चित है, प्रकृति में एक गुण है अर्थात् वह सत्य है। प्रकृति भी ईश्वर के पूर्ण रूप से आधीन अनादि काल से चली आरही है और अनन्त काल तक ऐसी ही रहेगी।

८—ईश्वर का जाति स्वभाव संसार की उत्पत्ति, स्थिरता और प्रलय है। ईश्वर सबको अपने नियमानुसार कायम रखता है और जीवों को उनके अच्छे या बुरे कार्यों के अनुसार आवागमन या मुक्ति के द्वारा सुख दुख देता है।

९—जीव अमिश्रित (गैर मादी) और चैतन्य है, जिसकी चेतनता दिखाने वाले इच्छा-द्वेष और सुख दुख इत्यादि गुण हैं। जीव अति सूक्ष्म है इसी लिये उसका रूप और आकार आदि, इन्द्रियों से देखा जा सकता।

१०—पाप और पुण्य केवल मनुष्य जीवन में ही होता है, पशु पक्षी जीवन में केवल कर्मफल का भोग मिलता है और नये पाप या पुण्य एकत्रित नहीं होते।

११—ईश्वर सर्वज्ञ और जीव अलपज्ञ हैं।

१२—जीव अपने कार्य करने में स्वतंत्र है और सुख दुख भोगने में परतन्त्र, अर्थात् ईश्वर के आधीन है।

१३—प्रकृति जड और अचेतन है, उसमें अपने आप काम करने की कोई शक्ति या ज्ञान नहीं है, किन्तु जब इसमे ईश्वर की चैतन्य शक्ति से कार्य करने की शक्ति पैदा कर दी जाती है तब वह अपना कार्य करना आरम्भ कर देती है।

१४—प्रकृति मे संयोग, उत्पत्ति और वियोग के गुण प्रवाह (तसल्सुल) से अनादि है।

१५—सृष्टि में अलग अलग परमाणुओं के जरिये ईश्वर अपनी असीम विद्या, बुद्धि, हिकमत और तरकीब से भांति भांति की शक्लें और रूप प्रकट करता है और इसी का नाम उत्पत्ति या पैदायश है।

१६—सृष्टि की उत्पत्ति का प्रयोजन यह होता है कि ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव सफल हों और जीवों को उनके अच्छे और बुरे कर्मों के अनुसार सुख दुख दिया जाय और उनको मुक्ति प्राप्त करने का अवसर मिल जाये।

१७—आधुनिक सृष्टि, की उत्पत्ति को अब १९५४ ई०में एक अरब छयानवे करोड आठ लाख त्रेपन हजार पंचपन वर्ष (१९६०८५३०५५) बीत चुके हैं और दो अरब पैंतिस करोड इक्यानवे लाख छयालीस हजार नौ सौ पैंतालीस (२३५९१४६९४५) वर्ष प्रलय होने में बाकी हैं, इस तरह पर सृष्टि की अवधि-एक कल्प या सहस्र महायुग अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होती है, इस अवधि को ब्रह्म दिन कहते हैं।

१८—उत्पत्ति के पश्चात् प्रलय और प्रलय के पश्चात उत्पत्ति अनादि काल से होती चली आई है और अनन्त काल तक ऐसा ही चक्र चलता रहेगा। प्रलय की अवधि भी चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होती है और उसे ब्रह्मरात्रि कहते हैं।

१९—ईश्वर निराकार (बे शक्ल बे सूरत) है। इस लिये उसकी कोई मूर्ति नही बनाई जा सकती।

२०—ईश्वर के गुणों को देखते हुये उसका अवतार लेकर शरीर धारण करना असम्भव है।

२१—ईश्वर किसी विशेष स्थान या आकाश अग्नि पर नहीं रहता बल्कि वह सर्व व्यापक सर्वान्तर्यामी और सर्वज्ञ है।

२२—ईश्वर मनुष्यों या पशु-पक्षियों की तरह कोई शरीर नहीं रखता और न वह चलता, फिरता, आकाश से उतरता चढ़ता, हसता बोलता, खुश होता या पश्चाताप करता है और न ही वह कसम या सौगन्ध खाता है।

२३—ईश्वर इन आंखों से दिखाई नहीं देता। ईश्वर को देखने का जरिया समाधि, तप और तपस्या है।

२४—ईश्वर को किसी नबी, पैगम्बर, रसूल, दरबार इजलास, तख्त-ताज अर्दली, पेशकार, दूत-फरिश्ता, शैतान, जिन, दावात-कलम, रजिस्टर और फाईल इत्यादि वस्तुओं की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि वह सर्वज्ञ है। वह सर्व व्यापक, सर्वान्तयमि और अनन्त है अर्थात् सब जगह और सबके अन्दर मौजूद है।

२५—ईश्वर के सामने किसी की सिफारिश या शफाअत नहीं चलती है। और न उसके रुबरु किसी वकील ता गवाह आदि के पेश होने की ही आवश्यकता पडती है।

२६—ईश्वर की कोई खास उम्मत (घनिष्ट सम्बन्धी) नहीं है और न ही उसने किसी विशेष उम्मत को बख्शने का वचन दे रक्खा है।

२७—ईश्वर को कोई रिश्वत देकर तथा भेंट या तोफा पेश करके अपना कोई काम नहीं निकाल सकता।

२८—ईश्वर के सामने किसी की कोई बनावट, छल, कपट, धोखे बाजी या चालाकी नहीं चल सकती।

२९—ईश्वर का न्याय हर घडी और हर पल होता रहता है, न्याय के लिये कोई विशेष तारीख, दिन, महीना, साल या कोई विशेष स्थान नियुक्त नहीं है।

३०—ईश्वर का कानून अमीर, गरीब, छोटे, बड़े इन्सान, हैवान, पशु, पक्षी अर्थात् सब जीव-धारियों के साथ सदा बराबर रहता है। उसकी किसी विशेष फिरके, जाति या उन्मत से कोई विशेष सहानुभूति नहीं है।

३१—ईश्वर के प्रबन्ध, कानून या नियम को कोई भी किसी मोजजे, करामात, सिद्धि या चमत्कार आदि से नहीं बदल सकता।

३२—किसी स्वर्ग या नरक का किसी जगह कोई स्तित्व (वजूद) नहीं है, संसार में विशेष सुख भोगने और उसका सामान एकत्रित होने का नाम स्वर्ग और विशेष दु:ख भोगने और उसका सामान एकत्रित होने का नाम नर्क है।

३३—सब प्रकार के दु:खों से स्वतन्त्र होकर और बन्धन से छुटकारा पाकर सर्वव्यापक, सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर और उसके विचित्र ब्रह्माण्ड और लोक लोकान्तरों में जीव का स्वतन्त्र होकर घूमना और ईश्वर के आनन्द रस को लेते रहने का नाम मुक्ति है। मुक्ति मे जीव के सब इरादे पूरे होते हैं और वह सदा स्वतन्त्रता के साथ सुख और आनन्द से रहता है।

३४—मुक्ति की एक अवधि नियुक्त है। मुक्ति के परमानन्द को भोग कर जीव को फिर कर्मक्षेत्र में आना पड़ता है, क्योंकि सीमित (महदूद) कर्मों का फल सीमित ही होता है। मुक्ति अनन्त सुख का नाम है और यह अत्यन्त अच्छे कर्मों के बदले में मिलती है।

३५—मुक्ति मे जीव का यह भौतिक शरीर नहीं रहता, परन्तु चौवीस प्रकार की शक्तियाँ अवश्य रहती हैं। जीव जिस शक्ति को प्रयोग करने का इरादा करता है वह शक्ति प्रकट होकर अपने कार्य को पूरा कर देती है।

३६—वेद ईश्वरीय ज्ञान है जो मनुष्य की उत्पत्ति के साथ साथ ईश्वर ने अग्नि ऋषि, वायु ऋषि, आदित्य ऋषि और अङ्गिरा ऋषि के हृदयों में अपनी प्रेरणा (तहरीक) से प्रकाशित किया था। वेद के

चार भाग हैं। एक एक भाग एक एक ऋषि के हृदय में प्रकाशित हुआ था। वेद संसार के आरम्भ से लेकर प्रलय तक ज्यूं का त्यूं मौजूद रहेगा। उसमें किसी अदल-बदल, काट-छाँट या मिलावट की कभी आवश्यकता नहीं पडी और न भविष्य में पडेगी।

१७—वेद ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण हर प्रकार की त्रुटियों से पाक और पवित्र है। वेद सब विद्याओं का भण्डार है।

ईश्वर, जीव और प्रकृति के अनादि और अनन्त होने के बारे में कुछ युक्तियाँ

१—जो वस्तु जहाँ होती है वहाँ से ही वह प्राप्त होती है।

२—जो वस्तु जहाँ नहीं होती वहाँ से वह प्राप्त भी नहीं हो सकती।

३—जो गुण समस्त वस्तु में होता है वही गुण उसके भाग में होता है।

४—जो गुण समस्त वस्तु मे नहीं होता वह उसके भाग में भी नहीं होता।

५—जो वस्तुयें एक ही वस्तु के बराबर होती हैं वह सब आपस में बराबर होती है।

६—यदि एक वस्तु के बराबर हिस्से किये जायें तो वह सब हिस्से आपस में बराबर होंगे।

७—दो विरुद्ध (मुतजाद) वस्तुयें विरोध के कारण एक प्रकार की कदाचित नहीं हो सकती।

८—अनादि चीजों के गुण भी अनादि होते हैं।

९—गुण गुणी के साथ रहता है। कभी अलग नहीं हुआ करता।

१०—बिना विद्या और ज्ञान के खोज का होना असम्भव है।

११—जो पैदा होता है उसका नाश अवश्य होता है, और जो पैदा नहीं होता उसका नाश कदाचित नहीं होता।

१२—हर एक काम के करने के लिये कर्त्ता अवश्य होता है।

१३—दो जड़ या ज्ञान रहित पदार्थों का आपस मे ज्ञान पूर्वक और नियमानुकूल मिलना असम्भव है। उनको ज्ञान पूर्वक और नियमानुकूल मिलने वाली कोई दूसरी चैतन्य और ज्ञान वान शक्ति होनी अति आवश्यक है।

१४—वह ज्ञान वान और चैतन्य शक्ति इन दोनों पदार्थों को आपस में उस समय तक नहीं मिला सकती जब तक कि वह दोनों पदार्थ उपस्थित न हों।

१५—यदि ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव को अनादि न माना जाये तो उसको नाशवान मानना पड़ेगा।

१६—यदि ईश्वर को अनादि माना जाये तो वह नाश वान नहीं हो सकता, बल्कि अनन्त होगा।

१७—यदि ईश्वर की सत्ता से बिल्कुल इन्कार किया जाये तो समस्त जीवधारियों का एक जैसा ही दर्जा होना चाहिये। मगर ऐसा नहीं है।

१८—यदि हर एक जीव को ईश्वर के हाथ से निकला हुआ माना जाये तो हर एक जीव को ईश्वर मानना पड़ेगा। मगर ऐसा भी नहीं है, इसलिये जीव ईश्वर नहीं है।

१९—यदि ईश्वर की हस्ती को न माना जाये और यह माना जाये कि यह संसार सदा से इसी प्रकार चला आ रहा है और इसी प्रकार चलता रहेगा, तो इसमें यह दोष आता है कि प्रकृति में स्वयं किसी वस्तु के बनाने, बिगाड़ने, ज्ञानपूर्वक और नियमानुकूल मिलाने का ज्ञान नहीं है क्योंकि वह जड़ पदार्थ है। इसलिये बनाने, बिगाड़ने और ज्ञानपूर्वक मिलाने वाली कोई अन्य चैतन्य शक्ति अवश्य है।

२०—जो वस्तुयें जड और मिश्रित हैं उनके बनाने वाला तो अवश्य होना है। जो चीज चैतन्य और अमिश्रित हैं उनके बनाने वाला भी कोई नहीं होता। वह अनन्त और अनादि माननी पड़ेंगी। जड़ और मिश्रित वस्तुयें नाशवान होती है।

२१—जीव और प्रकृति को यदि पैदा किया हुआ माना जाये तो ईश्वर के अनादि और अनन्त गुणों पर एक बहुत बड़ा दोष आता है और ईश्वर एक जमाने के लिये बेकार सिद्ध होता है।

परमात्मा

ईश्वर एक है। उस जैसा या उससे बड़ा कोई नहीं। वह अनादि और अनन्त है। वह सत् चित और आनन्द है। वह सर्व शक्तिमान, सर्व व्यापक, अन्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, न्यायकारी, दयालु, कृपालु, सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, अजन्मा, निर्विकार, सर्वाधार, सर्वेश्वर, शुद्ध और पवित्र है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, रुद्र, वायु, अग्नि, और वरुण इत्यादि ईश्वर के ही नाम हैं। इन सब नामों से परमात्मा की भिन्न भिन्न शक्तियों का बोध होता है। समस्त शक्तियाँ परमात्मा मे निवास करती है इसलिये उसे देवों का देव अर्थात् महादेव कहा गया है।

परमात्मा सृष्टि की उत्पत्ति करके उसे कायम रखता है और फिर निश्चित समय पर प्रलय करके छिन्न भिन्न कर देता है। परमात्मा का विधान और नियम अटल है। परमात्मा जीवों को उनके पाप और पुण्य का अपने न्यायानुसार बिल्कुल ठीक ठीक फल देता है। परमात्मा निष्कर्म नहीं है, अगर उसको निष्कर्म कहा जाये तो वह न जगत पैदा करके कायम रख सकता है और न ही प्रलय कर सकता है। चैतन्य शक्ति कर्म अवश्य करती रहती है। परमात्मा की कोई शक्ल नहीं। वह अद्वितीय और अनुपम (बे मिसाल) है। उसके हाथ, पैर, नाक, कान और आंख इत्यादि इन्द्रियाँ नहीं हैं। निराकार परमात्मा ही सृष्टि के सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल पदार्थों की रचना कर सकता है। साकार (शरीर वाला) परमात्मा सृष्टि नहीं बना सकता। यदि परमात्मा को शरीरधारी मान लिया जाये तो वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ और अन्तर्यामी नहीं रह सकता। शरीर होने से उसकी उत्पत्ति और उसका नाश भी मानना पड़ेगा। यदि कहा जाय कि उसने अपना शरीर खुद बना लिया है तो भी उसकी निराकार अवस्था सिद्ध हो जाती है।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि यदि परमात्मा कोई वस्तु है तो वह दिखाई क्यों नहीं देता। याद रहे कि ऐसा भी तो होता है कि संसार में और भी ऐसी बहुत सी चीजें उपस्थित है कि जो दिखाई नहीं देती। विचार कीजिये, आंख में लगा हुआ सुरमा, अति निकट होने के

कारण, बहुत ऊँचे उड़ता हुआ पक्षी या पतंग, बहुत दूर होने के कारण, सूर्य के प्रकाश से दब जाने के कारण तारे और पर्दा पड़ा रहने से पर्दे के पीछे की चीज़ दिखाई नहीं देती। एक ही प्रकार की दो चीजें जब मिला दी जाती हैं तो वह अलग-अलग दिखाई नहीं देतीं। जैसे दूध में पानी। आँखों का प्रकाश चले जाने के कारण चीजें दिखाई नहीं दिया करतीं। ऐसे ही परमात्मा मौजूद तो है पर वह बहुत सूक्ष्म है, इसलिये इन आँखों से दिखाई नहीं पड़ता। उसके देखने की विधि उसकी सच्ची भक्ति, समाधि, तपस्या और तप है।

योग दर्शन में परमात्मा के देखने की यह विधि लिखी है—

१—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (भोग में न रहना), स्वाध्याय, (शास्त्र पढ़ कर मनन करना और ईश्वर प्रेम में मन को लगाना)

२—प्राणायाम के द्वारा शरीर और मन की उन्नति करना।

३—चित्त को इधर-उधर जाने से रोक कर अभ्यास के द्वारा बल बढ़ाना।

४—निष्काम कर्म करना और ज्ञान बढ़ाना।

५—ईश्वर-भक्ति में दिल लगाना।

६—ईश्वर से प्रेम बढ़ाते रहना।

इस प्रकार प्रेम बढ़ाने से मनुष्य आत्मानन्द को प्राप्त कर सकता है और यह समाधि की दशा में होता है। इसके अतिरिक्त इस रंग बिरंगी और विचित्र सृष्टि को नियमानुकूल बँधी देख कर यह आसानी से अनुभव हो जाता है कि इसके बनाने वाली कोई न कोई सर्व शक्तिमान, महान् विद्वान् और महान ज्ञानवान शक्ति अवश्य है। परमात्मा को हम उसके गुणों से जान सकते हैं और जितना अधिक हम उसके गुणों का चिन्तन करते रहेंगे उतना ही अधिक हम परमात्मा को जानते चले जायेंगे। जब किसी बुरे काम करने में शंका और लज्जा, अच्छे कामों के करने में निडरता, तथा आनन्द और उत्साह का अनुभव होता है तो वह जीवात्मा की तरफ से नहीं होता बल्कि परमात्मा की ओर से एक इशारा होता है। यह तो माना कि हम पूर्ण रूप से यह नहीं कह सकते

कि हमने परमात्मा को अच्छी तरह जान लिया है, और न हम उसको पूर्ण रूप से जान ही सकते है क्योंकि परमात्मा अनन्त है और जीव परिमित (महदूद) है। परन्तु यह भी नहीं कहा जा सकता कि हमने परमात्मा को बिल्कुल नहीं जाना।

कुछ लोग ऐसा समझे बैठे है कि यह सृष्टि किसी ने नहीं बनाई और न इसके बनाने मे किसी ईश्वर की आवश्यकता पड़ती है, बल्कि यह सदा से ऐसी ही चली आ रही है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रकृति जड पदार्थ है, उसमे सयोग (मिलने जुलने) और वियोग (अलग होने) की दोनों शक्तियाँ तो मौजूद है मगर वह अन्धी है। उनको किसी प्रबन्ध के आधीन छोटे पैमाने पर प्रयोग में लाने के लिये मनुष्य की और बडे पैमाने पर प्रयोग मे लाने के लिये किसी सर्व शक्तिमान्, सर्वव्यापक, महान ज्ञान-वान और चैतन्य शक्ति की आवश्यकता पडती है। अत. जो प्रकृति को प्रेरणा देकर अपने अटल विधान और नियम के अनुसार प्रयोग मे लाता है वही ईश्वर है। जरा इस उपमा पर विचार कीजिये-रग मौजूद है, कागज़ मौजूद है, कलम मौजूद है, यदि चित्रकार मौजूद न हो तो चित्र का बनना असम्भव है। यह सृष्टि केवल रगों की मिलावट और बनावट मौजूद नहीं है, बल्कि एक एक परमाणु से यह बात सिद्ध होती है यह किसी महान् चित्रकार की महान् कला है। तमाम ब्रह्माण्ड विधान और नियम मे बँधा हुआ है। उसके विधान, नियम और चित्रकारी को देख कर हैरानी होती है और मानना पडता है कि यह सृष्टि सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञान वान और चैतन्य शक्ति का एक महान् कार्य है। प्रकृति में स्वयं इस रंग बिरंगे ब्रह्माण्ड को बना कर विधान और नियमानुसार चलाने की शक्ति नहीं है।

यह जगत मिली जुली वस्तुओं के समूह का नाम है। सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तुये आकाश (ईथर), हवा, अग्नि इत्यादि वस्तुये प्रकृति के लगातार परिवर्तनों के पश्चात् बनी है। स्थूल से स्थूल वस्तुयें भी ऐसे ही बनी हैं। वह अवश्य किसी न किसी समय बनी हैं। जब उनका आदि है तब अन्त भी अवश्य है। कोई मिश्रित वस्तु अनादि और अनन्त नहीं हो सकती। अनन्त वस्तु ही अनादि होती है। जब वह अनादि नहीं है तो अवश्य किसी न किसी समय बनाया गया है और

जब बनाया गया है तो उसका बनाने वाला कोई न कोई अवश्य है। जो बनाने वाला है वही ईश्वर है।

कुछ लोग यह उदाहरण दिया करते है कि देखो लोहा चुम्बक के सामने आते ही उसकी ओर स्वयं खिच जाता है। इसमे किसी चैतन्य शक्ति की जरूरत नहीं पड़ती। इसी प्रकार इस संसार को बनाने चलाने और प्रबन्ध मे रखने के लिये किसी ईश्वर नाम की आवश्यकता नहीं होती। प्रकृति अपनी चुम्बक शक्तियों से इस ब्रह्माण्ड को खीचे हुये है। इसी से तमाम ब्रह्माण्ड बन जाता है। इस उदाहरण से यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो परमात्मा की हस्ती सिद्ध होती है। देखिये। मकनातीस ने लोहे को अपनी तरफ खींच तो लिया लेकिन वह उसको स्वयं अलग नहीं कर सकता। दोनों को अलग-अलग करने के लिये चैतन्य शक्ति की जरूरत पड़ती है। साधारण लोहा मकनातीस का काम नहीं दे सकता। जब उसमें मकनातीस भरा जायगा तब उसमे लोहे को अपनी तरफ खींचने की शक्ति आयेगी। यहाँ मकनातीस भरने और लोहे को मकनातीस से अलग करने का काम मनुष्य कर रहा है। इसी प्रकार इस तमाम ब्रह्माण्ड और लोक लोकान्तरों को खींचने, मिलाने और अलग करने की शक्ति ईश्वर को जाहिर करती है। चूंकि मनुष्य की शक्ति से यह बात बाहर है, इसलिये उसके लिये किसी महान विद्वान् और महान शक्तिमान की जरूरत पडती है। अतः वही सर्व व्यापक और सर्व शक्तिमान परमात्मा कहलाता है।

जीवात्मा

जीवात्मा एक चैतन्य शक्ति है और वह सूक्ष्म और स्वतन्त्र है। वह सारे प्राणियों मे रहकर कर्म करता है और सुख दुःख भोगता है। वह अनादि, अनन्त, अमर और नित्य है। बहुत सूक्ष्म होने के कारण दिखाई नहीं देता। वह ईश्वर से भिन्न है। वह अलपज्ञ और परमात्मा सर्वज्ञ है। जीवात्मा सत्-चित् तो है मगर आनन्द नहीं। जीवात्मा सुख दुःख भोगने वाला और शरीर धारण करने वाला है। वह ईश्वर के आधीन सदा से चला आ रहा है और सदा-सर्वैव ऐसा ही रहेगा। ईश्वर स्वामी है और जीवात्मा उसकी प्रजा है। जीवात्मा का स्वरूप अणु

है। वह छोटे से छोटे जीव जन्तु और बडे से बडे शरीर में रह कर शासन कर सकता है। वह शरीर मे एक विशेष स्थान मे रह कर सारे शरीर को प्रकाशमान बनाये रखता है। उसको न आग जला सकती है, न पानी गला सकता है, न हवा सुखा सकती है और न ही तलवार काट सकती है। जीवात्मा कर्म करने मे स्वतन्त्र है मगर फल भोगने में ईश्वर के आधीन है। वह ईश्वर की आधीनता से कभी बाहर नहीं हो सकता। जीवात्मा के कर्म करने में स्वतन्त्र होने का अर्थ यह है कि शरीर, प्राण, इन्द्रियॉ और अन्तःकरण आदि उसके आधीन होते हैं। यदि जीवात्मा को स्वतन्त्र न माना जाये तो उसे पाप और पुण्य का फल नहीं मिल सकता।

जीवात्मा के गुण ये हैं:—

इच्छा, द्वेष (घृणा या वैर-भाव), प्रयत्न (पुरुषार्थ-बल, सुख-दुःख का अनुभव, ज्ञान, प्राण (प्राण को बाहर से अन्दर खींचना), अपान (प्राणवायु को बाहर निकालना), निमेष (ऑख का मीचना), उन्मेष (ऑख का खोलना), मन (स्मरण रखना, अहंकार करना), गति (चलना या हरकत करना), इन्द्रिय-सचालन (सब इन्द्रियों का चलाना), और अन्तर्विकार (क्रोध वगैरह गुण रखना) ये जीवात्मा के सब गुण ईश्वर से भिन्न हैं।

जीवात्मा गिनती में अगणित हैं। मगर वे सब एक ही जाति के हैं। यदि जीव को अनन्त माना जाये और साथ ही उसको उत्पन्न किया हुआ कहा जाये तो यह ग़लत है, क्योंकि जो अनन्त होता है वह अनादि भी अवश्य होता है। जीवात्मा शरीर से भिन्न वस्तु है। ज्ञान का शरीर से सम्बन्ध नहीं है बल्कि जीवात्मा से है। जीवात्मा शरीर के सारथी के समान है और शरीर उसके रथ के समान है।

जीवात्मा के शरीर से भिन्न होने में कुछ ये युक्तियाँ हैं:-

१—जब बाहरी और भीतरी तमाम इन्द्रियां क्लोरोफार्म द्वारा अथवा समाधि की अवस्था में बेकार हो जाती हैं तब भी जीव-धारी जीवित रहता है। इस से पता चलता है कि शरीर के अन्दर कोई

ऐसी हस्ती अवश्य है जो इन्द्रियों से बिल्कुल भिन्न है। इन्द्रियों के बेकार होने पर भी शरीर सड़ने गलने से बचा रहता है जैसा कि समाधि की दशा में देखा जाता है।

२—जब मनुष्य गाढ़ी नींद में होता है और तमाम इन्द्रियां और मन अज्ञानी (अचेत) रहता है तो जागने पर सोने वाला यह अनुभव करता है कि बहुत आराम से सोया। यह अनुभव करने वाला इन्द्रियों से अलग जीवात्मा है।

३—वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि मनुष्य का तमाम शरीर बारह वर्ष के बाद बिल्कुल बदल कर नया हो जाता है; कुछ भी पुराने परमाणु बाकी नहीं रहते, परन्तु देखने में आता है कि बचपन की बहुत सी बातें बुढ़ापे तक याद रहती हैं। यह याद रखने वाला जीवात्मा से भिन्न दूसरा कोई नहीं है।

४—दूरबीन या खुर्दबीन के द्वारा दूर की चीज निकट और छोटी चीज बड़ी दिखाई देती है। इन्द्रियों के ज्ञान की सीमा तो उतनी ही है जितना ज्ञान उन्हें उनके द्वारा प्राप्त होता है, परन्तु मनुष्य समझता है कि वास्तव में दिखाई देने वाली वस्तु न इतनी निकट है और न इतनी बड़ी है। यह बात समझने वाला और कोई नहीं केवल जीवात्मा है।

५—एक मां बाप के दो बेटों का एक ही जैसा पालन पोषण हुआ और उन्होंने एक ही जैसी शिक्षा पाई। उनमें से एक योग्य हो जाता है और दूसरा अयोग्य रह जाता है ऐसा पिछले जन्म के संस्कारों के कारण होता है। वह संस्कार जीवात्मा के साथ शरीर में आते हैं।

६—सब जीवधारियों को मृत्यु का सब से बड़ा भय होता है। मगर जिस मनुष्य की आत्मा बल प्राप्त कर लेती है वह निडर हो जाता है। निडर होने का कारण केवल यह होता है कि वह शरीर में जीवात्मा को अमर अनुभव करता है। आत्मबल प्राप्त करने का अर्थ यह है कि उसके ऊपर से अज्ञान का पर्दा हट गया। इसी पर्दे के हट जाने से मृत्यु का डर हट जाता है और वह अपने स्वरूप को पहिचान लेता है।

७—ऐसा भी देखा जाता है कि पढ़ते लिखते इन्द्रियां और दिमाग थक जाता है, परन्तु मनुष्य के हृदय में पढ़ने या लिखने इत्यादि के काम

को करने की इच्छा बनी रहती है। इन्द्रियां तो थक कर आराम करना चाहती हैं परन्तु अन्दर कोई ऐसी वस्तु है जो काम में लगाये रखना चाहती है यह अन्दर वाली वस्तु ही जीवात्मा है।

८— एकान्त में बैठ कर सोचने से दिमाग की उन्नति होती है। एकान्त में इन्द्रियों को दौड़ धूप करने का बहुत कम अवसर मिलता है। अन्दर की शक्ति जो इन्द्रियों के काम करने में उनके साथ लगी रहती थी अब वह अन्दरूनी तौर पर ही सब काम करती रहती है इसी को दिमागी शक्तियां मानसिक-बल कहते हैं। यह शक्ति बिना किसी दूसरे के सहारे के नहीं रह सकती। इसको सहारा देने वाला केवल जीवात्मा ही है। जीवात्मा के गुण ज्ञान और प्रयत्न हैं।

९—यह बात तो वैज्ञानिक भी मानते हैं कि जगत परमाणुओं से बना है। परमाणु नष्ट नहीं होते वरन् उनकी हालत बदलती रहती है। जब प्रकृति नष्ट न होने वाला पदार्थ है तो फिर जीवात्मा के अमर होने में क्या सन्देह है?

१०—जीव के अमर होने से जीव को कितनी ही बार अपने कर्मानुसार कितनी ही योनियों में जाना पड़ता है। कुछ लोग यह प्रश्न करते हैं कि पिछले जन्म की बातें इस जन्म में क्यों याद नहीं रहतीं? यह ठीक है कि याद नहीं रहती परन्तु अभ्यास करने से याद भी आ सकती है।

जीवात्मा की स्वतन्त्र सत्ता के सिद्ध करने के बारे में और भी बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं।

प्रकृति

परमात्मा के साथ दो और चीजें अनादि और अनन्त माननी पड़ती हैं। एक जीवात्मा और दूसरी प्रकृति। इन के बिना संसार की रचना नहीं हो सकती। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि जैसे मकड़ी अपने अन्दर से तार निकाल कर जाला बना देती है, इसी तरह ब्रह्म सृष्टि को अपने अन्दर से निकाल कर उत्पन्न कर देता है और प्रलय के समय वह सब कुछ उसी में लीन हो जाती है। इस उदाहरण से भी तीन चीजें माननी पड़ती हैं। एक मकड़ी, दूसरा तार और तीसरा बाहर की खाली जगह जहां जाला ताना जाता है। अगर ब्रह्म में से संसार की उत्पत्ति

मान ली जाये तो इसमें भी तीन चीजे माननी पडेगी। एक ब्रह्म, दूसरा संसार जो ब्रह्म से अलग ब्रह्म में मोजूद था और तीसरे अन्तरिक्ष जिस मे ब्रह्म ने संसार को निकाल कर रक्खा। यदि यह कहा जाये कि ईश्वर ने अपनी माया से सृष्टि को रचा तो माया नाम प्रकृति का है। इसलिये जब प्रलय होती है तो यह प्रकृति सूक्ष्म अवस्था में होकर परमात्मा मे समा जाती है। जब फिर सृष्टि रचने का समय आता है तो उसको स्थूल या कार्यरूप मैं लाकर परमात्मा उसको प्रकट करता है। मगर यह याद रहे कि नेस्ती (अभाव) कभी नहीं होता। प्रकृति जड़ पदार्थ है, न उस मे ज्ञान है और न स्वयम् ही किसो कार्य को करने की शक्ति है।

छोटे २ परमाणुओं का नाम भी प्रकृति है। यह परमाणु अनादि और अनन्त हैं। परमात्मा उन्हीं परमाणुओं को जोड़ कर सृष्टि बनाता है और जब उन परमाणुओं को अलग अलग कर देता है तो वह प्रलय या ब्रह्म रात्रि कहलाती है। जब तक सृष्टि बनी रहती है उसको ब्रह्म दिन कहते हैं।

यह बात तो आस्तिक और नास्तिक दोनों ही मानते हैं कि जगत का कारण प्रकृति हैं। आस्तिक कहते है कि जब प्रकृति जगत रूप में होती है तब काम करती रहती है तब और जब प्रलय की दशा में होती है तब बिल्कुल आराम करती रहती है। जब प्रलय की अवधि समाप्त होकर सृष्टि बनाने का समय आता है तब परमात्मा परमाणुओं में अपनी प्रेरणा से गति आरम्भ कर देता है। आकाश (ईथर), हवा, अग्नि,जल और पृथ्वी उत्पन्न हो जाती हैं और सारा संसार बन जाता है इसके पश्चात् जब वह जानदारों की उत्पत्ति कर देता है तब सृष्टि का कार्य चलने लगता है। चूंकि प्रकृति बे ज्ञान और बे जान है इस में जब तक कोई महा ज्ञानी और सर्वशक्तिमान् अपने नियमानुसार गति उत्पन्न न करे उस समय तक प्रकृति स्वयम् कुछ नहीं कर सकती।

सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय

वैदिक धर्म वाले वेद और शत शास्त्रों के आधार पर ऐसा मानते हैं कि यह संसार प्रवाह से अनादि है अर्थात् प्रलय के बाद सृष्टि और

सृष्टि के पश्चात् प्रलय सदा से होती चली आई है और सदा ऐसा ही चक्र चलता रहेगा।

जिस समय यह परमाणुओं से बनी हुई सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी उस समय इस तमाम ब्रह्माण्ड की अस्त दशा (गैरमहसूस हालत) थी। शून्य आकाश भी न था क्योंकि उस समय उसका कोई कार्य न था। उस समय न मरना था न जीना था, न रात थी न दिन था। उस समय परमेश्वर की सामर्थ्य (कुदरत) जो बहुत ही सूक्ष्म और तमाम ब्रह्माण्ड से परम (बरतर). अकारण (बे इल्लत) है मौजूद थी। परमात्मा उसी प्रकृति से इस तमाम ब्रह्माण्ड को बनाता है, वही उसका अपने नियमानुसार प्रबन्ध करके कायम रखती है। जब प्रलय का समय आता है तो तमाम ब्रह्माण्ड को छिन्न भिन्न कर देता है। परमात्मा को अपने कार्य में कभी किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती और नहीं किसी जगह कोई ऐसी शक्ति है जो परमात्मा को सहायता दे सके। अत. परमात्मा सर्वशक्तिमान् और अद्वितीय है।

परमात्मा इस ब्रह्माण्ड को रच कर उसमें व्याप्त रहता है। हर एक कार्य को वह अपनी शक्ति से अपने अटल नियमानुसार चलाता है, किन्तु उसमें कभी नहीं फसता, बल्कि इस तमाम रचना के ऊपर विराजमान रहता है। परमात्मा अनन्त और अनादि है, उसके साथ दो पदार्थ एक जीव दूसरी प्रकृति भी अनन्त और अनादि है। यह दोनों पदार्थ परमात्मा के आधीन सदा से चले आ रहे हैं और सदा ऐसे ही चलते रहेंगे। परमात्मा, जीव और प्रकृति को अनादि और अनन्त माने बिना सृष्टि की उत्पत्ति कदाचित नहीं हो सकती और न ही अभाव से भाव अर्थात् नेस्ती से हस्ती होती है। किसी वस्तु के बनाने के लिये तीन कारणों का होना आवश्यक है।

एक निमित्त कारण-अर्थात् बनाने वाला, दूसरा उपादान कारण अर्थात् वह सामग्री जिससे कोई चीज बनाई जाती है और तीसरा साधारण कारण अर्थात् वह औजार इत्यादि जिससे वह चीज बनाई जाती है। अत. परमात्मा इस ब्रह्माण्ड का निमित्त कारण है, जीव साधारण कारण है और प्रकृति उपादान कारण है।

इस ब्रह्माण्ड को परमात्मा इस प्रकार रचता है कि प्रलय की अवधि (मियाद) के बाद जब सृष्टि पैदा करने का समय आता है तो परमात्मा उस प्रकृति में जो प्रलय के समय अति सूक्ष्म और शून्य हालत में होती है अपनी शक्ति और ज्ञान से हल चल पैदा कर देता है। जो तत्त्व सबसे पहिले नमूदार होता है उसका नाम महत्त्व है। यह तत्व हमारे शरीर में बुद्धि-रूप से कायम है। इसका काम है निश्चय करना। महत्त्व में तबदीली होने से अहंकार तत्त्व बनता है अर्थात् "मैं हूँ, यह मेरा है," ऐसा भाव उत्पन्न होता है। अहंकार से पांच तन मात्रा अर्थात् रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द बनते हैं। इन पांचों से पंच भूत अर्थात् रूप से अग्नि, रस से जल, गन्ध से पृथ्वी, स्पर्श से वायु और शब्द से आकाश उत्पन्न होता है। इन पांचों भूतों में अपने अपने मुख्य गुण है लेकिन इनमें एक दूसरे के भी कुछ गुण सम्मिलित होते हैं। पृथ्वी में गन्ध, रस, रूप और स्पर्श यह चार गुण हैं। जलमें—रस, रूप और स्पर्श यह तीन गुण हैं। अग्नि में—रूप और स्पर्श दो गुण हैं। वायु में—केवल एक स्पर्श का गुण और आकाश मे भी केवल एक शब्द का गुण है। पुनः पांच (हाथ, पैर, जबान, मल्ल-मूत्र त्यागने की इन्द्रियां), पांच ज्ञानेन्द्रियां—(आंख, नाक, कान, रसना (जबान) और त्वचा (खाल) तथा अन्तःकरण (मन, बुद्धि, और अहंकार) यह सब इन्द्रियां उत्पन्न होती है। पच भूत से तरह तरह की औषधि, पेड, अन्न आदि उत्पन्न होते है। अन्न इत्यादि से वीर्य और वीर्य से शरीर उत्पन्न होता है। सृष्टि आदि में तमाम जीव-धारी जवान अवस्था में उत्पन्न होते हैं। जीवों के पैदा होने से पहिले पृथ्वी आदि जड़ पदार्थ उत्पन्न होते हैं। पृथ्वी पहिले इसलिये उत्पन्न की जाती है कि वह सब प्रकार की वस्तुओं को कायम रखने की जगह होती है। पृथ्वी के बाद वनस्पति और अन्न इत्यादि, फिर दूध देने वाले पशु इत्यादि, फिर दूसरे पशु पक्षी, कीट और पतङ्ग इत्यादि और इन सबके पश्चात् मनुष्य जवान अवस्था में पैदा होते हैं। तमाम जीवधारी अपनी पहली सृष्टि के क्रमानुसार ऊँच-नीच या अच्छी बुरी योनियों में उत्पन्न किये जाते हैं। परमात्मा तमाम जीव-धारियों को अपनी सामर्थ्य से बिना माँ बाप के संयोग से पैदा करता है। इस आदि सृष्टि को अमैथुनी सृष्टि कहते हैं।

आदि सृष्टि में समस्त पशु पक्षी, इन्सान और हैवानों मे ऐसा

अन्तर नहीं था जैसा कि अब दिखाई देता है। उस समय उनको केवल खाना, पीना, देखना, सुनना, चलना और सोना इत्यादि ही मालूम था। सब मनुष्य बच्चों जैसी दशा में थे। कुछ समय तक यही दशा चलती रही। इसके बाद परमात्मा ने अपने ज्ञान का प्रकाश चार ऋषियों के हृदयों में किया था। उस ज्ञान को पाकर मनुष्य को अच्छे बुरे और पाप-पुण्य के कर्मों और ईश्वर के बनाये हुये ब्रह्माण्ड का आवश्यक ज्ञान होता चला गया। पाप और पुण्य की हालत के अनुसार परिणाम पैदा होने लगे। इस तरह पर मैथुनी सृष्टि का आरम्भ हो गया जो कि अब तक बराबर चल रहा है।

परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड को सात ग्रहों (Planet) में बाँटा है। जो सबसे बड़ी लकीर हर ग्रह के चारों ओर बनाई है उसे परिधि (मुहीत) कहते हैं। इस ब्रह्माण्ड में जितने लोक लोकान्तर हैं उन सबके चारों तरफ सात-सात ग्रह होते हैं। पहला ग्रह पानी या समुद्र का, इसके ऊपर त्रिसरेणु से भरी हुई हवा का ग्रह है और उससे ऊपर बादलों की वायु का ग्रह हैं। चौथा ग्रह बारिश के पानी का है। पाँचवाँ एक और हवा का है। छटा ग्रह इससे भी ऊपर है और वह अति सूक्ष्म है उसे धन्जय कहते हैं। सातवाँ ग्रह सौत्रात्मा (बिजली) का है इस प्रकार हर एक लोक के चारों ओर सात-सात पर्दे होते हैं जिनको परिधि कहते हैं।

पृथ्वी अपनी (Exis) के अन्दर और सूर्य के चारों तरफ परमात्मा के नियमानुसार घूमती है। चन्द्रमा पृथ्वी के चारों तरफ सूर्य और पृथ्वी के बीच में घूमता है। इसी प्रकार सूर्य और पृथ्वी भी अपनी अपनी धूरियों पर घूमते हैं। हर एक ग्रह अपनी अपनी धूरी के अन्दर घूमता है। तमाम ग्रह सूर्य की आकर्षण शक्ति से कायम है। इस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, तारागण और नक्षत्र आदि को बनाकर परमात्मा अपनी शक्ति से कायम रखता है।

इस सृष्टि को बने हुये अब १९५४ ई० में एक अरब छयानवें

---

* सृष्टि उत्पत्ति के बारे में देखिये—यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र १ ता २२ ऋगवेद अष्ठक ८ अध्याय ७, मन्त्र १, व ऋगवेद अष्ठक ६ अध्याय ४ मन्त्र २।

करोड़ आठ लाख त्रेपन हजार पचपन वर्ष (१९६०८५३०५५) हो चुके हैं और दो अरब पैंतिस करोड़ इक्यावन लाख छयालीस हजार नौ सौ पैंतालीस (२३५६१४५६४५) वर्ष प्रलय होने में बाकी हैं। इस तरह पर सृष्टि की अवधि चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होती है और यही अवधि प्रलय कायम रहने की है।

चन्द्रमा—यह भी एक भूगोल लोक है, उसमें तारों और नक्षत्रों की तरह आबादी है। जैसे मनुष्य के शरीर में मन तेज चलने वाला और तमाम इन्द्रियों को गति देने वाला है इसी प्रकार ब्रह्माण्ड रूपी शरीर मे चन्द्रमा सबसे अधिक तेज चलने वाला है।

सूर्य—जिस प्रकार मनुष्य के शरीर मे तमाम अंगों को रास्ता दिखाने वाली आँखें हैं, इसी तरह तमाम लोक लोकान्तरों को प्रकाश देने वाला और साथ ही अपनी आकर्षण शक्ति से उन सबको सम अवस्था में रखने वाला सूर्य है। यह भी एक भूगोल लोक है। इसमें भी आबादी है।

अन्तरिक्ष—(ईथर) जिस तरह मनुष्य की देह के अन्दर जितने पदार्थ जाते हैं, वह सब नाभि में से जाकर सूक्ष्म और शुद्ध बनते हैं और शरीर के दूसरे अंग का पालन करते हैं। इसी प्रकार अन्तरिक्ष भी शुद्ध करता है।

भूमि—जिस तरह मनुष्य में पॉव कुल शरीर का आधार हैं इसी प्रकार सृष्टि में भूमि है।

अग्नि—जिस तरह हर एक पदार्थ जब तक मुंह के द्वारा ठीक तौर पर न चबाया जावे तब तक मनुष्य देह के लिये गुणकारी नहीं होता। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड में अग्नि सब पदार्थों को छिन्न-भिन्न करके उन्हें शुद्ध हालत में लाती है।

वायु—जिस प्रकार मनुष्य देह में शब्द को दर्शाने वाली जबान है इसी प्रकार आकाश के गुण प्रकट करने वाली वायु है।

प्रकाश युक्त लोक—जिस तरह मनुष्य के शरीर में दिमाग और आँखें दूसरी इन्द्रियों को रास्ता दिखाने वाली हैं इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड रूपी शरीर में प्रकाश युक्त लोक दूसरे लोकों को प्रकाश देकर चलाने वाले हैं। जिस प्रकार मुख तरह तरह के हैं, उसी प्रकार लोक भी तरह तरह के बनाये गये हैं।

कुछ विद्वान छः दर्शनों में सृष्टि और उत्पत्ति के बारे में आपस में विरोध बतलाते है, वास्तव में यदि कुछ गहरा ध्यान देकर देखा जाये तो उनमें आपस में कोई विरोध नहीं है, बल्कि उन दर्शनों में अलग २ एक एक कारण की व्याख्या की है। सृष्टि छः कारणों से बनती है, इन छः दर्शनों में अलग अलग एक-एक कारण की व्याख्या की गई है।

जब महा प्रलय होता है, उसके बाद आकाश आदि क्रम से और जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्नि आदि का होता है, तब अग्नि आदि क्रम से, यो समझिये कि जिस जिस प्रलय में जहां जहां तक प्रलय होता है, वहां वहां से ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

मीमांसा दर्शन में यह सिद्ध किया गया है कि संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं होता जिसके बनाने में कर्म चेष्टा न की जाये। विशेषिक दर्शन में बिना समय लगे कुछ नहीं बनता ऐसा सिद्ध किया गया है। न्याय दर्शन में यह बतलाया गया है कि उपादान कारण (प्रकृति) अगर न हो तो कुछ नहीं बन सकता। योग दर्शन में यह निश्चय कराया गया है कि विद्या, ज्ञान, और विकार के बिना कुछ नहीं बन सकता। सांख्य दर्शन में ऐसा साबित किया गया है कि जब तक तत्वों का मेल न हो कोई चीज नहीं बन सकती। वेदान्त दर्शन में यह कहा गया है कि अगर निमित्त कारण (कर्त्ता) न हो तो कोई चीज नहीं बन सकती।

अवतार वाद

अवतार के अर्थ उतरने या नीचे आने के हैं। ईश्वर के अवतार लेने का अर्थ यह है कि निराकार परमात्मा शरीर में उतरता है या शरीर

धारण करता है। वैदिक धर्म वाले ईश्वर के अवतार को नहीं मानते।

अवतार विषय पर विचार करने से पहिले कुछ निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना अति आवश्यक है:-

ईश्वर कैसा है? क्या ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव बदलते है? जो ईश्वर के अवतार माने जाते हैं उनमें कौनसी ऐसी बातें पाई जाती हैं, जिनसे उनको ईश्वर मान लिया जाये? क्या वेद और शत-शास्त्रों में ईश्वर के अवतार धारण करने का वर्णन पाया जाता है?

यह तो ईश्वर के मानने वाले सभी मानते है कि ईश्वर ने इस तमाम संसार को बनाया है। वही इसको कायम रखता है और वही प्रलय करता है। ईश्वर सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होने से निराकार है। चिऊंटी से भी कई गुने छोटे २ जीव हैं, उनके शरीर मे सैकड़ों अंग हैं जिनको हम दूर्बीन से भी नहीं देख सकते। फलों और फूलों के रंग रूप और उनकी बनावट पर ध्यान देने से पता चलता है कि उनको बनाने, तरह २ के रंग रूप देने और उनमें भांति भांति के गुण उत्पन्न करने का काम केवल निराकार और सर्वशक्तिमान ईश्वर ही कर सकता है। संसार की बनावट और उसके गुण, कर्म और स्वभाव को देखने से पता चलता है कि उसके बनाने वाला कोई निर्विकार, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है जो घट घट मे व्यापक है।

ईश्वर के निराकार से साकार रूप धारण करने का तात्पर्य यह होगा कि ईश्वर अपनी सर्वव्यापकता को त्याग कर एकदेशी हो जायगा। परन्तु जो एक देशी होता है वह सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी और सर्वाधार नहीं हो सकता। यह भी याद रखने की बात है कि बदलने वाली सारी चीजें निर्बल होती हैं मगर ईश्वर बदलने वाली शक्ति नहीं है। यदि ईश्वर भी बदला करे तो वह निर्बल होता चला जायगा और फिर वह ईश्वर, ईश्वर नहीं रहेगा और इस संसार का सारा प्रबन्ध चलना बन्द हो जायगा। यदि ईश्वर निराकार से साकार होजाये तो उसमे स्थूलता आजायेगी। स्थूलता आते ही उसकी व्यापकता नष्ट हो जायेगी और फिर वह सूक्ष्म वस्तुओं मे व्यापक नहीं रहेगा। व्यापक न रहने से उसका ज्ञान भी नष्ट हो जायगा। अतः ईश्वर कभी नहीं बदला करता। पूर्ण चीज कभी नहीं बदलती वही चीज बदला करती है

जो सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और अन्तर्यामी न हो , बदलना सर्वशक्तिमान का चिन्ह नहीं है बल्कि निर्बलता का चिन्ह है। अतः ईश्वर एक रस, अखंड, निर्विकार और पूर्ण है। बिना बदले ईश्वर अवतार ले ही नहीं सकता इसलिये ईश्वर का अवतार वाद किसी युक्ति से सिद्ध नहीं होता। ईश्वर के तीनों काम अर्थात् बनाना, कायम रखना और बिगाड़ना उसके बिना बदले ही चल रहे हैं और चल सकते हैं इस कारण ईश्वर को जन्म लेने की आवश्यकता नहीं है।

ईश्वर अनन्त, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और अन्तर्यामी है, उसका गर्भ में आना जाना कैसे सिद्ध हो सकता है ? आना जाना वहां होता है जहां वह उपस्थित न हो। जब ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वव्यापक तथा अन्तर्यामी है तो वह गर्भ में भी मौजूद है, ऐसी दशा में ईश्वर के गर्भ में आने-जाने का प्रश्न पैदा ही नहीं होता। इसके अतिरिक्त ईश्वर अनन्त है, वह पूर्ण रूप से गर्भ में कैसे आ सकता है ? ईश्वर के शरीर धारण कर लेने से वह अजन्मा नहीं कहला सकता। गर्भ में आने से वह जन्ममरण और नाडी-नस के बन्धन में फस जायेगा और वह एक साधारण मनुष्य जैसा बन जायेगा।

यदि ईश्वर किसी विशेष शरीर में अवतार धारण करता है तो इसका अर्थ यह होगा कि वह दूसरे स्थानों पर नहीं रहा। फिर वह ब्रह्माण्ड और लोक-लोकान्तरों का प्रबन्ध कैसे करेगा ? ईश्वर अपरिमित है वह परिमित मानना पडेगा। यह गुण ईश्वर का नहीं है।

कुछ लोग भगवत् गीता के हवाले से ऐसा मानते हैं कि श्री कृष्ण चन्द्र ने कहा है कि जब-जब धर्म का लोप होता है, तब-तब भगवान श्रेष्ठ और भक्त जनों के उद्धार और दुष्ट जनों के नाश के लिये अवतार लिया करते हैं।

इस पर जरा विचार कीजिये :

विष्णु के दस मुख्य अवतार माने जाते हैं (१) मत्स्य (मच्छ) (२) कूर्म (कछ) (३) वराह (सूअर) (४) नृसिंह (५) वामन (६) रामचन्द्र (७) परशुराम (८) कृष्णचन्द्र (९) बुद्ध (१०) कलकी।

इनमें से मत्स्य, कूर्म, वराह, परशुराम और बुद्ध ने किसी भी दुष्ट का नाश नहीं किया और न किसी भक्त और श्रेष्ठ जन का उद्धार किया। इसके अतिरिक्त बुद्ध ने परमात्मा की सत्ता से इन्कार किया और वेदों का अपमान किया। परशुराम ने क्षत्रियों का ढूंढ ढूंढ कर संहार किया। श्री रामचन्द्र और परशुराम एक ही काल मे हुये थे। दोनों ने आमने सामने होकर युद्ध करना चाहा मगर दोनों मे से किसी को यह पता न चला कि हम दोनों परमात्मा के अवतार है। एक यह प्रश्न भी उत्पन्न होता है कि एक ही समय में ईश्वर ने यह दो अवतार कैसे और क्यों लिये? मत्स्य, कूर्म और वराह यह तो इन्सानी अवतार नही थे बल्कि पशु थे उन्होंने तो कुछ भी नहीं किया।

रही यह बात कि परमात्मा ने अवतार धारण करके रावण और कंस आदि दुष्टों का संहार किया। इस पर भी विचार कीजिये। जब परमात्मा अवतार धारण किये बिना जगत को बनाता, कायम रखता और मिटा देता है तो फिर उसके लिये रावण और कंस जैसे तुच्छ जीवों को मारना कौन सी ऐसी बड़ी बात थी कि जिसके लिये ईश्वर को गर्भ की गंदगी में आकर पड़ना पड़ा? इसके अतिरिक्त यह भी सोचने की बात है कि बिना अवतार लिये परमात्मा रावण और कंस को पैदा तो कर सकता है परन्तु बिना अवतार लिये उनको मार नहीं सकता? अवतार लेकर ईश्वर को जीवन-मरण के चक्कर में फंसना पड़ता है। उस अनन्त बली, अनन्त गुणी और स्वभावयुक्त परमात्मा को अवतार लेने की आवश्यकता नहीं है। हाँ ऐसा तो कहने और मानने मे कोई हर्ज नहीं है कि जिन व्यक्तियों के अन्दर परमात्मा कुछ विशेष गुण दे देता है उन्हे अंशावतार कह सकते हैं पूर्ण अवतार कदाचित नहीं। यों तो परमात्मा के गुण किसी न किसी अंश में बहुत से व्यक्तियों मे पाये जाते हैं। श्री रामचन्द्र, श्री कृष्णचन्द्र आदि महापुरुष तो जरूर थे और उनमें असाधारण शक्तियां भी अवश्य थीं, वह बडे चतुर और शूरवीर भी थे, परन्तु उनमे कोई ऐसी बात सिद्ध नहीं होती जिससे वह पूर्ण ईश्वर कहला सकें। साधारण मनुष्यों की तरह वह खाते-पीते सोते और जागते थे, सुख-दुःख अनुभव करते थे। यदि यह कहा जाय कि वह थे तो ईश्वर किंतु मनुष्य जैसी लीला किया करते थे तो यह बात भी संतोष-जनक नहीं है। क्या ईश्वर केवल मनुष्य जैसी लीला करने के

लिये गर्भ में आता है ? मनुष्य लीला करने को तो उस समय मनुष्य मौजूद थे ही। किसी युक्ति से देख लीजिये अवतार वाद सिद्ध नहीं होता। हाँ यह तो कह सकते हैं कि श्रीरामचन्द्र, औरश्रीकृष्णचन्द्र ईश्वर के भक्त थे हमें भी उन जैसा चरित्र बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। इस अवतार वाद से मूर्ति-पूजा प्रचलित हुई। वेदों में अवतारवाद का कोई वर्णन नही है। यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ३ मे यह कहा गया है कि परमात्मा किसी से उत्पन्न नहीं हुआ है और न वह शरीर धारण करता है। उस परमात्मा की कोई प्रतिमा या उसका कोई नायब, रसूल, चित्र वज़न, कोई नाप तोल या कोई मूर्ति इत्यादि कदाचित नहीं है। यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८ में ऐसा कहा गया है कि ईश्वर मूर्ति अर्थात् आकार या शरीर के बन्धन से अलग और नाडी इत्यादि के बन्धन से स्वतन्त्र, बे-ऐब और पाप से रहित है। ऐसे ईश्वर को ही उपास्य मानना चाहिये।

मूर्ति-पूजा

वैदिक धर्म वाले मूर्ति-पूजा का भी खण्डन करते हैं और कहते है कि परमात्मा की भक्ति मूर्ति-पूजा या दूसरे ऐसे पदार्थों के द्वारा करना उचित नहीं है। उनका कहना है कि यह कायदा है कि जो जिसकी भक्ति या चिन्तन करता है वह उसी के रंग में रंग जाता है। जो जिसका अधिक ध्यान करता है वह उसी का स्वभाव अपना लेता है। जैसे लोहे को ज्यादा देर तक आग मे रखने से प्रथम लोहा गर्म होता है फिर सुर्ख रङ्ग का हो जाता है और इसके पश्चात् आग का रूप बना लेता है। ठीक इसी तरह से जब हम किसी की भक्ति करेंगे तो हम मे भी लोहे की तरह उसी उपास्य (माबूद) के गुण आते चले जायेंगे। चूंकि मूर्ति इत्यादि जड पदार्थ है इस कारण उनकी भक्ति करने से हमारे अन्दर भी वही जडपन के गुण पैदा हो जायेंगे, जिससे आत्मा को कोई विशेष लाभ नहीं होगा। इसके अतिरिक्त परमात्मा की कोई मूर्ति भी नहीं बनाई जा सकती क्योंकि वह सर्वव्यापक और निराकार है इसलिये बात साफ है कि चैतन्य आत्मा को चैतन्य परमात्मा की भक्ति या पूजा करने से ही बल और शक्ति प्राप्त होकर आनन्द मिल सकता है। जड पदार्थ की भक्ति करने से विचार, ज्ञान, बल, शक्ति और तेज

भी महदूद (परिमित) ही होगा। चूंकि ईश्वर अन्तर्यामी है अर्थात् वह हर मनुष्य के अन्दर व्यापक है इसलिये केवल शास्त्रों की आज्ञानुसार उसके साथ सम्बन्ध कायम करके उसकी भक्ति से लाभ हो सकता है। ईश्वर भक्ति का जो प्रचलित तरीका मूर्ति-पूजा के द्वारा चल रहा है वह अज्ञानियों का है। उससे आत्मा की उन्नति कदाचित नहीं हो सकती। मूर्ति-पूजा का रिवाज वैसे है तो बहुत पुराना परन्तु इस देश मे जैनियों की देखा देखी दूसरे लोगों ने अपनाया था। वेद और सत्-शास्त्रों में मूर्ति-पूजा का वर्णन होना तो रहा दूर उनमें आज तक कोई इशारा तक भी सिद्ध नहीं कर सका। भारतवर्ष मे मूर्ति-पूजा का रिवाज कोई तीन हजार वर्ष से प्रचलित होना सिद्ध होता है इसी प्रकार दूसरे देशों में भी भाँति-भाँति की मूर्ति-पूजा का रिवाज प्रचलित होता चला गया था।

भारतवर्ष में मूर्ति-पूजा के विरुद्ध बहुत से महात्मा अपनी आवाज उठाते रहे। कबीर साहब, दादू जी और गुरु नानक ने मूर्ति-पूजा का खण्डन किया और कहा कि ईश्वर निराकार है इसलिये उसकी कोई मूर्ति नहीं बनाई जा सकती। मूर्ति-पूजा से ईश्वर-पूजा कदाचित नहीं हो सकती। साकार मूर्ति का ध्यान करने से निराकार परमात्मा का ध्यान और पूजा नहीं हो सकती। यदि कोई ऐसा कहे कि मूर्ति के द्वारा ईश्वर-पूजा ही होती है तो यह बात ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा करने से मूर्ति के जरिये ईश्वर-पूजा नहीं बल्कि मूर्ति-पूजा होती है। मूर्ति का नहलाना, कपड़े पहनाना और भोग लगवाना इत्यादि बाते ईश्वर के लिये उचित नहीं है। ईश्वर और मनुष्य का मेल उस जगह हो सकता है जहाँ वह दोनों मौजूद हों। ईश्वर मूर्ति मे तो मौजूद है मगर मनुष्य मूर्ति में व्यापक नहीं है इसलिये दोनों का मेल नहीं हो सकता। ईश्वर की पूजा का एक स्थान है और वह है मनुष्य का हृदय, जहाँ जीव और ईश्वर दोनों मौजूद है। बस उसी जगह ईश्वर का दर्शन हो सकता है। ईश्वर का ध्यान करने के लिये उसकी कारीगिरी, ज्ञान और गुणो को देखो। सूर्य, चन्द्रमा, पहाड, फूल, फल और दूसरे पदार्थों का भी चिन्तन करने से ईश्वर का ध्यान भली भाति हो सकता है इसलिये कहना पड़ता है कि जड़ पदार्थों की पूजा से कोई लाभ नहीं होता बल्कि चैतन्य-स्वरूप, सर्व-शक्तिमान और अन्तर्यामी ईश्वर की पूजा और उस पर विश्वास से ही कल्याण हो सकता है।

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि मूर्ति-पूजा सनातन से चली आ रही है। यह बात भी ठीक नहीं है। श्री राम की मूर्ति श्री राम के पश्चात्, श्री कृष्ण की मूर्ति श्री कृष्ण के बाद और बुद्ध की मूर्ति बुद्ध के बाद से पूजी जाने लगी है। उन महानुभावों से पहिले उनकी मूर्ति की पूजा कहाँ होती थी? इसलिये मानना पडता है कि मूर्ति-पूजा सनातन से नहीं है।

पुनर्जन्म

जीव अविनाशी और चैतन्य होने से इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख-दु:ख और ज्ञान इत्यादि के कारण कर्मों में फँसा रहता है। मनुष्य के कर्म ही पुनर्जन्म या मोक्ष के कारण होते हैं। माया या प्रकृति में फँस कर ही जीव कर्म करता हुआ बन्धन में जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि सत, रज और तम में प्रकृति से उत्पन्न होने वाले तीनों गुण ही इस जीवात्मा को देह में बाँधते हैं। सतगुणी कर्मों से उत्तम, रजोगुणी कर्मों से मध्यम और तमो गुणी कार्य करने से नीच योनियों की देह प्राप्त होती है।

कर्मों के तीन भेद किये गये हैं। (१) संचित (२) प्रारब्ध (३) क्रियमान।

(१) संचित कर्म—वह हैं जो पूर्व-जन्म के किये हुये हैं और उनके संस्कार बीज रूप में जीव के साथ रहते हैं।

(२) प्रारब्ध—वह है कि जिसको जीव इस जन्म से भोगने के लिये साथ ले जाता है।

(३) क्रियमान—वह कर्म है जिनको प्रारब्ध में से वह इस जन्म मे भोगने लगता है।

ऐसा पता चलता है कि जीव के साथ कर्मों का सिलसिला लगा ही रहता है। जब तक मनुष्य ज्ञान से कर्मों का भोग न मिटा दे और

बिल्कुल वासना रहित न हो जाये जीव को तब तक बार-बार जन्म लेना ही पड़ता है।

योनियाँ दो प्रकार की होती हैं। एक कर्म योनि दूसरी भोग योनि।

कर्म योनि—केवल मनुष्य का ही जन्म है। शेष सब योनियाँ भोगयोनि कहलाती है, पाप और पुन्य केवल मनुष्य योनि में ही होता है। भोग योनि में केवल कर्म फल का भोग मिलता है और नये पाप या पुन्य एकत्रित नहीं होते। भोग योनि मे जीव को ज्ञान नहीं रहता। मनुष्य योनि मे जीव के साथ ज्ञान और विवेक होता है और वह कर्म करने मे स्वतन्त्र हो जाता है। फिर जीव जैसे अच्छे या बुरे कर्म करेगा, ईश्वर के न्यानुसार वैसे ही भोग भोगेगा। हर एक योनि मे सब जीव बराबर हैं। केवल कर्मों के कारण पवित्र और मलीन होते हैं।

जब जीव शरीर छोड़ता है तो जीव अपने सूक्ष्म शरीर के साथ वायु में रहता है और फिर अपनी मृत्यु समय की तीव्र वासना के अनुसार जहाँ चाहता है जाता है। कुछ दिनों इस प्रकार सुविधा पाने के पश्चात धर्म राज अर्थात ईश्वर जीव के कर्मानुसार जन्म देता है। जन्म लेने के लिये जीव, वायु, अन्न, जल या शरीर के छिद्र के द्वारा दूसरे शरीर मे ईश्वर की प्रेरणा से प्रवेश करता है और फिर वीर्य मे जाकर गर्भ मे चला जाता है। इसके पश्चात् शरीर धारण करके बाहर आता है।

जीवात्मा के चार शरीर बतलाये गये हैं:—

स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर और तुरिय शरीर।

स्थूल शरीर—तो यह है जो दिखाई देता है।

सूक्ष्म शरीर—दिखाई नहीं देता। यह शरीर पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियो

पॉच सूक्ष्म भूत, मन और बुद्धि इन सत्तरह तत्त्वों के समुदाय का नाम है। यह १७ तत्त्व मरने के पश्चात भी जीव के साथ रहते हैं।

कारण शरीर—गहरी नींद की अवस्था को कहते है। यह सब जीवों के लिये एक माना गया है।

तुरिय शरीर—इस शरीर से जीवात्मा समाधि में परमात्मा के आनन्द स्वरूप में मग्न होते हैं।

मरने से जीव को पहले जन्म के अनुभव से डर होता है, इसलिये प्रत्येक जीव मरने से डरता है, पुनर्जन्म इससे भी सिद्ध होता है।

मुक्ति

मुक्ति या मोक्ष छूट जाने को कहते हैं। जीवात्मा को जीवन मरण इत्यदि के चक्कर में पडने से जो तीन प्रकार के दु.ख होते है उनसे छूट कर अखंड ब्रह्मानन्द का भोग करना ही मोक्ष प्राप्ति कहलाता है।

वह तीन प्रकार के दुःख यह हैं:—

१—आध्यात्मिक दु:ख-अर्थात आत्मा सम्बन्धि दु.ख, जो अपने अन्दर से ही उत्पन्न होते हैं।

२—आधि भौतिक दु ख-जो दूसरे प्राणियों, या बाहर के अन्य पदार्थों से जीव को मिलते हैं।

३—आधि दैविक दु.ख-मन और इन्द्रियों की चंचलता के कारण जीव को जो दुःख होता है, वह आधि दैविद दुःख कहलाता है।

निष्काम कर्म और ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। परमेश्वर को जानने ही से मनुष्य ज्ञानी हो सकता है। ईश्वर की आज्ञा पालन करने, अधर्म, अविधा, कुसग, कुसंस्कार और व्यसनो से अलग रह कर तथा सत्य भाषण परोपकार, विद्या, पक्षपात रहित न्याय, धर्म की वृद्धि

और परमात्मा की विधिपूर्वक स्तुति, प्रार्थना, उपासना अर्थात योगाभ्यास करने विद्या पढ़ने पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ करके ज्ञान की उन्नति करने तथा सबसे उत्तम साधनों के करने से मुक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार जो कुछ कार्य करे, वह सब पक्षपात रहित न्याय और धर्मानुसार ही करे। मिथ्या ज्ञान के दूर हो जाने से जीव के समस्त दोष दूर हो जाते हैं। दोष दूर हो जाने से अधर्म के विचार चले जाते है और फिर जन्म नहीं होता।

मोक्ष किसी स्थान विशेष या किसी वस्तु विशेष का नाम नहीं है, बल्कि बृह्म के साथ (जो सब जगह मौजूद है) आनन्द में रहने को मोक्षपद या परम गति कहते है। मुक्त जीव यह भौतिक शरीर धारण नहीं करता, किन्तु उसके स्वाभाविक शुभ गुण नष्ट नहीं होते। जब सुनना चाहता है तब कान, जब स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा (खाल) जब देखना चाहता है तब आँखे, स्वाद अनुभव करने के लिये रसना (ज़बान) गन्ध के लिये नाक, संकल्प विकल्प करने के लिये मन, निश्चय करने के लिये बुद्धि, स्मरण करने के लिये स्मरण-शक्ति आदि शक्तियों को इच्छानुसार प्रयोग में ला कर अनन्द भोग कर सकता है।

जीव में जो २४ प्रकार की शक्तियाँ होती हैं वे ही शक्तियाँ मुक्त जीव में भी रहती हैं। वे शक्तियाँ यह हैं बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्श दर्शन, अस्वादन और गन्ध भ्रष्ण तथा ज्ञान मुक्त जीव के सब विचार और कार्य पवित्र होते हैं। उसमें कोई शक्ति अपवित्र नहीं होती। मुक्त जीव की अवधि पूरी होने पर, उसे फिर कर्म क्षेत्र में आना पड़ता है। आना इस लिये पड़ता है कि परिमित कर्मों का फल भी परिमित ही होता है। मुक्ति की अवधि ३१ नील १० खरब और ४० अरब वर्ष होती है।

ईश्वर भक्ति

भक्ति शब्द भज् धातु से निकला है, जिसका अर्थ है पूजा या

सेवा करना। अतः ईश्वर भक्ति से तात्पर्य है गहरा प्रेम, अटूट श्रद्धा और दृढ़ विश्वास से परमात्मा की पूजा करना तथा मन, वचन और कर्म से उसकी आज्ञा का पालन करना।

ईश्वर भक्ति से पहले ईश्वर के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये, क्योंकि जब तक आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध न होगा उस समय तक भक्ति हो ही नहीं सकती। मगर यह सम्बन्ध उस वक्त तक नहीं हो सकता जब तक कि आत्मा ईश्वर के कर्तव्य और अपने कर्तव्य को नहीं पहचान सकता। जब ईश्वर के साथ इस प्रकार सम्बन्ध उत्पन्न हो जाये तो फिर उस सम्बन्ध को अधिक गहरा बनाने का प्रयत्न करता रहना है। सम्बन्ध उत्पन्न हो जाने पर उसको अति दृढ़ करना आवश्यक है। जब तक आत्मा ईश्वर के साथ अपना सम्बन्ध अनुभव नहीं करेगा उस समय तक भक्ति का होना असम्भव है।

यह माना कि ईश्वर के साथ सम्बन्ध कायम करने और उसको अत्यन्त गहरा बनाने में बहुत सी रुकावटें और कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं, मगर सम्बन्ध स्थापित करने के इच्छुक या भक्त जन अपना सम्बन्ध स्थापित कर ही लेते हैं।

मगर यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इस सम्बन्ध को कायम कर लेने से भक्ति-मार्ग समाप्त नहीं हो जाता। इसके पश्चात् और तीन बातों की आवश्यकता पड़ती है। (१) श्रवण (सुनना) (२) मनन (विचार करना) (३) कीर्तन (बार बार प्रशंसा करना)।

श्रवण—जिस जगह ईश्वर के गुणों का वर्णन हो रहा हो या ईश्वर प्रेम और उसकी श्रद्धा पर विचार हो रहा हो, उस जगह बैठ कर मन और चित्त से उन सब बातों को सुनना श्रवण कहलाता है।

मनन—ध्यान के साथ विचार करना और सोच समझ कर उन सब बातों को अपनी आत्मा में कायम कर लेना मनन कहलाता है।

कीर्तन—जब मन में अच्छे विचार होंगे तो मुंह से भी अच्छे ही विचार प्रकट होंगे। इस प्रकार सूक्ष्म शरीर में तबदीली आती

चली जायेगी और फिर यहाँ तक हो जायेगा कि आत्मा ईश्वर के प्रेम और भक्ति में लीन हो कर एक रूप हो जायेगा। ऐसा हो जाने पर मुंह से बार बार उन्हीं पवित्र विचारों का उच्चारण होगा। बस इस बार बार उच्चारण का नाम ही कीर्तन है।

इन ऊपर लिखी हुई तीनों बातों के कर लेने पर भी भक्ति की प्राप्ति पूरी तरह से नहीं हो पाती, बल्कि इसके पश्चात् एक और मंजिल है जो सबसे अधिक कठिन और मुश्किल है। वह है समर्पण (भेंट)। जब तक समर्पण की मंजिल तय नहीं होगी भक्ति का रास्ता भी पूरा नहीं होगा।

तन, मन, धन और कर्मों का ईश्वर को अर्पण (भेंट) कर देना समर्पण कहलाता है। इनमें से धन और कर्मों को अर्पण कर देना कुछ आसान है, मगर मन को समर्पण कर देना बहुत कठिन है। जो लोग मन का भी समर्पण कर देते हैं, वे वास्तव में धन्य हैं और वे ही सच्चे भक्त कहलाने के अधिकारी हैं। इस प्रकार इन विधियों से परमात्मा के साथ सम्बन्ध करने का नाम भक्ति है।

ईश्वर भक्त की आत्मा परमात्मा के साक्षात दर्शन करती है। उसकी आत्मा को उस सर्व व्यापक परमात्मा का प्रकाश और ज्योति फैली हुई नजर आने लगती है। आत्मा और परमात्मा के बीच कोई बाधा डालने वाली वस्तु-बाकी नहीं रहती। सच्चा भक्त अपनी बुद्धि और मन परमात्मा को सौंप देता है। वह किसी से घृणा और द्वेष नहीं रखता। वह सब प्राणियों का मित्र हो जाता है। उसके हृदय में दया और प्रेम होता है। वह मोह और क्रोध से परे होता है। वह सुख और दुःख को समान समझता है और सदा सन्तुष्ट रहता है।

भक्ति की आवश्यकता

याद रहे कि ईश्वर ने यह सृष्टि इस लिए नहीं बनाई कि वह इसमें जीवों को पैदा करके उनसे अपनी प्रशंसा और खुशामद कराया करे। ईश्वर जीव को अपने हाथ का खिलौना बनाना नहीं चाहता और न ही वह इन बातों का भूखा है कि जीव उसकी खुशामद और प्रशंसा

किया करें। ईश्वर ने इन बातों के लिए सृष्टि उत्पन्न की है कि जीवों को उसके बताये हुए रास्ते पर चल कर परम आनन्द प्राप्त हो सके। सृष्टि के बनाने में सब प्राणियों का ही हित और लाभ है। जीव परतन्त्र है परन्तु जितना यह ईश्वर के भरोसे पर रहेगा उतनी ही इसमें स्वतन्त्रता आती चली जायगी। ईश्वर जीव को अपना मित्र बनाकर उसकी शक्ति और बल बढाना चाहता है। चूंकि जीव निर्बल हैं इसलिए उसे शक्ति और बल बढाने के लिए ईश्वर के सहारे और उसके प्रेम की अति आवश्यकता है। ईश्वर के गुणों का चिन्तन करने से जीव के अन्दर शुभ गुण पैदा होते हैं। यह शुभ गुण ईश्वर के साथ प्रेम बढ़ाने से ही आ सकते हैं। ईश्वर के गुणो का अनुकरण करने और उसके साथ प्रेम बढ़ाने से ही सुख की प्राप्ति होती है। ईश्वर की उपासना से साहस बढ़ता है और जीव अनेक पापो से बच कर शुभ कामों को करने लगता है। चूकि ईश्वर अत्यन्त श्रेष्ठ है, उसके गुण, कर्म और स्वभाव भी श्रेष्ठ हैं इसलिए स्तुति, प्रार्थना और उपासना श्रेष्ठ की ही की जाती है। वहीं से आनन्द मिलने की आशा हो सकती है। संक्षेप में ईश्वर भक्ति का सार यही है।

वर्ण

प्राचीन ऋषि मुनियों ने सत्-शास्त्रों के आधार पर सामाजिक सगठन और मनुष्य जीवन यात्रा को सरलता से पूरा करने के लिये वर्ण और आश्रम स्थापित किये थे। वर्ण चार हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। यह समाज के कार्यों को बॉटने के लिये—Division of Labour बनाये गये थे।

वर्ण जन्म से नहीं बरन गुण, कर्म और स्वभाव से होने चाहियें। शास्त्रों में उनके विषय में यह उपमा दी गई है कि यह चारों वर्ण विराट रूप परमात्मा के चार अंग हैं। अर्थात् ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजा, वैश्य शरीर का धड़ और शूद्र पैर।

जहॉ तक इनके कार्यों का सम्बन्ध है इनमें छोटा या बड़ा कोई नहीं माना गया है बल्कि यह सब बराबर कहे गये हैं।

ब्राह्मण—जो ज्ञान-प्राप्ति के साधनों में लगे हुए होते हैं और प्राप्त किये हुए ज्ञान में से मनुष्य मात्र को उपदेश करते हैं वही सच्चे ब्राह्मण हैं।

क्षत्रिय—विद्वान, बलवान, बुद्धिमान और न्याय से प्रजा की रक्षा करता है तथा दुष्टों को दंड देता है और श्रेष्ठ मनुष्यों का आदर सत्कार करके सबके पालन पोषण का ध्यान रखता है, वही सच्चा क्षत्रिय है।

वैश्य—जो ज्ञान, कला कौशल कृषि तथा व्यापार में निपुण होकर दूसरों का पालन पोषण करता है वही सच्चा वैश्य है।

शूद्र—जो ज्ञान से हीन रह कर तीनों उक्त वर्णों की सेवा करता है वही शूद्र कहलाता है।

आश्रम

साधारण रूप से मनुष्य की आयु सौ वर्ष की मानी गई है। शास्त्रों ने इस आयु को चार भागों में बाँटा है। वह चार भाग आश्रम कहलाते हैं। आश्रम जीवन को नियमित ढंग से बिताने के लिये बनाये गये हैं। आश्रम यह हैं—ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ, वाणप्रस्थ और सन्यास। इनमें से पहले तीन तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिये हैं मगर चौथा आश्रम अर्थात सन्यास विशेष कर ब्राह्मणों के लिये है। आश्रमों का वर्णन संक्षेप में इस प्रकार है।

ब्रह्मचर्य—पुरुष २५ वर्ष और स्त्री १६ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुऐ विद्या पढ़ें। जो ऐसा करते हैं उन्हें वसु ब्रह्मचारी कहते हैं। जो पुरुष ४४ वर्ष और स्त्री २२ वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य का पालन करें, उनको रुद्र ब्रह्मचारी कहते हैं। जो पुरुष ४८ वर्ष और स्त्री २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वह आदित्य ब्रह्मचारी कहलाते हैं। जो पुरुष या स्त्री

जीवन भर ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं उन्हें नैष्टिक ब्रह्मचारी कहते हैं।

ब्रह्मचारियों के लिये मद्य पीना, मंस खाना, खुशबू लगाना, चटपटी वस्तुये खाना, हिंसा करना, अंगों का मर्दन करना, आँखों में काजल लगाना, कामी और क्रोधी होना, मोह करना, नाच रंग और गाने बजाने में मन को लगाना, जूआ खेलना। दूसरों की निंदा करना झूठ बोलना और दूसरों को हानि पहुंचाना इत्यादि सब बुरे कर्मों का निषेध हैं।

ग्रहस्थ—इस आश्रम को बड़ी साधना के साथ चलाने की हिदायत की गई है। हर एक मनुष्य को धर्मानुसार चल कर अपना ग्रहस्थ चलाने के लिये कहा गया है। वह ग्रहस्थी भी ब्रह्मचारी के समान ही समझा जाता है जो अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों को अपनी माता और बहन के सदृश मानता है। यह आश्रम २५ वर्ष से ५० वर्ष तक चलाना चाहिये।

वाणप्रस्थ—ग्रहस्थ को भोग कर ईश्वर का अखंड चिंतन करने और परोपकार के सभी कार्यों की पूर्ति करने का नाम वाणप्रस्थ है। वाणप्रस्थ इस समय धारण करना चाहिये, जब किसी के यहाँ बच्चे जवान हो जायें और शरीर की खाल ढीली पडने लगे। उस समय घर का मोह छोड़ कर वन मे जाकर या किसी एकान्त स्थान में बैठकर ईश्वर चिन्तन करने मे लग जाये और परोपकार के कार्य करने लगे। यह पचास वर्ष की आयु से लेकर ७५ वर्ष की आयु तक होता है।

सन्यास—यह अन्तिम आश्रम है। इस आश्रम को ग्रहण करने से पहले स्त्री और घर का सब सामान छोड़ कर धर्म, उपदेश और परोपकार के कामों में लग जाना चाहिये। सन्यास किसी समय भी लिया जा सकता है, जब मनुष्य के मन में विराग उत्पन्न हो जाये।

ईश्वर वाणी (इल्हाम)

ईश्वर वाणी या इल्हाम वह साफ और चमकदार दर्पण है जिस में मनुष्य को परम पिता परमेश्वर का प्रकाश साफ दिखाई पड़ता है। ईश्वर वाणी ईश्वर और उसकी प्रजा की वास्तविकता, उसके आपसी सम्बन्ध और बारीक बातो के रंग रूप को हमारे सामने साफ साफ खोल कर रख देती है। सच्चाई को झूठ से इस प्रकार दूर कर देती है कि जिस प्रकार प्रकाश अन्धकार को दूर कर देता है। ईश्वर वाणी के द्वारा ईश्वर अपनी एकता, अपने गुणों और अपनी विद्याओं के भेद एक सीमा तक हमारे हृदय पर खोल देता है। ईश्वर वाणी ईश्वर के गुणों के अनुसार ही होती है, जो ईश्वर के साथ अनादि काल से रहती आई है और अन्तकाल तक ऐसे ही चलती रहेगी।

वेद कहता है कि ईश्वर वाणी हर समय में हर मनुष्य को हो सकती है। क्योंकि वह ईश्वर की विद्या और उसका एक गुण है। परमात्मा हर मनुष्य के हृदय में उपास्थित है। इसलिये ईश्वर वाणी या ईश्वरीय ज्ञान भी हर मनुष्य के हृदय में विराजमान है। जब कोई मनुष्य उसको सुनना या जानना चाहे तो अपने परिश्रम से ईश्वर की बतलाई हुई विधि, अपनी बुद्धि और अधिकार के अनुसार उसको सुन और समझ सकता है और ईश्वर के साक्षात दर्शन कर सकता है तथा उसका ज्ञान भी प्राप्त कर सकता है।

वेद

वेदानुयाइयों का वेद के विषय में ऐसा सिद्धान्त है:-

वेद के अर्थ ज्ञान के हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है और वह स्वतः प्रमाण (अपना सबूत आप) है। वेद समस्त विद्याओं का भंडार है। ईश्वर ने सृष्टि के आदि में मनुष्यों की उत्तपत्ति के कुछ समय पश्चात वेदों का ज्ञान अपनी प्रेरणा (तहरीक) से चार महर्षियों, अर्थात् अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा के हृदयों में प्रकाशित किया था।

ईश्वर ने वेद का ज्ञान इसलिये दिया था कि मनुष्य अज्ञान में

न रह कर धर्म, अर्थ (धन-दौलत) काम (मुराद), और मोक्ष (निजात) प्राप्त करने का ज्ञान प्राप्त कर सके, अच्छे-बुरे तथा पाप-पुन्य के कर्मों को समझ सके और इस विचित्र ब्रह्मांड का ज्ञान प्राप्त करके आनन्द का उपभोग कर सके। चूंकि वेद का ज्ञान मनुष्य मात्र की भलाई के लिये दिया गया है, इसलिये वेद का पढ़ना और सुनना मनुष्य मात्र का परम धर्म है।

कोई ईश्वरीय ज्ञान पुस्तक के रूप में आकाश से नहीं उतर सकता और न ईश्वर उसे किसी फरिश्ते या दूत इत्यादि के द्वारा ही किसी के पास संसार मे भेजा करता है। ईश्वर सर्व-व्यापक और अन्तर्यामी होने के कारण सबके हृदयों में विराजमान है। इसलिये उसके ज्ञान का प्रकाश भी हृदयों में ही हुआ करता है। चूंकि ईश्वर सबके अन्दर मौजूद है फिर उसके ज्ञान को जानने के लिये वाणी अथवा कान की आवश्यकता नहीं होती। ईश्वर के ज्ञान का प्रकाश अति सरलता पूर्वक मनुष्य के अन्दर बिना किसी परिश्रम के चलने वाली श्वास की भाँति हुआ करता है, या यों कहिये कि इस ज्ञान का प्रकाश बिना किसी परिश्रम के अग्नि में से निकलने वाले धूँवे की भाँति होता है।

इन चारों महर्षियों ने वेद का ज्ञान पाकर उस ज्ञान को दूसरे मनुष्यो में फैलाया और समझाया। इस प्रकार वेद के समझाने बुझाने का सिलसिला चलता गया। बहुत से मनुष्य वेदों के प्रकांड पंडित होते गये। जब लिखने की विधि प्रचलित हो गई तो वह पुस्तक के रूप मे लिख लिये गये। वेदों का ज्ञान प्रचलित हो जाने के पश्चात बहुत से ऋषि महर्षियों ने वेदों कीऋचाओ पर गहरा विचार किया। जिस जिस ऋषि को जिस जिस मंत्र के अर्थ ज्ञात हुए उस उस मन्त्र पर उस ऋषि अथवा महर्षि की स्मृति स्वरूप नाम लिख दिया गया। जिस मन्त्र का जो विषय है, वही मन्त्र का देवता मान कर उस पर लिख दिया गया। छंद (बहर) और स्वर प्रत्येक मन्त्र पर इसी लिये लिखे गये जिससे सहज ही यह पता चल सके कि उस मन्त्र का किस बहर और लय मे किस स्वर से उच्चारण हो सकता है। ऐसा हो जाने से वेद का प्रत्येक शब्द सुरक्षित हो गया और वह सुरक्षित ही चला आ रहा है। रामायण, महाभारत और मनुस्मृति इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों और शास्त्रों

में लोगों ने बहुत कुछ काँट छाँट की। किन्तु बुद्धिमान से बुद्धिमान और विद्वान से विद्वान, कोई भी आज तक वेदों में किसी प्रकार की कोई काँट छाँट न कर सका और न ही भविष्य में कर सकेगा।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वेद, यह संख्या में चार तो अवश्य हैं। किन्तु ज्ञान की दृष्टि से वेद केवल एक ही माना जाता है। चूंकि चारों वेदों में अलग अलग चार विषय ज्ञान कांड, कर्म कांड, उपासना कांड और विज्ञान कांड हैं इसलिये यह चार वेद कहलाते हैं। वेद देव वाणी में लिखे गये हैं। संस्कृत भाषा इसी देव वाणी से निकली है। वेद में एक ही ईश्वर की उपासना का पूरा वर्णन है। इसलिये मूर्ति-पूजा या किसी और जड पदार्थ की उपासना करने का कोई किसी प्रकार का संकेत नहीं पाया जाता। न ही वेदों में कोई किसी प्रकार का किस्सा कहानी या इतिहास मौजूद है। वेदों की भाषा बहुत आसान है, किन्तु हर शब्द अर्थों से भरपूर है। वेदों में जो नाम किसी वजूद (आकार) के बारे में आये हैं, वह जिनसी तौर (सामान्य-रूप; common) पर आये हैं, व्यक्तिगत या विशेषरूप से नहीं आये। वेद का प्रत्येक शब्द अपने अन्दर धातु (Root, मसदर) के अर्थ रखता है। वेद के शब्द यौगिक हैं, रूढ़ि (जामिद) नहीं हैं। वेदों की बंदिश (प्रबन्ध) बहुत ऊंची है। वेदों को ईश्वरीय ज्ञान, श्रुति, मंत्र, छंद, ऋचा निगम, साम, अथर्व, ब्रह्म, आगम, आम्नाय, त्रिविद्या और सत् शास्त्र के नाम से भी पुकारा जाता है।

ऋग्वेद—इसमें कुल १० मण्डल ८ अष्टक, ६४ अध्याय, ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त, २०२४ वर्ग और १०५१८ मन्त्र हैं। इसका प्रकाश अग्नि ऋषि के हृदय में हुआ था।

यजुर्वेद—इसमें कुल ४० अध्याय, १४ कांड और १९७५ मन्त्र हैं। इसका प्रकाश वायुऋषि के हृदय में हुआ था।

सामवेद—इसमें कुल २६ अध्याय, ८७८ साम और १०६२ मन्त्र हैं। इसका प्रकाश आदित्य ऋषि के हृदय में हुआ था।

अथर्वेद—इसमें २० कांड, ३४ प्रपाठक, १११ अनुवाक, ७३१ वर्ग और ५

५८२६ मन्त्र हैं। इनका प्रकाश अङ्गिरा ऋषि के हृदय में हुआ था।

जब अंग्रेज भारतवर्ष में आये तो उनमें से कुछ को संस्कृत भाषा पढ़ने का शौक हुआ। उन्होंने जब संस्कृत पढ़ी तो इनका ध्यान वेद और दूसरे ग्रन्थों की ओर भी गया। प्रो० मैक्समूलर—Maxmuller प्रो० विल्सन—Wilson प्रो० लङ्गा लुइस—Langlois मिस्टर स्टिवेन्सन—Stevenson प्रो० बनफी—Benfey मिस्टर मयोर—Mr. Muire प्रो० ग्रिफ्थ,—Griffith डा० हगू,—Dr. Huge

प्रो० रथ—Roth प्रो० बोलेन्सन—Bollenson इत्यादि पश्चिमी विद्वानों ने और इस देश के डाक्टर राजा राजेन्द्र लाल मित्र, मिस्टर रमेशचन्द्र दत्त तथा पं० उदय प्रकाश इत्यादि महानुभावों ने अंग्रेजी, बंगला और हिन्दी भाषाओं में वेदों के कुछ भाष्य लिखे। उन्होंने वेदों के वास्तविक तत्त्व को जानने की ओर ध्यान नहीं दिया और अधिकतर सायण आचार्य के वेद-भाष्य का ही सहारा लिया। इन वेद-भाष्यों को पढ़ कर इस देश और विदेश के अंग्रेजी पढ़े लिखे यह विश्वास करने लगे कि वस्तुतः वेदों में विभिन्न प्रकार के किस्से कहानी, मूर्ति पूजा, यज्ञों में पशु वध और दूसरी बहुत सी अनुचित बातें भरी हुई हैं और यह ईश्वरीय ज्ञान कदापि नहीं है। इस प्रकार वह वेदों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे। अब यदि कोई वेदों के तत्त्व या ठीक अर्थों को समझने की चेष्टा करता है तथा यह बताता है कि वेद ही समस्त विद्याओं का भंडार हैं और वह ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण हर प्रकार की बुराई और त्रुटियों से पवित्र हैं तो ऐसे भाष्य इन महानुभावों को अनोखे पड़ते और सब गलत प्रतीत होते हैं।

जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक शोपन हार—Schopenhaur ने अंग्रेजों द्वारा किये हुए वेदों के भाष्य को देख कर कहा था कि मैं विश्वास करता हूँ कि अंग्रेज संस्कृत भाषा को अच्छी तरह नहीं समझते और वे अभी तक इसके साधारण विद्यार्थी हैं। मिसेज एनी-बेसेंट ने कहा था कि इन दिनों भारतवर्ष से संस्कृत की अमूल्य प्राचीन पुस्तकें इंगलैंड तथा योरुप भेजी जा रही हैं। वे इन पुस्तकों का अपनी अपनी भाषाओं में अनुवाद करेंगे। जो वहाँ संस्कृत के विद्वान समझे जाते हैं, वह वास्तव

में संस्कृत के विद्वान नहीं हैं और न ही वह इन पुस्तकों के असल तत्त्व को समझने की योग्यता रखते हैं।

मैक्समूलर कहता है कि वेदों के भाष्य अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मन भाषाओं में हुए हैं उन भाष्यों से यह नहीं समझना चाहिये कि जो कुछ वेद शिक्षा देता है, वह हमने सब कुछ सीख लिया। ऐसा कदाचित नहीं है। वह भाष्य केवल परीक्षा करने के लिये हैं। मैंने स्वयं तीस वर्षों में बहुत से आवश्यक वेद-मंत्रों का भाष्य किया है। परन्तु वह मेरे भाष्य नमूने के तौर पर हैं। वास्तव में हम अभी वेदों के ऊपरी धरातल पर ही घूम रहे हैं। वेदो के सही भाष्य करने के लिये कईं शताब्दि लगानी पड़ेगी।

जब इस देश में वाम-मार्ग का जोर हो रहा था तो उसी काल मे महिधराचार्य ने वेद भाष्य किये। यह आचार्य वाम-मार्गी था। उसने अपने वेद भाष्य मे वाम-मार्ग के सिद्धान्तों को वेदों के सिर मढ दिया। समस्त वाम-मार्गी सिद्धान्तो की पुष्टि महिधराचार्य के वेद भाष्यों से होने लगी। कुछ समय पश्चात चारवाक मत के प्रवर्त्तक ब्रहस्पति ने महिधर के वेद भाष्य मे लज्जास्पद और अनुचित बाते देख कर एक दम कह दिया कि वेदों के बनाने वाले भॉड, धूर्त और निशाचर हैं। लोगों की वेदों पर से रही सही श्रद्धा भी उठ गई और वह चारवाक मत को ग्रहण करते चले गये। वाम-मार्गियों, जैनियों और बौद्धों ने वेदो का जी खोल कर अपमान किया। उनके पश्चात श्री शंकराचार्य मैदान मे आये। उन्होंने इन मतों का खंडन करके ईश्वर की भूली हुई हस्ती और शक्ति को फिर से स्थापित किया। श्री शंकराचार्य ने अपने धर्म प्रचार का आधार अपने गुरु गौडपाद आचार्य द्वारा लिखित मानडूक्य-कारिका नामक ग्रन्थ को ही रक्खा और जीव तथा ब्रह्म को एक ही सत्ता के दो रूप माना। वेदों के सिर जो कलंक महिधर, ब्रहस्पति जैन और बौद्ध लगा चुके थे, वह दूर न हो सके। इनके पश्चात सन् १४०० ई० मे विजय नगर के मन्त्री माधवाचार्य के भाई सायणाचार्य ने प्राचीन शत-शास्त्रों के प्रचार का कार्य आरम्भ किया। उस समय धर्म कर्म और उपासना का आधार केवल पुराण माने जाते थे। सायण और माधवाचार्य ने वेद और दूसरे ग्रन्थों के भाष्य करते समय उन पर

पुराणों का खोल चढ़ा दिया। इस प्रकार वेदों के सिर बहुत सी पौराणिक कहानियाँ मढ़ दी गईं। इन भाष्यों से वेद का वास्तविक तत्त्व रूपी सूर्य पौराणिक भ्रम-बादलों से ढक गया।

१६ वीं शताब्दि में महर्षि दयानन्द ने वैदिक धर्म का प्रचार पुन आरम्भ किया। उन्होंने उन वेद-भाष्यों को देख कर कहा कि यह भाष्य अप्रमाणिक हैं, यजुर्वेद का पूरा और ऋग्वेद के कुछ भाग का भाष्य किया जो पहले वेद भाष्यों की अपेक्षा अधिक पसंद किये गये।

वैदिक धर्म वाले तो वेद की उत्पत्ति मनुष्योत्पत्ति के साथ साथ ही मानते हैं परन्तु योरूपियन विद्वान वेदों की उत्पत्ति का भिन्न भिन्न काल निर्धारित करते हैं। मैक्समूलर वेद का समय १२०० ईसा पूर्व से ६०० ईसा पूर्व तक मानते है। दूसरे विद्वान इसी प्रकार अपने मन से भिन्न भिन्न काल निश्चित करते हैं। मिस्टर जेकोबी—Jacabi वेदों का समय ६००० ईसा पूर्व मानते हैं। मिस्टर बैन्टले—Bentley चार युगों की तिथि इस प्रकार निश्चित करते हैं कि सतयुग १६ अपरैल २३५२ ईसा पूर्व, त्रेता २८ अक्तूबर १५२८ ईसा पूर्व; द्वापर १५ सितम्बर ६०१ ईसा पूर्व और कलियुग ५४० ईसा पूर्व इस प्रकार मनुष्योंत्पत्ति को अब १६५४ तक ४२०६ वर्ष के लगभग होते हैं। इस विद्वान के विरुद्ध मिस्टर विल्सन—Wilson और मिस्टर लैसन—Lesson की सम्मति यह है कि कलियुग २० फर्वरी ३१०२ ईपा पूर्व २ बज कर २० मिनट और २० सेकिंड बीतने पर आरम्भ हुआ था। ज्योतिप शास्त्र से यह समय लगभग मेल खा जाता है। इन सभी पश्चिमी विद्वानों की सृष्टि के आरम्भ के विषय में उपस्थित सम्मतियों में बहुत ही अन्तर है।

वेद अपनी उत्पत्ति और स्तित्वता के बारे में स्वयं प्रमाण देता है। संसार के स्थिर रहने का काल इस प्रकार प्राप्त होता है कि दस हजार सैंकड़ों (दस लाख के दर्जे) तक बिन्दु देकर उस पर क्रमश' दो, तीन और चार बढ़ाने से वह काल अर्थात् ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष निकल आता है। अथ० ८। अ० १। मंत्र ११॥ मनु अ० १। श्लो० ६८, ७० से ७३ और ७६, ८०॥ यजु० अ० ४० मंत्र ८॥

जैमिनी जी ने अपने शास्त्र पूर्व मीमांसा अ० १। पा० १।

सू० १८ में, कणाद मुनि ने अपने शास्त्र वैशेषिक दर्शन के अ० १। आ० १। सूत्र ३ में; गोतम मुनि ने न्याय शास्त्र के अ० २। आ० १। सू० ६७ मे; पतञ्जलि ऋषि ने योग शास्त्र के अध्याय १। पा० १ सू० २६ में; कपिल आचार्य ने अपने सांख्य दर्शन के अ० ५। सू० ५१ में और व्यास मुनि ने वेदान्त दर्शन के अ० १। पा० १। सू० ३ में वेदों को ईश्वर का प्रकाशित किया हुआ माना है। उपनिषदों में भी ऐसा ही माना गया है।

वेदों के पढ़ने और सुनने का सबको अधिकार है—यजु० अ० २६। मं० २

वेदों में सब विद्याओं के मूल उद्देश्य (असूल) हैं किन्तु ब्रह्म विद्या प्रधान है—ऋग० अष्टक १। अ० ६। वर्ग १५, मं० ५।

एक ब्रह्म के अतिरिक्त कोई दूसरा ब्रह्म नहीं—अथ० का० १३। अ० ४, मं० १६ से १८ व २०।

वेदों में निम्नलिखित विद्याओं का भी वर्णन है—

धर्म—Religon परमार्थ विद्या, अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान और मनुष्य का कर्त्तव्य—Theology अद्वैतवाद अर्थात् ईश्वर एक है—Monotheism, सदाचार सम्बन्धि सिद्धान्त, अर्थात् नीति विद्या Ethics, जगतोत्पत्ति विद्या—Cosmogony, सांसारिक पदार्थों की विद्या—Cosmology, आत्म तत्त्व विद्या, अर्थात् मनोविज्ञान—Psychology, तर्क वितर्क विद्या—Logic और कर्म विधान या आवा-गमन—Eschapology।

ईश्वर ने प्रकृति से इस समस्त ब्रह्मांड को अपनी सामर्थ से रचा—ऋग० अ० ८। अ० ७। व० १७। मंत्र ७; ऋग० अष्टक ८। अ० ७। व० ३। मं० १।

पहले पृथ्वी बन जाती है फिर अनाज घी दूध इत्यादि

पैदा किये जाते हैं, फिर समस्त प्राणी, पशु-पक्षी ईश्वर पैदा करता है—यजु० अ० ३१। मं० ५ से ७।

N. B. सृष्टि की उत्पत्ति का पूरा वर्णन यजुर्वेद के अध्याय ३१ मंत्र १ से २२ तक में किया गया है।

पृथ्वी चन्द्रमा और नक्षत्र घूमते हैं—यजु० अ० ६ मं० ६।

पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है—ऋ० अष्टक ८। अ० २। ह० १०। मं० १

चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर सूर्य और पृथ्वी के बीच में घूमता है—ऋ० अष्टक ६। अध्याय ४। ह्ग १३। मं० ३।

समस्त नक्षत्र सूर्य की आकर्षण शक्ति पर निर्भर हैं और सूर्य ईश्वर की सामर्थ्य से स्थिर है—ऋ० अष्टक६। अध्याय १। ह० ६। मं० ३; यजु० अ० ३३। मं० ४३

चन्द्रमा आदि नक्षत्र सूर्य से प्रकाश पाते हैं—अथ० का० १४। अनु० १। मं० ३

सूर्य की किरणें चन्द्रमा पर पड़ती हैं। चन्द्रमा के प्रकाश से औषधियाँ बढ़ती हैं। चन्द्रमा दूसरे नक्षत्रों की अपेक्षा पृथ्वी से बहुत निकट है—अथ० का० १४। अनु० १। मं० २

बीज बोने का स्थान पृथ्वी है—यजु० अ० २३। मं० १०।

गणित विद्या, बीज गणित, मसाहत (ज्योमेट्री आदि का वर्णन यजु० अ० १८। मं० २४ व २५। साम० प्र० १। खं० १। यजु० अ० २३। मं० ६२

शिल्प विद्या, अर्थात् समुद्र, हवा और पृथ्वी पर चलने वाली सवारियों के बनाने के विषय में—ऋग्० अष्टक १। अ० ८ मं० ३ व ४; ऋग्० अष्टक १। अ० ३।व० ५ मं० ७; ऋग्० अष्टक १। अ० ३। व० ३४। मं० ८; ऋग्० अष्टक २। अ० ३। व० २४। मं० ४८; ऋग्० अष्टक १। अ० ३। सू० ३४। मं० ७।

भाँप बनाने और उसकी शक्ति का वर्णन—ऋग्० अष्टक१। अ० ८। व० ६। मं० १; ऋग्० अष्टक १। अ० ३। व० ४। मं० १; ऋग्० अष्टक १। अ० ६। व० ६। मं० ४।

बिजली और तार बरकी आदि का वर्णन—ऋग्० अष्टक१। अ० ८ व० २१। मं० १०।

आयुर्वेद का वर्णन—यजु० अ० ६। मं० २२ आदि।

पुनर्जन्म—ऋग्० अष्टक ८। अ० १। व० २३। मं० ६ व ७; यजु अ० ४। मं० १५; यजु० अ० १६। मं० ४७। अथ० कां० ७। अनू १। वग १७। मं० १।

विवाह—ऋग्० अष्टक ८। अ० ३। वग २८। मं० २ आदि

नियोग—ऋग्० अष्टक ७। अ० ८। व० १८। मं० २; अथ० का० १४। अनु० २। मं० १८।

राजा और प्रजा के कर्त्तव्य—ऋग्० अष्टक ३। अ० २। व० २४। मं० ६। यजु० अ० २० मं० १ से ८ व १० व २५ व ५०।

राज सभा का वर्णन—अथ० कां० ६। अनु० १०। व० १८। मं० १ व २। अथ० कां० १५। अनु० २ व० ६ मं० २।

ईश्वरीय ज्ञान

१—मनुष्य की उत्पत्ति के साथ आना चाहिये।

२—ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश हृदय में होना चाहिये।

३—ईश्वरीय ज्ञान ईश्वर के नियम और विधान के विरुद्ध न हो।

४—उसमें कोई किस्सा कहानी न हो।

५—उसमें सब लाभदायक शिक्षायें होनी चाहियें।

६—उसका प्रभाव प्रत्येक काल में बराबर होना चाहिये।

७—ईश्वरीय ज्ञान मनुष्य के बनाये हुए ग्रन्थों से बहुत ऊँचा हो और उसमें किसी प्रकार की कोई त्रुटि न हो।

८—वह अपना प्रमाण आप हो।

वेद का भाष्यकार—यास्क आचार्य ने वेद भाष्यकार में यह योग्यतायें होनी आवश्यक बतलाई हैं—

वह ऋषि, योग्य और तपस्वी हो। वह चिन्तन और युक्ति से काम लेने वाला हो। वह पहले और पिछले विषय के समझने की योग्यता रखता हो। वह बहुत उच्च कोटि का विद्वान और सब-विद्याओं में निपुण हो। वह सत्य और असत्य में निर्णय करने की योग्यया रखता हो।

दूसरे माननीय शास्त्र।

इन ग्रन्थों में जितना भाग वेद अनुकूल है वह प्रमाणिक है और जो अनुकूल नहीं है वह अप्रमाणिक है। इसी लिये उन को प्रत्य प्रमाण ग्रन्थ कहते है।

चारो वेदों के चार उपवेद हैं:-

आयुर्वेद—(medicine) यह ऋग्वेद सम्बन्धी है।

धनुर्वेद—(military) यह यजुर्वेद सम्बन्धी है। इस में राज नीति और युद्ध विद्या का वर्णन है।

गन्धर्ववेद—(music) यह साम वेद सम्बन्धी है इस मे राग विद्या लिखी है।

अर्थवेद—(mechanics and Economics) इस मे कला कोशल इत्यादि विद्याओं का वर्णन है।

चारो वेदों की ११२७ शाखायें हैं जो ब्रह्मा आदि ऋषियों की बनाई हुई है। यह वेदो के व्याख्यान रूप ग्रन्थ हैं इन में से आज कल बहुत कम मिलते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थ-इन मे वेद और ईश्वर सम्बन्धी विषय हैं और बहुत कुछ इतिहास लिखा है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम वेद और अथर्वेद सम्बन्धी बहुत से ब्राह्मण ग्रन्थ है जिन के नाम अलग अलग हैं।

आरण्यक-यह ग्रन्थ वान प्रस्थों के बनाये हुए है इन में ईश्वर और जीवात्मा के बारे मे गहरा विचार किया गया है। आरण्यक भी इस समय सारे नही मिलते।

उपनिषद्-का अर्थ है पास बैठना अर्थात गुरू के चरणों में बैठ कर जो विद्या प्राप्त की जाये उस को उपनिषद कहते हैं। यह गिनती मे तो बहुत है किन्तु इन में से निम्नलिखित ११

अधिक प्रसिद्ध हैं—

१. ईश २. केन ३. कठ ४. प्रश्न ५. मुण्डक ६. माण्डूक्य ७. ऐतरेय ८. तैत्तरीय ६. बृहदारण्यक १०. छान्दोग्य ११. श्वेताश्वेतरोपनिषद

उपनिषद ब्रह्म विद्या के विषय की बहुत ऊंचीं पुस्तके हैं इन का अनुवाद अनेक भाषाओं में हो चुका है। बहुत से विद्वान इन पर मुग्ध हैं।

दर्शन—दर्शन का अर्थ दिखाने वाले या शिक्षा देने वाले के हैं। यह गिनती में ६ हैं इन से भिन्न भिन्न पदार्थों का पता चलता है। ये संसारिक समस्याओं को समझाने और सुलझाने वाले शास्त्र हैं। ये आपस में एक दूसरे के विरोधी नही हैं। जो इन को विरोधी मानते हैं वह ग़लती पर हैं। इन में से हरएक ने अपने अपने ढ़ग से सृष्टि और जीवन की समस्या को सुलझाया है।

१ वैशेषिक—यह कणाद मुनि का बनाया हुआ है।

२ न्याय दर्शन—इसके बनाने वाले गौतम मुनि हैं। यह न्याय—(logic) की पुस्तक है।

३ सांख्य दर्शन—इस के रचने वाले कपिल मुनि हैं।

४ योग दर्शन—इस के रचियता पतञ्जलि मुनि हैं।

५ उत्तर मीमांसा अर्थात वेदान्त—यह व्यास मुनि कृत है।

६. पूर्व मीमांसा:—यह जैमिनि जी ने लिखा है।

स्मृति—वैसे तो यह कितनी ही हैं किन्तु इन में मनुस्मृति अधिक माननीय है। दूसरी स्मृतियों में से पराशर, नारद और देवल स्मृतियां प्रसिद्ध हैं।

गीता—यह बड़ी ऊंची और प्रिय पुस्तक है। इस का हर भाषा में

अनुवाद हो चुका है। इस को उपनिषदों का निचोड़ कहा जाता है।

सदाचारी जीवन (Moral Life)

सदाचारी जीवन के लिये मानसिक (दिमागी) और चरित्र की पवित्रता होनी अति आवश्यक है। धर्म, मजहब और सदाचार का आपस मे गहरा सम्बन्ध है। धर्म या मजहब के बिना सदाचार की कोई वास्तविकता नहीं है। सदाचार के बिना आत्मिक शक्ति समाप्त हो जाती है और मनुष्य पशु बन जाता है।

वैदिक धर्म ने यों तो सदाचारी जीवन के लिये बहुत कुछ शिक्षा दी है, परन्तु उसमे से मोटी मोटी बातें यह हैं:—

सदा सच बोलो और सच्चा चरित्र बनाओ। धर्म-शास्त्र को पढ़ कर मनन करो और उसके अनुसार आचरण करो। माता-पिता, गुरू और दूसरे सब बड़ों का सदा आदर सम्मान और सेवा तथा पूजा करो। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके संसार के सब कार्य बुद्धिमानी और सफलता के साथ चलाते रहो। भले और अच्छे काम सदा करो और बुरे तथा व्यर्थ कामों से सदा बचो। भले लोगों जैसे काम सदा करने पर तैयार रहो। आठ प्रकार के प्रमाणों को सामने रखते हुए हर बात का निश्चय करो और सच्चाई प्राप्त करने का सदैव ही प्रयत्न करते रहो। अहिंसा का पालन करो, अर्थात सब के साथ मित्रता का व्यवहार करो। धैर्य को कभी न छोड़ो। शक्तिशाली होने पर भी किसी से बदला लेने की चेष्टा कदापि न करो। मन की वृत्तियों को सदा रोके रक्खो। किसी के साथ भी अन्याय का व्यवहार मत करो। किसी का धन दौलत आदि मत छीनो। शारीरिक और मानसिक पवित्रता का सदा ध्यान रक्खो समस्त इन्द्रियों को वश में रक्खो। सदा ऐसा आचरण रक्खो कि जिससे बुद्धि तेज और प्रखर होती चली जाये। शारीरिक स्वास्थ्य का भी सदैव ध्यान रक्खो। हर वस्तु का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करो तथा सम्भव और असम्भव बातों पर विचार करो। क्रोध और लोभ से सदा बचते रहो।

कुछ विशेष परिभाषायें

धर्म—वैशेषिक शास्त्र के रचियता कणाद मुनि ने धर्म की यह व्याख्या की है 'धर्म वह है जिससे इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त हो'। कुछ विद्वान ऐसी परिभाषायें करते हैं कि जिससे अनर्थ अर्थात पाप न हो वह धर्म है और जिन बातों के करने को ईश्वर ने मना किया है। वह अधर्म या अनर्थ हैं। जो लोग तर्क से खोज करते हैं, वही धर्म की विद्या प्राप्त करते है।

मनु ने धर्म के नीचे लिखे हुये दस लक्षण बतलाये हैं—

धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी (बुद्धि) विद्या, सत्य और अक्रोध।

(१) धैर्य—किसी कार्य को साहस पूर्वक आरम्भ करना और सब प्रकार की आपत्तियों का सहन करना धैर्य कहलाता है।

(२) क्षमा—हर प्रकार का दुःख सहन करना, किसी पर क्रोध न करना, किसी को हानि न पहुचाना, दया, सहन-शीलता, अक्रोध, नम्रता, अहिंसा और शान्ति इत्यादि गुण क्षमा कहलाते हैं।

' व्यास जी ने लिखा है कि जो मनुष्य समय के अनुसार मृदु और कठोर होता है, जो तेज दिखलाता है और क्षमा के अवसर पर क्षमा करता है, वही दोनों लोकों में सुख पाता है। क्षत्रियों को क्षमा बहुत सोच विचार कर करनी चाहिये।

(३) दम—मन को इन्द्रियों के वश मे न होने देने का नाम दम है। इसी प्रकार जो मन पर काबू पा लेते हैं, वह इन्द्रियों को वश में कर सकते हैं। मन को वश में करने के दो उपाय हैं-अभ्यास और वैराग्य। धर्मपूर्वक नियमों का सेवन करना वैराग्य में सम्मिलित है। जिसने मन को वश में कर लिया वह कभी भी दुखी नहीं हो सकता।

(४) अस्तेय—दूसरों की किसी वस्तु को न छीनना या चोरी न

न करना तथा धर्मानुसार अपनी जीविका करने का नाम अस्तेय है। धन के लिये धर्म को न छोड़ना चाहिये, क्योंकि धन हमेशा नहीं रहता परन्तु धर्म हमेशा रहने वाली चीज़ है। जो लोग धर्म से कमाया हुआ धन धर्म के कामों में खर्च करते है, उनको लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती। दूसरों के धन और स्त्री का हरण कभी नहीं करना चाहिये।

(५) शौच—अर्थात् शुद्धता दो प्रकार की होती है। एक बाहर की और दूसरी अन्दर की। बाहर की शुद्धता में शरीर, वस्त्र और मकान इत्यादि की शुद्धता सम्मिलित है। अन्दर की शुद्धता में मन, आत्मा तथा बुद्धि की शुद्धि सम्मिलित है। बाहर की शुद्धि पानी या मिट्टी से होती है और मन की शुद्धि सत्य से होती है। आत्मा की शुद्धि तप और विद्या से होती है और बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है। शुभ गुणों के ग्रहण और अशुभ गुणों का त्याग करने से ही मनुष्य शुद्ध होता है।

इन्द्रिय निग्रह—इसका अर्थ यह है कि इन्द्रियाँ बुरी तरह से अपने विषयों की ओर न भागें। जितनी जिस विषय की आवश्यकता हो उतना ही ग्रहण करें। इस शरीर रूपी रथ को विवेक से और मन को दमन करके ठीक ठीक चलाना चाहिये। मनुष्य की दस इन्द्रियां इस रथ के घोड़े हैं। मन उन घोड़ों की बागडोर है। बुद्धि इस रथ का सारथी है और जीवात्मा इसकी सवारी है। विषय इस रथ का मार्ग है। इन्द्रियाँ विषयों की ओर दौडती हैं। ज्ञानी और बुद्धिमान मनुष्य विषयों के मार्ग पर अपने रथ को इस ढंग से ले जाते है कि वह ईश्वर तक पहुंच कर आनन्द करते हैं और अज्ञानी मनुष्य ठोकरें ही खाते रहते हैं।

(६) धी—के अर्थ विवेक या बुद्धि अथवा बुरी भली बातों के ज्ञान के हैं। बुद्धि ही धर्म-अधर्म, ज्ञान-अज्ञान, कार्य-अकार्य का बोध कराती है। धर्म, अर्थ और काम जो इन तीनों बातों को अच्छी तरह से विचार कर कार्य करता है वही बुद्धिमान कहलाता है।

(८) विद्या—के अर्थ हैं जानने की बातें। जो वस्तुये दिखाई

देती हैं और जो दिखाई नहीं देती, वह सब विद्या से जानी जाती हैं। विद्या से मनुष्य की भीतरी आँखे खुल जाती हैं।

(९) सत्य—जो बात जैसी देखी, सुनी और की हो तथा जो मन में हो, उसको उसी प्रकार वाणी द्वारा प्रकट करना सत्य कहलाता है। सत्य ईश्वर का स्वरूप है। सत्य से श्रेष्ठ कोई पुन्य या धर्म नहीं है।

(१०) अक्रोध—काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह यह मन के विकार हैं। यह मनुष्य के शत्रु माने जाते हैं। जो मनुष्य इनको जीत लेता है, मानो उसने सब कुछ ही जीत लिया। इन विकारों में काम और क्रोध सबसे अधिक प्रबल हैं। जो इनको जीत लेता है, वह सदा प्रसन्न रहता है।

अधर्म—छल, कपट और ईर्षा के भाव रखना, मिथ्या भाषण व दुराचरण करना, ईश्वर की आज्ञा न मानना और अज्ञान का प्रसार करना, इत्यादि कर्म अधर्म कहलाता है।

स्तुति—ईश्वर के गुणों का वर्णन करना, सुनना और उन गुणों का मनन करना स्तुति कहलाती है।

प्रार्थना—धर्म, कर्म, मोक्ष, ज्ञान, विज्ञान, विद्या, बुद्धि और बल की विनय पूर्वक परम-पिता परमात्मा से याचना करना प्रार्थना कहलाती है।

उपासना—ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव जैसे शुद्ध और पवित्र है वैसे ही अपने बनाना, ईश्वर को व्यापक जान कर उस पर विश्वास रखना और ईश्वर को अन्तर्यामी मान कर योगाभ्यास द्वारा उसकी प्राप्ती करना उपासना कहलाती है।

सगुण और निर्गुण प्रार्थना तथा उपासना—जो गुण परमेश्वर में हैं उसको उन गुणों वाला और जो गुण उसमे नहीं हैं उसको उनसे रहित समझना ईश्वर की स्तुति कहलाती है। उत्तम गुणों

के अपनाने के लिये परमेश्वर के सामने अपनी इच्छाओं को रखना और बुराइयों को दूर करने के लिये, तथा उसकी सहायता के लिये निवेदन करना, सब बुराइयों से परमेश्वर को पवित्र मान कर अपनी आत्मा को उसे सौंप देना सगुण और निर्गुण उपासना कहलाती है।

सन्ध्या—ऊपर लिखि विधि से ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करने का नाम सन्ध्या या ईश्वर भक्ति है। सन्ध्या दिन मे दो बार करनी आवश्यक है। प्रथम कार्य आरम्भ करने से पहले और दूसरे कार्य समाप्त करने के पश्चात्। सन्ध्या करने से अज्ञान दूर होकर धर्म पर चलने की रुचि होती है और पाप कर्म करने से मन हटता है। सन्ध्या मन को एकाग्र करके परमेश्वर को मन का निशाना बना कर विधि पूर्वक करनी चाहिये। ८ वर्ष तक की उम्र के बच्चों, पागलों और बीमारों को सन्ध्या के लिये उत्तरदाई नहीं ठहराया गया।

सत्य—सत्य सोचना, सत्य बोलना, सत्य पर ही चलना, मन मे किसी प्रकार का छल-कपट न रखना सत्य कहलाता है।

देव पूजा—माता-पिता, विद्वान, गुरू, आचर्य, अतिथी, न्यायकारी राजा, सुचरित्र पुरुप और स्त्री का आदर और सम्मान करना देवपूजा कहलाती है।

पश्चाताप—ईश्वर किसी के पाप क्षमा नहीं करता। यदि वह पाप क्षमा किया करे तो उसका न्याय नष्ट हो जाये और मनुष्य दिल खोल कर तथा निडर होकर पाप करने लगे। पश्चाताप से पिछले पापों की क्षमा तो नहीं होती परन्तु आगे के लिये पाप कर्म करना बंद हो सकता है।

ज्ञान विज्ञान—जिस पदार्थ का जैसा गुण, कर्म और स्वभाव हो उसको वैसा ही जान कर मानना ज्ञान और विज्ञान कहलाता है

दान—विद्या और कला-कौशल की उन्नति, दुर्बल, अपाहिज, रोगी, कुष्टी, अनाथ और दूसरे परोपकार के कार्यों में सहायता करना

दान कहलाता है।

तीर्थ—वह है जिससे मनुष्य दुःख सागर को पार कर सके। सत्य, विद्या यम, नियम, योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्या का पढ़ना इत्यादि जो भी अच्छे कर्म है, उनका नाम तीर्थ है। खुश्की, तरी या किसी विशेष स्थान का नाम तीर्थ नहीं है।

पुरुषार्थ—भाग्य से बढ़ कर है। पुरुषार्थ से किये हुए अच्छे कार्य ही भाग्य बनाते हैं। पुरुषार्थ के ठीक होने से सब कार्य ठीक हो जाते हैं और उसके बिगड़ने से सब कार्य बिगड़ जाते हैं। अतः भाग्य का बनाना या बिगाडना मनुष्य के अपने हाथ में है। चूंकि जिसके जैसे विचार होगें उसका वैसा ही जीवन हो जायेगा।

अर्थ—वह है जो धर्म से प्राप्त हो।

अनर्थ—वह है जो अधर्म से प्राप्त हो।

काम—(सुख की इच्छा) धर्म और अर्थ से जो प्राप्त हो वह काम है। ससार में अपने और पराये सुख और शान्ति की इच्छा करने का नाम काम या कामना है।

यज्ञ—वह है जिससे विद्वानों का आदर सत्कार हो। विज्ञान के सिद्धान्तों को कार्यरूप में लाकर कला कौशल की उन्नति करना, विद्या इत्यादि का दान करना, अग्निहोत्र इत्यादि सब अच्छे कार्यों का करना, हवा, वर्षा और जल इत्यादि की स्वच्छता के द्वारा तमाम जीव धारियों को लाभ पहुचाना यज्ञ कहलाता है।

महायज्ञ—पाँच हैं। जिनका करना हर एक गृहस्थी के लिये आवश्यक है—

(१) ब्रह्म यज्ञ—(सन्ध्या वेद पाठ इत्यादि)

(२) देव यज्ञ—(दोनो समय हवन करना)

(३) पितृ यज्ञ--(माता-पिता इत्यादि बड़ों का सम्मान करना)

(४) भूत-यज्ञ--(सब जीवधारियो की भलाई और रक्षा करना)

(५) अतिथी-यज्ञ--(महमानों का आदर सत्कार करना)

पितृ यज्ञ के दो भेद हैं- (१) श्राद्ध (२) तर्पण। जो काम श्रद्धा और प्रेम से किया जाता है वह श्राद्ध कहलाता है और जिससे माता-पिता आदि बड़े लोग प्रसन्न हो उसे तर्पण कहते हैं। मरे हुए पितरों के लिये खाना खिलाने का नाम श्राद्ध नहीं है।

उपकार—वह है जिससे मनुष्य जाति की बुरी बातें और कष्ट दूर होकर अच्छे कर्म और सुख की प्राप्ती मे उन्नति हो।

देवता—जिस मनुष्य ने यह नीचे लिखे हुए छब्बीस गुण प्राप्त कर लिये हों वह देव या देवता कहलाता है—

(१) निडरता (२) सुचरित्रता (३) ज्ञान (४) योग बल (५) दान देने की शक्ति (६) इन्द्रियों पर काबू (७) यज्ञ करना (८) वेद और सतशास्त्रों का पढ़ना तथा मनन करना (९) तप (१०) सादा जीवन (११) अहिंसा पालन (१२) सत्य बोलना (१३) क्रोध न करना (१४) त्याग भाव होना (१५) शान्त चित्त रहना (१६) दूसरों की बुराई न करना (१७) दीन दुखियों पर दया करना (१८) सतोष रखना (१९) विनम्र और दयालु स्वभाव होना (२०) बुरे कामों में लज्जा अनुभव करना (२१) चंचल न होना (२२)तेजस्वी होना (२३) क्षमा करना (२४) अहंकार और अभिमान न करना (२५) सबके प्रति मित्रता और प्रेम का व्यवहार करना (२६) शौच (पवित्रता)।

देव लोक—जिस क्षेत्र में देव या देवता निवास करते हों उसे देव लोक कहते हैं।

असुर लोक—जिस क्षेत्र में असुर अर्थात् देवताओं से उल्टी आदत वाले रहते हों उसे असुर लोक कहते हैं।

साधु—वह कहलाता है जो भला, अच्छा, परोपकारी और ईश्वर का भक्त होता है।

सन्यासी—त्यागने वाले को कहते हैं। अर्थात् जो मनुष्य स्वार्थ छोड़ कर निष्काम कर्म करता है वह सन्यासी कहलाता है।

वैरागी—वह समझा जाता है जो राग और द्वेष छोड़ कर तथा वैराग्य लेकर देश और धर्म की उन्नति करने में सदा तत्पर रहता है।

योगी या जोगी—उसको कहते हैं जो अपने अन्दर योग बल उत्पन्न करके ईश्वर के दर्शन करता है और सदा उत्तम और पवित्र कामों में लगा रहता है।

शिखा या चोटी—यह आर्यों का जाति चिन्ह है। इसका प्रयोजन यह है कि वह वैदिक सभ्यता की रक्षा करने में अपना तन, मन, धन लगा देगा। शिखा एक प्रकार का धर्म ध्वज है और प्रत्यके शिखा रखने वाला सेना की ध्वज थामने वाला (FLAG BEARER) के समान समझा जाता है।

यज्ञोपवीत या जनेऊ—यह एक तीन तार का धागा होता है। इन तीन तारों से यह प्रयोजन होता है कि प्रत्यके मनुष्य के जिम्मे तीन प्रकार के ऋण हैं—

(१) पितृ ऋण (२) ऋषि ऋण (३) देव ऋण। अतः इन ऋणों को उतारना हर मनुष्य का कर्त्तव्य है। पितृ ऋण माता पिता की सेवा द्वारा उतारा जा सकता है, ऋषि ऋण ऋषि मुनियों और आचार्यों ने जो वैदिक सभ्यता हम तक पहुंचाई हैं, उस ज्ञान तथा सभ्यता के प्रचार तथा प्रसार द्वारा और देव ऋण परम पिता परमात्मा के उस ऋण को उतारने के लिये होता है जो उसने हमें जीवन दान देकर तथा उत्तम उत्तम पदार्थ प्रदान करके दिया है और वह उसकी पूजा तथा उपासना से उतारा जाता है।

द्विज—उसको कहते है जिसने यज्ञोपवीत धारण करके इन तीनों ऋणों के चुकाने का भार अपने सिर पर ले लिया हो।

शूद्र—उसको कहते है जो इन तीनों ऋणों को चुकाने का कोई भार अपने जिम्मे नहीं लेता। वह उस दिवालिये के समान है जिसके जिम्मे ऋण तो है किन्तु उसे चुकाने के लिये कोई साधन नहीं है।

संस्कार—वह है जिससे शरीर, मन और आत्मा शुद्ध बन जायें। यह गर्भाधान से लेकर मरने तक १६ प्रकार के हैं। इन सबका करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। मरने के पश्चात् सिवाय सफाई इत्यादि के मुर्दे के लिये पिंड दान इत्यादि कुछ करना व्यर्थ है।
नोट—संस्कारों के लिये देखिये "संस्कार विधि" (स्वामी दयानन्द)

विवाह—एक पुरुष को एक स्त्री और एक स्त्री को एक पुरुष के साथ ही विवाह करना चाहिये। बचपन, बुढ़ापा और बेमेल विवाह करना निषेध है। स्वयंवर का विवाह उत्तम है। विवाह बाप के गोत्र, माँ की छः पीढ़ियों और निकट में करना अच्छा नहीं। विवाह जाति को न देखते हुए गुण कर्म और स्वभाव की समानता को ध्यान में रखते हुए ही करना चाहिये।

महर्षि दयानन्द

महर्षि दयानन्द का जन्म गुजरात काठियावाड की एक छोटी सी रियासत मोरवी के एक ग्राम टकारा में सन् १८२४ ई० में एक श्रेष्ठ ब्राह्मण कुल में हुआ था। उनका जन्म का नाम मूल शंकर था। उनके पिता का नाम अम्बा शंकर था। वह एक अच्छे विद्वान और शिव के बहुत प्रेमी थे। जब मूल शंकर की अवस्था पाच वर्ष की हुई तो उनको पाठशाला में भेज दिया गया। जब वह आठ वर्ष के हुए तो उनका यज्ञोपवीत संस्कार करा कर वेद का पढ़ाना आरम्भ करा दिया गया। मूल शकर ने १४ वर्ष की आयु में घर पर यजुर्वेद, व्याकरण और पूर्व मीमासा इत्यादि कई शास्त्र पढ़ लिये थे। पढ़ने लिखने में वह बडे तेज थे। एक बार जब वह १५ वर्ष के थे तो उन्होंने शिवरात्री का व्रत बडे प्रेम और उत्साह के साथ रक्खा। रात को अपने पिता के साथ शिव मन्दिर में गये। वहां शिव कथा सुनी और महादेव की मूर्ति की तरफ ध्यान लगाये बैठे रहे। इसी बीच में उन्होंने देखा कि महादेव की मूर्ति पर बिना रोक टोक चूहें कूद रहे हैं और मूर्ति पर चढे हुए भोग को खा और लेजा रहे हैं। मूल शंकर चूहों की इस कार्य-वाही को ध्यान पूर्वक देखते रहे। चूहों की इस हरकत को देख कर उनके दिल में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि महादेव जी न तो इस भोग को स्वयं खाते हैं और न ही चूहों को अपने ऊपर कूदने और भोग ले जाने से मना करते हैं। यद्यपि वह बहुत शक्तिशाली और बलवान हैं मगर चूहों को अपने ऊपर से उनके न हटाने का आखिर क्या कारण है? मूल शंकर ने इस पर काफी विचार किया मगर कोई संतुष्टी न हुई। उन्होंने अपने पिता को जगा कर इसका कारण पूछा। पिता ने डाट डपट दिया और कहा कि यह असिल महादेव नहीं हैं, यह तो केवल उनकी मूर्ति है। अपने पिता की इस बात को सुन कर मूल शंकर ने अपने हृदय में यह बात ठान ली कि जब तक त्रिशूल धारी असिल महादेव के असिल रूप को न देख लूंगा तब तक उनकी पूजा और भक्ति कदाचित न करूंगा। अतः ऐसा निश्चय करके वह घर वापस आ गये और अपनी माता से खाना लेकर समय से पहले ही खा लिया।

इसके कुछ समय बाद उनकी बहन की मृत्यु हो गई। बहन की मृत्यु से कुछ देर पहले की दशा को देख कर वह कॉप उठे, और अपने दिल में कहने लगे कि एक दिन मुझे भी मृत्यु से ऐसा ही दुख होगा। जब वह २० वर्ष के हुए तो उनके चचा इस दुनिया से चल बसे उनकी मृत्यु पर वह इतने रोये कि उनकी दोनों आँखें सूज गईं। मौत के कष्ट को देख कर वह अपने अमर होने के उपाय सोचने लगे। जब स्वयं कुछ न सोच सके तो दूसरों से अमर होने की बाबत पूछने लगे। कुछ पंडित और साधु लोगों ने अमर होने का उपाय योगाभ्यास बतलाया। यह बात उनकी समझ में आ गई; और उन्होंने असल महादेव की खोज करने और योगाभ्यास के द्वारा अपने को अमर बनाने का पक्का इरादा कर लिया। उनके दिल में वैराग्य की लहर तो पहले ही उत्पन्न हो चुकी थी अब यह लहर और भी अधिक तीव्र होती चली गई। माता पिता ने अपने पुत्र की यह दशा देख कर उन्हें शीघ्र ही ग्रहस्थ में फांस देने का निश्चय किया। मूल शंकर ग्रहस्थ में फंसने से बचना चाहते थे इस कारण वह एक रात को २१ वर्ष की अवस्था में घर से निकल खडे हुए।

घर से निकल कर कुछ दिनों इधर उधर फिर कर शीला नगर में लाला भक्त योगी के पास आ कर उनसे योगाभ्यास सीखने लगे। वहां कुछ दिनों रह कर अहमदाबाद की ओर चले गए। वहां कुछ दिनों ठहर कर कुछ साधुओं से योग की क्रियाएं सीखीं फिर वहां से गेरुवे कपड़े पहन और कमण्डल हाथ में लेकर सिद्ध पुर के मेले में चले आए। जब वह मेले में जा रहे थे तो उनको अपने गांव का एक आदमी मिल गया। उसने उनको पहचान लिया और घर ले जाना चाहा मगर वह घर जाने पर राजी न हुए। सिद्धपर के मेले में पहुँच कर वह साधु सन्तों, महात्माओं और सन्यासियों के साथ सतसंग करने लगे। उस आदमी ने जा कर उनके पिता से सब माजरा कह दिया। उनके पिता तलाश करके निराश हो चुके थे। यह समाचार पाकर वे तुरन्त कुछ सिपाहियों को साथ ले कर सिद्धपुर के मेले में आ गए। एक दिन सुबह के समय मूल शंकर नीलकण्ठ के मन्दिर में साधुओं की मण्डली में बैठे हुए थे तो उनके पिता सामने आकर खड़े हो गए और उनका साधुओं का लिबास देख कर आग बबूला हो गए। उनके पिता ने उनके

गेरुवे कपड़े फाड़ कर और कमण्डल तोड कर उनको दूसरे अच्छे कपड़े पहना दिए। मूल शंकर ने अपने पिता के क्रोध की रंगत को देख कर खामोशी धारण कर ली और पिता की डॉट डपट को नीची दृष्टि करके सुनते रहे। जब पिता कुछ ठण्डे पडे तो हाथ जोड कर उनसे क्षमा मांगी और कहने लगे कि मुझे एक व्यक्ति बहका कर अपने साथ ले आया था, अब मै आपके साथ घर चलने पर तैयार हूँ। उनके पिता को उनकी इस बात का कुछ विश्वास हो गया। उसी रात को जब वह मेले में ठहरे हुए थे तो एक लोटा पानी से भरा हुआ हाथ में लेकर और उन सिपाहियों को जोकि उनकी निगरानी पर रक्खे हुए थे सोता हुआ भॉप कर चुपके से निकल आए। मेले की सीमा से बहुत आगे चल कर एक बहुत घने वृक्ष पर चढ कर सारे दिन भूखे प्यासे रह कर चुप चाप बैठे रहे। उनके पिता ने फिर काफी देख भाल की परन्तु कुछ पता न चला और वह वापस चले आए।

जब कुछ अन्धेरा हुआ तो वह उस वृक्ष से उतर कर चल दिए। रात भर चलते चलते अहमदाबाद होते हुए बड़ौदा में चैतन्य मठ मे आकर रहने लगे। वहाँ कुछ दिनों रह कर सन् १८५४ ई० मे हरिद्वार कुम्भ के मेले मे चले आए। हरिद्वार से चल कर ऋषिकेष, टिहरी, रुद्र प्रयाग, गुप्त-काशी, गौरीकुण्ड, शिवपुरी, तुंगनाथ, अखीमठ, जोशीमठ और बद्रीनारायण की यात्रा करके रामपुर, फरूखाबाद, प्रयागराज, काशी, और कानपुर इत्यादि स्थानों मे घूमते फिरते हुए अन्त मे नर्बदा की खोज के लिए चल दिए। नर्बदा की यात्रा करने के पश्चात् वह दूसरे स्थानों को देखते भालते हुए अन्त में मथुरा आ पहुंचे। इस यात्रा मे उनके लगभग ३ वर्ष लग गये। इस यात्रा में उनकी बहुत अच्छे अच्छे विद्वानों, साधुओ, सन्यासियों, योगियों और महात्माओं से भेंट हुई और उन में से उन्होंने कई एक से योगाभ्यास की क्रियाएं सीखीं। इस यात्रा में उन को बडे बड़े घने जगलों पहाडियों और भयानक रास्तों से चल कर बहुत कष्ट उठाना पड़ा। टिहरी में उनको तंत्र ग्रन्थ (वाम मार्गियो के शास्त्र) पढ़ने का अवसर मिला। वहां रहते हुए उनको बहुत से मन्दिरों और मठों मे साधु, सन्तों महन्तों और पुजारियों के ठाठ बाट से रहने और रंग रलयां मनाने का पता चला।

मथुरा से चल कर वह स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से मिले और

उनसे २३ या २४ वर्ष की अवस्था मे सन्यास ले लिया। उनका नाम बजाये मूल शंकर के दयानन्द सरस्वती रख दिया गया। वहां वह अपने गुरु के पास कुछ समय ठहर कर पढ़ते लिखते रहे इसके पश्चात् वह फिर साधु सन्तों की खोज में चल दिए। उन्हे जहां किसी अच्छे महात्मा, साधु सन्यासी और योगी का पता चलता तुरन्त उसके दर्शन करने के लिए रवाना हो जाते। इसी प्रकार भ्रमण करते और साधु सन्यासियो से मिलते जुलते हुए १२ वर्ष बीत गए।

जब वह ३५ या ३६ वर्ष के हुए तो एक दिन मुथरा मे आ कर स्वामी विरजानन्द भारद्वाज से मिले। स्वामी दयानन्द ने उनसे विद्या पढ़ने की इच्छा प्रकट की इस पर उस बूढ़े और दुर्बल सन्यासी ने स्वामी जी से यह पूछा कि तुमने अब तक क्या पढ़ा है? स्वामी दयानन्द ने जो उस समय तक पढ़ा था बतला दिया इस पर स्वामी विरजानन्द ने कहा कि तुमने अब तक जो ग्रन्थ पढ़े हैं वह सब बनावटी हैं, उनके पढ़ने से जीवन में कोई लाभ नहीं हो सकता। इसलिए यदि तुम हम से पढ़ना चाहते हो तो उन सब शास्त्रों को जो तुमने पढे हैं भूल जाओ और जो ग्रन्थ इस समय तुम्हारे पास हैं उन्हें यमुना में डाल दो फिर शुरू से हमसे पढना चाहो तो हम तुम्हे पढ़ा सकते हैं। उन्होंने यह भी कहा कि पढ़ाने से पहले यह दो शर्तें माननी पड़ेगी एक तो यह कि तुम्हे अपने रहन सहन और खान पान का प्रबन्ध किसी दूसरे स्थान पर करना होगा, दूसरी यह कि जो कुछ तुम्हें पढ़ाया जायेगा उसके अनुसार जीवन बनाना होगा। स्वामी दयानन्द ने उनकी यह दोनों बातें मान लीं। वे मथुरा शहर में आ कर लक्ष्मी नारायण के मन्दिर की एक तंग कोठरी में रहने लगे, खाने कपड़े और किताबों इत्यादि की सहायता का वचन उन्हें एक परोपकारी गुजराती ब्राह्मण अमरलाल ज्योतिषी ने दे दिया।

यह प्रबन्ध कर के स्वामी दयानन्द अपने गुरु की सेवा मे रह कर पढ़ने लगे प्रथम पाणिनि व्याकरण के महाभाष्य को आरम्भ करके शीघ्र समाप्त कर दिया। इसके पश्चात् मनुस्मृति, ब्रह्मसूत्र, योगदर्शन, और दूसरे ऋषि ग्रन्थों को पढ़ कर मनन किया। इन सबके पश्चात उन्होंने वेद और वेदांग पढ़े।

स्वामी दयानन्द ने पहिले भी बहुत से पंडितों और आचार्यों से शिक्षा पाई थी किन्तु इस पर भी उनके उच्चारण में बहुत अशुद्धियाँ पाई जाती थीं। स्वामी विरजानन्द सही उच्चारण के बड़े पाबन्द थे इसी वजह से उन्होंने स्वामी दयानन्द को कई बार उनके गलत उच्चारण पर, डण्डे से भी मारा। स्वामी दयानन्द अपने गुरु की विद्वत्ता को देख कर दंग रह गए और उनके तत्वज्ञानी होने की सदा प्रशंसा ही करते रहे। स्वामी विरजानन्द भी अपने शिष्य को अत्यन्त होनहार और योग्य समझते थे।

स्वामी दयानन्द ने ३ वर्ष के लगभग अपने गुरु से विद्या पढ़ी। जब शिक्षा समाप्त हो गई तो वे अपने गुरु की सेवा में कुछ लौंग भेंट के तौर पर ले कर गए। गुरु लौंग ले कर अति प्रसन्न हुए और अपने शिष्य के सर पर हाथ फेर कर आशीर्वाद दिया और यह कहा कि तुम देश में ऋषि ग्रन्थों की महिमा का मण्डन और अनार्ष ग्रन्थों का खण्डन करते हुए वैदिक धर्म को फिर से जीवित करना और यदि तुम्हें इस शुभ कार्य में मृत्यु से भी खेलना पड़े तो पीछे पग कदाचित न हटाना।

१८६४ ई० में स्वामी दयानन्द अपने गुरु से आशीर्वाद लेकर आगरा चले आए। उन दिनों भारतवर्ष में वैदिक धर्म लोप हो रहा था चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था। ज्ञान, कर्म और भक्ति की विधि बिगड़ी हुई थी। आगरे में रहते हुए वह कभी शिवमत के पक्ष में उपदेश देने लगते तो कभी भागवत पुराण और वेदों की प्रशंसा करने लगते और कभी कभी इन सब उपदेशों को छोड़ छाड़ कर १८-१८ घण्टे की समाधि चढ़ा लिया करते थे। बात यह थी कि स्वामी जी का हृदय उस समय तक किसी एक ओर नहीं जमा था। जब कभी उनको कुछ शंका उत्पन्न होती तो वह स्वयं गुरु की सेवा में जाकर निवारण कर लिया करते या चिट्ठी द्वारा पूछ लिया करते थे। आगरा में कुछ समय ठहर कर जब उनका दिल वहाँ उचाट होगया तो वह गवालियर चले गए। वहां कुछ दिनों ठहरे और फिर राजपूताने की ओर चले गए।

गवालियर से चल कर वह जयपुर आए वहा ठहर कर विष्णु मत का खण्डन और शिव मत का मण्डन करना आरम्भ कर दिया।

यहां पर उन्होंने १८६६ ई० में वहां के कमिश्नर के रूबरु गऊ वध बन्द करा देने का प्रश्न रक्खा मगर उससे कुछ लाभ न हुआ। जयपुर मे बहुत से लोग शिव मत के अनुयायी बन गए। जयपुर से पुष्कर और वहां से अजमेर चले गए। अब यहां आकर वह शिव मत का भी खण्डन करने लगे। वह अब तक ऐसा इस कारण करते रहे कि उनके हृदय मे शंकाएं मौजूद थीं और उनको किसी एक बात पर पूरे तौर से निश्चय नहीं हुआ था। अतः वह अपनी शंकाओं का निवारण करने के लिए फिर अपने गुरु की सेवा में मथुरा आए और वहां कुछ दिनों ठहरे उन्होंने अपनी तमाम शंकाऐ गुरु के सामने रक्खीं। गुरु ने तमाम शंकाऐ ध्यान पूर्वक सुनी और उनका सन्तोष-जनक उत्तर दे कर स्वामी दयानन्द को बिलकुल सन्तुष्ट कर दिया। जब स्वामी दयानन्द की तमाम शंकाएं दूर हो गईं और वह वैदिक धर्म के पक्के अनुयायी बन गए। गुरु से विदा हो कर अप्रैल सन् १८६७ में वह हरिद्वार कुम्भ के मेले मे चले आए।

स्वामी दयानन्द कुम्भ के मेले में यह विचार ले कर आए थे कि वहीं पर साधु, सन्यासी, उदासी और गृहस्थी इत्यादि सभी प्रकार के लोग मिलेगे उन के सामने वैदिक धर्म के सिद्धान्त रख कर उन पर उनको चलाने का पूरा अवसर प्राप्त होगा। हरिद्वार आकर स्वामी जी ने सप्त स्रोत भीमगोडा के निकट अपनी एक कुटिया बनवाई उस पर पाखण्ड खंडनी नाम का झण्डा लहरा कर रहने लगे। इस झण्डे को देख कर लोगों के हृदयों में भान्ति भान्ति के विचार उत्पन्न होने लगे। स्वामी जी ने अपने उपदेशों की झड़ी लगा दी किन्तु उन के उपदेशों को किसी ने ध्यान पूर्वक नही सुना बल्कि उन के साथ छेड छाड आरम्भ कर दी। स्वामी जी को जब वहां अपनी सफलता होती दिखाई न पड़ी तो वह बहुत दुखी हुए। हिन्दुओं की बुरी दशा को देख कर और अपने उपदेश और प्रचार की कठिनाइयों को भांप कर वह निराश हो गए। अतः उन्हों ने अपना सब सामान जो कुछ भी उस समय उनके पास था बांट दिया और लंगोट बांध कर शान्ति का जीवन बिताने का निश्चय कर लिया। ऐसा निश्चय कर के वह गंगा के पास चण्डी देवी के पहाड़ पर समाधि लगा कर बैठ गए। समाधि खुलने पर उन के हृदय में यह बात आई कि धर्म प्रचार में मेरे सामने चाहे

जो कुछ कठिनाइयां क्यों न आंए मैं अपना पग कदाचित पीछे नहीं हटाऊंगा और गुरू वचन को अवश्य पूरा करूंगा।

सन १८६७ में स्वामी दयानन्द यह प्रतिज्ञा कर के और लंगोट बांध कर हरिद्वार से गगा के किनारे २ चल दिए। गंगा के किनारे पर जितने शहर और कस्बे पड़ते रहे उनमें ठहर कर वह मूर्ति-पूजा के खण्डन पर अपने उपदेशों मे विशेष जोर देने लगे। इसी प्रकार उपदेश देते हुए उन को अढ़ाई साल बीत गए। इसी बीच मे उन की दूसरे मत मतान्तर वालों से कई वार वहस या शास्त्रार्थ हुए जिन मे करणवास, सोरण, फर्रुखाबाद और कानपुर के शास्त्रार्थ अधिक प्रसिद्ध है। स्वामी जी की महानयुक्तियों से लोगों में ससनी फैल गई वहुत से लोग स्वामी जी के उपदेशों से प्रभावित हो कर उन के अनुयायी बन गए। इस यात्रा मे स्वामी जी के वहुत से लोग वैरी हो गये। कई एक स्थानों पर उन को जान के मारने और उन का अपमान करने पर लोग तैय्यार हुए मगर उन के वे सब इरादे निष्फल ही रहे।

२२ अकतूवर सन १८६६ ई० को स्वामी जी प्रयाग से काशी पधारे उन्हें आनन्द वाग में ठहराया गया। उन के आने की खबर सारे शहर में फैल गई और वहां के साधु, सन्तों, पुजारियों और पंडितों के दिलों मे एक प्रकार का भय उत्पन्न हो गया। स्वामी जी ने मूर्ति खण्डन के बारे मे एक विज्ञापन छपवा कर शहर में बंटवाया और काशी नरेश को यह कहला भेजा कि अगर सत्य को जानने की इच्छा हो तो काशी के पंडितों को मेरे साथ शास्त्रार्थ करने के लिए तैय्यार करो। काशी नरेश और पंडितों ने स्वामी जी के चैलंज (challenge) को स्वीकार कर लिया। राजा ने अपने दरबारी पंडितों और शहर के चोटी के विद्वानों को जिन में पं० तारा चन्द और विशोधा नन्द भी सम्मिलित थे शास्त्रार्थ के लिए तैय्यार करदिये। १७ नवम्बर सन १८६६ को आनन्द वाग में काशी नरेश की मौजूदगी में दोपहर के ३ वजे शास्त्रार्थ आरम्भ हो कर शाम के ७ वजे तक चलता रहा। ३५ पंडित लोग सजधज कर और पालकियों में वैठ कर बाजे गाजे के साथ सभा मे पधारे। जनता काफी संख्या में इकट्ठी हो गई। इस सभा मे एक तरफ अकेले सन्यासी दयानन्द थे और उन का कोई संगी था

साथी उपस्थित न था। दूसरी ओर तमाम सभा और सभापति भी पंडितों का अपना ही था। शास्त्रार्थ मूर्ति पूजा के खण्डन और मण्डन के विषय में था। स्वामी दयानन्द कहते थे कि वेदों मे मूर्ति पूजा का कोई इशारा नही है और यदि है तो उस वेद मंत्र को जनता के रूबरू रखा जाये। उधर पंडित लोगों का कहना था कि वेदों से मूर्ति पूजा भली भान्ति सिद्ध होती है। यह शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में आरम्भ हुआ। पंडित लोग पुराणो और दूसरे ग्रन्थों के हवाले पेश करने लगे। किन्तु स्वामी जी ने उनको आहिस्ता आहिस्ता कह सुन कर वेदों के हवाले देने पर ही तैय्यार कर लिया।

पंडितों ने वेद मंत्र के हवाले दे कर मूर्ति पूजा सिद्ध करने का पूरा परिश्रम किया मगर स्वामी जी तुरन्त उस का खण्डन यह कह कर देते कि यह वेद मंत्र नही है। इस पर पंडित लोग दूसरी बातों पर उतर आए और टाल मटोल करते हुए समय को बिताने लगे। इसी बीच में पंडित माध्वाचार्य्य ने खड़े हो कर एक मंत्र पढ़ा और कहा कि इस वेद मंत्र से मूर्ति पूजा पूर्ण रूप से सिद्ध होती है। स्वामी जी ने उस पंडित से वह किताब ले कर उस मंत्र को पढ़ कर जांचना आरम्भ किया और उस का उत्तर देने ही को थे कि तमाम पंडितों ने तुरन्त खड़े हो कर यह घोषणा कर दी कि स्वामी हार गया, स्वामी हार गया। यह घोषणा सुनते ही तमाम सभा उखड़ गई पंडितों के गलों मे जयमालाएं डाल दी गई। कुछ गुण्डे स्वामी जी को बुरा भला कहने लगे और कुछ उन पर धूल और मिट्टी इत्यादि फेंकने लगे। स्वामी दयानन्द इस समस्त कार्यवाही को चुप चाप अचम्भे की दृष्टि से देखते रहे और जब कुछ कहने का अवसर न देखा तो अपने स्थान पर वापस चले गए। स्वामी जी ने इस शास्त्रार्थ के प्रश्न व उत्तर एक पुस्तक के रूप में छपवाकर जनता मे तकसीम कराए। कुछ स्वतन्त्र विचार वाले अखबारों मे पंडितों की इस धोकेबाजी चालाकी और ज्यादती की खूब चरचा की

1—Christian Intellegence March 1870.
2—Indian mirror 30 Dec. 1872
3—Pioneer Jan 8. 1880.
4—Hindoo Patriot Jan. 17 & 14 Feb, 1880

और यह लिखा कि दयानन्द की हार कदाचित नही हुई बल्कि पंडित लोगों की हार स्पष्ट रूप से सिद्ध है।

काशी से चल कर स्वामी जी प्रयाग मे आ गए। वहां कुछ दिनों ठहर कर अपनी प्रसिद्ध किताब सत्यार्थप्रकाश का मसवदा तैयार करने में लग गए। कुछ दिनों वहां ठहर कर वह कलकत्ता पधारे। वहां केशवचन्द्र और दूसरे मान्य विद्वानों से बहुत सी बातों पर वार्तालाप हुआ। कुछ दिनों कलकत्ता मे वैदिक धर्म का प्रचार करने के पश्चात् वह हुगली चले गए। वहां कुछ दिनों प्रचार करके बिहार प्रान्त के छपरा शहर मे चले आए। छपरा में पण्डितो ने यह अफवाह उडा दी कि वह नास्तिक है, उस की बात पर किसी को ध्यान नही देना चाहिए। इस जगह उन का पंडित जगन्नाथ से शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ का जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और बहुत से लोग स्वामी जी के भक्त बन गए। बिहार प्रान्त से लौट कर वह फिर काशी आ गए। यहां एक वैदिक पाठ शाला की स्थापना करके कानपुर चले गए। इसी प्रकार घूमते फिरते और वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए वह जव्वलपुर चले गए। जव्वलपुर में उन्हें कोई सफलता न मिली। वहां के कुछ लोग स्वामी जी की जान लेने के पीछे पड़ गए। अत. स्वामी जी ने उस जगह अधिक दिनों तक ठहरना उचित न समझा। वहां से वह नासिक चले गए। कुछ दिनों नासिक ठहर कर २६ अकतूबर सन् १८७४ को चले आये। वहां कई माह तक ठहरे रहे। वैदिक धर्म का खूब प्रचार किया। बम्बई के एक ग्राम चिरगांव में डाक्टर नानक चन्द के मकान पर उन्हों ने १० अप्रैल सन १८७५ ई० को पहिली आर्य समाज की स्थापना की। बम्बई से चल कर अहमदाबाद आए। वहा १५ मशहूर उपदेश दिए अहमदाबाद से फिर बम्बई लौट गए। बम्बई से राजकोट होते हुए यू० पी० मे वापस चले आए।

मई सन १८७६ ई० मे वह फिर काशी आए और वेदभाष्य करने मे लगगए स्वामी जी रावण महीधर सायन इत्यादि विद्वानों के वेदभाष्यों की जगह वेदों का सही भाष्य जनता के रूबरू पेश करने की बहुत दिनों से इच्छा रखते थे। मगर इस काम को पूरा करने के

लिए उन्हें अब तक अवसर नहीं मिल सका था। अतः काशी मे उन्होंने वेद भाष्य करने का पक्का निश्चय कर लिया। काशी से एक बंगाली बाबू और पंडित भीम सैन को अपने साथ ले कर वह अयोध्या चले गए और वहां उन्होंने वेद भाष्य भूमिका का मसवदा तय्यार किया।

अयोध्या से वह शाहजहांपुर, बरेली, अलीगढ़, इत्यादि स्थानों में होते हुए और वैदिक धर्म का प्रचार करते हुए १ जनवरी सन् १८७७ ई० को मलका विक्टोरिया के देहली में होने वाले दरबार में सम्मिलित होने के लिए देहली पधारे। यहां पर स्वामी जी इस विचार को ले कर आए थे कि इस अवसर पर भारत वर्ष के समस्त राजे महाराजे देहली आएगें। मैं उन का ध्यान वैदिक धर्म की ओर दिलाऊंगा और देश की उन्नति और एकता के बारे में कोई उचित सम्मति कायम की जायेगी। देहली आकर स्वामी जी ने देश के माननीय और विद्वान पुरुषों की एक सभा बुलाई,-जिसमें बंगाल के केशवचन्द सैन बम्बई के हरि देशमुख, अलीगढ़ के सरसैयद अहमद खां, पंजाब के कन्हैयालाल अलखधारी और पं० मनफूल इत्यादि शामिल हुए। स्वामी दयानन्द ने देश की उन्नति और एकता के लिए यह कहते हुए प्रस्ताव सभा में पेश किया कि अगर देश के भिन्न भिन्न विचार रखने वाले आपस में कोई ऐसा रास्ता निकाल लें, जिस से देश की एकता और उन्नति की आशा हो सके तो बहुत ही अच्छा हो। इस प्रस्ताव पर सभी लोग अपने अपने धर्म की बड़ाई करते हुए यह बोले कि मेरे ही मजहब या धर्म पर चल कर देश में एकता और उन्नति हो सकती है। जब यह मामला बहुत गड़ बड़ में पड़ गया तो स्वामी जी ने सोचा कि मेरे प्रस्ताव से कोई अच्छा परिणाम नहीं निकलेगा उन्होंने वह प्रस्ताव वापस ले लिया।

देहली से स्वामी जी मेरठ चले आए। वहां कुछ दिनों ठहर कर चांदपुर के मेले में सर्व धर्म कान्फ्रेंस में जा कर सम्मिलित हो गए। यह कान्फ्रेंस १६ मार्च सन् १८७७ को चांदपुर के मेले में बुलाई गई थी। वहां पर स्वामी जी के साथ ईसाइयों और मौलवियों का बड़े जोर का शास्त्रार्थ हुआ। वह शास्त्रार्थ इन विषयों पर था 'यह संसार परमात्मा ने कैसे, कब और काहे से बनाया' 'परमात्मा सब जगह मौजूद है या

नहीं ? 'ईश्वर न्यायकारी और दयालु कैसे है ? वेद, कुरान और बाइबिल में से ईश्वरीय पुस्तक कौनसी है और उसका क्या प्रमाण है ? मुक्ति क्या है और उस के साधन क्या हैं ? यह शास्त्रार्थ कई दिन तक चलता रहा। स्वामी जी ने हर एक प्रश्न को भिन्न भिन्न युक्तियाँ देकर हल किया। इस पर पादरी ने सभा मे खड़े होकर यह कहा कि यह स्वामी हर एक प्रश्न का उत्तर सैकड़ों प्रकार से दे सकता है। जब ईसाइयो और मौलवियो से स्वामी जी के प्रश्नों का कोई सन्तोषजनक उत्तर न दिया जा सका तो वह उस सभा से उठ कर चले गए। इस मेले में स्वामी जी की धाक जम गई और हर ओर से उनकी जय के नारे बुलन्द होने लगे।

चांदपुर के मेले से चल कर स्वामी जी शाहजहाँपुर होते हुए सहारनपुर पधारे। सहारनपुर मै कुछ दिनों ठहर कर पंजाब चले गए। लुध्याना जाकर कन्हैयालाल अलख धारी के यहा ठहरे। पंजाब में स्वामी जी का बहुत ही आदर हुआ। लुध्याना से वह लाहौर चले गए। वहां उनका एक बहुत बड़ा जलूस निकाला गया और श्री रतनचन्द की कोठी में उनके ठहरने और भाषणों का प्रबन्ध किया गया। स्वामी जी ने अपने भाषणों मे मूर्ति-खण्डन पर अधिक ज़ोर दिया और वैदिक सिद्धान्तों पर चलने के लिये जनता से निवेदन किया। स्वामी जी के विचारों से वहा के पण्डित बहुत असन्तुष्ट हो गए। उन्होंने रतनचन्द के लड़के से जाकर अपनी कोठी खाली करा लेने पर ज़ोर दिया। स्वामी जी के भक्तों ने कोठी खाली करके उनके रहने का प्रबन्ध डाक्टर रहीम खा की कोठी मे कर दिया। लाहौर में पण्डितों ने यह बात भी फैला दी थी कि यह स्वामी अंग्रेजों का नौकर है और वह हिन्दुओं को उनके धर्म से हटा कर ईसाई बनाने का प्रचार करता है। लाहौर में स्वामी जी ने एक दिन शंका समाधान और एक दिन भाषण देने का नियुक्त कर दिया। यहा पर स्वामी जी के बहुत से लोग भक्त बन गए। अतः २४ जून सन १८७७ ई० को लाहौर में आर्य समाज की स्थापना कर दी गई। इसी प्रकार स्वामी जी पंजाब के और भी बहुत से शहरो और कस्बो में वैदिक धर्म का प्रचार और समाजों की स्थापना करते हुए पंजाब का दौरा समाप्त कर के सहारनपुर वापस आ गए।

सहारनपुर मे स्वामी जी से करनल अलकाट और मैडम

विलयूटिसकी ने मिलकर वार्तालाप किया। यह दोनों व्यक्ति स्वामी जी से मिलने के लिए अमरीका से आए थे और दोनों थियोसाफिस्ट थे। वह आर्यसमाज को अपनी सोसाइटी मे मिला कर स्वामी जी को अपना नेता नियुक्त करना चाहते थे।

सहारनपुर से स्वामी जी उन दोनों व्यक्तियों को साथ ले कर रुड़की होते हुए मेरठ चले आए। मेरठ कुछ दिनों ठहर कर मुरादाबाद कानपुर, इलाहाबाद और मिरजापुर इत्यादि शहरों और कस्बों का भ्रमण करते हुए फिर काशी जा पहुंचे। इस बार पहिले की भाँति स्वामी जी ने शास्त्रार्थ के लिए विज्ञापन छपवा कर बँटवाए, किन्तु किसी पंडित ने इस बार स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने का साहस न किया। जब स्वामी जी से कोई शास्त्रार्थ के लिये तैयार न हुआ तो उन्होंने वहां अपने भाषणों की झडी लगा दी, जिन में बहुत अधिक जनता सम्मिलित होने लगी। वहां के कलक्टर मिस्टर वाल (wall) ने स्वामी जी के भाषणों पर रोक लगा दी। रोक लगने से वहां की जनता तिलमिला उठी और कलक्टर पर उस रोक को हटाने के लिये जोर दिया। कलक्टर ने जनता के जोश और उत्साह को देख कर अपनी रोक की आज्ञा हटा ली और फिर काशी में स्वामी जी के भाषण बड़ी धूम धाम के साथ होने लगे।

लगभग १६ साल तक यू० पी० बंगाल, बिहार, पंजाब और महाराष्ट्र इत्यादि प्रान्तों में धम प्रचार करके १० मार्च सन १८८१ ई० को वह राजपुताने की ओर चले गए। कुछ दिनों राजपुताने में धर्म प्रचार कर के ३१ दिसम्बर सन १८८१ को वह बम्बई चले आए। यहां पर उन की एक अच्छे संस्कृत के विद्वान मिस्टर मोनियर विलियम (Monier William) के साथ भेंट हुई। उसने उन्हे अपने खर्चे से स्वामी जी को विलायत ले जाना चाहा, किन्तु स्वामी जी ने यह कह कर इनकार कर दिया कि प्रथम अपने देश का सुधार आवश्यक है।

बम्बई से रवाना होकर वह २५ जौलाई सन् १८८२ ई० को चित्तौड़ आ गए। महाराणा से भेंट हुई। महाराणा ने स्वामी जी को अपनी रियासत के सब से बड़े मन्दिर जिस के नाम लाखों रुपये सालाना आमदनी की जागीर थी, का महन्त बनने को कहा और साथ

ही यह विश्वास दिलाया कि यदि आप इस मन्दिर के महन्त बन जायेंगे तो राजभर के गुरु कहलायेंगे। स्वामी जी को महाराणा की यह बात कुछ अच्छी न लगी और उन्होंने महाराणा को ऐसा उत्तर दिया कि महाराणा को चुप रहना पडा। महाराणा के हृदय में स्वामी जी का बहुत अधिक आदर सम्मान हो गया और उन्होंने स्वामी जी को अपनी कोठी में ठहरा कर सब प्रबन्ध अच्छी प्रकार से कर दिया। महाराणा ने स्वामी जी से संस्कृत पढनी आरम्भ कर दी। ६ महीने में ही उन्हें संस्कृत का अच्छा ज्ञान हो गया। स्वामी जी के आने से पहिले महाराणा बहुत अधिक भोग विलास में रहा करता था, किन्तु स्वामी जी से शिक्षा पा कर वह एक ऊंचे दर्जे का धार्मिक मनुष्य बन गया। चित्तौड में रहते हुए स्वामी जी ने एक परोपकारणी सभा की स्थापना की। उसके २३ सभासद बनाए। महाराणा सज्जन सिंह को उदयपुर वालों का प्रधान नियुक्त किया। इस सभा का काम परोपकार के कार्यों में सहायता करना और स्वामी जी के रुपये, पैसे, सामान और ग्रन्थों की जाच पडताल और देख भाल करना था। इसी जगह स्वामी जी ने एक वसीयत भी लिखी जिसमें और बातों के अतिरिक्त यह भी लिखा था कि मेरे मरने के बाद मेरे शरीर को नियम पूर्वक भस्म कर देना और मेरी हड्डियों को किसी नामालूम जगह पर दबा देना। मेरी कोई समाधि या यादगार कदाचित न बनाना और यदि किसी समय अजमेर के अनाथालय के विषय में कोई झगड़ा पैदा हो जाये तो उस को आपसमें ही तय कर लेना कचैहरी में कदाचित न ले जाना। चित्तौड में स्वामी जी ने एक बहुत ऊंचे पैमाने पर यज्ञ किया जिस में भारत वर्ष के कोने कोने से बडे बडे चोटी के विद्वान बुलाए गए। यज्ञ की पूर्ति होजाने पर वह महाराजा जोधपुर के निमंत्रण पर शाहपुर होते हुए जोधपुर पधारे। महाराजा जसवन्त सिंह ने उनके ठहरने का बड़ा अच्छा प्रबंध कर दिया और वह प्रति दिन सवेरे और सायंकाल के समय स्वामी जी के पास आने जाने लगे। महाराजा ने कई बार स्वामी जी को अपने महल में बुला कर ऊचे आसन पर बिठाया। किन्तु दैवयोग से एक दिन ऐसा हुआ कि महाराजा के कमरे में स्वामी जी को नन्हीजान वेश्या नजर पड गई। उस को देखकर स्वामी जी ने बहुत बुरा माना। अतः राजा से यह कहा कि शेर का कुतिया के पीछे

फिरना उचित नहीं है। महाराजा तुरन्त समझ गए और लज्जित हो कर अपने कमरे से उस वेश्या को निकाल दिया। अब यह वेश्या स्वामी जी की हत्या करने की विधि सोचने लगी। उसने कुछ दूसरे लोगों से मिल कर स्वामी जी के रसोइये को लालच दे कर स्वामी जी को ज़हर देने के लिए तैय्यार कर लिया। उस रसोइये ने एक रात को स्वामी जी के दूध में बहुत ही अधिक कांच मिला दिया। स्वामी जी ने जब वह दूध पिया तो उन की तबीयत निढाल होती चली गई। पेट में बहुत ज़ोर से दर्द होकर कांटे से चुभने लगे। कहते हैं कि स्वामी जी को अपने रसोइये की इस हरकत का पता चल गया, परन्तु इस पर भी उन्होंने उसको अपने पास से कुछ रुपये दे कर वहां से एक दम चले जाने को कह दिया।

स्वामी जी को पहिले भी कई बार लोगों ने विष और कांच दिया था मगर पता चलने पर वह तुरन्त ही उस को निकाल देते थे परन्तु इस बार कांच इतना तेज़ और घातक था कि स्वामी जी को पता चलने पर भी वह उस को पूरे तौर पर निकाल न सके। परिणाम यह हुआ कि उलटी और दस्त आने आरम्भ हो गए। सारा शरीर फूटता चला गया। बहुत कुछ इलाज कराया गया, किन्तु कोई आराम न हुआ। उन्हें आबू पर्वत पर भी लेजाया गया, किन्तु वहां भी कोई आराम होता दिखाई न दिया, बल्कि दशा हर रोज बिगड़ती चली गई। आबू पर्वत से उन्हें अजमेर लाया गया। यहां आकर और भी अधिक दशा खराब हो गई।

स्वामी जी के निर्वाण का समय निकट आने लगा। निर्वाण से पहिले स्वामी जी ने अपने कपड़े उतार कर बांट दिए। नाई से हजामत बनवाई और उस को पांच रुपये दिये। चित्तौड़ के एक व्यक्ति मोहन लाल से जिसे महाराणा चित्तौड़ ने स्वामी जी की सेवा के लिए नियुक्त कर रक्खा था, स्वामी जी ने चारपाई पर पड़े हुए पूछा कि आज क्या दिन और तिथि है? मोहन लाल ने उत्तर दिया कि महाराज आज दिन मंगलवार और अमावस्या है। यह सुन कर स्वामी जी ने पड़े हुए चारों ओर दृष्टि डाली और चारपाई से उतर कर धरती पर आसन लगा कर ध्यान में मग्न हो कर गायत्री मंत्र का जाप करने

लगे। अन्त मे यह शब्द कह कर कि 'ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो' शरीर छोड़ दिया। स्वामी जी का निर्वाण ३० अक्तूबर सन् १८८३ दिन मंगलवार समय शाम के ६ बजे हुआ। उस दिन दीवाली का त्योहार था। स्वामी जी के मृतक शरीर को स्नान करा कर उनके शरीर पर चन्दन और केसर का लेप किया गया और श्मशान भूमि में लेजा कर चार मन घी, पांच सेर काफूर, आध सेर केसर और २ तोले मुश्क, २ मन पाच सेर चन्दन, एक मन पीपल और कई मन आम की लकड़ियों में उन के शरीर की दाह क्रिया की गई। उन की हड्डियों को उन की वसीयत के अनुसार किसी नामालूम स्थान पर दबा दिया गया। निर्वाण के समय उनकी आयु ५६ वर्ष की थी। उन्होंने लगभग १८ वर्ष तक धर्म प्रचार और देश सुधार का काम किया। स्वामी जी ने आयु भर अपना विवाह नहीं किया। वे बाल ब्रह्मचारी थे। इसी लिए उनके कोई संतान भी नहीं हुई।

स्वामी दयानन्द का रङ्ग गंदुमी, कद लम्बा, माथा उठा हुआ, चेहरा तेजस्वी, शरीर कुछ भारी मगर सुडौल और कसरती था। वह बड़े सुन्दर, बलवान और निडर थे। स्वामी जी बड़े तेजस्वी और योगी थे। कई बार गुण्डों और दुराचारियों ने उन पर आक्रमण करके उनको मार देना चाहा किन्तु उनके तेज के सामने वह सब निष्फल ही रहे। एक बार कर्णवास के राजा ने उन पर नाराज हो कर तलवार से आक्रमण करना चाहा। स्वामी जी ने राजा के हाथ से तुरन्त तलवार छीन कर उसके दो टुकड़े करके राजा के सामने फेंक दिए। यह देख कर राजा बहुत लज्जित हुआ और वह अपना सा मुंह लेकर वापस चला गया। इसी प्रकार की और भी बहुत सी घटनाएं स्वामी जी के जीवन में घटी थीं। स्वामी जी पहले तो एक लंगोटी बांधा करते थे। परन्तु जब जनता में उनका ज्यादा आना जाना हो गया तो वह गेरवे कपड़े पहनने लगे थे।

स्वामी जी के प्रचार और सुधार के काम को तीन भागों में बांटा जा सकता है:—

१ धर्म-कार्य २ सामाजिक-कार्य ३ राजनैतिक-कार्य।

१ धर्म-कार्य—स्वामी जी से पहिले सनातन धर्मी पंडितों ने

वेदों के पढ़ने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही दे रक्खा था। शूद्रों को वेदों के पढ़ने या सुनने का कोई अधिकार न था। स्वामी जी ने वेदों से यह सिद्ध करके बतलाया कि जैसे चन्द्रमा, सूर्य, हवा, जल और ईश्वर की बनाई हुई दूसरी वस्तुओं से लाभ उठाने और प्रयोग में लाने का मनुष्यमात्र को अधिकार है ऐसे ही उसके ज्ञान अर्थात वेद को भी पढ़ने सुनने और मनन करने का मनुष्यमात्र को अधिकार है। स्वामी जी से पहिले बहुत से हिन्दू अपने हिन्दू धर्म को त्याग कर दूसरे मतों में जा रहे थे। किन्तु उनमें से बहुत से हिन्दू धर्म में वापस आने के लिये बड़े इच्छुक थे। परन्तु पण्डित लोग उन्हें आत्म रक्षा के विचार से हिन्दू धर्म में वापस लेना उचित नहीं समझते थे। स्वामी जी ने उन सब लोगों को हिन्दू धर्म में आने के लिए निमन्त्रित किया। स्वामी जी ने देश की दशा को अच्छा बनाने और उन्नति के रास्ते पर लगाने के लिए प्रथम गौ रक्षा पर पूरा ध्यान देना आवश्यक समझा।

स्वामी जी ने देश के लड़के और लड़कियों की शिक्षा की तरफ पूरा ध्यान दिया।

२ सामाजिक-कार्य—स्वामी जी से पहिले जाति जन्म से मानी जाती थी जिसके कारण यह देश बहुत हानि उठा रहा था। इस जाति भेद के कारण हिन्दुओं में मेल मिलाप की स्प्रिट समाप्त हो गई थी। स्वामी जी ने इस जाति भेद को हिन्दुओं के पतन का कारण बतलाया और शास्त्रों के आधार पर यह सिद्ध किया कि जाति जन्म से नहीं बल्कि गुण, कर्म और स्वभाव से होती है। अछूतोद्धार की ओर उन्होंने अपना विशेष ध्यान दिया। हिन्दुओं के दिलों में उनकी ओर से जो घृणा के भाव चले आ रहे थे उनको दूर करने का प्रचार किया और भविष्य में आने वाले खतरे से हिन्दुओं को सूचित किया। स्त्री शिक्षा, पुनर्विवाह, वेवाओं और दूसरी स्त्रियों के आदर सम्मान की ओर लोगों का विशेष ध्यान दिलाया।

३ राजनैतिक कार्य—स्वामी जी ने लोगों के दिलों में देश-प्रेम, देश सेवा और विदेशी वस्तुओं की उपेक्षा स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग में लाने की तरफ ध्यान दिलाया। देश की एकता के लिए हिन्दी भाषा

का होना बड़ा आवश्यक बतलाया और यह भी कहा कि विदेशी राज की अपेक्षा, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, स्वराज्य सदा अच्छा होता है।

स्वामी जी कृत पुस्तकें

सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेद आदि भाष्यभूमिका, यजुर्वेद का भाष्य, ऋग्वेद का थोड़ा सा भाष्य संस्कार विधि इत्यादि दसों पुस्तकें हैं।

पारसी मत

पारसी मत

ईश्वर वादियों (monotheistic) में से पारसी मत बहुत पुराना मत है। इसको द्वैत वादी (Dualistic) भी इसलिये कहते हैं कि यह दो शक्तियों अर्थात् एक पवित्र शक्ति (Holy spirit) और दूसरी बुरी शक्ति अर्थात् (Evil spirit) को अनन्त और अनादि मानता है। पारसी मत धर्म नहीं है बल्कि एक मत है। मत इसलिये है कि इसमें दर्शन का अधिक प्रभाव नहीं पाया जाता। पारसी मत का दूसरा नाम मजूसी, तीसरा नाम अग्नि-पूजक और चौथा नाम जरतुश्ती (Zoraoterism) है।

इस मत का आरम्भ ईरान देश में, हुआ था। इसके प्रवर्तक का नाम जरतुश्त (Zoroaster) था। पारसी लोग इस मत को ईश्वरीय मत कहते है। यह मत कब प्रचलित हुआ था, इस विषय में विद्वानों मे काफी मतभेद हैं। बहुत से योरुपियन तो जरतुश्त के स्तित्व से ही इन्कार करते है। वह उन को एक नक़ली और मन घढ़न्त पैग़म्बर समझते हैं। किन्तु इरानी, यूनानी, अरबी तथा कुछ योरुपियन और अमरीकन उनके स्तित्व को मानते भी हैं।

पारसियों की पहलवी, बुन्दाहिश्न—Bundahishn, अरदा वायरफ़ (Arda Viraf) और जैटसपारम—Zatasparam आदि ग्रन्थों में भी जरतुश्त का काल भिन्न भिन्न लिखा है जो ६०० वर्ष ईसा पूर्व से लेकर ६००० वर्ष ईसा पूर्व तक पहुंचता है। किन्तु यह सब ग्रन्थ पारसियों का राज्य समाप्त होने के पश्चात्, सिकन्दर से कुछ शताब्दियों पहले लिखे गये थे। अरस्तु (Aristotle) एडोक्सस (Eudoxus) और हरमीपस (Hermippus) ने लिखा है कि जरतुश्त प्रथम ट्रोजन युद्ध (Trojan War) से पाँच हजार वर्ष पहले हो चुके थे। उन्हों ने ऐसा भी लिखा है कि जरतुश्त एक नहीं हुआ बल्कि बहुत से हुये हैं। उनमें से जो भी जरतुश्त होता रहा वह जरतुश्त प्रथम का उतराधिकारी होता रहा और जरतुश्त के ही नाम से पुकारा जाता रहा। इसी कारण यह मत भेद चला आ रहा है।

पिछले १५० वर्षों में योरुपियन और अमरीकन विद्वानों ने जो भी इस विषय में पड़ताल की है वह ज़रतुश्त का समय ईसा से कम से कम ९००० वर्ष पूर्व होना मानते हैं। उन्होंने ऐसा भी लिखा है कि पारसियों की धार्मिक पुस्तक 'अवस्ता'—Avasta की भाषा संस्कृत भाषा से मिलती जुलती है। इसलिये वह संस्कृत की एक छोटी बहन कही जाती है। उनकी धार्मिक पुस्तक 'गाथा' के मंत्र ऋग्वेद से मिलते जुलते हैं। 'गाथा' और ऋग्वेद की व्याकरण एक जैसी प्रतीत होती है। आगे चलकर उन्होंने यह भी माना है कि प्राचीन काल में ईरान पूर्वी और पश्चिमी वैज्ञानिकों और विद्वानों के मिलजुल कर बातचीत करने का केन्द्र था।

यह बात तो भलि भाँति सिद्ध है कि इस्लाम से ईसाई, ईसाई से यहूदी और यहूदी से पारसी मत पुराना और प्राचीन है। इस मत के प्रचलित होने का सही समय इसलिये भी निश्चित नहीं किया जा सकता क्योंकि उनके प्राचीन ग्रन्थों को यूनानियों यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों ने अपने अपने समय में दिल खोल कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया था। परन्तु इस बात का काफ़ी प्रमाण मिलता है कि पारसी मत वैदिक धर्म का ही एक बिगड़ा हुआ रूप है। कुछ ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं कि पारसी मत ईरान देश में महाभारत के युद्ध से कुछ शताब्दियों पश्चात् प्रचलित हुआ था। इस प्रकार यह मत लगभग ४५०० वर्ष पुराना सिद्ध होता है। कुछ ग्रन्थों में ऐसा भी लिखा है कि महाभारत के युद्ध के लगभग २०० वर्ष पश्चात् द्वारकापुरी में एक बहुत ज़ोर का भूचाल आया था। सारा शहर नष्ट भ्रष्ट हो गया था। द्वारकापुरी के बहुत से लोग अपनी जान बचाने के लिये किशतियों में बैठ कर समुद्र के रास्ते चल दिये। उनमें से कुछ ईरान देश में और कुछ अजम इत्यादि देशों में बस गये। जिस समय वह लोग इस देश से गये थे, उस समय इस देश में सूर्य, चन्द्रमा और इन्द्र इत्यादि देवताओं की पूजा और उपासना प्रचलित हो रही थी। वह लोग अपने साथ इन्हीं विचारों को ले गये थे। ईरानी लोग जो पहले एकेश्वरवादी ही थे जैसा कि फिरदोसी ने भी लिखा है कि ईरानी लोग अग्निपूजक नहीं थे बल्कि वह एकेश्वरवादी ही थे। ऐसा ही कुछ और विद्वानों ने भी लिखा है। अत: उनकी देखा देखी लोग सूर्य, चन्द्रमा और इन्द्र

आदि देवताओं की पूजा और उपासना श्रद्धा के साथ करने लगे थे।

कुछ विद्वानों का ऐसा कहना है कि ज़रतुश्त से पहले ईरान देश में सूर्य, चन्द्रमा और इन्द्र इत्यादि देवताओं की पूजा और उपासना प्रचलित थी। ज़रतुश्त ने इन देवताओं की पूजा और उपासना करने से लोगों को यह कह कर मना किया कि ये जड़ पदार्थ हैं। इनकी पूजा और उपासना से जीवन में कोई लाभ नहीं हो सकता, बल्कि केवल अहुरमज़्दा (ईश्वर) की पूजा से ही कल्याण हो सकता है। सूर्य, चन्द्रमा और इन्द्र इत्यादि देवता तो अहुरमज़्दा के विशेषण—Attributes हैं। हज़रत ज़रतुश्त की इस शिक्षा से इन देवताओं की पूजा का रिवाज बंद होता चला गया।

हज़रत ज़रतुश्त से कुछ शताब्दि पश्चात् पारसी पुरोहितों और पुजारियों ने फिर इन्हीं देवताओं की पूजा और उपासना करने का प्रचार आरम्भ कर दिया। उन्होंने लोगों से यह कहा कि यह सब देवता अहुरमज़्दा की ही शक्तियों के रूप हैं। इनकी पूजा करने से अहुरमज़्दा की ही पूजा होती है। इस प्रकार प्रचार होने पर लोग फिर इन्हीं देवताओं की पूजा और उपासना करने लगे। अतः धीरे धीरे सभी सिद्धान्तों में परिवर्तन होते चले गये और अन्त में सब देवताओं की पूजा उपासना छोड़ कर अग्नि-पूजा को ही प्रधानता दे दी गई। इस अग्नि-पूजा के कारण ही पारसियों को अग्नि-पूजक कहने लगे, जैसा कि ईसाइयों को क्रॉस-पूजक—cross worshipers कह सकते हैं।

इस प्रकार सारे ईरान देश में अग्नि की पूजा होने लगी। बहुत से मंदिर बनवाये गये। जिनमें हर समय आग जलते रहने लगी। ईरान के राजा गुश्तास्प ने पारसी मत को फैलाने में बड़ा परिश्रम किया। उस ने अपने बेटे अस्फन्दयार और मंत्री जामस्प को सेना के साथ आस पास के देशों में इस मत का प्रचार करने के लिये भेजा। दूसरे देश वालों से उनके बहुत से युद्ध हुए, जिनमें काफी रक्तपात और लूट खसोट हुई। अंत में पारसी मत ईरान के आस पास सभी देशों में फैल गया। इस मत का हज़ारों वर्ष तक खूब ज़ोर चला और इस मत के मानने वाले कई एक शक्तिशाली राजा हुये।

इसके पश्चात सिकन्दर यूनान से तूफ़ान की भाँति उठा और तमाम एशिया की शान्ति को भंग करता हुआ बढ़ता चला गया। ईरान में आकर उन यूनानियों ने पारसियों के मन्दिरों को तोड कर उनकी पवित्र अग्नि को ठंडा कर दिया। उनके धार्मिक ग्रंथ जन्द और अवस्ता इत्यादि के साथ दूसरी ज्ञान-विज्ञान की असंख्य अमूल्य पुस्तकों को ढूंढ ढूंढ कर नष्ट-भ्रष्ट किया गया।

दूसरी शताब्दि में पारसी मत ने फिर कुछ उभरा लिया। सासानियों ने अपनी तलवार के ज़ोर से इस मत को फिर कई देशों में प्रचलित किया। गिरे हुए मन्दिर बनवाये गये। जन्द और अवस्ता ग्रन्थों के पृष्ठों को ढूंढ ढूंढ कर इकट्ठा किया गया। पारसी हाफ़िज़ों (स्मृतिकारों) से कुछ बातें लेकर जन्द और अवस्ता इत्यादि को फिर पुस्तकों का रूप दे दिया गया। साथ ही पवित्र शक्ति—Good spirit और अपवित्र शक्ति—Evil spirit को स्वतन्त्र शक्तियाँ मान कर द्वैतवाद—Dualism को फैलाया गया। आगे चल कर पारसी सिद्धान्तों में कुछ और परिवर्तन किया गया। इस प्रकार पारसी पुजारियों का सब पारसियों पर प्रभाव छा गया।

३०० ई० में पारसियों के एक पुजारी मनि—Mani ने यह दावा किया कि मुझ पर ईश्वर वाणी का प्रकाश हुआ है। ईश्वर ने मुझे पैग़म्बर बना कर दुनिया में भेजा है। जो मुझे ईश्वर का पैग़म्बर मान कर मेरे बताये हुए रास्ते पर चलेगा, वह अवश्य ही वैकुण्ठ में जायेगा। अत. उसने पारसी, बोद्ध, ईसाई और सरीया के नास्तिक पन—Gnosticism के विचारों में कुछ अदल बदल करके और उन सबको सम्मिलित करके मनिकेइज़म—Manicheaism मत की नींव डाली। उसने दर्शन की ओर ध्यान न देकर केवल जीवन को उच्च बनाने पर ही विचार किया। दर्शन पर विचार करने से यह कह कर मना कर दिया कि इन बातों पर विचार करने से जीवन में कोई लाभ नहीं हो सकता। मनि ने यह शिक्षा देनी आरम्भ की कि अविद्या या अन्धेर से शैतान उत्पन्न होता है। प्रकाश या विद्या ईश्वर का चिह्न है। मनुष्य को चाहिये कि वह शैतान या अविद्या पर प्रकाश या विद्या से विजय पाये। उसने कहा कि मनुष्य में जहाँ भलाई होती है वहाँ कुछ बुराइयाँ भी होती हैं। इस

लिये मनुष्य को चाहिये कि वह बुराइयों पर विजय पाकर उनका नाश करदे। मनुष्य का यही काम नहीं है कि वह केवल अपने अन्दर की बुराइयों से लड़े, बल्कि वह मनुष्य-मात्र के अन्दर से बुराइयों को निकालने का सदा परिश्रम करता रहे। माया में फँसना ही समस्त बुराइयों की जड़ है। इच्छाओं को मार कर त्यागी और वैरागी जीवन विताना उत्तम है। उसने उपवास—Fasting रखने पर अधिक ज़ोर दिया। पारसियों के इस परिवर्तित मत का ईरान और उसके आस पास के देशों में खूब फैलाव हुआ। पारसी लोग हजरत ज़रतुश्त और मनी को पैग़म्बर और अवस्ता को ईश्वरीय ग्रन्थ मान कर ईमान लाते चले गये।

४०० ई० मे यही विचार पश्चिमी देशों में और ६२० ई० मे चीन इत्यादि देशों मे प्रचलित हो गये। पश्चिमी देशों में इन विचारों की यहूदियों और ईसाइयों से टक्कर हुई। अन्त में उन पर इस मत के विचारों की प्रधानता हो गई। लगभग ४०० वर्ष तक इस परिवर्तित पारसी मत का उन देशों में ज़ोर चलता रहा और इसके साथ ही मिथरा—Mithra की पूजा और उपासना आरम्भ हुई।

६७ वर्ष ईसा पूर्व रोम में मिथरा की पूजा और उपासना होनी आरम्भ हो गई थी। फिर वहाँ से ही उसकी पूजा के विचार यौरुप और एशिया के कुछ देशों में फैल गये। भारत के उत्तरी पश्चिमी प्रान्तों और गुजरात में भी इसकी पूजा का ज़ोर हो चला था। रोम के राजा इसकी पूजा बड़ी श्रद्धा के साथ किया करते थे। मिथरा के मन्दिरों मे हर समय आग जलती रहती थी। मिथरा की पूजा का अधिकार हर मनुष्य को न था बल्कि केवल वही कर सकता था जो उच्च आचरण वाला होता था।

मिथरा शब्द वेद के मित्र (सूर्य) का ही विगड़ा हुआ रूप प्रतीत होता है। जिन देशों में मिथरा की पूजा होती थी, उनमें मिथरा ही सब प्राणियों का रक्षक माना जाता था। उसके बारे में लोगो का ऐसा विश्वास था कि मिथरा वह देवता है जो मनुष्य और ईश्वर के बीच मध्यस्त के तौर पर कार्य करता है। कुछ लोग उसको सूर्य देवता कहते थे। कुछ समय पश्चात् मिथरा की मूर्ति ऐसी बना दी गई थी कि

उसका शरीर मनुष्य का था और सिर शेर का था। उसके शरीर के चारों ओर एक साँप लपेटा गया था और उसके हाथ में बैकुण्ठ की चाबी दे दी गई थी। मिथरा ही धारण करने और नाश करने वाला मान लिया गया था। ईरानी मिथरा और दूसरे देवताओं की मूर्तियाँ रोम मे ओलम्पस पर्वत—Mount Olympus पर मन्दिर बनवा कर रखदी गई थीं। मिश्र, बेबीलोनया, कुस्तुनतुनिया और रोम में इस प्रकार अग्नि की पूजा आरम्भ हो गई थी। ईसाई मत का प्रचार होने पर भी उन देवताओं की पूजा उन देशों मे प्रचलित थी। प्रति वर्ष २५ दिसम्बर का दिन मिथरा की पूजा का नियुक्त था। यह पूजा इस श्रद्धा के साथ होती थी कि सूर्य के जन्म का दिन २५ दिसम्बर मान लिया गया था। या यों कहिये कि २५ दिसम्बर से सूर्य अपना प्रकाश तेजी के साथ करना और दिन का बढ़ाना आरम्भ कर देता है। आगे चल कर ईसाइयों ने उसी २५ दिसम्बर को हज़रत ईसा का जन्म दिन मान कर उसकी पवित्रता स्थिर करदी थी। Feast of the Nativity of Christ जब उन देशों में ईसाइयत का अधिक प्रचार हो गया था तब महाराजा कोन्सटेन्टाइन—Constantine ने मिथरा की पूजा का रिवाज समाप्त कर किया था।

ईरानी मिथरा के स्थान पर यौरुप के कुछ देशों मे ईसाइयों ने देवता का नाम थौथ—Thoth रख लिया था और यह सिद्धान्त बना लिया था कि यह वह फरिशता है जो मनुष्य के कर्मों को जाँच कर स्वर्ग या नरक मे भेजता है।

इधर यूनान मे ईसा से कई शताब्दि पहले कुछ और देवताओं की पूजा होने लगी थी। उन देवताओं में सीरापिस—Serapis ओसीरिस—Osiris और आइसिस—Isis के नाम प्रसिद्ध हैं। यह आंइसिस देवता ओसीरिस की स्त्री और होरस—Horus की माता मान कर पूजा की जाति थी। यूनान का एक और शक्तिशाली देवता माना जाता था जिसका नाम हरमस—Hermes था।

इटली में हरमस के मुकाबले का देवता मरकरी—Mercury था। पारसियों के अग्नि देवताओं की जगह यूनान और कुछ यौरुपियन देशो में लोगोस—Logos देवता की पूजा का रिवाज प्रचलित था।

एक यहूदी विद्वान श्री फिल्लू—Philo ने लोगोस को ईश्वर का ज्येष्ठ पुत्र मान कर कहा कि वह मनुष्य और ईश्वर के बीच मध्यस्त के तौर पर—Vice Gerent of God कार्य करता है। आगे चल कर ईसाइयों की अंजील मे इसी देवता के आधार पर हजरत ईसा को ईश्वर का इकलौता बेटा माना गया था, और यह विश्वास जमा लिया था कि ईश्वर ने अपने इकलौते बेटे हजरत ईसा को पवित्र शक्ति—Good Spirit के तौर पर कार्य करने के लिये ससार मे भेजा था। ईश्वर तो केवल स्वर्ग की ही देख भाल करता है किन्तु यह पवित्र शक्ति अर्थात हजरत ईसा लोक और परलोक दोनों में कार्य करने के लिये भेजा गया था। पादरी ओरिजन—Origen ने ऐसा लिखा है कि लोगोस को ईश्वर ने उत्पन्न किया था और उसके सम्बन्ध ईश्वर के साथ बिल्कुल वैसे ही हैं जैसे पारसियों के देवता स्पेंटामैन्यू—Spenta Mainyu के अहुरमज़दा के साथ हैं। उसने कहा कि ईश्वर और लोगोस दोनों अनन्त हैं किन्तु लोगोस ईश्वर से कम अधिकार रखता है। इन विचारों से ऐसा प्रतीत होता है कि मिथरा और लोगोस पारसियों के देवता स्पेंटामैन्यू का (जो कि पवित्र शक्तियो का देवता माना जाता था) पूर्ण रूप से रूप हैं।

यहूदियों और ईसाइयों ने पारसी मत को काफी हानि पहुंचाई, मगर वह इस को पूर्ण रूप से समाप्त न कर सके। सातवीं शताब्दी मे अरब देश से इस्लाम का प्रसार होना आरम्भ हुआ। इसलाम ने ईरान इत्यादि पारसियों के देशो मे आकर पारसी मत को काफी हानि पहुंचाई और इस मत की नीव को खोखला कर दिया। पारसी मंदिर तोड़े गये, उन्हें मुसलमान बनाया गया, और उनकी धार्मिक पुस्तकों को नष्ट भ्रष्ट किया गया। जो पारसी किसी कारण बच गये थे वह ईरान इत्यादि देशों को छोड़ कर इस देश मे आकर बस गये थे। उनकी संख्या अब लगभग १ लाख है।

यह बात तो हर एक ही समझदार और जानकार मनुष्य मानता है कि पारसी मत वैदिक धर्म का ही एक बिगड़ा हुआ रूप है। पारसी मत के अधिकतर सिद्धांत वैदिक धर्म के सिद्धांतों से मिलते जुलते हैं। उनकी धार्मिक पुस्तके वैदिक धर्म वालो की पुस्तकों से काफी मेल खाती हैं।

कुछ पारसी सिद्धांतो को पहले यहूदियों, फिर ईसाइयों और सबके बाद मुसलमानों ने अपने अपने सिद्धान्तों में या तो ज्यों के त्यों या कुछ हेर फेर के साथ सम्मलित कर लिया था। उन सिद्धान्तों का वर्णन हमने आगे चल कर यहूदी और इस्लाम मतों में किया है।

पारसी मत में बड़े बड़े प्रतापी, शक्तिशाली और न्याय कारी राजा महाराजा हुए। ६०० ई० में ईरान का नोशेरवाँ महाराजा जो अपने न्याय में प्रसिद्ध है, इसी मत का मानने वाला था। महाराज डैरयस—Darius ने जगह जगह खम्बों और मीनारों पर यह लेख लिखवाये थे "ऐ मनुष्य तेरे लिये अहुरमजदा (ईश्वर) की आज्ञा है कि तू बुराई न सोच, तू सत्य मार्ग को न छोड और न कभी कोई पाप कर।

सिद्धान्त

१—अहुरमज़दा एक है जो अनादि और अनन्त है। वह सर्व व्यापक है मगर उसके रहने का वास्तविक स्थान आकाश है । वह सर्व शक्तिमान और सर्व ज्ञानी है। वही संसार को बनाता, बिगाड़ता और स्थिर रखता है। वह इन्द्रियों से दिखाई नहीं पड़ता। वह सच्चा न्याय कारी और दयालु है। वह उन सब का मित्र और पिता है जो उससे अपना सच्चा सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। प्रत्येक वस्तु में उसी का प्रकाश है। उसके बहुत से विशेषण—Attirbutes हैं। अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, तारे और नक्षत्र इत्यादि का धारण करने वाला ईश्वर ही है। वह तत्व ज्ञानी—Wise-Lord है। केवल वही पूजा और उपासना के योग्य है।

२—अग्नि और सूर्य की उपासना करने में मुक्ति का सार है।

३—सृष्टि में दो शक्तियाँ कार्य करती हैं—एक पवित्र शक्ति अर्थात् अच्छाई—Good Spirit दूसरी अपवित्र शक्ति अर्थात् बुराई —Evil Spirit समस्त भली और अच्छी बातें स्पेंटामैन्यू से और समस्त बुरी बातें अग्रामैन्यू से उत्तपन्न होती हैं।

४—जीव और प्रकृति अनादि और अनन्त हैं। वह सदा से अहुरमज़दा के आधीन चली आ रही है और सदव आधीन ही रहेंगी।

५—मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, परन्तु फल भोगने में परतन्त्र, अर्थात् अहुरमज़दा के आधीन है। सब जीवधारियों में जीव समान हैं। बिना कारण किसी जीव की हिंसा न करनी चाहिये।

६—जीव अपने अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार अच्छा या बुरा जीवन आवागमन के द्वारा प्राप्त करता है।

७—स्वर्ग और नरक आसमान पर हैं। स्वर्ग में अति सुख और नरक में अति दुःख मिलता है।

८—जो हज़रत ज़रतुश्त को सच्चा पैग़म्बर और अवस्ता

को ईश्वरीय पुस्तक मान कर ईमान लाता है, वही स्वर्ग में जाने का भागी बन जाता है।

९—अहरमजदा ने संसार के कामों की देख भाल और प्रबन्ध करने के लिये बहुत से फरिश्ते नियुक्त कर रक्खे हैं।

१०—प्रलय या कयामत का एक दिन नियुक्त है प्रलय के पश्चात तमाम मुर्दे जीवित किये जायेंगे और उनसे उनके कर्मों का हिसाब लिया जायेगा।

११—हिसाब के दिन—Day of Judgement दो फरिश्ते एक मेहर दूसरा सरोश एक पुल पर खड़े होंगे। उस पुल पर से सबको जाना होगा। वह दोनों फरिश्ते सब मनुष्यों से उनके कर्मों का हिसाब लेकर अपनी रिपोर्ट अहरमजदा के पास भेज देंगे। अहरमजदा उस रिपोर्ट के आधार पर प्रत्येक मनुष्य को स्वर्ग या नरक में भेज देगा। अहरमजदा हजरत जरतुश्त पैगम्बर की सिफारिश का विशेष ध्यान रक्खेगा।

१२—अवस्ता ईश्वर वाणी है। उसकी आज्ञाओं पर चलने से परम आनन्द की प्राप्ति होती है।

१३—अग्नि का हर समय ध्यान रखने से अहरमजदा का ही ध्यान होता है।

१४—आतिश कदा (पारसियों का मंदिर) में अग्नि का हर समय जलाये रखना और उसमे सुगंधित पदार्थों का डालना परम धर्म है।

१५—कमर के चारों ओर कुसती (ऊन के धागे) के बाँधे रहने से अहरमजदा की सेवा और आज्ञा की पूर्ति होती है।

१६—किसी की मौत पर रोना पीटना बुरा है। मरने के पश्चात्

तीन दिन तक अग्नि के प्रचंड रखने से अहूरमजदा की आज्ञा का पालन होता है।

१७—पवित्र विचार, पवित्र शब्द और पवित्र कार्यों से मनुष्य का जीवन उच्च होता है।

१८—पारसी पुनर्जन्म को मानते हैं।

अहरमज़दा की दो बड़ी शक्तियाँ

पारसी लोगों का विश्वास है कि अहूरमजदा—Wise Lord की दो बड़ी शक्तियाँ हैं जो उसके आधीन हैं—एक स्पेंटामैन्यू या पवित्र शक्ति—Good Spirit दूसी अंग्रामैन्यू अर्थात् ओहरमन तथा अपवित्र शक्ति—Evil Spirit इन दोनों शक्तियों के मानने से पारसी लोग द्वैत वादी—Dualistic कहलाते है।

स्पेंटामैन्यु—यह शक्ति अहूरमजदा के विचारो की पूर्ति कराने पर मनुष्य को हिदायत करती है और समस्त भले और श्रेष्ट कार्य करने की शिक्षा देती है।

अंग्रामैन्यू अर्थात् ओहरमन—यह बुराई उत्पन्न करने वाली शक्ति हैं। यह मनुष्य को बुरे और तुच्छ कार्य करने के लिये तैयार किया करती है। यही शक्ति पशुओं में बीमारी फैलाती है।

लिखा है कि यह दोनों शक्तियाँ अहूरमजदा से तो अवश्य उत्पन्न हुई हैं और मनुष्य को अच्छे और बुरे कार्य करने के लिये भी तैयार करती हैं परन्तु फिर भी मनुष्य सोचने समझने और कार्य करने में स्वतन्त्र है। वह अपने भाग्य का स्वंय स्वामी है। मनुष्य को अधिकार है कि वह इन दोनों शक्तियों में से चाहे जिस शक्ति की प्रेरणा से कार्य करे। जो मनुष्य अंग्रामैन्यू पर विजय पाकर स्पेंटामैन्यू की शिक्षा पर चलता है वह सदा सुखी रह कर आनन्द भोगता है। जो मनुष्य स्पेंटामैन्यू से मुंह मोड़ कर अंग्रामैन्यू की शिक्षाओं पर चल कर कार्य करता है, वह सदा दुखी रह कर कष्ट

भोगता है। अहरमजदा ने मनुष्य को अच्छे और बुरे दोनों मार्ग बतला दिये हैं। मनुष्य उन दोनों रास्तों में से जिस रास्ते को भी अपना कर चलना चाहे, चल सकता है। अहरमजदा ने मनुष्य को बुद्धि—Conscience भी इसलिये दी है कि वह अपनी बुद्धि से काम लेकर और खूब सोच समझकर जिस अच्छे या बुरे मार्ग को अपनाना चाहे अपना सकता है। अच्छे विचार, अच्छे शब्द और अच्छे कर्मों से आनन्द मिलता है। इसके विपरीत चलने से दुःख होता है। इसी लिये कहा गया है कि मनुष्य जैसा बोता है वैसा ही काटता है। या यों कहिये कि मनुष्य अपना भाग्य स्वयं बनाता है। गाथा शास्त्र में इस सिद्धान्त का पूरा वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि पारसियों का यह सिद्धान्त वैदिक धर्म के देव और असुर संग्राम के सिद्धान्त का एक बिगड़ा हुआ रूप है।

आगे चल कर पारसियों ने इन शक्तियों के रूप में कुछ परिवर्त्तन किया। पवित्र शक्ति को ज्ञान—light और अपवित्र शक्ति को अज्ञान—Darkness अर्थात् सत्य और मिथ्या का नाम दे दिया। परन्तु वास्तविक सिद्धान्त वही रहा।

फिर और आगे चल कर यहूदियों की तौरेत, ईसाइयों की बाइबिल और मुसलमानों की कुरान में इस पवित्र शक्ति को फरिश्ते और अपवित्र शक्ति को शैतान का नाम दे दिया गया। अलेक्जैन्ड्रिया के फिलु—Philo ने ईसा से तीस वर्ष पूर्व ऐसा लिखा था कि यह फरिश्ते कोई विचित्र शक्तियाँ नहीं हैं बल्कि यह मनुष्य के वह विचार हैं जिनसे ईश्वर की शक्ति ज्ञात होती हैं।

अग्नि

अग्नि के विषय में पारसियों का ऐसा सिद्धान्त है—

अग्नि अहरमजदा का पुत्र है। यह पवित्र शक्ति है। यह अहरमजदा की ज्योति है। यह अंधेरा दूर करके प्रकाश या अज्ञान दूर करके ज्ञान की वृद्धि करती है। समस्त संसार की रचना इसी अग्नि शक्ति से हुई है और संसार का अंत भी इसी से होगा। यह सब

वस्तुओं को पवित्र करती है। यही शक्ति है जो तमाम बुराइयाँ दूर करके श्रेष्ट बनाती है। जैसे अग्नि पवित्र है वैसे ही मनुष्य को पवित्र विचार, पवित्र शब्द और पवित्र कार्य करने चाहियें। जो मनुष्य इन तीनों बातों में पवित्र हैं वही सदा आनन्द का उपभोग करते हैं और वही धन्य हैं।

दार्शनिक हीराक्लीटस—Heraclitus ने भी अग्नि को श्रेष्ट मान कर अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये थे कि समस्त वस्तुयें अग्नि से उत्पन्न होती हैं। तमाम वस्तुओं का तत्व अग्नि है। इसी में ईश्वरीय विधान है। अग्नि ही संसार का लोगोस या कारण—Reason है। अग्नि से ही संसार का अन्त होगा।

पारसियों के इस विचार में कि अग्नि या वौहूमहनाह—Vohumahnah अहूरमजदा का पुत्र है, आगे चल कर परिवर्त्तन हुए फिलो ने अग्नि के अतिरिक्त इसका नाम लोगोस रक्खा और उसे ईश्वर का ज्येष्ठ पुत्र मान कर यह कहा कि वह ईश्वर का प्रकाश है और उसकी ओर से मध्यस्थ के तौर पर संसार में कार्य करने आता है। पुराने अहदनामे में इसका नाम याहवा—Yahweh रक्खा गया। बाइबिल ने स्पेंटामैन्यू या अग्नि या लोगोस अर्थात् याहवा के बजाय हज़रत ईसा को ईश्वर का इकलौता बेटा मान कर यह विश्वास जमाया कि वह ईश्वर के बजाय इस संसार में कार्य करने के लिये आये थे। ओरिजन—Origin कहता है कि ईश्वर ने अपने बेटे लोगोस को उत्पन्न किया। वह भी अपने बाप की भाँति अमर है। उसका सम्बन्ध वही है जो सम्बन्ध अहूरमजदा और स्पेंटामैन्यू में चला आ रहा है। परन्तु लोगोस के अधिकार अपने बाप (ईश्वर) से कम हैं। न्युमिनिअस आफ एपमिया—Numenius of Apmea ने लिखा है कि ईश्वर ने उस पवित्र शक्ति (लोगोस) को अपने सब गुण दे रक्खे हैं। ईश्वर तो केवल परलोक की निगरानी करता है परन्तु लोगोस लोक और परलोक दोनों में काम करने के अधिकार रखता है।

फरिश्ते

फैरावासी या फौरोहर—यह फरिश्ते हैं जो असंख्य हैं। इनमें

स्त्री और पुरुष दोनों हैं अहुरमजदा ने इनको अपनी शक्ति से पैदा किया था। इन फरिश्तों के नमूने पर ही मनुष्य जाति को उत्पन्न किया गया। यह फरिश्ते स्वर्ग में आनन्द के साथ रहते थे। जब कोई बच्चा पैदा होता है तो एक फैरावाशी फरिश्ता उसकी जीवात्मा के साथ आता है। आकाश, पृथ्वी, वृक्ष, पशु-पक्षी और मनुष्य इत्यादि की देख भाल का काम अहुरमजदा ने इन्हीं फरिश्तों को सौंप रक्खा है। प्रत्येक मनुष्य के साथ एक फैरावाशी फरिश्ता मित्र, साथी, या रक्षक के रूप में हर समय रहता है। यह फरिश्ता ओहरमन या अपवित्र शक्ति या शैतान का मुकाबला करने के लिये मनुष्य की सहायता करता है। यह अहुरमजदा के एजेन्ट के रूप में प्रत्येक मनुष्य के साथ रहता है और मनुष्य को सदा अच्छे और श्रेष्ट काम करने की सम्मति देकर बुरे कार्य करने से मना करता रहता है। जब मनुष्य मर जाता है तो उसकी जीवात्मा दूसरे लोक मे अपने कर्मोनुसार चला जाता है, तब फैरावाशी फरिश्ता उस मनुष्य को छोड कर स्वर्ग मे रहने लगता है। हर साल के अन्त के दस दिनों मे फैरावाशी फरिश्ते उन मरे हुए मनुष्यों के खान्दानों में आते हैं। वह खान्दान वाले उनका आदर सम्मान करते हैं और वह फरिश्ते उनको आशीर्वाद देते हैं। यह पारसी सिद्धात वैदिक सिद्धात के 'पितृ का बिगड़ा हुआ रूप प्रतीत होता है।

पुराने रोमन लोग इस सिद्धात के विषय मे अपने ऐसे विचार रखते थे कि मरने के पश्चात सब जीव इकट्ठे हो जाते हैं। इसका नाम डी मैनस (De Manes) है। इसके पश्चात रोमन लोगों का ऐसा विश्वास हो गया था, कि एक विशेष बुद्धिमान शक्ति (Genius) या ईश्वरीय शक्ति (Divine Spirit) हर मनुष्य के साथ जन्म से लेकर मृत्यु तक रहती है। यूनानी लोग ऐसा मानते थे कि जीवात्मा इकट्ठे नहीं होते बल्कि अलग अलग रहते हैं। वही मरे हुये मनुष्यों की जीवात्मा फिर अपने खान्दान में अपनी पूजा और आदर सम्मान कराने की इच्छा से आती है। यह सिद्धांत हिन्दुओं मे प्रचलित श्राद्ध प्रथा से मिलता जुलता है।

न्युसिनियस आफ एपामिया ने ऐसा माना है कि मनुष्य मे दो

आत्माएं होती हैं एक बुद्धिमान और दूसरी बुद्धिहीन। ओरिजिन ने कहा है कि मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन के दो भाग हैं। एक आत्मा (Soul) दूसरी शक्ति (Spirit)।

रश्नु- Rashnu यह न्याय का फरिश्ता है।

अरमती–इस फरिश्ते का कार्य मनुष्य को धन-दौलत, सुख, आराम और बुद्धि प्रदान करना है।

सरोश–इस फरिश्ते के द्वारा मनुष्य को अहुरमजदा की आज्ञाएं प्राप्त होती हैं। तमाम मनुष्यों के कर्मों की जांच पडताल करना और हिसाब के दिन प्रत्येक मनुष्य के कर्मों की रिपोर्ट अहुरमजदा के सामने पेश करने का कार्य है। अहुरमजदा की आज्ञानुसार मनुष्य को स्वर्ग या नरक भेजने के कार्य इसी फरिश्ते के जिम्मे है।

मिथ्रा यह फरिश्ता प्रलय के बाद पुल पर खड़ा होगा जिस पर से सब मनुष्यों को जाना पडेगा और यह उनसे उनके कर्मों का हिसाब लेगा।

इन फरिश्तों के अतिरिक्त मेहर और बेहमन इत्यादि कुछ और फरिश्ते हैं। जिनके नाम और काम भिन्न भिन्न हैं।

जीवात्मा

जीव अनादि और अनन्त है। वह नित्य अमर और अविनाशी है। वह काम करने में स्वतन्त्र है और फल भोगने मे अहुरमजदा के आधीन हैं। जीव को अच्छे कर्म करने से स्वर्ग और बुरे कार्य करने से नरक मिलता है। यह जीव मनुष्य शरीर में आकर ही कार्य करता है। इसके साथ बुद्धि और फैरावाशी शक्ति सुरक्षा के लिये होती हैं शरीर जीव के रथ के समान है जिस पर सवार होकर जीव अपना मार्ग तय करता है। शरीर को स्वस्थ रखना चाहिये। शरीर छोड़ने के चोथे दिन जीव के कर्मों की जांच की जाती है। उसके कर्मानुसार जीव अच्छी या बुरी योनियों में जाता है। जीव जब स्वर्ग में जाता है तो उसे वहां एक

सुन्दर तरुणी (नौजवान लड़की) और यदि वह नरक में जाता है तो एक भद्दी तरुणी मिलती है।

प्रकृति

प्रकृति के विषय में पारसी मत ने कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला है।

सृष्टि—उत्पत्ति

लिखा है कि अहुरमजदा ने अपनी शक्ति से इस तमाम ब्रह्माण्ड को रच कर मनुष्य, पशु, और पक्षी इत्यादि को उत्पन्न किया। सबसे पहले उसने फैरावाशी फरिश्तों को उत्पन्न किया था। उनमें स्त्री पुरुष दोनों थे, जो आनन्द के साथ स्वर्ग में रहते थे।

जब अहुरमजदा के हृदय में मनुष्य को उत्पन्न करने का विचार आया तो उसने फैरावाशी फरिश्तों से पूछा कि तुम यहीं स्वर्ग में रहना चाहते हो या उस संसार में जाना चाहते हो जोकि मैं उत्पन्न करने वाला हूँ। संसार में नेकी और बदी दोनों होंगी। मैं एक फैरावाशी फरिश्ते को प्रत्येक मनुष्य के शरीर के साथ उसके साथी, मित्र और रक्षक के रूप में रखना चाहता हूँ। उस दुनिया में नेकी और बदी में हमेशा लड़ाई रहेगी। फैरावाशी फरिश्ते अहुरमजदा की बात सुनकर मनुष्य के शरीर में आने के लिये राजी हो गये और अहुरमजदा से वायदा किया कि हम एहरमन (शैतान) से लड़ने के लिये मनुष्य को तैयार करके उसकी सहायता किया करेंगे। अत अहुरमजदा ने मनुष्य को फैरावाशी के नमूने पर उत्पन्न किया और प्रत्येक मनुष्य के साथ जन्म से ही एक फैरावाशी फरिश्ते को रख दिया। अहुरमजदा ने अपनी सामर्थ्य से जल, अग्नि, हवा इत्यादि सभी पदार्थों को रच कर उसमें मनुष्य को उत्पन्न किया।

दीन—अहुरमजदा को सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक इत्यादि गुणों वाला, हजरत जरतुश्त को उसका पैगाम्बर और अवस्ता को अहुरमजदा की पुस्तक मानकर अच्छे कार्य करने का नाम दीन है।

ईमान लाना या विश्वास करना—सच्चे हृदय से विश्वास करके इक़रार करना और उसी के अनुसार कार्य करने को इमान लाना कहते हैं।

स्वर्ग और नरक—आसमान पर है उत्तम कार्य करने और हजरत जरतुश्त की सिफारिश से स्वर्ग मिलता है। स्वर्ग मे हर प्रकार का आनन्द मिलता है तथा एक तरुणी भी मिलती है। नर्क मे हर प्रकार का कष्ट सहन करना पडता है। नर्क बुरे कर्मो के करने से प्राप्त होता है नर्क में एक भद्दी तरुणी मिलती है।

कुसती—(Sacred Thread) पवित्र धागा या जनेऊ इस की तीन लपटें होती है। इसमें भेड की ऊन के ७२ धागे होते हैं। यह कमर के चारों ओर लपेट देकर बांधा जाता है। इस के पहनाने का संस्कार ७ साल से १५ साल तक के बच्चों का किया जाता है। इस संस्कार को करने के समय बच्चे को रेशमी कपड़े पहनाये जाते हैं। तीन लपटों का प्रयोजन यह होता है पवित्र कार्य, पवित्र विचार और पवित्र शब्द। उसकी दो गांठ सामने और दो पीछे लगाई जाती हैं। इनसे अभिप्राय है पवित्रता, माता-पिता की सेवा करना, अतिथि-सत्कार, इमानदारी और काम में आने वाले पशुओं पर दया करना। पारसियों के इस पवित्र धागे का संस्कार और प्रयोजन हिन्दुओं के यज्ञोपवित से मिलता जुलता है।

दान—पारसी मत में दान का बडा महत्त्व है। सुपात्र मनुष्यों को दान देना उत्तम है। गरीबों, लगडे-लूलों, अपाहिजों इत्यादि की सहायता करना शुभ कार्य है। पढाई लिखाई और शादी विवाह में सहायता देना उत्तम कार्य है। पारसी लोग प्रथम अपने मतावलम्बियों को सहायता देना उत्तम समझते हैं।

वर्ण व्यवस्था—पारसी लोग भी चार वर्ण मानते हैं। ब्राह्मण (पुजारी), क्षत्री, वैश्य और शुद्र। पारसियों और हिन्दुओं के रीति-रिवाज आपस मे काफी मिलते जुलते हैं। पारसियों के यहां प्रायः

सस्कारो मे हिन्दुओं की तरह ही संस्कार करते हैं। वास्तव में यदि ध्यान पूर्वक देखा जाये तो पारसी और हिन्दू बहन और भाई नजर आते हैं। पारसी धर्म को लगातार हानियां पहुचती रहीं, इसी लिये तो आज पारसी धर्म के बारेमे लोगों को कुछ अधिक ज्ञात नहीं है।

सदाचारी जीवन—(Moral Life) पवित्र विचार, पवित्र शब्द और पवित्र कार्यो पर विशेष जोर दिया गया है और कहा गया है कि बुराई के विचार दिल मे न लाओ। सत्य को कभी न छोडो। पाप-कर्म कदाचित न करो। दूसरों को किसी प्रकार की कोई हानि न पहुचाओ। किसी के धन दौलत या स्त्री आदि का हरण न करो।

कुछ वह सिद्धांत जो प्रथम पारसी मत ने अपनाये फिर उसके पश्चात् यहूदी, ईसाई, और इसलाम मतों में सम्मिलित हुये।

नीचे कुछ वह सिद्धांत दिये गये हैं जो सबसे पहले पारसी मत ने अपनाकर विश्वास जमाया। इसके पश्चात उन सिद्धातों में से कुछ तो ज्यूं के त्यूं और कुछ हेर फेर या कमी वेशी के साथ यहूदी, ईसाई, और इस्लाम मे दिखाई पड़ते हैं—

१ पारसी—अहुरमजदा एक है, जो सर्व शक्तिमान, सर्व व्यापक और दयालु इत्यादि गुणों वाला है। वही सृष्टि कर्त्ता है। उसी की उपासना करना योग्य है।

यहूदी—यहवा (ईश्वर) के विषय मे ऐसा ही विश्वास रखते हैं।

ईसाई—यह भी ऐसा ही मानते है।

इस्लाम—यह भी ऐसा ही मानता है और कहता है, 'ला इलाहा इल लिल्हा'। अर्थात् अल्लाह के सिवाय कोई दूसरा नहीं है।

२ पारसी—अहुरमजदा का विशेष रूप से रहने का स्थान आसमान है।

यहूदी—यह भी ऐसा ही मानते है।

ईसाई—यह भी ऐसा ही मानते है।

इस्लाम—यह भी ऐसा ही मानता है।

३. पारसी—जगत में दो शक्तियाँ काम करती हैं। एक पवित्र शक्ति और दूसरी अपवित्र शक्ति।

यहूदी—यह भी दो शक्तियाँ ही मानते है। एक यहवा दूसरा शैतान

ईसाई—यह भी ऐसा ही मानते हैं जैसा यहूदी मानते हैं।

इस्लाम—यह भी ऐसा ही मानता है जैसा यहूदी मानते हैं।

४ पारसी—अहुरमजदा किसी विशेष व्यक्ति को अपना पैगम्बर चुन कर उस पर अपनी वाणी या कलाम फरिश्ते के द्वारा भेजता है। ताकि वह पैगम्बर संसार में अहुरमजदा की आज्ञाओं या कलाम का प्रचार करके लोगों को सीधे सच्चे रास्ते पर लगाये।

यहूदी—यह भी ऐसा ही मानते हैं।

ईसाई—यह भी ऐसा ही मानते हैं।

इस्लाम—यह भी ऐसा ही मानता है।

५ पारसी—पारसी हजरत जरतुश्त को अहुरमजदा का पैगम्बर और अवस्ता को अहुरमजदा की पुस्तक मान कर ईमान लाते हैं।

यहूदी—यह हजरत जरतुश्त को तो पैगम्बर नहीं मानते और न ही अवस्ता को खुदा की किताब समझते हैं। यह हजरत मूसा को पैगम्बर, तौरेत को यहुवा की किताब मान कर ईमान लाते हैं। साथ ही बनीइसराईल जाति के दूसरे महान् व्यक्तियों को पैगम्बर, रसूल और नबी मानते हैं।

ईसाई—यह भी उन सभी पैगम्बरों को मानते हैं जिनको यहूदी मानते हैं। परन्तु ईसा को खुदा का इकलौता बेटा, इंजील को ईश्वरीय पुस्तक मान कर ईमान लाते हैं।

इस्लाम—यह भी उन सभी पैगम्बरों, नबियों और रसूलों को मानता है, जिनको ईसाई और यहूदी मानते हैं। परन्तु हजरत ईसा को खुदा का बेटा नहीं मानते। हजरत मोहम्मद को अन्तिम नबी और

क़ुरान को खुदा की अन्तिम पुस्तक मान कर ईमान लाता है।

६ पारसी—पारसियों का विश्वास है कि अहुरमज़्दा, हज़रत ज़रतुश्त और अवस्ता पुस्तक पर ईमान लाने से मनुष्य जन्नत में जाने का भागी बन जाता है और ईमान न लाने के कारण दोज़ख (नर्क) में जाकर कष्ट उठाता है।

यहूदी—यह पारसियों की विचार धारा को सामने रखते हुए ऐसा विश्वास रखते हैं कि जो यहुवा, हज़रत मूसा और तौरेत पुस्तक पर ईमान लायेगा, वह अवश्य जन्नत में जायेगा। ईमान न लाने की दशा मे दोज़ख में जाकर भाँति भाँति के कष्ट उठायेगा।

ईसाई—यह ऐसा ईमान रखते हैं कि खुदा, हज़रत ईसा (खुदा का बेटा) और इंजील पर ईमान ला कर ही छुटकारा होकर जन्नत प्राप्त हो सकती है। इसके विपरीत मानने से नर्क मे जाकर कष्ट उठाना पड़ता है।

इस्लाम—इसने ऐसा निश्चय किया कि खुदा उसके पैग़म्बरों, उसकी किताबों पर ईमान लाने, हज़रत मोहम्मद को अंतिम पैग़म्बर और क़ुरान को अंतिम ईश्वरीय पुस्तक मानने से जन्नत प्राप्त हो सकती है। इसके विपरीत मानने से दोज़ख की आग से खेलना पड़ेगा।

७ पारसी—पारसियों का सिद्धान्त है कि जन्नत में हर एक मनुष्य को एक सुन्दर तरुणी मिलेगी और दोज़ख में भद्दी तरुणी मिलेगी।

यहूदी—इन्होंने इसके विषय में कुछ नहीं कहा।

ईसाई—यह भी इस विषय में खामोश हैं।

इस्लाम—मुसलमानों ने हर एक जन्नती के लिये बहुत सी सदा जवान रहने वाली तरुणियों और सदा जवान रहने वाले सुन्दर युवकों के मिलने के विषय में लिखा है।

८ पारसी—हज़रत ज़रतुश्त की शफ़ाअत (सिफ़ारिश) से जन्नत मिल सकती है।

यहूदी—हज़रत मूसा की सिफ़ारिश से जन्नत मिल सकती है।

ईसाई—केवल हज़रत ईसा ही मोक्ष दाता हैं।

इस्लाम—ह० मोहम्मद सबसे उत्तम पैगम्बर हैं। उनकी सिफ़ारिश से ही जन्नत का आनन्द मिल सकता है।

९ पारसी—ह० ज़रतुश्त में बहुत से मौजज़े औरचमत्कार दिखाने की शक्ति थी।

यहूदी—ह० मूसा ने बहुत आश्चर्य और चमत्कार दिखाये थे।

ईसाई—ह० ईसा ने बहुत से आश्चर्यजनक कार्य और चमत्कार दिखलाये थे।

इस्लाम—मोहम्मद साहब ने उन सबसे बढ़ कर आश्चर्यजनक कार्य और चमत्कार दिखलाये थे।

१० पारसी—पारसियों का विश्वास है कि ह० जरतुश्त को मैराज हुआ था, अर्थात् अहरमज़दा ने उन्हें फरिश्तों द्वारा ऊपर आसमान पर मुलाकात के लिये बुला कर स्वर्ग और नर्क की सैर कराई थी। उनसे बहुत सी बातें भी की थीं। ह० जरतुश्त को संसार में प्रचार के लिये अवस्ता पुस्तक देकर उन्हें पूर्ण पैगम्बर बनाकर दुनिया में वापस किया था।

यहूदी—इन्हों ने यह ईमान जमाया कि ह० मूसा की यहुवा से कई बार मुलाकातें हुई थीं और यहुवा ने उन्हें अपने ज्ञान की किताब तौरेत दुनिया में प्रचार करने के लिये दी थी।

ईसाइ—ईसाइयों ने ह० ईसा को खुदा का इकलौता बेटा तो माना ही है, परन्तु ह० ईसा के मारे जाने के तीसरे दिन वह ऊपर आसमान पर चढ़ कर अपने बाप (खुदा) के पास चले गये थे।

इस्लाम—इस ने ह० मोहम्मद के भी ह० जरतुश्त की तरह मैराज होने पर यकीन किया। मैराज में ह० मोहम्मद की खुदा से मुलाकात हुई। जन्नत दौज़ख की सैर की। खुदा से बहुत सी बातें हुईं और फिर उसी रात घर वापस आ गये। इसे शबे मैराज या मैराज की रात्रि कहा जाता है।

११ पारसी—पारसी स्वर्ग और नर्क का स्तित्त्व आकाश पर मानते हैं।

यहूदी—ऐसा ही यह भी मानते हैं।

ईसाई—ऐसा ही यह भी मानते हैं।

इस्लाम—ऐसा ही यह भी मानते है।

१२ पारसी—सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में पारसियों ने दार्शनिक रूप में कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला।

यहूदी—इनहां ने भी सृष्टि की उत्पत्तिं केवल छः दिन में बतलाई।

ईसाई—इन्होंने सृष्टि की उत्त्पत्ति वैसे ही मानी जैसी यहूदियों ने मानी थी।

इस्लाम—इस ने भी सृष्टि की उत्त्पत्ति के बारे में ऐसा ही सिद्धान्त रक्खा, जैसा यहूदियों और ईसाईयां ने रक्खा था।

१३ पारसी—पारसियों ने बहुत से फरिश्ते कांयम करके उनके नाम और काम अलग अलग बतलाये।

यहूदी—इन्होंने भी फरिश्तों की सत्ता मान कर उनके नाम और काम अलग अलग बतलाये। यहूदियों ने फरिश्तों के नाम पारसियों से अलग रक्खे।

ईसाई—इन्हों ने फरिश्तों के बारे मे वही सिद्धान्त रक्खा जो यहूदियों का था और उनके वही नाम और काम रक्खे।

इस्लाम—इन्होंने भी फरिश्तो के बारे में ऐसा ही निश्चय किया, जैसा यहूदी और ईसाई यकीन रखते थे।

१४ पारसी—पारसियों का सरोश फरिश्ता पैगम्बर के पास अहरमज्दा की आज्ञाये लाता है।

यहूदी—जबराईल फरिश्ता यहुवा की आज्ञाये पैगम्बरों पर लाता है।

ईसाई—जबराईल फरिश्ता खुदा की आज्ञायें पैगम्बर पर लाता है।

इस्लाम—जबराईल फरिश्ता खुदा की आज्ञायें पैगम्बरों के पास लाता है।

१५ पारसी—प्रलय के पश्चात् मुर्दे, जिन्दा होंगे और उनसे हिसाब लिये जाने के लिये एक दिन नियुक्त है।

यहूदी—इन का भी यही सिद्धान्त है।

ईसाई—इन का भी यही सिद्धान्त है।

इस्लाम—इस का भी यही सिद्धान्त है।

१६ पारसी—पारसियों ने पूजा और उपासना करने से पहले स्नान करने या हाथ मुंह धोकर वजू करने और पानी न मिलने की दशा में मिट्टी या रेत से तैम्मुम करने का सिद्धान्त बनाया।

यहूदी—इन्हों ने भी ऐसा ही सिद्धान्त रक्खा।

ईसाई—इन्हों ने भी पवित्रता की तरफ खास ध्यान दिया।

इस्लाम—इस ने बिल्कुल वैसा ही सिद्धान्त रक्खा, जैसा पारसियों का था।

१७ पारसी—पारसियों ने इकट्ठे होकर पूजा और उपासना करना उत्तम बतलाया।

यहूदी—इन्होंने भी ऐसा ही निश्चय किया।

ईसाई—ईसाईयों ने भी ऐसा ही सिद्धान्त रक्खा।

इस्लाम—इस्लाम ने इकट्ठे होकर नमाज पढ़ने को सबसे उत्तम बतलाया।

१८ पारसी—पारसियों ने सदाचारी जीवन बनाने के लिये बहुत सी शिक्षायें दीं।

यहूदी—यहूदियों ने भी प्राय वही शिक्षायें सदाचारी जीवन के लिये दीं।

ईसाई—ईसाईयों ने भी वही शिक्षायें दीं।

इस्लाम—इस्लाम ने भी वही शिक्षायें दीं।

१९ पारसी—पारसियों की धार्मिक पुस्तक में काफी इतिहास है।

यहूदी—तौरेत में भी काफी इतिहास है।

ईसाई—इन्जील में तो इतिहास नहीं है परन्तु ह० ईसा का जीवनचरित्र लिखा है।

इस्लाम—कुरान में काफी इतिहास है।

२० पारसी—पारसियों ने सगे सम्बन्धियों में शादी विवाह करना उत्तम बतलाया।

यहूदी—यहूदियों ने भी ऐसा ही बतलाया।

ईसाई—ईसाईयों ने इस पर कोई विशेष जोर नहीं दिया।

इस्लाम—इस्लाम ने भी वही उत्तम बतलाया जो पारसी और यहूदी उत्तम बतलाते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि सबसे पहिले पारसियों ने पारसी मत के प्रवर्त्तक ह० जरतुश्त को ईश्वर का पैग़म्बर, अवस्ता को ईश्वरीय पुस्तक मानने और उसपर ईमान लाने का सिद्धांत बनाया था। उनके पश्चात यहूदी, ईसाई और इस्लाम मतों ने अपने अपने समय में अपने पैगम्बरों और पुस्तकों पर ईमान लाने के लिये जोर दिया और एक ने दूसरे की काट की। केवल इन्हीं बातों पर झगड़े उत्पन्न हुये, एक ने दूसरे पर बहुत अत्याचार किये। वही अंकुर इन सब में अभी तक चला आ रहा है।

धार्मिक पुस्तकें

पारसी धर्म की ईश्वरीय पुस्तक 'अवस्ता' कही जाती है। इसके विषय में पारसियों का ऐसा मत है कि जब हजरत जरतुश्त को मैराज हुआ था, अर्थात जब वह अहरमजदा से भेंट करने के लिए आकाश पर बुलाये गये थे तो उस समय अहरमजदा ने उन्हें यह पुस्तक संसार में प्रचार करने और कराने के लिये दी थी।

यह असल पुस्तक जिन्द भाषा में थी। जिन्द भाषा सातवीं शताब्दी तक ईरान देश में जनसाधारण की भाषा रह चुकी है। जिन्द

भाषा के दस शब्दों में सात या आठ शब्द संस्कृत के सम्मिलित थे। केवल अन्तर इतना था कि व्याकरण की दृष्टि से लय (लहजा) बदली हुई थी। जिन्द भाषा को संस्कृत की बेटी कहा जाता है।

ऐसा भी कहा जाता है कि आरम्भ में इस पुस्तक मे प्रत्येक विद्या का बड़ा अच्छा वर्णन था। यह पुस्तक २१ भागो में विभाजित थी और प्रत्येक भाग मे एक एक विद्या का पूर्ण रूप से उल्लेख था। यहूदियों, ईसाईयों और विशेष रूप से मुसलमानों ने इस पुस्तक को ढूंढ ढूंढ कर नष्ट कर दिया था। यही कारण है कि इस समय वह समस्त पुस्तक अप्राय है। उस के जो भी भाग मिलते हैं, इस समय भी उनमे बड़ी अच्छी और श्रेष्ठ बातें पाई जातीं हैं—

उस पुस्तक मे कुछ इन बातों के विषय में वर्णन पाया जाता है।

अहुरमज़दा की सत्ता और उसके गुणों का वर्णन, सात शक्तियों या फरिश्तो के नामों और कामों का वर्णन, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा और तारों की शक्तियों का हाल और उनकी पूजा करने की विधि का वर्णन, स्वर्ग और नर्क की विवेचना, ज़रतुश्त के पैगम्बर बनने का हाल और उनके चमत्कारों तथा मोजजों का वर्णन और इसमें पहले राजाओं, महाराजाओं और माननीय व्यक्तियो का इतिहास इत्यादि भी लिखा है।

जिन राजाओं महाराजों का हाल लिखा है उनमे से कुछ यह है-गुलशाह, स्यामक, होसंग, जमशैद, फरीदूं और कैखसरू इत्यादि।

गाथा—यह पुस्तक हज़रत जरतुश्त की लिखी हुई कही जाती है इसमें गीता का अधिक रङ्ग पाया जाता है।

इस के अतिरिक दसातीर आदि कुछ और भी पुस्तकें हैं।

हज़रत ज़रतुश्त

हज़रत जरतुश्त ईसा से लगभग २५०० वर्ष पूर्व ईरान देश में उत्पन्न हुये थे। वह समय जातियों में लडाई झगड़े और रक्तपात का था। हज़रत जरतुश्त के पिता का नाम पूरशप और माता का नाम दगदुइया अर्थात गधा था। वह क्योमर्स महाराज के वशंज थे।

लिखा है कि हज़रत जरतुश्त बचपन से ही होनहार थे। एक बार जब वह छोटे बच्चे थे तो उनको इनके वैरियों ने मार डालने का प्रयत्न किया। जब वह कुछ बड़े हुये तो उन को पकड़ कर आग में जला देने का प्रयत्न किया। एक बार उन्हें भागते हुये घोड़ों के पैरों के नीचे भी डाल दिया गया था। किन्तु दैवयोग से वह सदा ही बचते रहे। इसके अतिरिक्त उनको और भी कई बार मार देना चाहा, मगर वह हर बार किसी न किसी उपाय से बचते ही रहे।

जब हज़रत जरतुश्त सात वर्ष के हुये तो उन्हें क्रॉस नामी आचार्य के पास पढ़ने लिखने भेज दिया गया। उनके पास वह १५ वर्ष की आयु तक पढते रहे। गुरु से विदा होकर वह घर आये और माता-पिता ने उनका विवाह कर देना चाहा। किन्तु उन्होंने विवाह कराने से इन्कार कर दिया। हज़रत जरतुश्त के हृदय में बचपन से ही संसार छोड कर विरागी जीवन विताने की बात जमी हुई थी। अत उन्हीं दिनों जब उनके विवाह की चर्चा चल रही थी तो एक दिन अवसर पाकर सोलह वर्ष की आयु मे घर से निकल पडे।

घर से निकल कर हज़रत जरतुश्त ३० वर्ष की आयु तक इधर उधर घूम फिर कर विद्वानों और आचार्यों से मिल जुल कर कुछ न कुछ पढ़ते लिखते रहे। किन्तु इस विषय मे कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती कि वह कहा कहां गये और किन किन से मिलकर विद्या पढ़ी।

जब ह० जरतुश्त तीस वर्ष के हो गये तो वह ईरान देश मे

अपने घर वापस आ गये। कुछ दिनों वह एक पर्वत पर योगाभ्यास और तपस्या करते रहे तथा ईश्वर पूजा मे मग्न रहते रहे।

कहते हैं कि इसी बीच में एक रात्रि को एक फरिश्ते ने उन की अहरमज्दा से भेंट कराई। अहरमज्दा ने उन्हे यह हिदायत दी कि दुनिया को जगाने और सीधे सच्चे रास्ते पर लगाने के लिये तैयार होजा। इस वर्ष, महीने और रात्रि को पारसी लोग अति पवित्र मानते हैं।

अहरमजदा से हिदायत पाकर ह० जरतुश्त पहाड़ से उतर कर आबादी में आये और अपने विचारों का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। ४० वर्ष की आयु तक वह अपने प्रचार का कार्य करते हुये सूर्य चन्द्रमा इत्यादि पदार्थों की पूजा का खंडन करते रहे। लिखा है कि इसी बीच में उनकी अहरमजदा से कई बार भेंट हुई। अहरमजदा ने बहुत कुछ हिदायतें दीं। ह० जरतुश्त अपने प्रचार का कार्य बराबर करते रहे परन्तु उन्हें कोई सफलता प्राप्त न हुई।

अपनी सफलता न देखकर वह एक दिन नदी के किनारे कुछ सोच विचार मे खड़े थे। उसी समय उनके पास एक फरिश्ते ने आकर कहा कि अहरमज़दा ने तुमको अपना पैगम्बर चुन लिया है और आपके अन्दर मौजजे और चमत्कार दिखाने की शक्ति उत्तपन्न करदी है। अब घबराने और दुखी होने की बात नहीं है। धम का प्रचार करने के लिये दृढ़ता के साथ खड़े हो जाओ। फरिश्ते की हिदायत को पाकर हजरत जरतुश्त का साहस बढ़ा और उन्हे अपनी सफलता का पूरा विश्वास हो गया। उन्होंने फिर अपने प्रचार का काम जोर से आरम्भ कर दिया।

कहा जाता है कि इस प्रचार से भी उन्हे कोई सफलता प्राप्त न हुई और लोगों ने उनकी बातों पर कोई विशेष ध्यान न दिया। कुछ लोग तो उनके शत्रु बनकर उनकी जान के पीछे पड गये। यह देखकर ह० जरतुश्त दुखी रहने लगे। जब वह पूरे ४० वर्ष के हुये तब अहरमजदा ने सरोश फरिश्ते के द्वारा उन्हें आकाश पर भेंट के लिये बुलाया। हजरत जरतुश्त की अहरमजदा से भेंट हुई तथा स्वर्ग और नर्क

की सैर करके स्वर्ग के आनन्द और नर्क के कष्ट को अनुभव किया। अहरमजदा ने उन्हें अपने ज्ञान की 'अवस्ता' पुस्तक देकर कहा कि तुम इस पुस्तक के अनुसार ससार मे प्रचार करो और आज से तुम पूर्ण पैगम्बर बना दिये गये हो।

संसार में वापस आकर ह० जरतुश्त ने अपनी अहरमजदा से इस भेंट की लोगों में चर्चा की। कुछ लोगों ने उनकी हंसी उड़ाई। अत मे सबसे पहले उनकी सब बातों पर उनके चचा के बेटे मैदिया मानु ने विश्वास किया और वह उनका शिष्य बन गया। मैराज के होने के दो वर्ष पश्चात् तक फिर असफलता और मायूसी ही चलती रही। एक दिन उनके हृदय में यह बात आई कि यदि महाराजा गुश्ताश्प को किसी प्रकार अपना अनुयाई बना लिया जाये तो फिर सफलता होने मे कोई संदेह नहीं रहेगा।

एक दिन हजरत जरतुश्त पवित्र अग्नि को हाथ में लेकर और बगल में 'अवस्ता' को दबा कर महाराजा के दरबार में पहुंचे और उन्हे ललकार कर कहा—मैं अहरमजदा का पैगम्बर हूँ। अहरमजदा ने मुझे आकाश पर बुला कर अपने ज्ञान की यह किताब संसार में प्रचार के लिये दी है। जो मुझे अहरमजदा का पैगाम्बर मान कर और इस पुस्तक को उसकी किताब जानकर इसके अनुसार जीवन बितायेगा, वह अवश्य स्वर्ग में जायेगा। मुझे अहरमजदा ने यह भी हिदायत की है कि सबसे पहिले गुश्ताश्प महाराज को सीधे रास्ते पर चलने के लिये तैयार किया जाये, ताकि फिर राज्य भर में इस धर्म का प्रचार आसानी से हो सके। ऐसा भी लिखा है कि ह० जरतुश्त ने राज-दरबार में कुछ मौजजे और चमत्कार भी दिखलाये परन्तु उनके इन मौजजों और चमत्कारों पर किसी ने कोई विशेष ध्यान न देकर उन सब बातों को नजरबन्दी और हाथ की सफाई बतलाया। इसके पश्चात् ह० जरतुश्त ने धार्मिक सिद्धांतों पर वाद विवाद करने के लिये चेलेंज दिया। महाराज ने उस चुनौती को स्वीकार करलिया। हजरत जरतुश्त और दरबारी विद्वानो में धार्मिक सिद्धान्तों पेर वाद विवाद आरम्भ हो कर बराबर तीन दिन तक चलता रहा। ह० जरतुश्त विजयी हुये और उनका महाराजा के हृदय में बड़ा आदर सम्मान हो गया। किन्तु इस

भर भी महाराजा ने उनकी कुछ और परीक्षायें लेनी चाहीं। उनसे कुछ रहस्यात्मक बातें पूछी गईं। वह भी सब उन्होंने सही बता दीं। महाराजा ने फिर हस्पताल से एक लँगडा घोडा मगाया, जिसकी एक टाँग गलकर बिल्कुल बेकार हो चुकी थी। महाराजा ने उनसे उस टाँग को अच्छा कर देने के लिये कहा। कहते हैं कि हजरत जरतुश्त ने टाँग को छूते ही अच्छा कर दिखाया। इसके पश्चात् महाराजा ने उनकी और परीक्षा लेनी चाही। उनकी छाती पर राँग पिघलवा कर डाला गया किन्तु इससे भी उनका कोई बाल बाँका न हुआ। यह सब बातें देख कर महाराजा उनके चरणों में गिर पड़ा। पवित्र अग्नि को अहुरमज़्दा का प्रकाश, 'अवस्ता' को उसके ज्ञान की पुस्तक और ह० जरतुश्त को उसका पैगम्बर मान कर ईमान ले आया।

महाराज गुश्ताश्प ने अपने सारे ईरान देश मे पारसी मत का प्रचार कराना आरम्भ कर दिया। देश भर मे बहुत से आतिशकदे (पारसियों के मंदिर) बनवाये गये। उनमे हर समय आग प्रचंड रहने लगी। थोड़े ही समय मे सारा ईरान पारसी बन गया।

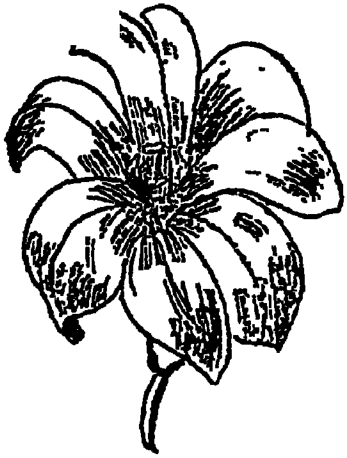
महाराजा गुश्ताश्प ने अपने पुत्र असफन्दयार और मंत्री जायर को सैना देकर पारसी मत के प्रसार के लिये आस-पास के देशों मे भेजा। उन्होंने तलवार हाथ मे लेकर पारसी मत को फैलाने में कोई कमी शेष नहीं रक्खी। जिस किसी ने पारसी मत ग्रहण करने से इन्कार किया, उसी का सिर तुरन्त उड़ा दिया गया।

असफन्दयार और जायर ने पारसी मत ईरान, तूरान, हिन्दुस्तान रोम, श्याम, चीन और जापान आदि देशों मे फैलाया। सब जगह आतिशकदे बनाये गये। इस मत के फैलाव मे खूब अधिक लड़ाई झगड़े और रक्तपात हुए और लाखों मनुष्यों को अपने जीवन से हाथ धोने पड़े।

ह० जरतुश्त ने लग-भग २० वर्ष तक अपने मत का प्रचार किया। साठ या बासठ वर्ष की अवस्था मे उनका देहान्त हो गया। किन्तु सही तौर पर यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी मृत्यु कहां और

कैसे हुई। कुछ ऐसा भी कहा जाता है कि उनको किसी ने मार दिया था। उनकी समाधि का भी कुछ पता नहीं चलता।

ह० जरतुश्त ने अपने तीन विवाह किये थे उनमें से दो स्त्रियों से संताने भीं उत्पन्न हुई थी। ह० जरतुश्त के मोजजे और चमत्कारों के बारे में बहुत कुछ कहा जाता है और यह भी विश्वास कराया जाता है कि उन्होंने बहुत से अंधे, लंगडे, लूलों और बीमारों को अच्छा कर दिया था।



वाम मार्ग

वाममार्ग

संसार में मनुष्य जीवन के लिए धर्म-अधर्म के दो रास्ते सदा से चले आये हैं। इनमें से धर्म का रास्ता बड़ा लम्बा, पेचीदा। कॉटेदार तंग और भयानक होता है। इस पर चलते हुए भय लगता है। यों तो इस पर चलने के लिए बहुत से मनुष्य तैयार हो जाते हैं और कुछ थोड़ा बहुत रास्ता तय भी करते हैं, परन्तु कोई बिरला ही ऐसा होता है जो सब प्रकार के कष्टों को उठाते हुए इस मार्ग को तय करता है। जो इस मार्ग को तय कर लेता है, वही आनन्द तथा परमानन्द को प्राप्त करने का भागी होता है। दूसरा रास्ता अधर्म का है वह बड़ा सीधा, साफ और सुथरा होता है। उस पर चलने के लिए हरएक मनुष्य का दिल ललचा उठता है। उस मार्ग की सुन्दरता, सफाई और सजावट को देख कर बिना सोचे समझे प्रत्येक मनुष्य उसी मार्ग को अपना कर उस पर चलने लगता है। इस रास्ते पर चल कर मनुष्य कुछ ऐसा मदहोश हो जाता है कि उसे इस बात का कोई ज्ञान नहीं रहता कि यह रास्ता कहाॅ जा रहा है, उसे कहाँ जाना है और वह कहाॅ से कहाँ चला आया। इस रास्ते पर चलकर मनुष्य कुछ ऐसे चक्कर में फंस जाता है कि फिर उसका वहाॅ से आयु भर निकलना कठिन और दुर्लभ हो जाता है। ऐसे भूले भटके और भ्रम में फंसे हुए मनुष्यों को देखकर ईश्वर को दया आती है। उन भूले भटके मनुष्यों को उस मार्ग से निकाल कर सीधे सच्चे रास्ते पर लगाने के लिए ईश्वर किसी महापुरुष को उत्पन्न किया करता है। वह महापुरुष आयुभर ऐसे भ्रम में फंसे हुए और भूले भटके मनुष्यों को उस मार्ग से हटाने और सीधे सच्चे रास्ते पर लगाने के लिए अपना कर्त्तव्य जानकर सदा प्रयत्न किया करता है। बहुत से मनुष्य ऐसे मूढ़ भी होते हैं जो समझाने पर भी नहीं समझते और उसी चक्कर में फंसे रह कर अपना मनुष्य जीवन यों ही वृथा गंवाते रहते हैं। ऐसे मनुष्य ही सदा कष्ट उठाया करते हैं।

महाभारत युद्ध से कुछ शताब्दी पश्चात् इस अधर्म के रास्ते पर चलने वालों की संख्या इस देश में बहुत अधिक हो गई थी। उस काल में धर्म पर चलने वाला कोई बिरला ही दिखाई पड़ता था। अधर्म

के फैलने के कुछ कारण इस प्रकार प्रतीत होते हैं—महाभारत युद्ध से कुछ शताब्दी पश्चात् भारत का चक्रवर्ती राज्य समाप्त होकर छोटी बडी रियासतों में विभाजित होता चला गया। राजाओं में आपसी वैर भाव और लड़ाई झगड़े रहने लगे उस काल में कोई ऐसा शक्तिशाली महाराजा उत्पन्न न हुआ जो पहले की भाँति अपना चक्रवर्ती राज्य बनाकर शान्ति स्थापित कर देता। दिन प्रतिदिन लड़ाई झगड़ों के कारण धर्म और कर्म के सब कार्य बन्द होते चले गये। देश में बहुधा पढ़ने लिखने का रिवाज समाप्त होता चला गया। पण्डितों और आचार्यों के हृदयों में लालच और स्वार्थ घर करता चला गया और साथ ही उनका समस्त लोगों पर ऐसा अनुचित प्रभाव बढ़ता गया कि उनकी आज्ञा के बिना कोई कान तक हिलाने का भी साहस न कर सकता था।

जिस समय इस देश में पण्डितों और आचार्यों का बोल बाला हो रहा था, उस समय इस देश में धन दौलत की कोई कमी न थी। राजा लोग अपने धन दौलत और राज्य पाठ के नशे में चूर हो रहे थे वे नाच रंग और भोग विलास में कुछ ऐसी बुरी तरह से डूबे हुए थे कि उन्हें धर्म कर्म और भक्ति का कोई ज्ञान न था। उस काल में इस देश में कोई ऐसा परोपकारी और ज्ञानी महापुरुष उत्पन्न न हुआ जो धर्म की बिगड़ती हुई दशा को सुधार कर लोगों को धर्ममार्ग पर लगा देता। परिणाम यह हुआ कि देश की स्थिति दिन प्रतिदिन बुरी से बुरी होती चली गई।

जिन राजाओं के चरित्र अधिक बिगड़ते चले गये उन्होंने नाच रंग के साथ छिप कर शराब पीना आरम्भ कर दिया। शराब के साथ उनकी मांस और व्यभिचार में रुचि बढ़ती चली गई। कुछ समय तक तो वे सब बातें छिप कर होती रहीं, फिर वही सब बातें खुले तौर पर की जाने लगीं। राजाओं की देखा देखी,'यथा राजा तथा प्रजा' कहावत के अनुसार वही सब बातें प्रजा में भी आती चली गईं।

लालची और स्वार्थी पन्डितों ने जब राजा और प्रजा की ऐसी रुचि देखी तो उन्हों ने अपने स्वार्थ के हेतु पहले तो उन सब बातों की

पुष्टि और प्रशंसा में कवितायें बनानी आरम्भ कीं, फिर उन्हीं सब बातों को ग्रन्थों का रूप दे दिया गया। इसी प्रकार होते होते थोडे ही समय मे सब बुरी बातों के प्रमाण उनके रचे हुये ग्रन्थों मे मिलने लगे। जब ऐसा हो गया तो लोग निडर और निर्लज होकर सब बुरी बाते उन ग्रन्थों के आधार पर धर्म और कर्म का अंग समझ कर करते चले गये। चारों ओर शराब, मांस और व्यभिचार इत्यादि के चर्चे चलने लगे।

जो लोग वास्तविक धर्म कर्म को छोड़ कर उन बातों की लपेट मे आ गये थे वे वाम-मार्गी कहलाने लगे क्योंकि वाम मार्ग के अर्थ उल्टे रास्ते के हैं उस काल मे कुछ लोग अवश्य ऐसे भी थे जो इन सब बुरी बातो को घृणा की दृष्टि से देखते हुये उनका खण्डन करते थे। परन्तु उनका कोई विशेप प्रभाव न था और न ही उनकी कोई विशेप संख्या थी।

इस देश में वाम मार्ग का खूब जो रबढा। यह जोर कई शताब्दियो तक रहा। जो ग्रन्थ इस मत की प्रशंसा और पुष्टि मे लिखे गये वे तन्त्र ग्रन्थ कहलाते हैं। देश भर मे तन्त्र ग्रन्थों का प्रचार फैलता चला गया। हर बात का प्रमाण उन ग्रन्थों मे मिलने लगा। और वही सब बुरी बाते ससार भर में फैलती चली गई, क्योंकि यह नियम है कि भलाई की अपेक्षा बुराई शीघ्र फैलती है।

भारतवर्प इन खराब बातो को अपना कर अपनी बुद्धि, बल, धर्म कर्म और राज्य सभी कुछ नष्ट कर बैठा। लोग सैन्कड़ों क्या हजारो प्रकार की मन घडन्त देवी देवताओं की मूर्तियों की पूजा उपासना श्रद्धा के साथ करने लगे और बहुत सी मूर्तियों के सामने पशुओं और मनुष्यो की बलियां भी दी जाने लगीं।

वाम मार्ग मे कुछ अच्छे विद्वान आचार्य भी हुये। उन आचार्यों में महीधर का नाम अति प्रसिद्ध है। महीधर ने वेदों का भाष्य किया और उनपर अपने वाम मार्गी मत का दिल खोल कर खोल चढ़ाया।

वाम मार्ग के बुरे और खराब रीति रिवाजों को हटाने के लिये वैष्णव, शैव, जैन और बौद्ध मतो ने अपने अपने समय में काफी परिश्रम किया, जिस के विपय मे हमने आगे चलकर कुछ अधिक प्रकाश

डाला है। इन मतों के लगातार परिश्रम से वाम मार्ग इस देश से समाप्त तो अवश्य हो गया, परन्तु अब भी इसके किसी न किसी रूप में संसार भर में अंकुर अवश्य मिलते हैं।

असली वाम मार्गी तो इस समय भारतवर्ष में बहुत ही कम दिखाई पड़ते हैं। जो कुछ वाम मार्गी इस समय हैं भी वे बंगाल प्रान्त और पहाड़ी क्षेत्रों में कहे जाते हैं। ये लोग अपने सब रीति-रिवाज छिप कर किया करते हैं। वहां वे किसी दूसरे को नहीं आने देते। भारतवर्ष के दूसरे प्रान्तों में भी इनके मन्दिर सुनने में आते हैं।

कहने को तो वाम मार्गी समाप्त हो गये परन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो संसार में उनकी बहुत सी बातों को अब भी सबसे ज्यादा लोग करते हुए दिखाई पड़ते हैं। जो देश आज बहुत अधिक शिक्षित होने का गर्व करते हैं उन्हीं देशों में वाम मार्गियों जैसे रीति-रिवाज अधिक नजर आते हैं। देखिये 'शराब पीना, मांस खाना और व्यभिचार इत्यादि बातें वहां खुले तौर पर होती नजर आती हैं। उन देशों में इन सब बातों को सभ्यता का एक आवश्यक अंग मान लिया गया है। इस प्रकार से हम वाम-मार्गियों की संख्या सबसे अधिक कह सकते हैं। अन्तर केवल इतना हो सकता है कि वाम-मार्गी उन बातों को धर्म का अंग समझ कर करने लगे थे और सभ्य लोग उनको सोसायटी या मनोरञ्जन के विचार से हर रोज खुले तौर पर करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

वाम-मार्गीय सिद्धान्त

वाम-मार्गीय सिद्धान्तों का नाम भैरवी चक्र है।

भैरवी चक्र—भैरवी चक्र में "म" अक्षर से आरम्भ होने वाली यह पांच बातें सम्मिलित हैं (१) मद्य (शराब) (२) मांस (३) मैथुन (स्त्री-पुरुष सम्बन्धी भोग) (४) मीन (मछली) (५) मुद्रा (रुपैया-पैसा)

लिखा है कि युग युग में यह "म" से आरम्भ होने वाली पांच वस्तुये मोक्ष देने वाली होती हैं (कालीतन्त्र)

भैरवी चक्र की व्याख्या—भैरवी चक्र मे प्रवेश करने पर सारे वर्ण द्विज हो जाते हैं और जब भैरवी चक्र हट जाता है तो सारे वर्ण अपनी अपनी जगह हो जाते है। इसका अर्थ यह है कि भैरवी चक्र में अपवित्र अथवा नीच वर्ण की स्त्री और पुरुष आकर द्विज वर्ण, अर्थात ब्राह्मण इत्यादि के संसर्ग के योग्य बन जाते है। भैरवी चक्र का वर्णन इस प्रकार मिलता है कि वाम-मार्गी स्त्री और पुरुष अपने किसी मन्दिर या मकान मे एकत्रित होते है। उस समय पुरुष शिव और स्त्री पार्वती (शिव की स्त्री) के बराबर समझी जाती है। उस मन्दिर या मकान के फर्श अथवा धरती या लड़की के तख्ते पर एक त्रिकोण या गोल दायरे जैसी शकल बना कर उस पर मद का घड़ा रख दिया जाता है। प्रथम वाम-मार्गी अपने शास्त्रों के मन्त्रो के साथ उसकी पूजा करते है। वे मन्त्र साधारणतया इन अर्थों को स्पष्ट करते हैं, ए मद, तू ब्रह्मा इत्यादि देवताओं के श्राप से पाक और पवित्र होजा।" घड़े के पास ही एक योनि की शक्ल वाले बर्त्तन मे मांस-कबाब, चाट पूरी कचौडी तथा चटपटी और तेज जायकेदार खाने की सामग्री रख दी जाती है। प्रथम इस घड़े से एक कटोरा मद का भर कर घड़े के निकट रख दिया जाता है। इस सब प्रबन्ध के पूर्ण हो जाने पर उन आदमियों मे से कोई एक पुरुष किसी एक स्त्री को चुन कर उसकी योनि की मन्त्रों के साथ खड़ा होकर पूजा करता है। इसके बाद वह स्त्री भी उस मर्द के लिंग की उसी प्रकार पूजा करती है। वह पुरुष शिव और वह स्त्री उस कार्यवाही में पार्वती के नाम से पुकारे जाते हैं। उन दोनों के हाथों में उनको सजा कर दो तलवारें दे दी जाती है। पहले वह पुरुष अर्थात् महादेव शराब के कटोरे को पीता है फिर वह स्त्री अर्थात् पार्वती उसी कटोरे मे शराब लेकर पीता है। इसके पश्चात् तमाम पुरुष व स्त्रियां बारी बारी से उसी कटोरे से उसी तरह से शराब ले ले कर पीती रहती हैं। एक बार इस नियम से सब शराब पीते हैं। इसके पश्चात् जो जितनी शराब पीना चाहे पीता है। शराब यहा तक पी जाती है कि सब स्त्री पुरुष मदहोश होकर नशे मे झूमने लगते है। भांति भांति की गाली-गलौज और बकवास करना आरम्भ कर देते हैं। फिर हाथा पाई की नौबत आ जाती है। जिनको व्यभिचार की सूझ जाती है वह व्यभिचार करने लगते हैं। व्यभिचार मे किसी भी पुरुष और स्त्री के नाते तथा सम्बन्ध का विचार नहीं रहता। कोई कोई अधिक

मद्य पीने से उल्टी कर देता है। कोई उस उल्टी को पवित्र मान कर चाट जाता है। जो ऐसा करता है वह सिद्ध अघोरी के नाम से पुकारा जाता है। जो कई बार मैथुन करता है वह परम सिद्ध अघोरी कहलाता है। भैरवी चक्र की यह कार्यवाही संक्षेप में लिखी गई है। अधिक लिखते हुए लज्जा अनुभव होती है। पाठक गण इसी से भली भांति अनुमान कर सकते हैं।

मुक्ति—वाम-मार्गियों की मुक्ति का साधन यह है कि शराब पीये, फिर पीये और जब तक पीकर धरती पर न गिर जाये शराब पीता रहे। फिर उठ कर पीये और बार बार पीये। जो ऐसा करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता और वह स्वर्ग-धाम को पहुंच जाता है। (कुलार्णवतन्त्र)

वाम-मार्गी देवि-देवता—वाम-मार्गियों ने अपनी पूजा और उपासना के लिये अपने कुछ देवि-देवता अलग अलग नाम और शक्तियां कायम करके बना लिये थे। उन देवि-देवताओं के नाम और काम ऐसे कायम किये थे जिनका उल्लेख या कोई वर्णन किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं पाया जाता। उन देवि-देवताओं में से कुछ के नाम, काम और शक्तिया यह हैं—

पशुपति, काली, महाकाली, चंडी, कामुक्षा, ज्वाला, चण्डिका, भूतनाथ, भैरवनाथ, डंकनी, शंकनी, बुगला मुखी और चन्द्रमुखी इत्यादि हैं।

उन देवी देवताओं में अलग अलग शक्तियाँ कायम की गई थीं। उनमें से किसी में वबा (बीमारी) फैलाने की शक्ति, किसी में चेचक निकालने की शक्ति, किसी में एक और किसी में अनेक बीमारी फैलाने की शक्तियाँ, किसी में हानि पहुचाने की शक्ति, किसी में लाभ पहुँचाने की शक्ति, किसी में बच्चा पैदा करने की शक्ति और किसी में बच्चा मारने की शक्ति मान ली गई थीं।

उन देवी देवताओं को प्रसन्न और सिद्ध करने की विधि भी

अलग अलग थी। उन देवताओं में कोई बड़े जानवरों के वध से, कोई भैंसा कटडा या कटडी के वध से, कोई मुर्ग़ा या मुर्ग़ी अथवा बकरा या बकरी के वध से और कोई मनुष्य की बलि से प्रसन्न और सिद्ध होता था।

उनकी पूजा और उपासना की सामग्री गोला, बादाम, छुवारे और दूसरे मेवे होते थे। उन देवी देवताओं को प्रसन्न और सिद्ध करने की कुछ और भी विधि थीं। किसी शत्रु को हानि पहुंचाने, जान से मारने, आग लगाने, सन्तान मारने या सन्तान पैदा करने, बीमारी हटाने या बीमारी उत्पन्न करने या दूसरी प्रकार के लाभ अथवा हानि पहुंचाने के लिये जादू, मंत्र तन्त्र, भूत प्रेत, जिन्न, चुडैल और मूठ इत्यादि से काम लिया जाता था।

जादू मंत्र तन्त्र इत्यादि को सबसे पहले वाममार्गियों ने ही प्रचलित किया था। मूर्ति-पूजा का रिवाज भी सबसे पहले इन्होंने ही कायम किया था। इसके श्पचात् उनके यह सब विचार संसार में किसी न किसी रूप में फैले थे।

वाममार्गी तीर्थ—रजस्वला स्त्री से भोग करना तीर्थ-स्नान के बराबर समझा जाता था। चन्डालनी और नीच स्त्री से भोग करना काशी और प्रयाग की यात्रा और स्नान के बराबर समझा जाता था। वेश्या से भोग करना अयोध्या और मथुरा इत्यादि तीर्थों की यात्राओं और साधु सन्तों की सत्संगति के बराबर माना जाता था।

वाममार्गी यज्ञ—जब किसी क्षेत्र में कोई आफत अचानक आ जाती थी या कोई वबा फैल जाती थी तो उस आफत तथा बीमारी को हटाने के लिये उसी शक्ति वाले देवी या देवता को प्रसन्न और सिद्ध किया जाता था। कभी कभी कोई वाम-मार्गी भक्त किसी देवी या देवता को सिद्ध करके जादू मंत्र तन्त्र, सिद्ध और करामात प्राप्त करने के लिये यज्ञ किया करता था। उस यज्ञ में सामग्री की जगह पशुओं का मांस घी की जगह शराब, चन्दन के बजाय खून के टीके और पान फूल मिठाई इत्यादि वस्तुओं का प्रयोग किया जाता था।

उनके समय में देवी-देवताओं की मूर्तियों के सामने कभी कभी किसी किसी मनुष्य को सजा कर बलि के लिये ले जाया जाता था। कुछ मंत्र इत्यादि पढ कर तलवार के एक ही वार से उसका सिर काट कर उस मूर्ति पर चढा दिया जाता था। उसको वह लोग बलि के नाम से पुकारा करते थे। मनुष्यों के सिर काट कर देवी देवताओं पर चढ़ाना तो इस समय बन्द है परन्तु बंगाल इत्यादि प्रान्तो में उन देवी देवताओं के सामने अभी तक पशु वध प्रचलित है।

वाममार्गी शास्त्र

वाममार्गियों में संस्कृत के बहुत से विद्वान हुये। उन विद्वानो ने अपने मत के समर्थन में बहुत से ग्रन्थों की रचना की थी। वाममार्गी ग्रन्थ तन्त्र-ग्रन्थ कहलाते हैं। उन ग्रन्थों मे वाममार्गियों के सिद्धान्त, मुक्ति प्राप्ति के साधन, यज्ञ इत्यादि करने की विधि और उसके परिणाम इत्यादि बातें लिखी हैं। उन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ और ग्रन्थ हैं जिनकोशामभूई या विद्या ग्रन्थ कहा जाता है। इन ग्रन्थों मे भैरवीचक्र की पूरी कार्यवाही का वर्णन और उसके महातम लिखे है। देवी देवताओं के नाम, काम और उनकी शक्तियों का पूरा वर्णन पाया जाता है तथा देवी देवताओं को प्रसन्न करने की विधि जादू मत्र, तन्त्र और मूठ इत्यादि से लाभ या हानि पहुंचाने के तरीके भी लिखे हैं। सिद्धि और करामात से न होने वाली बातो को कर दिखाने के विचार भी प्रकट किये गये हैं।

उन ग्रन्थो मे कुछ वस्तुओ के नाम इस प्रकार से रक्खे गये थे कि उनको कोई अन्य पुरुष आसानी से न जान सके। उदाहरण के रूप में मद्य का नाम तीर्थ, मांस का नाम शुद्धि, पुष्प और महावीर, मछली का नाम जलतुम्बिका और वृत्या तथा मुद्रा का नाम चतुर्थी, व्यभिचार का नाम पंचमी और वेश्या का नाम देवाङ्गना तथा कुल बधु रक्खा गया था। इन वस्तुओं को प्रयोग में लाने वाला कौल, शाम्भुगण और वीर कहा गया था।

जो इन वस्तुओं से घृणा करता था उसको कंटक विमुख और पशु

इत्यादि नामों से पुकारा गया था।

यह शास्त्र आज कल नहीं मिलते, किन्तु काफी खोज के वाद इनका कोई भाग मिल जाता है। सुना जाता है कि रियासत नैपाल और टिहरी में कुछ लोगों के पास यह शास्त्र हैं। वाममार्गी शास्त्रों के नाम यह है—काली जो तन्त्र, महा क्यानतन्त्र, कुलार्णवतन्त्र, मातंगी विद्या और गुप्त प्रकाश जो संत प्रभुदयाल का लिखा हुआ है।

वाममार्गियों के सम्प्रदाय—यों तो वाममार्गियों में कई एक फिरके हैं किन्तु उनमे से यह दो बड़े माने जाते हैं—एक चोली मार्ग दूसरा बीज मार्ग। इन फिरकों मे एक दूसरे से भैरवी चक्र और यज्ञों के संस्कारों और उनकी विधि में कुछ अन्तर है। शेप समस्त वाते थोड़े वहुत अन्तर के साथ उन सब में एक जैसी है।

चारवाक वाद,

नास्तिक वाद, परमाणु वाद,

माया वाद

और

विकास वाद

चारवाकवाद, नास्तिकवाद, परमाणुवाद, मायावाद और विकास वाद

चारवाक वाद, नास्तिकवाद, परमाणुवाद और मायावाद का जन्म यूनान, योरुप या किसी और देश मे नहीं हुआ था, बल्कि इनका जन्मदाता भी भारतवर्ष ही है। इस देश में चारवाक, बौद्ध और जैन मतों ने उस समय नास्तिकवाद की नीव को रक्खा था, जब पश्चिमी सभ्यता का जन्म भी नहीं हुआ था।

भारतवर्ष मे मायावाद के कुछ विचार प्राचीनकाल मे भी पाये जाते थे। श्री रामचन्द्र जी के समय में ज्वाला ऋषि (Javala) इन्हीं विचारों का मानने वाला था। हरिवंश का राजा वीणा (Vina) भी कुछ ऐसे ही विचार रखता था। उसका कहना था कि संसार में राजा से बड़ी और कोई शक्ति नहीं है। चूंकि प्राचीन-काल से ही भारतवर्ष धर्म प्रधान देश रहा है इसलिये मायावाद इत्यादि को इस देश मे कभी कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। इस देश में सब लोग प्राचीन काल से ही ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनन्त और अनादि मानते रहे और कहते रहे कि तमाम ब्रह्माण्ड और लोक-लोकांतरों का रचने वाला ईश्वर है, जो अजर, अमर, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और सर्व ज्ञानी है। जीवात्मा अमर और नित्य है, जो शरीर से भिन्न एक स्वतन्त्र हस्ती है। समस्त योनियां अचल और स्थाई हैं। जीवात्मा अपने अच्छे या बुरे कर्मानुसार आवागमन के द्वारा भिन्न भिन्न योनियों में आता जाता है। उत्तम कर्मों से मुक्ति या परमानन्द प्राप्त होता है। प्रकृति जड़ पदार्थ है। उसमे स्वयं कार्य करने की कोई शक्ति नहीं है। ईश्वर की प्रेरणा से उसमे कार्य करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

वेद आदि सभी सत-शास्त्रों में ईश्वर जीव और प्रकृति की भिन्न भिन्न स्वतन्त्र सत्ता का पूरा वर्णन पाया जाता है। प्राचीन काल मे इस देश में कुछ उच्चकोटि के दार्शनिक (Philosophers) उत्पन्न

हुए। उन्होंने कुछ दर्शनों की रचना की। उनमें से यह छः दर्शन अति प्रसिद्ध हैं—(१) न्याय दर्शन (२) वैशेषिक दर्शन (३) सांख्य दर्शन (४) योग दर्शन (५) पूर्व मीमांसा (६) वेदान्त दर्शन या उत्तर मीमांसा।

न्याय दर्शन—इसमे गोतम ऋषि ने ईश्वर जीव और प्रकृति की अमर, नित्य और स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध की है और कहा है कि जीव को मिथ्या ज्ञान से दुःख होता है। मिथ्या ज्ञान का नाश तत्त्वज्ञान (Phylosophy) से होता है।

वैशेषिक दर्शन—इसमें कणाद मुनि ने ईश्वर, जीव और प्रकृति की अमर नित्य और स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध करते हुये लिखा है कि तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बन सकता है।

सांख्य दर्शन—इसमें कपिल मुनि ने विशेष रीति से प्रकृति और उसके विकारों ही का वर्णन किया है। ईश्वर और जीव को उन्होंने एक ही दर्जा देकर पुरुष के ही नाम से पुकारा है—कपिल मुनि ने २५ तत्त्वों के ज्ञान प्राप्त करने के विषय में लिखा है। एक प्रकृति है और २४ उसके विकार हैं। इस पुरुष और प्रकृति को वह अमर और नित्य मानते हैं। सांख्य दर्शन की व्याख्या करने में तीन विचार प्रचलित हुये। एक तो वह जो पुरुष और प्रकृति को अमर और नित्य मानते हैं। दूसरे वह जो केवल पुरुष की सत्ता को ही नित्य मान कर समस्त जगत उसी से उत्पन्न मानते हैं। गोड पादाचार्य, शंकराचार्य और कुछ योरुपियन दार्शनिक उन्हीं विचारों के मानने वाले हुये हैं। तीसरे वह हैं जिन्होंने पुरुष की सत्ता को न मानकर केवल प्रकृति से ही जगत की उत्पत्ति सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

योग दर्शन—इस शास्त्र में पतञ्जली ऋषि ने ईश्वर, जीव और प्रकृति की अमर, नित्य और स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध की है। उन्होंने सांख्य दर्शन के पच्चीस तत्त्वों को मानते हुये उनका ज्ञान प्राप्त करके आनन्द प्राप्त करने की ओर इशारा किया है।

पूर्व मीमांसा—इस शास्त्र में जैमनी जी ने ईश्वर, जीव और

प्रकृति को अमर, नित्य और स्वतन्त्र मान कर लिखा है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वेद में जो जीव के लिये धर्म वर्णन किया गया है, उसी धर्म यज्ञ को करने से जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

वेदान्त दर्शन या उत्तर मीमांसा—इसके रचने वाले व्यास मुनि थे। उन्होंने भी ईश्वर, जीव और प्रकृति की अमर, नित्य और स्वतन्त्र सत्ता मानी है। उन्होंने इस दर्शन मे विशेष रूप से इन पांच विषयों पर प्रकाश डाला है-जगत सत्य है या मिथ्या, जीव और ब्रह्म एक है या भिन्न भिन्न, ब्रह्म का स्वरूप क्या है, ब्रह्म को कैसे प्राप्त किया जा सकता है और ब्रह्म को प्राप्त करने से क्या फल मिलता है। पारसी लोग ईश्वर, जीव और प्रकृति को अलग-अलग स्वतन्त्र अमर और नित्य मानते हुये ऐसा विश्वास रखते है कि जीवात्मा शरीर के मैल या प्रकृति से उत्पन्न नहीं होता है। और न ही मृत्यु होने पर जीव का नाश होता है। जीवात्मा अपने कर्मानुसार आवागमन के द्वारा शरीर धारण करके सुख दु ख भोगता है। जिस जीवात्मा के कर्म उत्तम होते हैं उसकी मुक्ति या निजात हो जाती है। जिस जीवात्मा के कर्म शुभ होते हैं किन्तु वह मुक्ति पाने योग्य नही होते, ऐसी दशा में उसे उच्च गति प्राप्त करने के लिये मनुष्य योनि में बार बार आना पड़ता है। इस-आवागमन के चक्र का नाम फ़रहंगसार है। अशुभ कर्मों के फल स्वरूप पशु आदि की योनि मिलती है। इस आवागमन के चक्र का नाम नंगसार है। (दसातीर खंड ६७, ६८)

जैन—जीवात्मा को तो अमर, नित्य, स्वतन्त्र और अविनाशी मानते हैं मगर ईश्वर की सत्ता से इंकार करते हैं। वह आवागमन को भी स्वीकार करते हैं।

बौद्ध—जीवात्मा की सत्ता इस प्रकार स्वीकार करते हैं कि वह जीव को केवल ज्ञान धारा मानते है और निर्वाण हो जाने पर उसे नाशवान मानते है। ईश्वर की सत्ता को वह भी स्वीकार नहीं करते किन्तु आवागमन को अवश्य मानते हैं।

चारवाक मत के अतिरिक्त भारतवर्ष के सभी दार्शनिक मुक्ति प्राप्त करने को ही जीवन का सबसे उच्च ध्येय समझते थे।

मिश्र—इस देश के प्राचीन लोग ईश्वर जीव और प्रकृति को भिन्न भिन्न हस्ती मानते थे।

चीन—इस देश के कन्फ्युशियश (Confucianism) ईश्वर, जीव और प्रकृति की अलग अलग सत्ता मानते थे।

टयूइज़्म—(Taouism) यह भी ईश्वर जीव और प्रकृति को भिन्न भिन्न, स्वतन्त्र और नित्य मानते थे।

यूनान—प्राचीन यूनान वाले ईश्वर, जीव और प्रकृति को अमर, अनित्य और स्वतन्त्र हस्ती मानते थे और आवागमन के सिद्धान्त का समर्थन करते थे।

यहूदी, ईसाई, और मुसलमान—ईश्वर की सत्ता को तो अमर, नित्य और स्वतन्त्र मानते हैं। किन्तु जीव को भी वह शरीर से भिन्न एक हस्ती मानते हैं।

चारवाक जैन और बौद्ध मतों ने नास्तिक वाद के सिद्धान्त इस प्रकार बनाये थे कि जो स्वाभाविक गुण हैं, उन से द्रव्य-सयुक्त होकर सब पदार्थ बन जाते हैं। सृष्टि का रचने वाला कोई नहीं है। यह सदा से ऐसे ही चली आ रही है और ऐसे ही चलती रहेगी। इस प्रकार इस देश में दो विचार उत्पन्न हो कर प्रचलित हो गये थे—एक आस्तिक वाद (Orthodox) दूसरा नास्तिक वाद (Heterodox) आस्तिक लोग वेदों को प्रमाण मानते थे और नास्तिक उन पर विश्वास नहीं रखते थे, न ही वह ईश्वर की सत्ता ही स्वीकार करते थे। इन नास्तिकों में सबसे पहले चारवाक मत प्रचलित हुआ और उसके पश्चात् जैन और बौद्ध प्रचलित हुये।

चारवाक मत के विषय में निश्चय रूप से यह तो नहीं कहा

जा सकता कि इसको किसने प्रचलित किया था। इस विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद पाये जाते हैं। उनमे से कुछ चारवाक का अर्थ चवाने या खाने पीने का करते हैं और कहते हैं कि चूंकि चारवाक खाने पीने और आनन्द भोगने की शिक्षा देता है इसलिये उसको चारवाक कहते हैं कुछ विद्वान चारवाक के अर्थ मीठी बोली या अधिक बोलने वाले का करते है और कहते है कि चूंकि चारवाक के सिद्धान्त आसान होने के कारण सबकी समझ में आ जाते हैं इसलिये इसे चारवाक कहते हैं। कुछ लोग चारवाक को एक आचार्य बतलाते है जिसने यह चारवाक मत प्रचलित किया था। चारवाक चाहे जो भी हो, हमें तो पड़ताल करने से ऐसा पता चलता है कि चारवाक मत को प्रचलित करने वाले एक ब्रहस्तपति आचार्य थे।

इस देश में चारवाक मत के प्रचलित होने के कुछ कारण इस प्रकार प्रतीत होते हैं कि चारवाक मत के प्रचलित होने से पहले इस देश मे वाममार्गियों का खूब जोर चल रहा था। पशुओं और मनुष्यों की वलिया दी जाती थीं। व्यभिचार का जोर था। शराब और मांस पीने खाने की ओर लोगों की अधिक रुचि थी। मांस और शराब का यज्ञों मे प्रयोग होता था। जादू, मन्त्र और तन्त्र, भूत, प्रेत तथा चुडैल इत्यादि पर लोगों का पूरा विश्वास था। हर बुरी बात और खराब रीति-रिवाज का प्रमाण शास्त्रों में मिलता था। उन सब बुरी बातों और रीति-रिवाजों को लोग धम का अंग और मुक्ति-प्राप्ति का साधन समझे हुये थे।

जहां इस देश मे लोग वाममार्गी रीति-रिवाजों की लपेट में आ रहे थे, वहा उसी काल में कुछ लोग ऐसे भी अवश्य थे कि जो वाम-मार्गियों की समस्त बातों और रीति-रिवाजों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। अत. वाम-मार्गियों के सिद्धान्तो और रीति-रिवाजों का खण्डन करने के लिये जड़ वाद के कुछ विचार उत्पन्न होकर प्रचलित हो गये थे।

यदृच्छा वाद—(Accidentalism) और स्वभाव वाद (Naturalism) का प्रचार हो चला था। यदृच्छा वाद वाले ऐसा

मानने लगे थे कि इस संसार के बनाने में कोई नियम काम नहीं कर रहा है, वरन संसार तत्त्वों के आपस में मिल जुल जाने से उत्पन्न हो जाता है। स्वभाव वाद वाले ऐसा कहने लगे थे कि यह संसार बिना कारण के उत्पन्न नहीं हुआ वरन किसी नियम के आधीन चल रहा है। इसको बनाने और चलाने के लिये किसी ईश्वर नाम की हस्ती की आवश्यकता नहीं है।

बुद्ध से लगभग ३०० वर्ष और ईसा से ८०० वर्ष पूर्व बृहस्तपति आचार्य ने इस देश में चारवाक मत की नीव रक्खी थी। इस प्रकार यह मत कोई ३८०० वर्ष पुराना सिद्ध होता है। वाम-मार्गियों की बलियों और रीति-रिवाजो को देखकर ब्रहस्तपति का कोमल हृदय कॉप उठा। उन्होंने वाम-मार्गियों के सिद्धान्तों और रीति-रिवाजों का जोर के साथ खण्डन करना आरम्भ किया। अपने कुछ विचार बना कर चारवाक मत की स्थापना की। ब्रहस्तपति ने वाम-मार्गी महिधराचार्य के वेद भाष्य और दूसरे इसी प्रकार के शास्त्रो को देख कर तुरन्त यह कह दिया कि वेद आदि शास्त्रों के बनाने वाले बदमाश, निर्लज्ज, भॉड़, धूर्त और निशाचर थे। उन्होंने यह भी कहा कि जब ईश्वर नाम की कोई सत्ता ही नहीं है, तो फिर वेद आदि शास्त्र उसके बनाये हुये कहां से आ गये। यह वेद आदि सब शास्त्र गन्दी और बुरी बातों से भरे पड़े हैं इस कारण उन पर ध्यान नहीं देना चाहिये।

बृहस्तपति आचार्य ने बड़े सरल उदाहरण देकर लोगों को इस प्रकार समझाना आरम्भ किया—यदि पशुओं को मार कर और मॉस की अग्नि मे आहुतिया डाल कर अथवा मनुष्यों के देवि,देवताओं की मूर्तियों के सामने सिर काटने से मोक्ष मिल सकता है या क्लेश दूर हो सकते हैं तो ऐसा करने वाले अपने माता पिता और सम्बन्धियों को उन देवी-देवताओं की मूर्तियों के सामने मार कर स्वर्ग में क्यों नहीं भेज देते? यदि मरे हुए मनुष्यों की तृप्ति के लिये श्राद्ध और तर्पण किया जाता है तथा वह खाना इत्यादि उन मुर्दों को पहुच जाता है तो परदेश मे जाने वालों के लिए खाने, कपड़े इत्यादि का बोझ उठा कर ले जाना बिल्कुल बेकार है? बृहस्तपति की ये युक्तियां लोगों की समझ

में आसानी से आती चली गई। लोग वाम-मार्गी सिद्धान्तों और रीति-रिवाजों को छोड़ कर चार-वाक मत ग्रहण करते चले गये लगभग ३०० वर्ष तक देश मे इस मत का काफी ज़ोर रहा। लोग-परलोक, धर्म-कर्म के विचारों को छोड़ कर स्वार्थी वनते चले गये। खाने पीने और आनन्द करने में ही वे जीवन का सार समझने लगे।

इसी देश के वैष्णव, शैव, जैन और बौद्ध धर्मों ने चारवाक मत के बुरे प्रभाव को देख कर इस मत का खण्डन करना आरम्भ कर दिया। थोड़े ही समय मे इस देश से चारवाक मत समाप्त हो गया। चार-वाक मत इस देश मे पूर्ण रूप से कभी सफल नहीं हुआ। किन्तु पश्चिमी देशों में आगे-चल कर इसको उच्च स्थान अवश्य मिल गया। इस देश मे इस समय भी नास्तिक वाद, माया वाद और जड़वाद के मानने वाले कुछ लोग पाये जाते हैं किन्तु योरुप इत्यादि देशों मे कुछ अधिक संख्या मे नज़र आते हैं। नास्तिक वाद, जड़वाद और माया वाद के मानने वाले वहुधा वे ही लोग होते हैं जो दार्शनिक तौर पर विचार करने से घवराया करते है। योरुप इत्यादि देशों में लोग नास्तिक वाद को छोड़ कर आस्तिक वाद की ओर फिर वापस आ रहे हैं। परन्तु भारतवर्ष में पिछले कुछ सालों से कुछ नवयुवक नास्तिक वाद की ओर भागे जा रहे हैं। ऐसे नवयुवक खाने पीने और आनन्द भोगने के अतिरिक्त किसी गहरी और गहरी वात पर अपना ध्यान जमाना ही नहीं चाहते।

चारवाक-सिद्धान्तों के भिन्न-भिन्न नाम

चारवाक मत के सिद्धान्तों को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से मानने वालों को भिन्न-भिन्न नाम दिये गये है.—

१ केवल एक प्रमाण प्रत्यक्ष-Perception के मानने से पोजिटीविस्ट (Positivist) कहा जाता है।

२—ईश्वर-विश्वासी न होने से नास्तिक-Atheist के नाम से पुकारा जाता है।

३—ईश्वर और जीव को अमर और नित्य न मानने भविष्य की थ्योरी पर विश्वास न रखने वाले भाव-वादी Agnostics कहलाते हैं।

४—केवल चार तत्त्व-आग, पानी, मिट्टी और हवा से ही सृष्टि की उत्पत्ति मानने से मायावादी Materialist की संज्ञा दी जाती है।

५—धर्म और मुक्ति से इन्कार करने और अर्थ की पूर्ति को ही सब कुछ समझने वालों को आनन्दवादी-Hedonists का नाम दिया जाता है।

६—चार तत्त्वों से सृष्टि उत्पन्न होकर जो मशीन की भाँति चलती रहने पर विश्वास करता है, वह यान्त्रिक वादी या यदृच्छा वादी Mechanist or Accidentalist होता है।

७—प्रकृति के अतिरिक्त किसी और पदार्थ को न मानने वाले को स्वभाव वादी-Naturalist कहते हैं।

चार-वाक् वाद और नास्तिकवाद के सिद्धान्त

१—जो जो तत्त्वों के स्वाभाविक गुण हैं उन उन से द्रव्य संयुक्त होकर संसार के सब पदार्थ बनते हैं।

२—इस जगत का कोई कर्त्ता (ईश्वर) नहीं है।

३—जीव की कोई अमर, नित्य और स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।

४—शरीर की उत्पत्ति के साथ जीव उत्पन्न हो जाता है और शरीर के नाश के साथ जीव का भी नाश हो जाता है।

५—मरने के पश्चात् दुःख सुख भोगने के लिए कोई चीज़ शेष नहीं रहती।

६—स्वर्ग और नरक कोई वस्तु नहीं है।

७—वर्णाश्रम से कोई अच्छा फल प्राप्त नहीं होता बल्कि हानिकारक है।

८—जब तक मनुष्य जीवित रहे तब तक हर प्रकार से आनन्द करना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है।

६—यदि घर में कोई पदार्थ न हो तो ऋण लेकर भी आनन्द करना चाहिये।

१०—आवागमन का सिद्धान्त सिद्ध नहीं होता; जो लोग कहते हैं कि मृत्यु होने पर जीव शरीर छोड कर परलोक को जाता है। ये सब मिथ्या बाते हैं। क्योंकि जो ऐसा होता तो वह जीव अपने कुटुम्ब से मोह-बद्ध होकर फिर घर में वापस क्यों नहीं आ जाता ?

जड़वाद और परमाणुवाद के सिद्धान्त

जड़वाद और परमाणुवाद के सिद्धान्त भी बहुधा वे ही हैं जो चारवाकवाद और नास्तिकवाद के हैं। कुछ विशेष सिद्धान्त निम्नलिखित हैं.—

१—चार तत्त्व (Elements)—पृथ्वी-Earth, जल-Water, अग्नि-Fire, और हवा-Air अनन्त और अनादि हैं। आकाश-Ether तत्त्व नहीं है क्योंकि वह अनुभव में नहीं आता।

२—परमाणुओं की संख्या, बनावट और रूप असीम है। उनके आपस के संघर्पण से गति और भ्रमण उत्पन्न होकर सारा ससार और प्राणीमात्र उत्पन्न हो जाते हैं।

३—इन चारों तत्त्व के अणु (Atom) से जो तमाम शरीर मे तथा विशेप रूप से जो छाती मे होते हैं, के मेल से जीवात्मा नाम का एक गुण पैदा हो जाता है। शरीर में चेतनता इन्हीं विशेप अणुओं के मिलाप से इस प्रकार उत्पन्न हो जाती है, जिस प्रकार कुछ नशे से रहित वस्तुएं आपस मे मिल जाने से नशा पैदा करने वाली हो जाती हैं।

४—मनुष्य को केवल एक ही प्रमाण-Proof पर जो प्रत्यक्ष (Perception) हो मानना चाहिये, दूसरे प्रमाणों पर ध्यान नहीं देना चाहिये। अनुमान से ज्ञान प्राप्त नहीं होता।

५—केवल पॉच इन्द्रियॉ—खाल-Skin, जबान-Tongue, नाक Nose, कान-Ears और ऑखे-Eyes हैं। इनसे ही समस्त चीजें अनुभव होती हैं। बुद्धि भी इन्हीं चार तत्त्वों से बनती है।

६—यह संसार प्राकृतिक नियमों-Natural Laws का परिणाम है इसलिए इसके बनाने में किसी बनाने वाले-Creator की आवश्यकता नहीं है।

७—संसार में कोई निश्चित् नियम दिखाई नहीं पड़ता बल्कि सब कार्य अचानक (Accidental) हो जाते हैं। इस कारण किसी कन्ट्रोल करने वाले ईश्वर की आवश्यकता नहीं है।

८—ईश्वर की शक्ति और हस्ती को मानना हानिकारक है। ईश्वर को मानने से मनुष्य की स्वतन्त्रता का नाश होता है और बिना वजह उस पर सहारा करना पडता है।

९—जिसको ईश्वर कहा जाता है उसका कोई निश्चित् नियम दिखाई नहीं पड़ता। यदि ईश्वर कोई वस्तु है तो वह प्रकट होकर लोगों को क्यों निश्चय नहीं करा देता?

१०—यदि ईश्वर अवतार धारण करता है तो वह निर्दयी है, क्योंकि वह अवतार धारण करके लोगों का संहार करता है।

११—जब शास्त्रों में ईश्वर न जानने योग्य लिखा है तो फिर उसको जानने के लिए क्यों परिश्रम किया जाता है?

१२—ईश्वर को बहुत से गुणों वाला कहा जाता है और गुणवान वस्तु नाशवान होती है। इसलिए ईश्वर भी नाशवान है, अनादि और अनन्त नहीं है।

१३—धर्म-कर्म, यज्ञ प्रलय और मोक्ष नाम की कोई वस्तुएं नहीं हैं जो कुछ दुःख सुख मनुष्य को होता है वह इसी दुनिया में होता है। आनन्द भोगने का नाम स्वर्ग और दुःख भोगने का नाम नर्क है।

१४—काम— Pleasure, desire और Wealth से ही सच्ची खुशी होती है। यह सच्ची खुशी ही मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य है

१५—संसार में आनन्द अधिक है और दुःख कम है। यही कारण है कि प्रत्येक प्राणी मौत से बचना चाहता है।

१६—सुख प्राप्त करने मे यदि कुछ कष्ट भी उठाना पड़े तो कोई दोप नहीं कष्ठ उठाकर ही आनन्द प्राप्त होता है। संसार में जब तक जीवित रहो अति आनन्द से रहो। जैसे भी हो आनन्द करना चाहिये। जीवन दोवारा नहीं मिलता।

१७—सब मनुष्य आपस मे बराबर हैं उन सबका खून एक जैसा ही लाल है।

१८—वेद आदि सब शास्त्र लोगों ने अपनी कमाई के लिए बनाये थे। उनमें कोई अच्छी और बुद्धि को बढ़ाने वाली बात नहीं है।

१९—जिस काम में अपनी भलाई, कमाई और सुख की प्राप्ति हो वही काम अच्छा है।

२०—कामनाओं की पूर्ति करने का नाम ही जीवन है।

२१—जब तक जीवित रहो तब तक खूब खाना-पीना और ऐश करना चाहिये—"Eat, drink and be merry."

२२—वर्तमान आनन्द को भविपय में आनन्द मिलने के भरोसे पर नहीं छोड़ना चाहिये, क्योंकि भविपय के बारे में कोई कुछ नहीं जानता।

यूनान और पश्चिमी देशों मे नास्तिकवाद, परमाणुवाद और मायावाद किस प्रकार प्रचलित हुआ और इनका किस प्रकार आज तक खंडन मंडन होता रहा, इसका संक्षेप में इस प्रकार वर्णन है—

जिन दिनों भारतवर्ष में चारवाक मत प्रचलित हुआ था, उन दिनों ईरान आदि देशों में पारसी मत प्रचलित था। पारसी लोग ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनादि और अनन्त मानते थे। पारसी मत के विचारों में कुछ परिवर्तन होकर यूनान इत्यादि देशों में भिन्न-भिन्न नाम के देवताओं की पूजा और उपासना प्रचलित हो गई थी। ईसा से

६०० वर्ष पूर्व यूनान में आर्फीयस (Orpheus) की पूजा का पूरा ज़ोर चल रहा था, किन्तु उस काल में भी यूनान आदि देशों में लोग किसी न किसी रूप में ईश्वर की सत्ता मे अवश्य विश्वास रखते थे। जीवात्मा की वह एक स्वतन्त्र हस्ती मानते हुए कर्मों का फल भोगने के लिये उसे ईश्वर के आधीन मानते थे।

पडताल करने से कुछ ऐसा पता चलता है कि यूनान में ईसा से लगभग ६०० वर्ष पूर्व दर्शन (Vision) का आरम्भ हुआ था। यूनान के प्रारम्भिक दार्शनिकों की विचार धारा मे भारतीय दार्शनिकों की विचार धारा का रंग पाया जाता था। इसके पश्चात किसी-किसी यूनानी फिलॉसफर की विचारधारा मे नास्तिकवाद की लहर उत्पन्न हो गई थी। कुछ आगे चल कर, इसी विषय को लेकर उन दार्शनिकों मे खंडन-मंडन आरम्भ हो गया था। यूनान में सबसे पहला दार्शनिक (Thales) हुआ था। इस फिलासफर को यूनान मे दर्शन की नींव रखने वाला बताया जाता है।

थैलिस—Thales 625-546 B C. इस फिलॉसफर के विचार यह थे कि पृथ्वी पानी पर तैरती है। पानी ही समस्त वस्तुओं का मूल कारण है। प्रत्येक वस्तु चेतनापूर्ण और देवताओं तथा राक्षसों से भरपूर है। हर एक वस्तु में देवता उपस्थित है। एक ऐसी शक्ति अवश्य है जो सब वस्तुओं को गति देती है।

अनैक्सिमैनस—Anaximenes-इस दार्शनिक ने थैलिस के विचार का विरोध किया और कहा कि ससार की समस्त वस्तुओं का मूल कारण हवा है। समस्त वस्तुएँ हवा से उत्पन्न होती हैं। जीवात्मा भी हवा ही है।

अनैक्सिमैण्डर—Anaximander 610 B. C. इसने ऊपर लिखे दोनों दार्शनिकों की विचारधारा का खण्डन करते हुये अपना मत इस प्रकार प्रकट किया कि ससार की उत्पत्ति पानी, हवा या आग पर निर्भर करना एक बहुत बड़ी भूल है। वास्तव में इस संसार का मूल कारण कोई असीम (Infinite) और पूर्ण शक्ति है।

उसी से समस्त वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं और नाश होने पर उसी में जा मिलती हैं।

हीराक्लीटस—Heraklites 535-475 B. C. यह जगत नित्य है। आग ही वह शक्ति है जिससे समस्त संसार की समस्त वस्तुएँ बनती और बदलती हैं। अग्नि से ही सब वस्तुओं का नाश होता है। अग्नि ही एक मुख्य तत्त्व है।

पैथागोरस—Phythagoras. 582-506 B. C. और आॅरफियस-Orpheus-यह दोनों फिलासफर यूनान में एक ही समय में हुये थे। आरफिक ईश्वर वाणी (Revelation) को धार्मिक सिद्धान्तों का श्रोत मानते थे। उनके सिद्धान्त उस समय के प्रचलित भारतीय सिद्धान्तों से अधिक मिलते जुलते थे। उनका मूल सिद्धान्त यह था कि जीवात्मा को इतना पवित्र और शुद्ध बनाया जाये कि वह फिर आवागमन के चक्कर में न आ पड़े। बुद्धिमान् मनुष्य वही है जो सांसारिक वस्तुओं का त्याग करके जीवन को उच्च बना लेता है। यह दार्शनिक ईश्वर और जीव की भिन्न-भिन्न सत्ता मानता था, और ईश्वर जीव और प्रकृति को अनादि और अनन्त समझता था। पैथागोरस के भी बहुधा वही विचार थे जो आरफियस के थे, किन्तु यह दार्शनिक शक्तियों की सत्ता को भी मानता था। इस फिलासफर ने बहुत सी विद्याओं की खोज की थी।

जैनोफैन्स—Xnophanes-इस फिलासफर ने आरफियस और पैथागोरस के धार्मिक सिद्धान्तो का विरोध करते हुए कहा कि सर्व-शक्तिमान् ईश्वर मनुष्य देह में कदाचित् नहीं आ सकता। आवागमन का सिद्धान्त सिद्ध नहीं होता। जगत का आधार केवल एक ईश्वर है। वही तमाम संसार के बनाने और चलाने वाला है। नाश होने पर समस्त वस्तुयें उसी में जा मिलती हैं। देवताओं की कोई सत्ता नहीं है।

इमपेडोक्लिस—Empedokles 495-435 B. C. यह दार्शनिक यूनान में नास्तिकवाद की नींव रखने वाला कहा जाता है।

इसने अपने से पहले समस्त दार्शनिकों के सिद्धान्तों का खण्डन करते हुये जड़वाद का प्रचार किया और यह कहा कि चार तत्त्व अर्थात् आग, हवा, पानी और मिट्टी अलग-अलग नित्य और अविनाशी हैं। उनकी वास्तविकता में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। पानी से हवा, आग से पृथ्वी और हवा से पानी उत्पन्न नहीं हो सकता। इन चारों तत्त्वों के आपस में मिल-जुल जाने से परिवर्त्तन होकर गति (Motion) उत्पन्न हो जाती है। इन तत्त्वों के आपसी द्वेष (Strife) से वियोग और इन्हीं तत्त्वों के आपसी राग (Love) से संयोग होकर वस्तुयें बनती बिगड़ती रहती हैं। इन चारों तत्त्वो में द्वेष और राग के गुण उपस्थित हैं। इसके अतिरिक्त उनमें समर्थ-विशेष (Survival of the fittest) के गुण भी पाये जाते हैं। इसके समर्थ विशेष के सिद्धान्त इस प्रकार वर्णन किये गये हैं—

आरम्भ में मनुष्य पशु और पक्षियों के समस्त अङ्ग अर्थात् आँख, नाक, धड़ और भुजा आदि अलग-अलग उत्पन्न हुये थे। पीछे से उनका मेल-मिलाप विचित्र ढग से हुआ। अर्थात् कहीं तो किसी एक धड़ से किसी दूसरे के अंग मिल गये और कहीं-कहीं ठीक मेल हो गया। कहीं मनुष्य के धड़ से हाथी का सिर मिल गया और कहीं ठीक रीति से मनुष्य के धड़ से मनुष्य के ही अँग मिल गये। इस प्रकार यह सृष्टि विचित्र रंग-रूप में बन गई। इनमें जो जो उत्पन्न प्राणी परिस्थिति के अनुकूल थे, वह समर्थ विशेष के नियमानुसार बच रहे और शेष सब नष्ट हो गये। इस प्रकार कट-छट कर यह पृथ्वी ठीक हालत मे आ गई इसी दार्शनिक के इस सिद्धान्त के आधार पर योरुप में डार्विन (Darwin) इत्यादि ने समर्थ विशेष का सिद्धान्त बनाया था।

जैनो—Zeno--498 B. C. यह भी नास्तिक था। इसका कहना था कि जीव शरीर के साथ उत्पन्न होता और शरीर के साथ ही मर जाता है।

एनकज़ागोरस Anaxagoras—500--428 B. C. इस फिलासफर ने इमपेडोक्लस और जैनो के सिद्धान्त का खण्डन किया और अपनी युक्तियों से यह सिद्ध किया कि वह चारों तत्त्व अलग अलग नहीं

हैं, वरन् एक ही हैं। इसी का नाम प्रकृति—Matter है। प्रकृति जड़ पदार्थ है। इसमें गति Motion उत्पन्न करने के लिए किसी ज्ञानवान, सर्व-शक्तिमान और चेतन शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। उस शक्ति का नाम चित्त Mind या नुअस—Nous है। नुअस-शक्ति से ही प्रकृति विभाजित हो कर क्रमबद्ध और नियमानुसार उन्नति करती रहती है। इस दार्शनिक की विचार-धारा द्वैतवाद Dualism से मिलती जुलती है।

डिमोक्रिटस—Demokritos, 460-370 B. C. यह एक यूनान का प्रसिद्ध जड़वादी दार्शनिक माना जाता है। इसकी फिलॉसफी परमाणुवाद (Atomism) के नाम से पुकारी जाती है। उसने अपनी फिलॉसफी के आधार पर ये ६ नियम बनाये थे—

१—अभाव (नेस्ती) से अभाव ही होता है। भाव (हस्ती) से अभाव नहीं हो सकता। संसार में जो भी अदल-बदल होती है, वह अणुओं के परिवर्तन से होती है।

२—संसार में अचानक अर्थात् बिना कारण कुछ नहीं होता। हर एक घटना का कारण अवश्य होता है।

३—संसार में दो पदार्थ मौजूद हैं, एक अणु और दूसरा आकाश।

४—अणुओं की संख्या और उनके रंग रूप असीम है। संघर्षण से गति और चाल उत्पन्न होती है। उन से जगत की रचना आरम्भ होती है।

५—संख्या, बनावट और समूह की दृष्टि से वस्तुओं के अलग २ रंग और रूप होने का कारण अणुओं की अलग २ संख्या और रंग-रूप होने पर निर्भर है।

६—जीव चिकने, गोल और सूक्ष्य (लतीफ) अग्नि के अणुओं से बनता है। ये अणु दूसरे सब अणुओं से तेज चलने वाले होते

हैं और वे समस्त शरीर मे उपस्थित रहते हैं। उनकी गति का परिणाम ही जीवन है।

सुकरात—Socrates, 470-399 B. C. यह यूनान का एक बहुत ही प्रसिद्ध फिलासफर था। यूरुप मे इसको विज्ञान का पिता कहा जाता है। इस दार्शनिक की बाबत ऐसा लिखा है—यदि वह भारतवर्ष मे पैदा होता तो अवतार माना जाता; अरब या फिलीस्तीन तथा ईरान मे उत्पन्न होता तो उसे पैगम्बर कहा जाता। सुकरात ने अपने से पहले सभी दार्शनिकों के सिद्धान्तों को पढ कर मनन किया और उनमें से बहुत से यूनानी फिलासफरों के सिद्धान्तों का अपनी अनमोल युक्तियों से खण्डन करते हुए कहा कि यह सिद्धान्त अधूरे हैं इनसे सच्चा ज्ञान कदाचित् प्राप्त नहीं हो सक्ता। सुक़रात ने नास्तिक-वाद, जडवाद और अणुवाद का खण्डन करते हुए यूनान की फिलासफी का झुकाव बाहरी बातों अर्थात् प्रकृति से हटा कर भीतरी पदार्थ अर्थात् जीवात्मा की ओर दिलाया और यह प्रचार किया "अपने को पहचानो- Know thyself तप और तपस्या के द्वारा जीवन को उच्च बनाओ। उच्च जीवन बनाने से ही आनन्द और परमानन्द प्राप्त हो सकता है"।

सुकरात ने यह सिद्ध किया कि मृत पुरुषों की जीवात्मा पहले कहीं अवश्य थी जहाँ से यह फिर जन्म लेती है। मुर्दों से जीवित होने का अर्थ उसने यह वर्णन किया कि मनुष्य मर कर अवश्य पुनर्जन्म लेते हैं। मुर्दों से ही जीवित पुरुष पैदा होते हैं। जीवात्मा अजर, अमर, नित्य और अविनाशी है। वह स्वभाव से शुद्ध, निर्मल और निराकार है। वह हवा के झोकों से उडने वाला पदार्थ नहीं है। वह शरीर से अलग होकर छिन्न भिन्न होने वाली वस्तु नहीं है सुकरात ने कहा कि सत्य की सदा खोज करो। नेकी बदी या भलाई बुराई- Good and evil, की ज्ञान से जॉच करो। बुराई पर विजय पाना वीरता है। उच्च जीवन बना कर जीवात्मा दूसरे लोक मे ज्ञानमय ईश्वर के साथ रह कर परमानन्द प्राप्त कर सकता है।

अफलातून—Plato, 427-347 B. C यह फिलासफर सुकरात का एक होनहार शिष्य था। यह भी यूनान का एक उच्चकोटि का दार्शनिक माना जाता है। इसने अपने गुरु के विचारों से सहमत होकर अपने विचार भिन्न-भिन्न तरीकों से पेश किए। यह भी जीवात्मा

को अजर, अमर और नित्य मानता था। उसका कहना था कि जीवात्मा अभाव (नेस्ती) से उत्पन्न नहीं हो सकता। अतः ऐसा मानना ही उचित है कि जीवात्मा सदा सदा से मौजूद है और सदा सदा तक मौजूद रहेगा। जो लोग जीवात्मा को पैदा किया हुआ मानते हैं वह अज्ञानी है, क्योंकि अभाव से भाव या नेस्ती से हस्ती नहीं हो सकती। जीवात्मा शरीर से अलग होकर उसी प्रकार अनन्त काल तक स्थिर रहता है जिस प्रकार शरीर में आने से पूर्व अनादि काल से अपनी सत्ता रखता था। बुद्धिमान मनुष्य मृत्यु से नहीं डरा करते। यह जगत ज्ञानवान और सर्वशक्तिमान ईश्वर का रचा हुआ है। प्रकृति स्वयं जगत नहीं बना सकती। इस फिलासफर ने भी ईश्वर जीव और प्रकृति को अनादि और अनन्त सिद्ध किया था। डॉक्टर उरविक—Dr. Urwick ने लिखा है कि अफलातून के दार्शनिक विचारों का आधार अधिकार भारतीय दार्शनिक विचारों पर निर्भर था।

अरस्तू—Aristotle, 384-322 B. C. यह दार्शनिक अफलातून का शिष्य था। इसके भी बहुधा वही विचार थे जो उसके गुरु के थे। उसका ऐसा मत था कि जीवन का एक भाग वह है जो वनस्पति और पशु पक्षियों में पाया जाता है। दूसरा भाग इन्द्रि ज्ञान का है जो केवल पशु पक्षियों में पाया जाता है। तीसरा भाग बुद्धि का है जो केवल मनुष्य में होता है। मनुष्य में आत्मा का भाग पिता से आता है। मनुष्य की आत्मा में एक भाग नाशवान है दूसरा अमर है। वही भाग जो अमर है वही बुद्धि है। बुद्धि (ज्ञान की शक्ति) कामनाओं से उच्च आसन रखती है। जीव और शरीर का सम्बन्ध ठीक वैसा ही है जैसा दृष्टि का आंख से सम्बन्ध है। जीवात्मा बिना शरीर के विचार में आने के योग्य नहीं है। शरीर जीवात्मा के लिए ही रचा जाता है। बिना जीवात्मा के शरीर बिलकुल बेकार और मिट्टी है। अरस्तू की साधारण शिक्षा यह भी थी कि बुद्धिमानों को मौत से कदाचित् नहीं डरना चाहिये, बल्कि अपने को अमर जानकर कार्य करते रहना चाहिये। तभी सफलता प्राप्त हो सकती है।

ऐपीक्यूरस—Epicurus, 342 B. C. यह एक यूनानी विद्वान था। उसने आस्तिकवाद के सिद्धान्तों का खण्डन किया। इसने

इमपेडोक्लस और डिमोक्रीटस के नास्तिक और परमाणुवाद के सिद्धान्तों को अपना कर अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए-"मनुष्य को चाहिये कि वह जब तक जीवित रहे अपना जीवन आराम और आनन्द के साथ व्यतीत करता रहे। खाना पीना और आनन्द करना— Eat, drink and be merry, ही मनुष्य जीवन का वास्तविक ध्येय है। उसने यह भी कहा कि मनुष्य का शरीर और जीवात्मा अणुओं का एक समुदाय है। जीवात्मा सूक्ष्म प्रमाणों से बनता है। शरीर के नाश होने के साथ जीवात्मा का भी नाश हो जाता है। कोई वस्तु मरने के पश्चात् सुख दुख भोगने वाली नहीं रहती। उसने अधिक गहरी बातों पर दिमाग लगा कर परेशान होने से मना किया।

ल्युक्रेटियस—Lucretious ने एपीक्यूरस के विचारों को छन्द-बद्ध करके लोगों में खूब प्रचार किया। आगे चलकर योरुप में एपीक्यूरस के विचार खूब प्रचलित हुए जो एपीक्यूरियन थ्योरी—Epicurean Theory के नाम से प्रसिद्ध हैं। एपीक्यूरीयस के विचार वही थे जो भारत में चारवाक मत के थे।

फ़ील्लो—Philo, 30 B. C-40 A, D, यह एलक्जेंडिया का रहने वाला था। यह यहूदी था। उसनें पुराने अहदनामे— Old Testament के आधार पर अपने सिद्धान्त उन देशों में तेजी के साथ फैलाने में अधिक कार्य किया। उसका ऐसा मत था कि ईश्वर अपने इरादे के अनुकूल सृष्टि और जीव उत्पन्न करता है। ईश्वर अपनी वाणी का प्रकाश अवश्यकतानुसार पैगम्बरों पर किया करता है। उसने कहा कि हम ईश्वर को भली भांति नहीं जान सकते, परन्तु हमें चाहिये कि हम ईश्वर की तरह न्यायकारी, दयालु और सभी अच्छे गुणों वाले बनें। अच्छे और भले कार्य करने से ही मनुष्य ईश्वर को प्राप्त करके स्वर्ग (जन्नत) का आनन्द ले सकता है। फील्लो ने लोगों को दार्शनिक तौर पर विचार करने से मना किया। इसके विचारों का यह प्रभाव हुआ कि लोगों ने उन देशों में गहरी और दार्शनिक बातों पर दार्शनिक तौर से विचार करना छोड़ दिया। और अधिकतर लोग पुराने अहदनामे के ही विश्वासी होते चले गये। फील्लो के विचार जो इसने पुराने अहदनामे के आधार पर प्रचार

किए थे आगे चल कर ईसाइयत और इस्लाम में सम्मिलित होकर प्रचलित हुये।

प्लौटिनस—Plotinus 204-270 A. D.–यह यूनानी विचार धारा का अन्तिम दार्शनिक था। उसने अलैक्जैन्ड्रिया में शिक्षा पाई थी और वह रोम में रहने लगा था। उसने यूनान की पुरानी से पुरानी फिलासफी को पढ कर मनन किया। उसने नास्तिकवाद, जड़-वाद और एपिक्यूरियन-थ्योरी का जोर के साथ खण्डन किया। एपि-क्यूरियन-थ्योरी के कारण लोगों में जो स्वार्थ और विषय-वासनाओं की भावनाएँ घर कर गई थीं, उन सभी को प्लौटिनस ने दूर करने की भरसक चेष्टायें कीं। प्लौटिनस ने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया कि मनुष्य शरीर को तीन भागों में बाँटा जा सकता है—एक प्रकृत शरीर, दूसरा जीवात्मा (Soul) और तीसरी शक्ति स्प्रिट (Spirit) या पारब्रह्म (Absolute)। उसने कहा कि जीवात्मा शरीर की भाँति मिश्रित नहीं है। जीवात्मा का कभी नाश नहीं होता और न ही वह विभाजित हो सकता है। जीवात्मा के गुण न्याय, पवित्रता और ज्ञान हैं। जीवात्मा ही विचार और अनुभव करता है, शरीर नहीं। उसने यह भी कहा कि जो लोग यह कहते हैं कि जीवात्मा शरीर का ही मैल है या शरीर से ही उत्पन्न होता है, वह एक बहुत बड़ी गलती करते हैं। तुच्छ वस्तु उत्तम वस्तु कदाचित् उत्पन्न नहीं कर सकती। चेतन वस्तु अचेतन वस्तु से उत्पन्न नहीं हो सकती। जीवात्मा किसी वस्तु विशेष का भाग नहीं, वरन इसका स्तित्व शरीर से बिल्कुल अलग है। जीवात्मा असंख्य हैं किन्तु वह सब एक ही जाति के हैं। जीवात्मा का शरीर के साथ सम्बन्ध होने के कारण वह अलग अलग दिखाई देते हैं, वास्तव में वह सब एक ही है। जो जीवात्मायें उच्च और तुच्छ योनियों में दिखाई देते हैं, यह उनके कर्मों के फल का ही परिणाम है। उच्च योनियों के जीवात्मा नीच योनियों में और नीच योनियों के जीवात्मा उच्च योनियों में अपने कर्मानुसार ईश्वर की प्रेरणा से आते जाते रहते हैं। शरीर धारण करके ही जीवात्मा सुख-दुःख भोगता है। जीवात्मा अविनाशी, अनादि और अनन्त है। जीवात्मा की कभी उत्पत्ति नहीं हुई, इसीलिये उसका नाश भी कभी नहीं होगा। शरीर छोड़ने के पश्चात् जीवात्मा का नाश नहीं होता, बल्कि वह जीवित

रहता है। जो जीवात्मा अपने कर्मों को उच्च बना लेते हैं, वह परलोक में ईश्वर के साथ रह कर परमानन्द भोगते हैं। उनका फिर जन्म नहीं होता। जिन जीवात्माओं के कर्म बुरे होते हैं उन्हें बार-बार जन्म लेकर दुःख भोगने पड़ने हैं। शक्ति या स्प्रिट का दर्जा जोवात्मा से बहुत ऊंचा है। वह शक्ति या ब्रह्म ही सत्य पदार्थ है। उसी की उपासना से कल्याण हो सकता है।

सारांश यह है कि यूनान में ईसा से ६०० वर्ष पूर्व दार्शनिक विचार प्रचलित हुये थे। यह विचार ईसा से ३०० वर्ष बाद तक चलते रहे। इस बीच में यूनान में बहुत से दार्शनिक हुये। उन दार्शनिकों में से इमपेडोक्लिस, डेमोक्रीटस, एपीक्यूरस और ल्यूक्रेटियस को छोड़कर शेप सभी फिलासफ़र ईश्वर की सत्ता को किसी न किसी रूप में अवश्य मानते रहे और जीवात्मा को एक स्वतन्त्र हस्ती जानते रहे। यूनान में जितने भी आस्तिक दार्शनिक हुये, उन सबने नास्तिकवाद, जड़वाद और परमाणुवाद का अपनी युक्तियों से भारतीय दार्शनिकों की भाँति सदा खण्डन किया और लोगों को उनके बुरे परिणाम से चेतावनी दी। यही कारण है कि यूनान में नास्तिकवाद, जड़वाद या परमाणुवाद कभी भी नहीं पनप सका, और जहाँ इसने जरा सिर उठाया वह युक्ति और प्रभाव से दबा दिया गया। यही कारण है कि यूनान आदि देशों में भी इसे कभी कोई उच्च स्थान प्राप्त न हो सका।

१७वीं शताब्दी में योरुप में ईश्वर, जीव और प्रकृति के विषय में जाँच पड़ताल करने की लहर उत्पन्न हुई। योरुप में सबसे पहला दार्शनिक डेकार्टस-Descartes हुआ। इसके पश्चात् आज तक बहुत से दार्शनिक हुये। १८वीं शताब्दी में योरुप में जड़वाद का कुछ अधिक जोर चल पड़ा। पादरियों ने उन फिलासफरों पर अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। उन्हें जीवित ही आग में जलाया गया तथा और भी तरह तरह के कष्ट दिये गये। ऐसा होने पर वहाँ के लोग फिर आस्तिक वादी बनते चले गये। १६वीं शताब्दी में वहाँ नास्तिकवाद कुछ बुरा समझा जाने लगा। तब वहाँ के लोग अपने को अज्ञयवादी-Agonstic कहने में फैशन समझने लगे। इंगलैंड में हरबर्ट स्पेंसर-Herbert Spencer और जर्मनी में ड्यू बायस रैमान्ड-Du-Bois Remond इन्हीं विचारों के मानने वाले थे। स्पेंसर ने कहा

कि हम ईश्वर को नहीं जानते। रैमान्ड ने कहा कि हम न ईश्वर को जानते हैं, न ही कभी उसको जानेंगे और न ही मानेंगे। उसी समय योरुप में कुछ विज्ञान का ज़ोर बढ़ना आरम्भ हुआ। अज्ञयवाद का रंग फीका पड़ने लगा। उसकी जगह हैकल ने जड़ अद्वैतवाद–Materialism Monism की नींव रख दी। स्पेन्सर और टिंडल आदि इसी मत के मानने वाले हुये। फिर उनकी जगह क्रुक्स–Crooks, ओलीवर लाज–Oliver Lodge और वालेस–Wallace आदि आध्यात्मिक वैज्ञानिकों ने ले ली।

वैज्ञानिक लोग कहते थे कि जीवन प्रकृति से पैदा होता है और किया जा सकता है। उन वैज्ञानिकों ने जीवन उत्पन्न करने के लिये भाँति भाँति की युक्तियाँ दीं। जीवन उत्पन्न करने में काफी परिश्रम किया, किन्तु वह कुछ भी तो न कर सके। उन वैज्ञानिकों मे हैक्सले Huxely और हैकिल–Haeckel के नाम अति प्रसिद्ध हैं। हैकिल ने कहा कि समस्त प्रकार के कलल रसों मे, जो अब तक जाँचे गये है, यह चार तत्त्व पाये जाते हैं—कार्बन, हाईड्रोजन, आक्सीजन और नाइट्रोजन। यह बात याद रहे कि इनकी मिलावट के बारे में आज तक कोई भी वैज्ञानिक यह सिद्ध नहीं कर सका कि यह चारों तत्त्व किस-किस मात्रा मे मिलाये जायें कि कलल रस नाम का पदार्थ बन कर जीवन उत्पन्न हो जाये। हैक्सले इन तत्त्वों को निर्जीव (बेजान) तो मानता है किन्तु यह सिद्ध करने की चेष्टा करता है कि जब यह तत्त्व किसी विशेष रीति (रीति का आज तक कुछ पता नहीं चला) से मिल जाते हैं तो कलल रस पैदा कर देते हैं, जिससे जीवन उत्पन्न हो जाता है।

२० वीं शताब्दी में जब यरुप में नास्तिकवाद और जड़वाद के कुछ बुरे परिणाम ज्ञात होने लगे लगे तो वहाँ के लोग फिर आस्तिकवाद की ओर चल पडे। किन्तु उसी काल में कुछ और वैज्ञानिक ऐसे उत्पन्न हुये कि जिन्होंने वैज्ञानिकों और दार्शनिकों पर किये गये अत्याचारों को देख कर ईश्वर और जीव की सत्ता का ज़ोर के साथ खण्डन करना आरम्भ कर दिया। उनकी सादी युक्तियों को सुन कर लोग फिर नास्तिक वाद की ओर चल पडे। होते-होते ऐसा हो गया कि समस्त योरुप में नास्तिक वाद के चर्चे चलने लगे, यही नहीं, वहाँ के

लोग अपने को नास्तिक कहना एक फैशन समझने लगे। नास्तिक वादी काफी प्रसिद्ध दार्शनिक हुये। उन्होंने लोगों को नास्तिक बनाने में काफी परिश्रम किया। बहुत सी पुस्तकें लिखीं और बहुत से भाषण दिये। अन्त में बहुत से लोग आस्तिकवाद को छोड़ कर नास्तिक बनते चले गये। परन्तु यह भी याद रहे कि उसी काल में न्यूटन Newton और कालविन-Kalven जैसे वैज्ञानिक भी उपस्थित थे, जो नास्तिकवाद और अणुवाद का बराबर खंडन करके यह सिद्ध करते रहे कि नास्तिकवाद और परमाणुवाद के तमाम सिद्धान्त और युक्तिया अधूरी हैं। उनसे कोई सन्तोष-जनक परिणाम सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार योरुप में नास्तिक वाद का फिर जोर घटना आरम्भ हुआ। वहाँ के लोग फिर आस्तिकवाद की ओर चल पड़े। उन आस्तिक फिलासफरों और वैज्ञानिको में भी ईश्वर की सत्ता और उसके गुणों के विषय में कुछ मत भेद उत्पन्न हुये। वह सब ईश्वर विश्वासी तो अवश्य थे किन्तु उनके विचारों में कुछ भिन्नता थी। उनमें से कुछ ऐसा मानते थे कि ईश्वर चैतन्य स्वरूप और सर्वशक्तिमान इत्यादि गुणों वाला है। वह अनन्त और अनादि है। वह सृष्टि को अपनी शक्ति से रच कर एक बार चला देता है और स्वयं उससे अलग रहता है। फिर यह सृष्टि अपने आप चलती रहती है। ईश्वर उस समय हस्तक्षेप करता है जब उसमें कोई खराबी आने लगती है।

१८ वीं शताब्दी के टोलैण्ड-Toland, मैथ्यूटिंडल-Mathew Tindal, वाल्टेयर-Voltaire और हाल बैक Holboch के नाम प्रसिद्ध हैं। यह विद्वान् किसी ईश्वरीय पुस्तक पर विश्वास नहीं रखते थे, इसलिये उन्हें श्रुति-प्रकाश का विरोधी Deist कहा जाता है। दूसरे विचार वाले यह कहते थे कि ईश्वर सब जगह मौजूद है, ईश्वर ही सब कुछ है, यह संसार ईश्वर है और ईश्वर संसार है। ऐसे विचार वाले मायावादी-Pantheistic कहलाते हैं। इस्पीनोजा-Spinoza विद्वान् इसी विचार का था। तीसरे विचार वाले वह विद्वान् थे-जो यह कहते थे कि ईश्वर अन्दर और बाहर सब जगह सृष्टि में व्यापक है। वही सृष्टि बनाता, चलाता और बिगाड़ता है। केवल उसकी भक्ति और उपासना से ही आनन्द प्राप्त हो सकता है। ऐसे विचार वाले योरुप में बहुत से विद्वान् हुये, जिनके विषय में हमने आगे चल कर उल्लेख किया है।

योरुप में १७ वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान काल तक ईश्वर, जीव, प्रकृति और सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में जो-जो विचार उत्पन्न होकर उनका खंडन मंडन होता रहा, उनका संक्षेप मे कुछ इस प्रकार वर्णन मिलता है।

पहले हम कुछ प्रसिद्ध नास्तिकों और उनके विचारों को संक्षेप मे बतायेंगे।

उन नास्तिकों में हैकिल और हैक्सले के नाम अति प्रसिद्ध हैं। जितने भी नास्तिक या प्रकृति वादी उत्पन्न हुये, उनका मत संक्षेप में इस प्रकार है—

प्रकृतिवादी—इनका कहना है कि इस सारे संसार में चेतन और अचेतन समस्त वस्तुयें, प्रकृति और उसमे काम करने वाले प्राकृतिक नियमों-Natural Laws से उत्पन्न होती हैं। उनके बनाने में किसी ईश्वर नाम की हस्ती की आवश्यकता नहीं है। नास्तिक लोग संसार की समस्त वस्तुओं को चलाने और बनाने के लिए यह तीन पद या दर्जे मानते हैं:—

(१) प्राकृतिक विकास-Cosmic Evolution (२) जीवन विकास Biological Evolution (३) ज्ञान विकास-Intellectual Evolution.

प्राकृतिक विकास—प्रकृति-Matter में लगातार परिवर्त्तन होते होते यह तमाम संसार स्वयं बन गया है। इसके बनाने में प्रकृति और उसमें होने वाली गति-Motion के अतिरिक्त किसी और शक्ति की आवश्यकता नहीं है।

फ्रांस के वैज्ञानिक लाप्लास ने यह कल्पना की थी कि जगत के मूल द्रव्य का नाम नेबूला Nebula है। इसमें बराबर गति होती रहती है। उस लगातार गति से ही नेबूला द्रव्य से सारा जगत बन गया है। इसके रचने में किसी ईश्वर नाम की हस्ती की आवश्यकता नहीं है।

(२) जीवन विकास—जब ग्रह, तारे, सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी आदि बन कर तैयार हो गई तो फिर इसमें जीवन आ गया। डार्विन ने अपने प्राकृतिक चुनाव-Lows of Natural Selection के आधार पर अपने विकास वाद-Theory of Evolution को कायम किया था। उसने कहा था कि सारे प्राणिया का आरम्भिक अवस्था से बढते बढ़ते मनुष्य का विकास हुआ। यह विकास जीव-जगत सम्बन्धी अटल नियमों-Biological Lows के अनुसार हो रहा है। इसलिये उनको उत्पन्न करने के लिये किसी ईश्वर नाम की हस्ती की आवश्यकता नहीं है।

टेंडल, हैक्सले और हेकिल आदि वैज्ञानिकों ने जीवन का आधार मूल तत्त्व कलल रस-Protoplasm बतलाया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि कलल रस कुछ प्राकृतिक तत्त्व-Elements के मिश्रण से बना है। परन्तु यह याद रहे कि उन वैज्ञानिकों ने यह नहीं बतलाया कि वह तत्त्व किस किस मात्रा में मिलाये जायें कि कलल रस नाम का पदार्थ बन जाये।

डार्विन ने प्राकृतिक चुनाव का नियम इस प्रकार वर्णन किया कि जीव जगत में अपनी हस्ती स्थिर रखने के लिये परिश्रम करते रहते हैं। उनमें जो जीव योग्य और बलवान होते हैं, वह बच जाते हैं और जो जीव दुर्बल और अयोग्य होते हैं, वह नष्ट हो जाते हैं—Struggle for existance and survival of the fittest, इस प्रकार प्रकृति लगातार योग्य, अधिक योग्य और सबसे अधिक योग्य जीवों को छाँटती रहती है।

स्पेन्सर आदि वैज्ञानिकों ने कहा कि प्रारम्भिक अवस्था से पशु रूप आदि में होते होते मनुष्य जीवन का विकास हुआ है।

ज्ञान विकास—वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि जब मनुष्य बन गये तो उनमें धीरे धीरे ज्ञान का विकास होता चला गया।

स्पेन्सर ने कहा कि जिस प्रकार मनुष्य-जीवन का विकास होता है उसी प्रकार धीरे धीरे मनुष्य के भीतर बुद्धि का विकास होता है। इसमें भी किसी आत्मिक शक्ति की आवश्यकता नहीं है।

कुछ जड़वादी वैज्ञानिकों ने यह बतलाया कि यह सारा जगत जड़ प्राकृतिक नियमों-Lows of Substance के प्रभाव-Energy से बन गया है। ससार को बनाने और बना कर चलाने के लिये प्रकृति और उसमे गति Matter and Energy केवल यह दो ही नियन हैं। इनके अतिरिक्त किसी और चैतन्य शक्ति की आवश्यकता नहीं है।

हैक्सले—Huxley-यह विद्वान् कहता है कि समस्त कलल रसों-Protoplasm मे चार मूल तत्त्व पाये जाते हैं-कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन और नाइट्रोज। यह तत्त्व निर्जीव (बे जान) होते हैं। जब कार्बन और आक्सीजन विशेष मात्रा में मिलते हैं तो कार्बोनिक एसिड Corbonic Acid बनाते है। आक्सीजन और हाइड्रोजन के मिलने से पानी बनता है। नाइट्रोजन और कुछ दूसरे पदार्थ (जिनका अभी तक किसी को कुछ ज्ञान नहीं हो सका) मिल कर नाइट्राजन साल्ट पैदा करते हैं। जब यह तीनों निर्जीव वस्तुये किसी विशेष रीति से (रीति का पता नहीं) मिलते हैं तो उनसे कलल रस उत्पन्न हो जाता है। इस कलल रस से ही जीवन प्रकट होता है।

हैक्सले ने उन दूसरे पदार्थों के बारे में कोई प्रकाश नहीं डाला कि वह क्या हैं और न ही विशेष रीति से मिलाने की विधि को बतलाया। आज तक कोई वैज्ञानिक कलल रस बनाने में सफल नहीं हो सका और न ही किसी प्रकार का कोई जीवन उत्पन्न कर सका। कलल रस नाम का पदार्थ केवल कल्पना मात्र ही रह गया है, वास्तविकता से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। हैक्सले को अपनी इस कलल रस वाली थ्योरी का बाद में अधूरापन ज्ञात हो गया था। अतः उसने यह कहा था कि जीव शरीर की रचना हेतु है। परिणाम नहीं है। Life is the cause and not the Consequence of organisation.

हैकल—Haeckel-हक्सले के पश्चात् हैकिल ने निर्जीव में जीव उत्पन्न करने की चेष्टा की और यह सिद्ध करना चाहा कि निर्जीव में जीव उत्पन्न हो सकता है। उसने 'संसार की पहेलियाँ' नाम की एक पुस्तक लिखी थी। उस पुस्तक में उसने जीव और शरीर की बनावट

के विषय मे भाँति भाँति के बीसियों प्रकार की कल्पनायें की हैं। हैकिल ने कलल रस के अतिरिक्त एक और पदार्थ मनोरस की कल्पना की है। वह लिखता है कि शरीर का स्थूल भाग कलल रस से और सूक्ष्म शरीर मनोरस से बनता है। बालक में उस समय तक चेतना नहीं होती जब तक वह बोलने नहीं लगता। जीवन सम्वेदन–Feelings और गति से पैदा होता है। वह कहता है कि कलल रस एक चिपचिपा दानेदार पदार्थ है। वह बहुत ही सूक्ष्म अणुओं की मिलावट से बनता है। वह अणु कई प्रकार के होते हैं। उनसे ही जीवन उत्पन्न होता है। हैकिल ने कलल रस अथवा मनोरस से ही सब कुछ, चाहे जड हो या चेतन, निकाल देने की भाँति भाँति की युक्तियां दी हैं। हैकिल ने अपने इस अणुवाद का नाम द्रव्य नियम रक्खा था। उसका कहना है कि द्रव्य ही जगत को बनाता, बिगाड़ता और चलाता है। हैकिल ने केवल प्रकृति को नित्य माना। द्रव्य और शक्ति दोनों को उसका गुण बतला कर कहा कि द्रव्य अनादि काल से काम कर रहा है। समस्त परिवर्त्तन अर्थात जीवन, मरण और विकास आदि इसी के द्वारा होता है। समस्त प्राणी या अप्राणी सब इसी द्रव्य के आधीन हैं। यह जगत नित्य और असीम है। यह द्रव्य प्रकृति और गति के साथ नित्य है और अनादि काल से गतिमय है। यह सूर्य असख्य नष्ट होने वाले पिण्डों में से एक है। यह पृथ्वी भी असंख्य नष्ट होने वाले छोटे छोटे पिण्डों मे से एक है। यह पृथ्वी बहुत समय तक ठडी होती रही। फिर इस पर जल का प्रादुर्भाव हुआ। इस प्रकार के जीव से धीरे धीरे असंख्य योनियों के पैदा होने में करोड़ों वर्ष लगे हैं। इस जीवोत्पत्ति परम्परा के पिछले खेवे में जितने जीव उत्पन्न हुये, उनमें रीढ़ वाले प्राणी सबसे अधिक बढ गये। इन रीढ़ वाले प्राणियों की सबसे प्रधान शाखा दूध पिलाने वाले जीव, थल-चरों और सरीसृपों से पैदा हुये। इन दूध पिलाने वाले जीवों ने सबसे अधिक उन्नति और पूर्णता प्राप्त को–Order of Primates पुरुष जो लगभग ३० लाख वर्ष कुछ जरा-जन्तुओं से पैदा हुये उनकी पुरुषता का सबसे नया और पूर्णरूप मनुष्य है। यह कई लाख वर्ष हुये कुछ वनमानुषों से निकला था।

हैकिल ने अपनी पुस्तक संसार की पहेलियां–'Riddle of the Universe' लिखने के कुछ समय पश्चात् हक्सले की भाँति अपने

जड़वाद के विचारों में कुछ त्रुटियां अनुभव की थीं। अतः उसने कहा था कि इन बातों का कोई सन्तोषजनक हल नहीं है, "हम कहाँ से आते हैं? Whence do we come? हम क्या हैं? What are we? और हम कहां जाते हैं? and whither do we go?" उसने यह भी लिखा था कि यदि ईश्वर की सत्ता स्वीकार कर भी ली जाय तो इससे ज्ञान और ईश्वर-वाणी प्राप्त होने की सम्भावना हो सकती है।

हैक्सले और हैकिल के अतिरिक्त योरुप में कुछ फिलासफर, वैज्ञानिक और विद्वान् और भी ऐसे हुए हैं जो नास्तिकवादी थे। कुछ ऐसे हुए हैं कि जो ईश्वर और जीव के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अयोग्य बताते थे।

बुफन—Buffon, 1707-1788 A, D. यह नास्तिक था। वह कहता था कि सृष्टि के चलाने मे किसी ईश्वर नाम की हस्ती की आवश्यकता नहीं है।

बैरन-डी-हाल-बाक—Baron-d-Halbach, कहता है कि प्रकृति और शक्ति के अतिरिक्त कोई और ईश्वर नाम की शक्ति नहीं है।

मि० ह्यूम—Hume, 1711-1776, का कहना है कि तमाम संसार अवस्थाओं का समूह है। ईश्वर और जीव की कोई और अलग सत्ता नहीं है।

प्रो० मंस्टरबर्ग—Munster Berg, उसकामत था कि इच्छा ही हर एक कार्य का मूल कारण है। मनोवैज्ञानिक तत्त्व ही प्रत्येक घटना के निर्णायक-Judge हैं। गतिमान प्रकृति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

क्लीफोर्ड—W. K. Clifford, यह विद्वान् भी ईश्वर और जीव की सत्ता को अस्वीकार करता था।

जे० मेकेब—J, Mecabe, यह भी मायावादी था। यह ईश्वर और जीव की सत्ता से इन्कार करता था।

टिंडल—J, Tyndall, इसका कथन था कि समस्त शक्ति, जो वनस्पति अथवा प्राणी संसार में हैं, उन सबका केन्द्र सूर्य है। मनुष्य, पशुओं और पौदों में कोई उत्पादक शक्ति (जीव) नहीं है। समस्त शक्ति जो मनुष्य और पशु आदि में पाई जाती है, उसके उत्पन्न होने का वास्तविक कारण सूर्य है। उसका यह भी कहना था कि जिस प्रकार लोहार लोहे को पीट कर उसमें अग्नि की चमक पैदा कर देता है, इसी प्रकार वह अपने स्थूल हथोडे से प्रकाश और गर्मी दोनों पैदा कर देता है। यही साधन यदि उन्नत अवस्था में पहुंचाया जाय तो उसमें से सूर्य का प्रकाश और गर्मी उत्पन्न हो सकती है। जिस प्रकार प्रकाश और गर्मी जड़ प्रकृति से उत्पन्न हो सकती है। उसी प्रकार इस प्रकाश और गर्मी से जीवन शक्ति भी उत्पन्न हो सकती है। उन चारों तत्त्वों में भिन्न-भिन्न परिवर्तन होने से शरीर के सब चेतन और अचेतन भाग बन जाते हैं। वह ईश्वर और जीवात्मा की सत्ता को नहीं मानता था, परन्तु आगे चल कर उसने साफ तौर पर यह कह दिया था कि अभी तक कोई ऐसा तरीका नहीं निकल सका कि जिससे जीवन उत्पन्न किया जा सके।

डिडिरट—Diderot, 1712-1784 A. D, यह विद्वान् ईश्वर और जीव की सत्ता को अस्वीकार करता था।

डा० क्लार्क—W. N. Clarke, कहता है कि ईश्वर और जीव के अमर और नित्य होने के विषय में कोई संतोषजनक परिणाम नहीं मिलता।

वालटियर—Voltair, 1694-1788 A. D. कहता है कि ईश्वर और जीव की सत्ता क्या और किस प्रकार की है। इसके विषय में जानना कठिन है।

रसल—Russel, इस विद्वान् का कहना था कि ईश्वर और जीव के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता कि वह कैसे हैं।

हरबर्ट स्पेन्सर—H. Spencer, 1820-1903 A, D. इसने कहा कि हम ईश्वर और जीव के विषय में कुछ भी नहीं जानते और न ही कभी जान सकेंगे।

ड्यू-बायस-रैमाण्ड—Du Bois Remond, का कथन है कि हम न ईश्वर को जानते है, न ही उसको जानेंगे और न ही मानेंगे।

विकासवाद—Theory of Evolution

पिछले पृष्ठों मे आपने पढ़ा होगा कि अब से हजारों वर्ष पूर्व यूनान के दार्शनिक इम्पीडोक्लस–Empedokles ने जड़वाद, नास्तिकवाद और समर्थवशेष के सिद्धान्तो को अपना कर अपना प्रचार किया था। उसके कुछ समय पश्चात् वहां के एक दूसरे फिलासफर डिमोक्रिटस-Demokrites ने परमाणुवाद–Atomism का सिद्धान्त बना कर अपने कुछ नियम बनाये थे जो हम पहले लिख आये हैं। परन्तु यह बात याद रहे कि यूनान के नास्तिक दार्शनिकों का यूनान मे ही दूसरे दार्शनिक बराबर खण्डन करते रहे।

१६ वीं शताब्दी में इम्पीडोक्लस, डिमोक्रिटस और अरस्तु की विचार-धारा के आधार पर योरुप में विकासवाद के सिद्धान्तों ने जोर पकड़ना आरम्भ किया। कुछ विद्वान् अपनी २ बुद्धि के अनुसार विकासवाद को सिद्ध करने के लिए जोर लगाने लगे। इस विषय पर भिन्न भिन्न विचारों के साथ बहुत सी पुस्तकें लिखी गईं। विकासवाद का आधुनिक विज्ञान और फिलासफी से गहरा सम्बन्ध बतलाया गया। योरुपियन विकासवादियों–Evolutionists, ने विकासवाद की नीव इस प्रकार रक्खी कि संसार में बराबर परिवर्तन होता रहता है। संसार की समस्त वस्तुओं का आरम्भ में कुछ और रंग-रूप इत्यादि था। उसमें बराबर परिवर्तन और उन्नति होते २ उनके रंग-रूप इत्यादि भिन्न २ बन गये और बनते जा रहे है। मनुष्य पशु-पक्षी इत्यादि सभी इस लगातार परिवर्तन होने के कारण इस आधुनिक रंग-रूप में नजर आ रहे हैं।

योरुप में विकासवाद के विचार प्रचलित होने से पहले वहाँ के सब लोग केवल स्थिर-योनि ही मानते थे। यूनानी विकासवादी फिलॉसफ़रों से पूर्व सारे संसार में और लामार्क, Lamarck तथा डार्विन-Darwin विकासवादी फिलासफ़रों से पहले यूरोप में भी केवल एक ही स्थिर योनि मानी जाती थी। अतः सन् १७३५ ई० में स्वीडन के एक वैज्ञानिक मि० लीने-Linne ने यह लिखा था कि जगत मे इस समय इतनी ही योनियां हैं जितनी सृष्टि के आरम्भ मे थीं। एक दूसरे विद्वान् ने भी लीने का समर्थन करते हुए लिखा है कि योनियां अचल और स्थाई हैं। सृष्टी के आरम्भ में सब स्वर्ग के जीव पैदा होते है और प्रलय में उनका संहार हो जाता है, इसके पश्चात् फिर सृष्टि उत्पन्न होती है।

स्थिर योनि का प्रयोजन यह है कि ईश्वर ने जगत् में प्रारम्भ से ही सब प्रकार की अलग २ योनिया उत्पन्न की थीं-जैसे मनुष्य, हाथी, घोड़े, बैल, पशु, पक्षी, और कीड़े मकोड़े इत्यादि। योरुप में लामार्क ने अस्थिर योनि का विचार उत्पन्न किया, फिर डार्विन ने उसका विस्तार करके अस्थिर योनि के सिद्धान्त को जोर के साथ प्रचलित किया। अस्थिर योनि का अर्थ यह है कि जगत् के आरम्भ में कोई एक ही योनि थी। इसमें धीरे २ परिवर्त्तन और उन्नति होते २ लाखों वर्षों में एक विधि के साथ इनसे भिन्न-भिन्न योनियों का विकास हुआ है। योरुप के विकासवादी प्रसिद्ध वैज्ञानिक और फिलासफ़र नीचे लिखे विद्वान् माने जाते हैं—

लामार्क—Lamarck, यह फ्रान्स का वैज्ञानिक था। इसकी विचार-धारा डारविन की विचार-धारा से भिन्न है। ये कहता है कि शरीर बाहरी और भीतरी शक्तियों से बनता है। शरीर की विशेषता उसकी औलाद में आ जाती है। जैसे ऊँट के पूर्वजों के लम्बी गर्दन नहीं होती थी। उन्होंने ऊंचे वृक्षों के पत्ते खाने की कोशिश की तो उनकी गर्दनें लम्बी होती चली गई। वह लम्बी गर्दनें अब ऊंट में पाई जाती हैं। आंख, कान, नाक आदि का विकास भी इसी प्रकार हुआ है।

डार्विन—Darwin, इसने विकासवाद की थ्योरी प्रारम्भिक

जीव से लेकर मनुष्य की उत्पत्ति तक इस प्रकार वर्णन की है—

सब से पहले वह जीव जन्तु पैदा हुए जो पानी में रहते थे जैसे-मच्छ, मछली इत्यादि। उनसे जल-जीव-जन्तुओं में फेफड़े वाले जीव-जन्तु पैदा हुए। उनसे जल तथा पृथ्वी पर रहने और चलने वाले जीव-जन्तु उत्पन्न हुए, जैसे मैंढक इत्यादि—सांप, बिच्छू, गिरगट और दूध पिलाने वाले जीव-जन्तु (Mammals) पैदा हुए। दूध पिलाने वालों में से अण्डा देने वाले जन्तु पैदा हुए। फिर थैली वाले और गर्भ से उत्पन्न करने वाले जन्तु पैदा हुए। फिर मनुष्य की शक्ल के जन्तु पैदा हुए। उनमें पहले बन्दर फिर वन-मानुष पैदा हुए। इन वन-मानुषों से पतली नाक वाले, तथा उनसे पूंछ वाले वन-मानुष पैदा हुए। फिर उनसे बिना पूंछ वाले मनुष्य की शक्ल के वन-मानुष पैदा हुए। इन मनुष्य की शक्ल वाले वन-मानुषों की किसी शाखा से (जिसका अभी तक पता नहीं लगाया जा सका) वन-मानुषों के गुणों वाले मनुष्य उत्पन्न हुए। उन्हीं से बोलने वाले मनुष्यों की उत्पत्ति कही जाती है।

डार्विन अस्थिर योनियों के विकास के विषय में कहता है कि योनियां कर्मानुसार एक दूसरे से मिलती और उन्नति करती हुई पाई जाती हैं। उन्नति का कारण यह होता है कि जिस अङ्ग की आवश्यकता प्राणी को अनुभव होती है, वह उत्पन्न हो जाता है और जिस अङ्ग की आवश्यकता नहीं रहती वह नष्ट होकर उन्नत योनियां बनती जाती हैं।

डार्विन ने विकासवाद के ये तीन कारण बताये हैं—(1) Spontaneous variation (2) Struggle for existence in which the fittest survive (3) Heredity.

आगे चलकर डार्विन ने यह बात खुले तौर पर मान ली थी कि इसका कोई कारण नहीं बताया जा सकता कि ये आप से आप परिवर्त्तन क्यों होता है।

हरबर्ट स्पेन्सर—H. Spencer, 1820-1903, A D. इसने सांसारिक विकास के बारे में अपना मत इस प्रकार प्रकट किया

था-जीवन के अनुभव से पता चलता है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के सादा तत्त्व और उनकी गति मिल कर मिश्रित वस्तुएं उत्पन्न कर देती हैं। इसको यों कह सकते हैं कि सादा तत्त्व आपस में मिलकर और आगे चलकर व्यक्तिगत रूप से भिन्न २ हो जाते हैं। फिर वही वस्तुएं मिलकर अभिन्न हो जाती हैं। इस प्रकार मिल-जुल कर पूर्ण स्थिति क़ायम हो जाती है। यही विधि चलती रहती है और सृष्टि का विकास होता रहता है।

मारगन—Morgan, 1852-1936 A. D. इसकी थ्योरी आकस्मिक विकास Emergent Evolution के नाम से प्रसिद्ध है। इसके विकासवादी सिद्धान्त में लामार्क और डार्विन के प्राकृतिक विकास-Naturalistic Evolution और बर्गसन (Bergson) के रचनात्मक विकास-Creative Evolution का रंग पाया जाता है। इसका कहना है कि विकास दो शक्तियों द्वारा होता है—एक शक्ति तो पुरानी और सादा वस्तु को नई और उन्नत रूप में बदलती रहती है, और दूसरी शक्ति नई वस्तु उत्पन्न करती रहती है। इसी प्रकार सारी सृष्टि उन्नति की ओर जा रही है। विकास का सब से पहला रूप प्रकृति है। इसमें अणु-Atoms होते हैं। उन अणुओं से उन्नति होते २ जीवन-विकास होता है। जीवन-विकास से चित्त-Mind उत्पन्न होता है। यह विद्वान इस विकास के चलाने वाली किसी अन्य शक्ति को अवश्य मानता है।

एलेक्जेन्डर—Alexander, 1859-1938 A. D, इसका मत है कि सृष्टि की उत्पत्ति का असल कारण काल (Time) और विस्तार (Space) हैं। काल और विस्तार, गति (Motion) उत्पन्न करते हैं। गति से प्रकृति उत्पन्न होती है। प्रकृति से जीवन-Life, जीवन से चित्त (Mind) पैदा होता है और अन्त में चित्त से देव-Deity या ईश्वर का विकास होता है। विकास की सबसे ऊंची सीढ़ी वही है। ईश्वर सृष्टि का बनाने वाला नहीं है बल्कि वह स्वयं काल और विस्तार से उत्पन्न हुआ है।

हेक्सले और हेकिल इत्यादि विकासवादियों के विषय में हम पहले लिख आये हैं।

डार्विन आदि विकासवादियों के विकासवाद के सिद्धान्त पर कुछ लोग ऐसे प्रश्न करते हैं, जिनका विकासवादी कोई सन्तोष-जनक उत्तर नहीं दे सके—

१. हेकिल कहता है कि रीढ़ वाले (Vertebral) जन्तुओ की उत्पत्ति की पीढ़ी (शृङ्खला) तो मिलती जाती है परन्तु उनसे पहले बिना रीढ़ वाले जन्तुओं की पीढ़ी नहीं मिलती। पृथ्वी के अन्दर उनके कोई निशान या ढाँचे आदि नहीं मिलते। हेकिल ने यह तो मान लिया था कि प्राणिमात्र की उत्पत्ति का विषय अधिक कठिन है।

२. डार्विन का विकासवाद प्राकृतिक नियमों के अनुकूल सिद्ध नहीं होता।

३. संसार की तमाम वस्तुओ के विकास के साथ उनका नाश होना अनिवार्य है। जैसे—बच्चा उत्पन्न होकर बढ़ता है, जवान होकर फिर बूढा होना शुरू हो जाता है और अन्त में मर जाता है। इसी प्रकार हर एक कीड़े, मकोड़े और पशु-पक्षियों आदि पर ये दोनों नियम बराबर बराबर चल कर अपना कार्य करते रहते हैं। डार्विन के योनि से योनि निकलने (अन्तरयोनि) के विकासवाद के सिद्धान्त में नाश होना सून्य बताया गया है। ये एक बहुत बड़ी भूल दिखाई पड़ती है। एक योनि का दूसरी योनि मे बदल जाना सिद्ध नहीं होता बल्कि केवल कल्पना है।

४. आज तक सागर में मूंगे के कीड़े उसी प्रकार देखे जाते हैं जिस प्रकार वह उत्पन्न हुए थे। ये कीड़े इसी अवस्था में क्यों बाकी रह गये? उनका विकास क्यों नहीं हुआ और उन्होंने क्यों उन्नति नहीं की? किसी योनि का विकास उसी अवस्था में माना जा सकता है जबकि वह उन्नत या विकसित होने पर अपनी पहली योनि की अवस्था में बाकी न रहे। देखने में आता है कि बहुत सी योनियाँ जिस प्रकार पहले उत्पन्न हुई थीं, अब भी ज्यों की त्यों उसी रंग-रूप मे बाक़ी हैं।

५. यदि योनियों की इस बात पर कि शारीरिक विकास के साथ उसी कर्म से ज्ञान का भी विकास होता है, गम्भीरता से

विचार किया जाय तो यह बात हर जगह लागू होती दिखाई नहीं पड़ती।

नीचे कुछ उन प्रसिद्ध विद्वानों, फिलॉसफरों और वैज्ञानिकों की विचार-धारा लिखी गई है कि जो ईश्वर और जीव को स्वतन्त्र और नित्य मान कर डार्विन आदि के विकासवाद का खण्डन करते रहे हैं—

सर ऑलिवर लाज—Sir Oliver Lodge ने कहा कि डार्विन के विकासवाद की थ्यौरी मुझे अपील नहीं करती। उसने अपनी पुस्तक "जीवन और प्रकृति"—"Life and Matter" में लिखा है कि जीवन प्रकृति और गति की शक्ति से बाहर है। सूक्ष्म कला चतुरता से उन्नति करने का परिणाम नहीं है। वैज्ञानिकों को जीवन के विषय में कुछ भी तो ज्ञान नहीं है। इस प्रश्न के उत्तर में कि विज्ञान जीवन का ज्ञान है या नहीं, मेरा यही उत्तर है कि जो उत्तर ड्यूबोयरेमड ने दिया था कि हम जीवन के बारे में कुछ नहीं जानते और न आगे कभी जान सकेंगे। लॉज कहता है विज्ञान का काम तो केवल यह है कि जो कुछ हुआ है उसे बतलादे। निषेध करना साइन्स का कार्य नहीं है। उसने लिखा है कि डार्विन ने यह तो बतला दिया कि जीव अपनी सत्ता स्थिर रखने के लिए परिश्रम करता है—Survival of the Fittest, किन्तु यह नहीं बतलाया कि विकास होने और परिश्रम करने का विचार उसमें कहाँ से आया। इसके अतिरिक्त लॉज ने डार्विन की विकासवाद की थ्योरी में और भी कई एक त्रुटियाँ बतलाई हैं और कहा है कि इन त्रुटियों का आज तक कोई सन्तोष-जनक हल नहीं मिल पाया और न ही भविष्य में पाया जा सकेगा। इस विद्वान् ने यह भी लिखा है कि मस्तिष्क ही चित्त है, मस्तिष्क के नष्ट हो जाने पर चित्त का भी नाश हो जाता है। यह बात गलत है कि चित्त का नाश हो जाता है। नाश कदाचित नहीं होता, वह शेष रहता है। वह इस लिए प्रकट नहीं होता क्योंकि मस्तिष्क जिसके द्वारा वह प्रकट हुआ करता था, नष्ट हो गया। मस्तिष्क तो चित्त के कार्य करने का एक औजार है। शरीर में जो चेतना है वह शरीर से अलग और शरीर को चलाने वाली एक उच्च वस्तु है। शरीर के नाश हो जाने पर वह शेष रहती है। मर जाने पर चेतना या जीवात्मा नहीं मरता।

जीवात्मा विना शरीर के भी रह सकता है। इसलिए मानना पड़ता है कि जीवात्मा अमर है। प्राचीन समय से जो जीवात्मा के अमर होने का सिद्धान्त चला आ रहा है, मैं उससे सहमत हूँ। मरने के वाद भी जीवात्मा के साथ स्मृति, शील, स्वभाव, शिक्षा चरित्र और प्रेम—यह सब गुण रहते हैं। ("Survival of Man", by Sir Oliver Lodge.)।

बालफोर—Balfour इस विद्वान ने सर लॉज का पूरे तौर पर समर्थन किया है।

डा० वालैस—Dr. Wallace, यह विद्वान विकासवादी तो था किन्तु वह डार्विन की थ्योरी को स्वीकार नहीं करता था। उसका कहना था कि योनि के विकास के साथ ज्ञान विकास भी होता है। उसने लिखा है कि यह वात देखने और पढ़ने में आती है कि वेदो की रिचाओं को सरल और उचित भाषा मे वर्णन करने वाले वह प्राचीन दिमाग़ किसी दशा में भी हमारे अच्छे से अच्छे और वडे से वड़े पंडितों और कवियों अर्थात् मिल्टन और टैनिसन् से कम नहीं थे। भारतवर्ष की प्राचीन सूक्ष्म कलायें और इमारत सम्बन्धी शिल्प-विद्यायें हमारी आज कल की सूक्ष्म कलाओं और शिल्प-विद्याओं से किसी अवस्था मे भी कम नहीं थीं। इस लिए यह कहना पड़ता है कि कर्मपूर्वक ज्ञान वृद्धि नहीं होती। डा० वालैस कहता है कि चेतना प्रकृति से पैदा नहीं हो सकती। चेतना स्वतन्त्र और प्रकृति से अलग पदार्थ है। उसने लिखा है कि वैज्ञानिक लोग अभी तक यह तो समझ ही नहीं सके कि वृक्षों में जल किस प्रकार ऊपर चढ़ता है, भला फिर वह जीवात्मा जैसे गहरे विचारों को कहाँ जान सकते हैं।

डा० फ्लेमिंग—Dr. Fleming यह २०वीं शताब्दी का एक उच्च कोटि का वैज्ञानिक था, यह इंगलैन्ड का रहने वाला था। उसने सन् १९१४ ई० में अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया था कि ब्रह्माण्ड और उसके ऊपर एक चैतन्य और ज्ञानवान शक्ति है, तथा एक शक्ति ऐसी है जो हमारे शरीर मे है किन्तु वह शरीर से अलग है। वह शक्ति जो शरीर में है, हमारी नहीं है। जब हम कोई अच्छा काम

करते हैं तो वह शक्ति हमें खुशी देती है। जब हम कोई बुरा काम करते हैं तो वह शक्ति हमको व्याकुल बना देती है। इस शक्ति का नाम ही अन्तःकरण है। नास्तिक और वैज्ञानिक इस शक्ति को नहीं पहचान सके। उसने यह भी कहा कि जब हम गहरी दृष्टि से सांसारिक सम्बन्ध इत्यादि को देखते हैं तो हमें लाचार होकर ईश्वर की सत्ता माननी पड़ती है। विज्ञान और धर्म एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। जो यह मानते हैं, वह भूल करते हैं। ऐसा मानना ही उचित है कि एक बड़े राज्य के दो विभाग हैं। एक बाहरी विभाग दूसरा आन्तरिक। बाहरी विभाग में मनुष्य प्राकृतिक नियमों की जांच करता है और एक श्रेष्ठ शक्ति को देखता है। आन्तरिक विभाग में मनुष्य की आत्मा दिखाई देती है। जो उच्च ज्ञान से काम ले रही है। भौतिक अथवा रसायनिक विज्ञान मनुष्य को सन्तुष्ट नहीं कर सकता। विज्ञान से बढ़कर हर एक मनुष्य के हृदय में कोई और वस्तु है, जो मनुष्य को उच्च और मनुष्य बनाने वाले उद्देश्य की ओर ले जाती है। बस वही शक्ति जीवात्मा है जो नित्य और अमर है।

एडवर्ड हुल—Edward Hull, ये विद्वान् कहता है कि भूगर्भ विद्या-Geology से जगत् के चलाने और बनाने वाले की सत्ता सिद्ध होती है। उसने लिखा है कि मेरे ६० वर्ष के अनुभव ने मुझे ये ही विश्वास दिलाया है और भूगर्भ विद्या से भी यही पता चलता है कि एक समय ऐसा अवश्य था कि जब किसी प्रकार का जीवन पृथ्वी पर नहीं था। इसके पश्चात् जीवन मौजूद हो गया। इससे ऐसा पता चलता है कि जीवन किसी न किसी समय अवश्य प्रारम्भ हुआ था। किन्तु यह बात भी याद रखने योग्य है कि अभाव से भाव पैदा नहीं होता। अभाव से अभाव ही पैदा होता है। इसलिए यह बात अवश्य माननी पड़ती है कि जगत के रचने वाली कोई ज्ञानवान और सर्वशक्तिमान सत्ता अवश्य मौजूद है। उसी ने इस प्राकृतिक संसार को रचा है। कोई भी ऐसा प्रमाण नहीं दिया जा सकता कि जिससे जीवित तत्व अजीवित तत्व से पैदा हो जाता हो। जहाँ जीवन नहीं है वहाँ से जीवन उत्पन्न नहीं हो सकता और न ही किया जा सकता है। जगत के कार्यों और उसके नियमानुकूल चलने से जो मुझे अनुभव हुआ है, वह यह है कि तमाम इच्छाओं, को बस में

रखने की शक्तियों तथा बुद्धि और आत्मा में अपना अलग २ भाव पाया जाता है। छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी वस्तुओं के सम्बन्ध में विचार करने से यह पता चलता है कि संसार में एक ऐसी शक्ति अवश्य है जो इस संसार को काबू में रखने वाली और नियमानुकूल चलाने वाली है। यह विश्वास पूर्ण रूप से सिद्ध होता है कि जगत मे एक सर्व शक्ति मान और सर्वज्ञ ईश्वर की हस्ती मौजूद है।

प्रो० इयरमैन—Prof. Erman, यह विद्वान् भी कर्म पूर्वक ज्ञान वृद्धि नहीं मानता था।

मि० लिंक—Mr, Link, यह योरुप का एक प्रसिद्ध विद्वान था। उसने सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में भारतीय और योरुपियन विद्वानों की पुस्तकों को पढ़कर मनन किया और अपना मत इस प्रकार प्रकट किया—"सृष्टि की उत्पत्ति आकस्मिक Accidental तौर पर व्यस्तता–Chaos से पैदा होकर चालू नहीं हो सकती और ना ही इस प्रकार प्राणियों से भर सकती है जैसा कि विकासवादी कहते हैं। यह विद्वान कर्मपूर्वक ज्ञान वृद्धि नहीं मानता था। उसने कहा कि जिस भौतिक विज्ञान की ओर इस समय भौतिक वैज्ञानिक वापिस आ रहे हैं क्या वह भौतिक विज्ञान मनुस्मृति में अब से कम से कम ६००० वर्ष पूर्व वर्णन नहीं कर दिया गया था ? मनुस्मृति में साफ तौर पर यह वतला दिया गया था कि आकाश–Ether से वायु, वायु में परिवर्तन होकर अग्नि और वायु तथा अग्नि के मेल से जल उत्पन्न होता है। जल से ही समस्त प्राणी पैदा होते है। भगवत पुराण के अनुसार अति सूक्ष्म तत्व से ओषधि बीज रूप में उत्पन्न हुई। वृक्षों से जीवन उन विलक्षण जन्तुओं में पहुंचा जो जल में चिकनी तर मिट्टी या पंक Slime से उत्पन्न हुए थे। जीवन भिन्न-भिन्न प्रकार के बहुत से रूपों और जन्तुओं में आया। जैसे–ओषधि से कृमि–Worms, कृमि से कीट–Insect। उससे साँप और साँप जैसे ही दूसरे जन्तुओ में आया। उनसे कछुए आदि में आया। फिर उनसे पशुओं और जंगली पशुओं मे पहुचा। मनु ने यह भी लिखा है कि जो जन्तु उत्पन्न हुए वह अपने पूर्वजों के गुण प्राप्त करते चले गये। उससे ही सब प्राणियों में अधिकतर योग्यता आती चली गई। मि० लिंक पूछता है कि डार्विन

की विकासवाद की थ्योरी और भौतिक विज्ञान ने अब तक इससे अधिक और क्या कहा है ? उन प्राचीन विद्वानों ने वह असाधारण ज्ञान उस समय कहां से प्राप्त किया था ? उसने कहा कि मैं तो यह कहता हूँ कि जो प्रकृति का उचित ज्ञान उन प्राचीन भारतीय विद्वानों को उस समय था वह ज्ञान हमें आज तक भी प्राप्त नही हो सका है।

एच० बर्गसन्—H Bergson 1859-1941—इस दार्शनिक ने स्पेन्सर की थ्योरी की हँसी उड़ाते हुए लिखा है कि स्पेन्सर विकास की गहराई तक न पहुच कर केवल धरातल (सतह) पर ही घूमता रहा। उसने वास्तविक तत्त्व को वर्त्तमान स्थिति मे मान कर पहले तो उसको टुकड़ों मे विभाजित किया, फिर उन टुकड़ों को बारीक बना कर हवा में उड़ाया। उन हवा मे उड़े हुए टुकडो को फिर इकट्ठा किया। उसने लिखा है कि स्पेन्सर के इस कथन से दार्शनिक तौर पर कोई बात सिद्ध नहीं होती। स्पेन्सर ने विकास के भिन्न-भिन्न अङ्गों के नमूने तो बना दिये परन्तु वह यह न बता सका कि ऐसा क्यों हुआ। इस विद्वान ने लॉ मार्क और डार्विन के विकासवाद का खंडन करते हुए कहा कि लॉ मार्क और डार्विन ने जो आरम्भिक जीव-जन्तुओं को बढ़ाते-चढ़ाते मनुष्य तक पहुंचा दिया है, गलत है। क्योकि यह बात समझ मे नहीं आती कि जब छोटे-छोटे जीव-जन्तु बहुत पहले अपने वातावरण (Environment) के अनुकूल हो चुके थे, तो फिर उनको भिन्न-भिन्न पशु-पक्षियों और वन-मानुष आदि के रूप लेकर वर्त्तमान मनुष्य के रूप मे आने की क्या आवश्यकता थी ?

बर्गसन ने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया कि सांसारिक विकास को कोई शक्ति चला रही है, जिसका नाम एलन वाइटल—Elanvital है। इसका रूप अलौकिक और प्राकृतिक है। वही समस्त विकास करता है। इसी का दूसरा नाम ईश्वर है। यह शक्ति अपनी इच्छानुसार एक चित्रकार की भाँति सृष्टि उत्पन्न करती है। बर्गसन की यह थ्योरी रचनात्मक विकास Creative Evolution कहलाती है।

ह्वाइट हैड—White Head 1861-1947, इस दार्शनिक ने विकासवाद पर पूरा ध्यान देकर यह कहा कि आकस्मिक विकास—

Emergent Evolution या आकस्मिक प्रकृतिवाद-Emergent Materialism का सिद्धान्त जो अब तक प्रचलित हुआ है और जिस पर आधुनिक काल के विकासवादी अधिक ज़ोर देकर यह कहा करते है कि प्रकृति आकस्मिक रीति से भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेती है। उनके सिद्धान्त से सन्तोष नहीं होता, क्योंकि आकस्मिक शब्द एक समस्या बन कर रास्ते मे खड़ी हो जाती है। जैसे ईश्वरवादी ईश्वर को अन्ध-विश्वासी बन कर मान लेते हैं, ऐसे ही विकासवादी भी भौतिक वैज्ञानिकों की भाँति सब कुछ मान लेते है। वास्तव में ऐसी प्रकृति का स्वयं विकास होना असम्भव है। विकासवादियों का यह सिद्धान्त कि प्रकृति कूद कर चेतन बन जाती है तथा आगे चल कर बुद्धि का रूप धारण करके ज्ञानवान हो जाती है, एक चमत्कार बन जायेगा। यदि ऐसा न होगा तो प्रकृति की आधुनिक परिभाषा को बदलना पड़ेगा और इस समस्या का हल करने के लिये हमें प्रकृति को कोई और ही रूप देना पड़ेगा।

अब कुछ योरुप के उन दार्शनिक और वैज्ञानिकों की विचार-धारा से संक्षेप मे परिचय कराया जाता है जिन्होंने या तो ईश्वर और जीव की अलग अलग स्वतन्त्र और नित्य सत्ता को माना है या जो अद्वैतवाद के समर्थ रहे हैं।

बोट मली—ने भी हैकिल के द्रव्यवाद का खंडन किया और कहा कि हैकिल का यह द्रव्यवाद अधूरा और पुराना Out of date है। आगे चलकर उस विद्वान ने लिखा है कि विज्ञान हमे 'कैसे' का उत्तर देता है, 'क्या का उत्तर नहीं देता। विज्ञान यह तो बता सकता है कि कोई घटना किस प्रकार हुई। मगर यह नहीं बता सकता है कि क्यों हुई। 'क्यो' का उत्तर विज्ञान की सीमा से बाहर है। 'क्यो' का उत्तर दर्शनPhilosophy ही दे सकता है।

मिस्टर मिल Mill और प्रो० टेट Prof. Tait—ने भी हैकिल के सिद्धान्तों का खंडन करते हुये सर लॉज के विचारों का समर्थन किया है।

हविसन (Hewison)—1834-1916 A D. यह अमरीका

का एक प्रसिद्ध दार्शनिक था। वह लिखता है कि विकासवाद Evolution जीवन आरम्भ और चित्त के बारे में संतोषजनक उत्तर नहीं देता। मेरा अनुभव तो यह है कि इस संसार में बहुत सी शक्तियां और जीव आत्माएं मौजूद है। ईश्वर उनका प्रधान है। जीव-आत्मा अमर और नित्य हैं। उनको ईश्वर ने नहीं बनाया। वह सदा से ईश्वर के साथ २ चले आ रहे हैं। वह काम करने में स्वतन्त्र है। समस्त जीवात्माएँ एक ही जाति के हैं। इस विद्वान के विचार कुछ निर्पेक्ष से मिलते जुलते हैं।

डैकार्टस—R. Descartes 1596—1650 A, D, योरुप का यह प्रथम दार्शनिक था, जिसने वहां अन्ध विश्वास को समाप्त करके हर बात का दार्शनिक ढंग से निश्चय करने का रिवाज डाला। उसने अफलातून और अरस्तु के सिद्धांतों का (ईश्वर जीव सम्बन्धी) समर्थन किया। उसने कहा कि जीवात्मा शरीर से भिन्न एक चेतन पदार्थ है। प्रकृति बेजान और बेज्ञान है। जीवात्मा अमिश्रित है उसके टुकड़े नहीं हो सकते और न ही वह नाप तोल में आ सकती है।

बेली—Bayle 1647—1706 A. D. इसका भी वही सिद्धांत था। जो डैकार्टस था। यह विद्वान जीवात्मा की नित्य और अमर सत्ता मानता था।

लेबनीज—Leibniz 1646—1716 A. D. इसने भी डैकार्टस और स्पीनॉजा का समर्थन करते हुये कहा कि मोनेड Monad अर्थात जीवात्मा प्राकृतिक नहीं है। मगर यह ऐसा मानता है कि जीवात्मा को ईश्वर ने उत्पन्न किया है। ईश्वर असीम और सम्पूर्ण Absolute है। ईश्वर ही संसार का रचने वाला है। संसार में दुःख सुख दोनों मौजूद हैं। जीवात्मा अपने कर्मानुसार सुख दुःख पाता है।

कुछ प्रसिद्ध द्वैतवादी विद्वान यह हैं:—

स्पीनाजा—Spinoza 1632—1667 A D. इस दार्शनिक का मत था कि ईश्वर या नेचर एक वस्तु है। यह जगत ईश्वर का विकसित रूप है। संसार में केवल एक ही द्रव्य है और वह है ईश्वर

ईश्वर और उसके गुण भी अनादि और अनन्त हैं। ईश्वर के दो गुणों से यह ससार उत्पन्न हुआ है-एक चेतना और दूसरा विस्तार। चेतना से जीव उत्पन्न होते हैं और विस्तार से समस्त संसार पैदा होता है। प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह बुद्धि और ज्ञान से भलाई बुराई और संसार की समस्त वस्तुओं की जांच करे। चूंकि बिना ईश्वर को जाने कोई उचित जांच नहीं कर सकता, इस लिये मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह ईश्वर को जाने। ईश्वर को जान लेने से ही मनुष्य मात्र के आपसी सम्बन्धों को जाना जा सकता है।

फिक्टे—Fichte 1762—1814 A. D. यह जर्मनी फिलॉसफर था। यह अद्वैतवादी Absolutist था। वह कहता है कि जीवात्मा अर्थात ईगो Ego जगत को केवल बनाता ही नहीं, वरन वह उत्पादक भी है। ईगो के अतिरिक्त किसी और पदार्थ की सत्ता नहीं। ईगो का स्वभाव है कि अपने ज्ञान में अनात्मा को पैदा करके उसे अपने से प्रथक समझे। यह प्रथक समझना ही भ्रम है। वास्तव में कोई वस्तु प्रथक नहीं है। परमात्मा को भिन्न समझना भूल है।

हीगल—Hegel 1770—1831 A. D. यह जर्मन फिलासफर था। यह भी अद्वैतवादी था। यह कहता है कि निर्पेक्ष ही हमारे ज्ञान का विषय है। क्रिया और जीवन निर्पेक्ष ही हैं। जीवन बुद्धि का प्रकाश है। जीवन के सारे पदार्थ उसी Absolute के प्रकाश हैं। जीवात्माएं भी निर्पेक्ष ईश्वर के भांति भाति के रूप हैं। संसार में केवल एक ईश्वर या निर्पेक्ष की ही सत्ता है।

शेलिंग—Schelling 1775-1854—यह भी अद्वैतवादी दार्शनिक था। इसका भी वही मत था जो फिक्टे का था। अन्तर केवल इतना है कि यह कहता है कि सत्य पदार्थ न आत्मा है और न अनात्मा, वरन् एक और वस्तु है, जिसका नाम ज्ञान या बुद्धि Intelligence है। यही आत्मा और अनात्मा दोनों का, निकास है। इसे ही निर्पेक्ष Absolute कहते हैं।

राइस—Royce—1855-1916 A. D.— ४ जौलाई

सन १७६६ को अमेरिका स्वतन्त्र हुआ। इसके पश्चात् अमेरीका में कुछ विद्या का ज़ोर बढ़ना आरम्भ हुआ। १६ वीं शताब्दी में वहां दार्शनिक विचारों की लहर उत्पन्न हुई अत यह अमेरीका का एक प्रसिद्ध दार्शनिक माना जाता है। यह दार्शनिक निर्पेक्षवादी था, किन्तु इसकी विचार धारा दूसरे निर्पेक्षवादियों से कुछ भिन्न थी। उसका कथन है कि विज्ञान हमें जीवन की वास्तविकता का पूर्ण ज्ञान नहीं कराता और न ही वह असिल तत्वों का भेद खोलता है। हम ईश्वर को अपनी आत्मा में योग द्वारा उसके गुणों को देख कर अनुभव कर सकते हैं। विज्ञान ईश्वर का विषय नहीं है। आगे चल कर वह लिखता है। कि अच्छे कार्य वह हैं, जिनसे केवल अपना ही भला न हो कर मनुष्य मात्र का भला हो। या यों कहिये कि जिसमे दूसरों को हानि न पहुचे।

क्रोस—Croce 1866-1952 A. D. और जेन्टाइल—Gentile 1875-1944 A, D. यह दोनों इटली के प्रसिद्ध दार्शनिक थे। क्रोस ने जडवाद का खंडन किया और यह बतलाया कि चित्त-Mind या शक्ति-Spirit ही केवल मूल तत्त्व है, उससे ऊपर कोई मूल-तत्त्व नहीं है। जेन्टाइल ने क्रोस के कुछ विचारों का विरोध किया और कहा कि आत्म-चेतना-Self consciousness ही मूल-तत्त्व है। यह दोनों दार्शनिक निर्पेक्षवादी थे।

नीचे कुछ उन प्रसिद्ध वैज्ञानिकों, विद्वानों और दार्शनिकों की विचार-धारा से परिचय कराया जाता है जो परमात्मा और जीव की अलग अलग स्वतन्त्र नित्य और अमर सत्ता में विश्वास रखते हैं—

लॉक—Locke-1632—1704 A. D. यह एक अंग्रेज दार्शनिक था। वह ईश्वर, जीव और प्रकृति की अलग अलग सत्ता मानता था। वह कहता है कि ईश्वर संसार का रचने वाला है। सृष्टि की रचना को देख कर उस की सत्ता भली भांति सिद्ध होती है। जीवात्मा का सारा ज्ञान अनुभव से प्राप्त होता है। प्रकृति आकार, विस्तार आदि गुणों का आधार है। सम्वेदन से उसका ज्ञान होता है।

लॉक—Locke—1632-1704 A. D. यह एक अंग्रेज दार्शनिक था। वह ईश्वर, जीव और प्रकृति की अलग-अलग सत्ता मानता था। वह कहता है कि "ईश्वर संसार का रचने वाला है। सृष्टि की रचना को देखकर उसकी सत्ता भलि भाँति सिद्ध होती है। जीवात्मा का सारा ज्ञान अनुभव से प्राप्त होता है। प्रकृति आकार, विस्तार आदि गुणों का आधार है। सम्वेदन् से उसका ज्ञान होता है। जीवात्मा के विषय में हमें इतना ज्ञान है कि प्रत्यक्ष, स्मृति सुख और दुःख आदि का वह श्रोत है। द्रव्य का शुद्ध स्वरूप हम नहीं जानते। जीवात्मा की सत्ता पर संशय करने से ही उसकी सत्ता सिद्ध होती है"।

सर आइजक न्युटन—Sir Isaac Newton 1642-1727 A D, यह एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक था। वह ईश्वर, जीव और प्रकृति को नित्य मानता था। उसने अपनी पुस्तक प्रिन्सिपिया-Principia में ईश्वर के विषय में अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है कि समस्त संसार-जिसका मैंने स्वाध्याय करके बहुत से नियम निश्चित् किये हैं, किसी सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान और सर्वज्ञानवान का रचा हुआ है। वह रचने वाला और जीवात्मा अमर और नित्य है।

बर्कले—Berkeley 1685-1753 A. D. यह फिलासफर आयरलैंड का रहने वाला था। यह भी ईश्वर और जीवात्मा की स्वतन्त्र सत्ता में विश्वास रखता था। वह प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानता था। उसका मत था कि जीवात्मा अमिश्रित पदार्थ है। इसलिये उसके टुकडे नहीं हो सकते। जीवात्मा अल्पज्ञ है और गिनती में असंख्य है। जीवात्मा का सदा शरीर से ही सम्बन्ध रखना आवश्यक नहीं। शरीर के नाश हो जाने पर जीवात्मा शेष रहता है, क्योंकि वह अमर है। ईश्वर की हस्ती उसके गुणों और कार्यों को देख कर भलि भाँति सिद्ध होती है। ईश्वर ही जगत् का निमित्त कारण-Creater है। वह सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञानी है।

कैन्ट—Kant 1724-1804-A. D. यह योरुप का एक प्रसिद्ध फिलासफर था उसने ह्यूम की फिलासफी का खंडन किया। उसे योरुप में नवीन दर्शन की नींव रखने वाला कहा जाता है। कैन्ट

ने अपने से पहले सभी दार्शनिकों के सिद्धान्तों को पढ़ कर मनन किया। अतः ईश्वर जीव और प्रकृति के बारे में उसने अपना यह मत प्रकट किया कि मनुष्य, ईश्वर, जीव और प्रकृति में विश्वास किये बिना कोई चारा नहीं रहता। सत् पदार्थों की जानकारी के लिये हमें प्रकृति की शरण लेनी पड़ती है। क्योंकि आत्मिक शक्तियों में बुद्धि नहीं है, वरन कृति (इच्छा) ही प्रधान है। इसी पर सब दूसरी शक्तियों का आधार है। इसी से आचार और धर्म की रक्षा होती है। परमात्मा की हस्ती को वह नित्य और स्वतन्त्र जान कर कहता है कि परमात्मा ही जगत का रचने वाला और कर्म फल दाता है। ईश्वर, जीव और प्रकृति निःसन्देह नित्य और अमर हैं।

आर्थर शोपन हावर—Arthur Schopenhauer 1788-1860 A. D. यह प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक था। यह उपनिषदों का बडा भक्त था। उसका कहना था कि संसार में सुख और शान्ति देने वाले उपनिषद ग्रन्थों से सुन्दर कोई ग्रन्थ नहीं। उपनिषदों से मुझे जीवन में शान्ति मिली है और यही मरते समय मेरी शान्ति के श्रोत होंगे। उसका कहना था कि जीवन इच्छाओं का ही प्रकाश है। भूल दुःखों की जड है। जगत् और जीवन दोनों दुःखों से भरे हैं। जीवन का प्रयोजन जीवन को बढाना नहीं वरन जीवन को बन्धनों से छुडाना है। इच्छाओं के आधीन होना वीरता नहीं, वरन इच्छाओं को मारना ही वीरता है। संसार में इच्छाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। समझदार मनुष्य ही इच्छाओं को मार सकता है। आत्म हत्या पाप है। वह आत्मा और परमात्मा की नित्य और अमर सत्ता मानता था।

सर विलियम क्रुक्स—Sir W. Crookes—यह इंगलैंड का बीसवीं शताब्दी का एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक था। उसका कहना है कि मैंने विज्ञान में तीस वर्ष तक खोज की है। विज्ञान की सीमा से बाहर एक ऐसी शक्ति सिद्ध होती है जो ज्ञानवान है। वह शक्ति प्रत्येक प्राणी में पाई जाती है और वह नित्य और अमर है।

प्रो० कोहन—Prof. Cohen 1842-1918 A. D. प्रकृति से जीवन उत्पन्न करना असम्भव है।

मिस्टर मेयर—Mr. F. W. H. Mayers-इसने अपनी पुस्तक 'मनुष्य के वक्तव्य' 'Human Personality' में लिखा है कि मेरे ४० साल के अनुभव से ऐसा ज्ञात हुआ है कि मनुष्य का जीवात्मा मरने पर बाकी रहता है। जीवात्मा का नाश नहीं होता। मृत्यु के पश्चात् भी जीवात्मा में अनुभव, स्मृति, मन और सदाचार सम्बन्धी बातें बाकी रहती हैं। मरने के बाद उसके वही गुण रहते हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि स्थूल शरीर नहीं रहता।

प्रो० शानस्टोन—Prof. Shan Stone-1906 A,D. इस विद्वान् ने योरुप के लगभग सभी दार्शनिकों और वैज्ञानिकों की विचार धारा के तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात अपना मत इस प्रकार प्रकट किया था—

"आज तक बहुत से वैज्ञानिक जीवन उत्पन्न करने के विषय में बहुत कुछ लिखते आये हैं। कुछ ने जीवन उत्पन्न करने का परिश्रम भी किया है किन्तु उनमें से एक भी तो जीवन उत्पन्न करने में सफल नहीं हो सका। प्रकृति से जीवन कदाचित उत्पन्न नहीं हो सकता। ईश्वर और जीवात्मा स्वतन्त्र और नित्य है।

डा० जैप–Dr. Jap—जो लोग प्रकृति से जीवन उत्पन्न करने की बातें करते हैं वह स्वयं धोके मे हैं और दूसरों को धोका देना चाहते हैं।

मि० डंकन–R. K. Duncan-1911 A. D. जीवन प्रकृति से कदाचित् उत्पन्न नहीं हो सकता।

प्रो० जी० स्मिथ–Prof G. Smith—यह कहता है कि कोई प्रमाण ऐसा नहीं दिया जा सकता कि चेतन वस्तु अचेतन से उत्पन्न हुई हो। जड़ से चेतन उत्पन्न हो ही नहीं सकता। एक शक्ति ज्ञानवान और सर्वशक्तिमान् ऐसी है जो इस संसार को चलाने वाली है।

डा० मोमैरी—Dr. Momerie—यह २० वीं शताब्दी का प्रसिद्ध दार्शनिक था। यह लिखता है कि ईश्वर और जीवात्मा के अमरत्व को सभी लोगों को स्वीकार करना चाहिये। ईश्वर और

जीवात्मा के अमरत्व को न मानने से ईश्वर का अपमान होता है। अकाल मृत्यु हो जाने पर पुनर्जन्म अवश्य होता है।

डा० साइम—Dr. Syme, यह विद्वान् ईश्वर और जीव की अमर और नित्य सत्ता तथा आवागमन को मानता था।

मि० न्युमैन स्मिथ—Mr. Newman Smith इस विद्वान् ने लिखा है 'हमारा विश्वास है कि जीवात्मा प्राकृतिक नहीं है। इसी लिये उसका नाश भी नहीं हो सकता"।

मि० एच सोले—Mr. H. Solly इसने अपनी पुस्तक 'अपने को पहचानो' 'Know Thyself' में लिखा है कि जीवात्मा और शरीर का सम्बन्ध सर्वथा अलग अलग है। शरीर छोड़ने पर जीवात्मा बाकी रहता है, क्योंकि वह नित्य और अमर है।

मि० इ कारपेन्टर—Mr. E. Carpenter कहता है कि जीवात्मा बहुत ही सूक्ष्म है, इसकी सत्ता से इन्कार नहीं किया जा सकता। शरीर नष्ट होने वाला है, किन्तु जीवात्मा अमर है। जीवात्मा का पूरा वर्णन करना हमारे लिये कठिन है। यह विद्वान् पुनर्जन्म में भी विश्वास करता था।

मि० लॉज़—Mr Loze-1706-1780 A. D. मि० डबलू जेम्स Mr. W. James-1842-1910 A. D., मिस्टर ग्रीन Mr Green-1836-1882 A. D , मिस्टर ब्रैडले Mr. Bradley-1846-1924 A. .D., मि० बोसन क्वैट-Mr. Bosanquet 1848-1923 A. D., मि० टेगार्ट-Mr. Taggart-1866-1925 A. D., मि० पैक्नर-Mr. Pechnar, मि० होम्स-Mr. Holms, मि० हैनेस-Mr. Hayness. मि० डिकिन्सन Mr. Deckinson, इत्यादि वैज्ञानिकों और दार्शनिकों ने भी अपने भिन्न-भिन्न विचारों के अनुसार ईश्वर और जीव की स्वतन्त्र हस्ती मानते हुए उन्हें अमर, नित्य और अविनाशी माना है।

नीचे कुछ नास्तिक और आस्तिक विचार-धारायें पाठकों के निर्णय के लिये रक्खी गई हैं—

नास्तिक	आस्तिक
१ ईश्वर को मानने से मनुष्य की स्वतन्त्रता जाती रहती है।	१ ईश्वर को मानने वालों का अन्तिम फल मुक्ति है। मुक्ति स्वतन्त्रता का केन्द्र है। ईश्वर से अगाध प्रेम करने से आनन्द प्राप्त होता है। ईश्वर के मानने से मनुष्य की स्वतन्त्रता समाप्त नहीं होती बल्कि प्राप्त होती है।
२ जब ईश्वर की सत्ता इन्द्रिय-हीन है तो उसका ज्ञान होना असम्भव है।	२ ईश्वर की सत्ता उसके विचित्र ब्रह्माण्ड, उसके रंग रूप और नियमानुसार कार्यों को देख कर बुद्धिमान भलि भांति अनुभव कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त ईश्वर के ज्ञान-प्राप्ति के साधन यह इन्द्रियाँ नहीं हैं बल्कि जीवात्मा है। योगाभ्यास आदि क्रियाओं से जीवात्मा उसका प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है।
३ जब ईश्वर न जानने योग्य, (अज्ञेय) कहा गया है, तो जानने का परिश्रम करना व्यर्थ है।	३ सृष्टि की बनावट, रंग रूप इत्यादि देख कर सृष्टि कर्त्ता (ईश्वर) का बोध आसानी से हो जाता है। जैसे आकाश—Ether, वायु, अणु, परमाणु और कण आदि इन्द्रिय-रहित है परन्तु उनका निश्चय बुद्धि से हो जाता है। इसी प्रकार ईश्वर का ज्ञान होने में ही क्या बाधा है ?
४ ईश्वर को सगुण कहा जाता है। हर एक सगुण वस्तु नाशवान होती है। इस लिये ईश्वर भी नाशवान मानना पड़ेगा।	४ सत्व, राजस, तामस गुणों वाली प्रकृति ही जब नाशवान नहीं है तो ईश्वर सगुण होने से नाशवान कैसे हो सकता है। सगुण वस्तु के नाशवान होने का कोई नियम नहीं है। ईश्वर न्याय, दया इत्यादि गुणों के रखने से सगुण और अजर, अमर आदि गुण रखने से निर्गुण कहलाता है।
५ जगत नित्य है। इसी प्रकार चला आ रहा है और इसी प्रकार चलता रहेगा। संसार	५ जगत मिश्रित वस्तुओं के समूह का नाम है। हवा और अग्नि भी बहुत से परिवर्तनों के पश्चात् बनती हैं। चूंकि संसार की समस्त वस्तुयें मिश्रित हैं इसलिये वह कभी न कभी

नास्तिक	आस्तिक
की समस्त वस्तुयें अपने स्वभाव से बनतीं और बिगड़ती हैं।	अवश्य बनी हैं। मिश्रित वस्तुयें नित्य नहीं हुआ करतीं बल्कि नाशवान होती हैं। इसालिये जगत नित्य नहीं बल्कि रचा हुआ है। जब रचा हुआ है तो इसके रचने वाला कोई न कोई अवश्य है।
६ जगत में कोई नियम दिखाई नहीं देता। तमाम घटनायें आकस्मिक—Accidental दिखाई पड़ती हैं।	६ संसार एक नियम से बँधा हुआ है। आकस्मिक तौर पर कभी कुछ नहीं होता। किसी चीज़ पर दृष्टि डाल लीजिये, नियम से बंधी हुई दिखाई पड़ेगी।
७ जो गुण ईश्वर में आस्तिक कहते हैं वही सारे गुण प्रकृति में मौजूद हैं। नोटः—ईश्वर जीव और प्रकृति के विषय में अधिक जानने के लिये वैदिक-धर्म का अध्याय देखिये।	७ प्रकृति जड़ और बे ज्ञान है। जब तक चेतन ईश्वर उसमें गति उत्पन्न नहीं करता, वह कुछ भी तो नहीं कर सकती। प्रकृति जब सृष्टि अवस्था में होती है, तब काम करती है और जब प्रलय अवस्था में होती है, तब आराम करती है। जब प्रलय समाप्त होकर सृष्टि रचने का समय आता है तो ईश्वर अपनी शक्ति से परमाणुओं में हल-चल पैदा कर देता है। उस हल-चल से प्रकृति सूक्ष्म से सूक्ष्म होना आरम्भ हो जाती है। पहले परमाणु को महत-तत्व कहते हैं, दूसरे को अहंकार, तीसरे को तनमात्रा (सूक्ष्म भूत) चौथे से दस इन्द्रियाँ तथा मन और पाँचवे से सूक्ष्म शरीर बनता है। फिर स्थूल शरीर बनता है। इन्हीं पाँच स्थूल भूतों—आकाश—Ether वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी से सारा संसार सारी वस्तुयें और प्राणियों के शरीर बनते हैं।

नास्तिक सम्प्रदाय

जब चारवाक मत की विचारधारा यूनान में पहुंची तो वहां के ऐपिक्यूरस इत्यादि फिलासफर्स ने चारवाक के उसी सिद्धान्त-'खाओ पीओ और आनन्द करो'-Eat, drink and be merry' को अपनाकर उसका यूनान आदि देशों में प्रचार किया। एपिक्यूरस के वही विचार पश्चिमी देशों में पहुचे। उन देशों में आनन्द के मुख्य साधन का सिद्धान्त हिडेनिज्म 'Hedonism' के नाम से फैला। इच्छाओं की पूर्त्ति-Satisfaction of desires पर अधिक जोर दिया जाने लगा। वहां के लोग अपनी इच्छाओं की पूर्त्ति करने में सभी प्रकार के उचित अनुचित साधन प्रयोग में लाने लगे। जो नास्तिक लोग इस विचारधारा के मानने वाले हुए उनका वर्णन इस प्रकार है—

(१) अपना आनन्द सबसे उत्तम है—Egoistic Hedonists—यह वह लोग हैं. जो चारवाक या ऐपिक्यूरस के सिद्धान्त को पूर्ण रूप से मानते हैं। ऐसे लोग ऐपिक्यूरियन कहलाते हैं।

इसी समय में यहाँ इन्हीं विचारों के कुछ मत भेद के साथ कुछ और समर्थक हुए जो साइरीनाइकस-Cyrenaics के नाम से विख्यात हुए। आगे चल कर इन सिद्धान्तों को मानने वाले होब्स-Hob गसैंडी-Gasandi, हैलवीटियस-Helvetius और मैन्डीवाइल-Mandeville आदि हुए।

(२) सर्वमय वादी या लाभवादी Universalistic Hedonists or utilitareans—इस विचारधारा से समाज के सगठन मे खराबी आती चली गई और लोग अपने आनन्द की पूर्त्ति के लिये भाँति भाँति की चालें चलने लगे। जब प्रत्येक मनुष्य अपना स्वार्थ पूरा करने और आनन्द भोगने की चेष्टायें करने लगा, तो उसमें कुछ सुधार करना अनिवार्य हो गया। जो लोग इस विचारधारा में परिवर्त्तन करने वाले थे, वह कहने लगे कि जो लोग केवल अपने ही सुख और आनन्द का ध्यान रखते हैं, वह गलती पर हैं। अपने को सुख और आनन्द उसी समय मिल सकता है जबकि दूसरों की भी भलाई और सुख का ध्यान रक्खा जाये, दूसरों को भी वैसी ही सुविधायें

दी जाये, जैसी वह स्वयं चाहते हैं। संसार में दूसरों के साथ जो दया, प्रेम, मित्रता, कृतज्ञता (एहसान) परोपकार, वैर भाव आदि किये जाते हैं वह सब अपने सुख की प्राप्ति के लिये ही किये जाते हैं। इसलिये मनुष्य को वह काम करने चाहिये जिनसे अधिक से अधिक मनुष्यों को सुख पहुचे। ऐसी विचार-धारा वाले नास्तिक सर्वमयवादी (सबकी भलाई में अपनी भलाई चाहने वाले) कहलाते हैं। इस विचार-धारा को प्रचलित करने वाले बेन्थम-Bentham (1748—1842 A. D.) J. S Mill-(1806—1873 A. D.) और सिजविक-H. Sidgwick इत्यादि हुये है।

इस परिवर्त्तन से भी कुछ विशेष लाभ न हुआ। लोग उसी प्रकार अपना उल्लु सीधा करने मे लगे रहे। अत' उसमें फिर सुधार की आवश्यकता हुई। कुछ विद्वानों ने कहा कि सांसारिक आनन्द प्राप्त करने से सच्चा आनन्द प्राप्त नहीं होता। मनुष्य की विशेषता स्वार्थ ही नहीं है क्योंकि सभी काम अपने स्वार्थ के लिये नहीं हुआ करते। मनुष्य को दोनों ओर ध्यान देना चाहिये और स्वार्थ तथा परमार्थ का ध्यान रखना चाहिये। उन्होंने कहा कि मनुष्य के अन्दर प्रेम, परोपकार, कृतज्ञता (एहसान) और उदारता (शराफत) इत्यादि गुण स्वाभाविक होते हैं, जो स्वार्थ और नि स्वार्थ दोनों के लिये हुआ करते हैं। मगर मनुष्य को स्वार्थ की तरफ अधिक ध्यान रखना चाहिये।

प्रो कैन्ट-Kant (1724-1804) ने इसका जोर के साथ खंडन करते हुए स्वार्थ और कामनाओं की ओर से लोगों का मन हटा कर कहा कि विवेक-Conscience की आवाज पर चलने से आनन्द प्राप्त होता है। अपने कर्त्तव्य को कर्त्तव्य समझ कर करना चाहिये। कर्त्तव्य के पालन करने मे आनन्द का ध्यान कदाचित् न करना चाहिये, क्योंकि आनन्द प्राप्त करना ही मनुष्य का ध्येय नहीं है।

इसके पश्चात इस विचार-धारा मे कुछ और परिवर्त्तन किया जाकर मन और आत्मा की शुद्धि पर जोर दिया गया। हीगल-Hegel (1770-1831) ग्रीन-Green 1886-1882 और कोम्प्ट-Comte (1798-1857) इसी विचार-धारा के मानने वाले थे।

इसके पश्चात् इसमें कुछ और परिवर्त्तन करते हुए कुछ विद्वानों ने कहा कि वही कार्य उत्तम है, कि जिससे उत्तम भलाई प्राप्त हो सके। सबसे उत्तम भलाई प्राप्त करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। डाक्टर मूर Moore आदि इसी मत के मानने वाले थे।

विशेष अध्ययन के लिये देखिये—

(1) An outline of Christian Theology by Dr. W. N. Clarke.
(2) The Belief in Personal Immortality by E. S. P. Haynes.
(3) History of Philosophy by Erdmann, Vol I to III.
(4) Spinoza, His belief and Philosophy by Sir Frederick Pollack Bart.
(5) A Pluralistic Universe by W. James.
(6) Varieties of Religious Experiences by W. James.
(7) Mechanism in Thought and Morals by O. W. Halms.
(8) Some Dogmas of Religion by Dr. M. E Taggart.
(9) Religion and Immortality by G. L. Dickinson.
(10) Problems of Philosophy by B. Russel.
(11) Prof. Clifford's Lectures and Essays.
(12) Psychology and Physiology by Prof. Munsterberg.
(13) First principles by H. Spencer.
(14) Evolution of Mind by J. Tyndall.
(15) Lectures and Essays by T. H. Huxley.
(16) Origin of Species by Darwin.

(17) The Voyage by Darwin.
(18) Book on Soul by Dr. Syme Australlia.
(19) Human personality by F, W. H. Mayers.
(20) The Riddle of the Universe by E. Haeckel.
(21) Reason and Belief by Sir Oliver Lodge.
(22) Survival of Man " " "
(23) Life and Matter by " " "
(24) Sermons on Immortality by Dr. Momerie
(25) Through Science to Faith by Newman Smith.
(26) Know Thyself by H. Solly
(27) Drama of Life and Death by E. Carpenter
(28) Man's place in the Universe by Dr. Wallace.
(29) The World of Life by " "
(30) Social Environment and Moral progress by Dr. Wallace.
(31) Science and Religion by Seven Men of Science.
(32) Religion of Sir Oliver Lodge by J. Mecabe.
(33) History of Philosophy Eastern and Western by S. Radha Krishnan Vol I and II.
(34) Introduction to Indian Philosophy by Jadu Nath Sinha.
(35) Introduction to Philosophy by Joti Prasad.
(३६) आत्म दर्शन (नारायण स्वामी कृत)
(३७) सत्यार्थ प्रकाश (स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत)

सनातन धर्म

सनातन धर्म

'सनातन का शाब्दिक अर्थ 'बहुत प्राचीन' है। यदि ध्यान से देखा जाये तो वैदिक धर्म को छोड कर ससार के लगभग सभी धर्मों और मत-मतान्तरों से पहले ही इसकी नींव पड चुकी थी। सनातन धर्म वाले इसे ईश्वरीय-धर्म कहते है और इसकी नींव वेदों और इससे प्राचीन शास्त्रों से सिद्ध करने की चेष्टायें किया करते है। उनका कहना है कि संसार के सब धर्मों और मत-मतान्तरों से यह धर्म उत्तम है। इस पर चल कर मनुष्य वैकुण्ठ का भागी बन जाता है।

खोज करने से कुछ ऐसा पता चलता है कि सनातन धर्म वाले जितना प्राचीन धर्म इसको समझते हैं, वास्तव मे इतना पुराना यह नहीं है। महाभारत से कुछ शताब्दी पहले इस धर्म की वह कुछ रूप रेखायें बननी आरम्भ हो गई थीं। वेदों के ३३ जड देवताओं अर्थात् सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि इत्यादि को शक्तिशाली, लाभदायक या हानिकारक जान कर लोगों ने उनकी उपासना करनी आरम्भ कर दी थी। एक समय तक उन देवताओं की पूजा का इस देश में काफी प्रभाव रहा, इसके पश्चात वेदों की जगह उपनिषदों पर लोग अधिक विश्वास रखने लगे। इसलिये एक समय तक उपनिषद-काल रहा।

जैसा कि हम पहले लिख आये हैं कि महाभारत के युद्ध के पश्चात् एक काल तक वाममार्ग की चर्चा चलती रही। वाममार्गियों ने अपने भिन्न भिन्न देवता प्रतिष्ठित किये। उनकी मूर्तिया बना कर, पूजा और उपासना करनी आरम्भ करदी। उन मूर्तियों के सामने मनुष्य और पशुओं की बलियां दी जाने लगीं। उस समय मे कुछ आचार्य और पंडित ऐसे भी रहे जो वाम-मार्गियों के सिद्धान्तों से घृणा करके तथा विरोध प्रदर्शित करके लोगों को इसकी ओर झुकने से रोकते रहे। उन आचार्य और पंडितों ने वाम-मार्गियों के मुकाबले मे अपना एक अलग मत 'शिव' या 'ब्राह्मण' मत के नाम से प्रतिष्ठित किया। इस मत की ओर प्रवृत्त करने के लिये उन आचार्यों ने लोगों को प्रभावित किया। इस 'शिव' या 'ब्राह्मण' मत ने वाम-मार्गियों की

देखा देखी कुछ अपने अलग देवी या देवता मान कर उनकी पूजा तथा उपासना आरम्भ करदी। इस प्रकार यह मत लगभग ४००० वर्ष पुराना सिद्ध होता है।

जब वाम-मार्ग और शैव मत प्रभाव में आ गये तो उनमें संघर्ष पैदा हो गया। 'शैव' मत वालों ने वाम-मार्गियों के शिव की स्त्री पार्वती की योनि की पूजा के मुकाबले में शिवजी महाराज को गोरे रंग का, पार्वती का पति माना तथा उनको नंगा और जटाधारी मान कर उनके लिंग की पूजा आरम्भ करदी। इस प्रकार कुछ समय तक इन दोनों मे खूब खींचा-तानी चलती रही और एक दूसरे को बुरा भला कहता रहा। अन्त में इन दोनों में समझौता होकर यह बात निश्चित हुई कि पार्वती की योनि और शिव लिंग इकट्ठा मिला कर उनकी पूजा की जाये। अतः ऐसा ही हो गया और इसका नाम जलधारी रख दिया गया। अब से यह दोनों मत वाले जलधारी की पूजा करने लगे।

वाम-मार्गियों के बनाये हुए देवी देवताओं अर्थात् काली महा काली, चण्डी, भैरवनाथ, भूतनाथ इत्यादि की पूजा शिव मत वालों ने भी आरम्भ करदी और वाम-मार्गियों की भाँति वह भी जन्त्र, मन्त्र. तन्त्र, भूत प्रेत और चुड़ैल इत्यादि के विश्वासी होते चले गये और उन्हें शक्तिशाली जान कर उनसे डरने और काँपने लगे। शिव मत वालों ने वाम-मार्गियों के देवी-देवताओं के अतिरिक्त अपने कुछ और देवी-देवता प्रतिष्ठित किये और उनकी भिन्न भिन्न शक्तियां मान कर उनके भिन्न भिन्न महात्तम वर्णन करने लगे। उसी समय में कुछ पुराने ऋषि मुनियों के नाम से कुछ शास्त्र लिखे जाने आरम्भ हुए। उन शास्त्रों में श्राद्ध, तर्पण और उन देवी-देवताओं की पूजा की विधि का पूरा वर्णन किया गया। इस प्रकार कुछ समय पश्चात् वाम-मार्गी मत में कमियाँ आने लगीं और शैव मत का उभार होना आरम्भ हो गया। कई सौ वर्षों तक यही दशा चलती रही, फिर ब्रहस्तपति आचार्य ने इन दोनों मतों का खंडन किया और नास्तिकवाद की नींव रखदी। नास्तिक वाद के फैलने से इसकी ओर लोग तेजी से जाने लगे। नास्तिक मत के फैलने से यह परिणाम हुआ कि नवयुवकों ने अपने बड़ों का आदर सम्मान

करना छोड़ दिया। कर्म-अकर्म के विचार समाप्त हो गये। उचित-अनुचित रूप से लोग रुपया कमाकर आमोद-प्रमोद में जीवन बिताने लगे। परलोक तथा बुरे कर्मों से मिलने वाले दंड का भय जाता रहा। छोटे-बड़े का अन्तर समाप्त हो गया। नास्तिक मत को अपना कर लोग अपने अपने स्वार्थों को भिन्न भिन्न चालों और विधियों से पूरा करने लगे।

इसके पश्चात् ईसा से लगभग ६०० वर्ष पूर्व दक्षिण में श्री महावीर स्वामी का जन्म हुआ। उन्होंने देश की दुर्दशा, स्वार्थ और बुरे रीति-रिवाजों को देख कर उनके दूर करने का प्रयत्न किया। कर्म-अकर्म, ईश्वर-जीव प्रकृति, स्वर्ग और नर्क इत्यादि बातों पर दार्शनिक रूप से विचार करके लोगों में प्रचार किया। उसी समय में उत्तरी भारत में श्री गौतम बुद्ध का जन्म हुआ। उन्होंने जैन-धर्म के सिद्धान्तो में कुछ भिन्नता स्थापित करके अपना प्रचार भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक किया। बुद्धदेव ने वाम-मार्गी और शैवों का जोर के साथ खंडन किया। बुद्ध महाराज ने जाति भेद को, जो ब्राह्मणों ने जन्म से ही स्थिर कर दिया था। बुरा बता कर सबको एक ही प्लेटफार्म पर आने के लिये बुलावा दिया। उन्होंने कर्म काड और यज्ञों के सहारों को छोड़ कर वाणी, कार्य और पवित्रता का पाठ पढ़ाया। किन्तु इस पाठ मे उन्होंने जातीय जीवन और जातीय कर्त्तव्य की कुछ भी तो परवा न की। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतवर्ष दिन प्रतिदिन कमजोर और दुर्बल होता चला गया। बड़े बड़े शूरवीरो ने अपनी तलवारें म्यान में डाल कर खूंटी पर लटका दीं। मालाये हाथों में लेकर और ध्यान मे बैठ कर तथा कर्मों को पवित्र बना कर निर्वाण प्राप्त करने की विधि सोचने लगे। बुद्ध मत वालों ने केवल बुद्ध महाराज को ही आगे रक्खा और भारत के प्राचीन गौरव से बिल्कुल बेखबर होकर अपने को उससे बिल्कुल अलग कर लिया।

जैन धर्म ने अहिंसा के सिद्धान्त का बुद्ध मत वालों से अधिक सख्ती के साथ प्रयोग किया। उन दोनों मतों में सैद्धान्तिक भिन्नता तो अवश्य रही किन्तु वाम-मार्ग, नास्तिक मत और शैव मत को आमूल नष्ट करने मे उन दोनों ने बराबर प्रयत्न किये। दर्शनो की

विचार-धारा पर मत भेद बढ़ता चला गया। प्रत्येक मत वाला अपने अपने विश्वास के अनुसार खींचा तानी करके दर्शनों की व्याख्या करने लगा।

उन मत वालों में अधिकतर ऐसी बातों पर मतभेद रहे कि यह पाँच तत्त्व और पाँच गुण जीव, तत्त्व, बुद्धि और अहंकार से हल हो जाते हैं या इनको हल करने के लिये किन्हीं पाँचवी शक्ति की आवश्यकता पडती है। बौद्ध कहते थे कि जीवात्मा की कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे गाय के स्तनों में घास से घी, दूध अपने आप ही पैदा हो जाता है या कुछ वस्तुयें आपस मे मिलने से सुगन्ध और दुर्गन्ध उत्पन्न कर देती हैं, ऐसे ही इन चारों तत्त्वों के आपस में मिलने से यह आत्मा नाम का गुण पैदा हो जाता है। उनके विरुद्ध आस्तिक कहते थे कि जड पदार्थ से चेतन पदार्थ उत्पन्न नहीं हो सकता। ईश्वर जीव और प्रकृति को अनन्त और अनादि मानने से ससार के सब कार्य आसानी और सरलता से सिद्ध हो जाते हैं। सृष्टि को बनाने और बना कर चलाने वाला ईश्वर है। ईश्वर ही अपने नियमानुसार इस सृष्टि को बनाता, चलाता और बिगाडता है। जैन लोग चारवाक के इस सिद्धान्त से प्रभावित होकर कहते थे कि ईश्वर की कोई सत्ता नहीं है, इस जगत का बनाने वाला कोई नहीं है। यह जगत अनादि और अनन्त है। जीव संख्या में असंख्य है, जो अनन्त अनादि और चेतना इत्यादि गुण वाले है। जीव अपनी सामर्थ्य से अनन्त शक्ति प्राप्त करके अनन्त बली तथा अनन्त गुणी होकर ईश्वर का पद प्राप्त कर सकते हैं।

शैव मत या आस्तिकों, बौद्धों या जैनियों ने वाम मार्ग को इस देश से मिटा दिया। बृहस्पति के भी बहुत से विचारों को मिटा दिया गया। किन्तु जैन धर्मावलम्बी अपनी हजारों कोशिशों के पश्चात् भी इस देश से आस्तिक, शैव या ब्राह्मण धर्म को समाप्त करने में सफल न हो सके। बुद्ध और जैन धर्म की उन्नति के समय बहुत से आस्तिक उन मतो को ग्रहण तो अवश्य करते चले गये मगर कुछ पंडित या आचार्य उस समय में भी ऐसे अवश्य रहे जो आस्तिकों को नास्तिक बनने से बराबर रोकते रहे। यही कारण है कि इस देश में आस्तिक बराबर मौजूद रहे।

बौद्ध और जैनियों ने ज्ञान और ध्यान पर अधिक ज़ोर न देकर केवल भक्ति भाव पर ही ज़ोर देना आरम्भ कर दिया। बौद्धों ने बुद्ध भगवान की अनघड़ मूर्तियां बनवाकर तथा जैनियों ने अपने तीर्थंकरों की सोने या चांदी तथा पत्थर की प्रतिमायें घड़वाकर मन्दिरों मे रखनी आरम्भ कर दीं। वह लोग उन प्रतिमाओं की भक्ति भाव से पूजा करने में ही मुक्ति का साधन समझने लगे। दूसरे लोग बौद्ध और जैनियों के उस आसान भक्ति भाव को देख कर उनके मतों को ग्रहण करते चले गये। आस्तिक आचार्यों और पंडितों ने लोगों की जब इस प्रकार की रुचि देखी तो उन्होंने भी जैनियों और बौद्धों के मंदिरो की भाँति अपने अलग विशाल मंदिर बनवा कर उनमें शिव पार्वती, गणेश, विष्णु, ब्रह्मा, राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान, कृष्णचन्द्र, काली, महाकाली, चंडी इत्यादि सैंकड़ों प्रकार के देवि-देवता और अवतारों, कर्त्तारों की मूर्त्तियां बना कर रखदीं। प्रातःकाल और संध्या समय झाँझ, तंबूरा, शंख, घड़याल आदि बाजों को बजा-बजा कर लोगों को उनके दर्शनों के लिये बुलाने लगे। लोग जैनियो और बौद्धों की भाँति उन मंदिरों मे आकर भक्ति भाव से पूजा और उपासना करने लगे। कुछ पंडित लोग उन मूर्तियों के दर्शन और पूजा उपासना करने के भाँति भाँति के महात्तम बताने लगे। आस्तिकों और नास्तिकों मे खींचा तानी आरम्भ होकर बढ़ती चली गई। वह एक दूसरे से अपने को बिल्कुल अलग मान कर घृणा का व्यवहार करने लगे। बौद्धों और जैनियों ने आस्तिकों के वेद आदि शास्त्रों को अपमानित किया और जो भी शास्त्र उनके हाथ आया उसको नष्ट कर दिया गया। आस्तिक पंडितों ने जैनियों के २४ तीर्थंकरों की जगह अपने अलग २४ अवतार कायम किये। उनके वृत, उपवास और तीर्थों की जगह अपने अलग उपवास वृत और तीर्थ-कायम किये। जैनियों के आदि पुराणों के मुकाबले में व्यास मुनि के नाम से अपने अलग पुराण और उप पुराणों की रचना की। इन पुराणों की रचना में उन दोनों में ऐसी भाग दौड हुई कि उन दोनों ने अपने अलग अलग महापुरुषों के चमत्कारों की एक दूसरे से बढ़-चढ़ कर लिखा। उस समय में मूर्त्तिपूजा के महात्तम, महापुरुषो, अवतारों, कर्त्तारों, तीर्थंकरों, बुद्ध भगवान् और दूसरे देवि-देवताओं की शक्तियों, चमत्कारो तथा करिश्मों के चर्चे हर एक की ज़बान पर रहने लगे। उस समय से गीता और भागवत आदि का

काल आरम्भ हुआ। अब उस काल को भागवत या नारायणी धर्म का काल कहते हैं।

दक्षिणी भारतवर्ष में लगभग ३०० वर्ष तक जैनियों का काफी ज़ोर रहा और उत्तरी भारत में लगभग १००० वर्ष तक बौद्ध मत की वृद्धि चलती रही। किन्तु यह याद रहे कि इन दोनों मतों की अपेक्षा ब्राह्मण या भागवत धर्म भी किसी न किसी स्थिति में मौजूद रहा।

पाँचवीं शताब्दी में श्री स्वामी शंकराचार्य ने बौद्ध और जैन-मतों का खंडन किया। वेदों और प्राचीन शास्त्रों का प्रचार किया गया। ईश्वर की भूली हुई सत्ता को फिर से प्रतिष्ठित किया गया। श्री शंकरा-चार्य ने ईश्वर की सत्ता को ही पुनः प्रतिष्ठित नहीं किया वरन हर एक मनुष्य को ही ईश्वर का रूप बतलाया। शंकर महाराज के प्रचार से जैन और बौद्धों में खलबली मच गई। लोग जैन और बौद्ध मतों को छोड़ कर शंकर महाराज के अनुयाई बनते चले गये। शैव मत या ब्राह्मण मत की उन्नति होती चली गई। जैन और बौद्ध मतों का पतन होता चला गया। शंकराचार्य ने सन्यास मार्ग की नींव रक्खी और बुद्ध भगवान् द्वारा अपनाये गये समान शिक्षा की त्रुटियों को बता कर चारों वर्णों की स्पिट को फिर जीवित किया। पाली और प्राकृत भाषाओं की जगह संस्कृत भाषा को प्रचलित किया गया। शंकर महाराज के इस प्रचार से ब्राह्मणों और सन्यासियों का ज़ोर होता चला गया। मूर्ति-पूजा पर विशेष ज़ोर दिया जाने लगा। शंकर महाराज को शिव का अवतार मान कर उनकी मूर्ति की पूजा होने लगी। वर्ण-व्यवस्था कर्म से हटा कर जन्म पर स्थित की गई, इसका परिणाम यह हुआ कि ऊँच और नीच के विचारों की पुष्टि होती चली गई। इसके साथ ही उन्होंने व्यवसाय क्षेत्र और कुल गत संस्कृति को ही स्थिर मान लिया। इसका नतीजा यह हुआ कि चारों वर्णों की असंख्य जाति से उपजाति जन्म से मानी जाकर कायम होती चली गई। एक जाति के पुरुष ने दूसरी जाति की स्त्री से जहाँ शादी की तथा उससे जो सन्तान पैदा हुई, वह सन्तान एक उपजाति में गिनी जाने लगी। थोड़े ही समय में ऊँच, नीच और छूत छात के विचारों की हर एक की ज़बान पर चर्चा रहने लगी। इन्हीं विचारों को लेकर हर एक आदमी एक दूसरे से घृणा करने लगा।

इस जाति भेद और ऊँच नीच के विचारों ने हिन्दू धर्म के रूप को बिल्कुल बदल दिया समाज दुर्बल होता चला गया। ब्राह्मणों ने जनता पर अपना अनुचित प्रभाव क़ायम कर लिया। उनका वह प्रभाव भी आज तक किसी न किसी रूप में चला आ रहा है। इन समस्त बातों का परिणाम यह निकला कि प्रत्येक जाति अपनी अपनी ढपली और अपना अपना राग अलापने लगी और एक दूसरे को ऊँच नीच कह कर घृणा का व्यवहार करने लगी।

इसी बीच में राजा विक्रमादित्य और राजा भोज आदि बड़े शक्तिशाली, प्रतापी और बुद्धिमान राजा हुए। उन्होंने इन बुराइयों को हटाने के लिये कुछ परिश्रम किया किन्तु ब्राह्मणों के प्रभाव के कारण वह भी कुछ विशेष सुधार न कर सके। ब्राह्मणों के प्रभाव के समय में ब्राह्मणों ने सत्-शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने का कार्य केवल अपने ही हाथ में रक्खा। अछूतों के कानों में तो वेद का शब्द पढ़ना पाप समझा जाने लगा। इस बन्धन से जनता में पढ़ने लिखने का रिवाज समाप्त हो गया। ब्राह्मणों ने जो अच्छा या बुरा समझा, वह सब कुछ पुस्तकों के रूप में लिखकर उनके नाम भिन्न-भिन्न शास्त्र रखते चले गये। बहुत से ब्राह्मणों ने अपनी चालाकी से प्राचीन ऋषि-मुनियों के नाम से शास्त्र लिख कर उन पर चलने के लिये जनता पर जोर दिया। राजा भोज ने ऐसे झूठे और बनावटी शास्त्र रचने वालों को दण्ड भी दिये परन्तु वह फिर भी न रुक सके।

कुछ श्रेष्ठ आचार्यों ने वाम-मार्गियों के सिद्धान्तों से घृणा करके और शैव मत की जलधारी अर्थात् शिव लिंग की पूजा और उपासना को बुरा जान कर अपना एक अलग सम्प्रदाय विष्णु मत के नाम से प्रचलित कर दिया। विष्णु मत वाले विष्णु की प्रतिमा की पूजा करने लगे। लोगों को समझाया गया कि विष्णु शिव से बहुत अधिक शक्तिशाली हैं। उन्होंने विष्णु के सैंकड़ों नाम, काम और शक्तियाँ प्रतिष्ठित कीं। शंख, चक्र, गदा और पद्म विष्णु के चिह्न नियत किये गये। जब ऐसा हो गया तो शैव मत और वैष्णवों में खींचा तानी आरम्भ हो गई। प्रत्येक मत वाला अपने इष्ट देव की प्रशंसा और आदर सम्मान करते हुए दूसरे मत वालों के इष्ट देव को बुरा भला

कहने लगे। इसके पश्चात शंकर महाराज ने शैव मत को काफी बढ़ाया।

शैव मत का राजा भोज के कुछ समय पश्चात तक काफी प्रचार होता चला गया। भोज से लगभग १५० वर्ष बाद वैष्णव मत का प्रभाव बढ़ने लगा। श्री सट्कोप, मनिवाहन और यावन आचार्यों ने इसका खूब प्रचार किया। शैव मत और वैष्णव मत में फिर टक्कर हुई। ये एक दूसरे का खंडन मंडन करते हुए आपस में एक दूसरे को बुरा भला कहने लगे। वैष्णवों ने विष्णु की पूजा के अतिरिक्त श्री कृष्ण चन्द्र की पूजा और भक्ति पर विशेष जोर दिया और कहा कि उनकी पूजा और भक्ति में ही मुक्ति का रहस्य छिपा है।

कुछ समय पश्चात् जनता ने शैव मत और वैष्णव मत वालों के सिद्धान्त अपना लिये। ब्रह्मा, विष्णु, कृष्णचन्द्र, श्री रामचन्द्र, महादेव, पार्वती, गणेश इत्यादि देवताओं और अवतारों की श्रद्धा से उपासना करने लगे। उन देवताओं और अवतारों के जगह-जगह पर मन्दिर बनवाने आरम्भ हुए। कीर्त्तन की प्रथा प्रचलित हुई। भक्ति भाव पर अधिक जोर दिया जाने लगा। तीर्थों के स्थान नियत किये जाकर उनकी यात्राओं के भाँति भाँति के महात्तम बतलाये गये। श्री स्वामी रामानन्द ने वैष्णव मत की काफी उन्नति की। ब्राह्मणों का फिर प्रभाव बढ़ता चला गया। तीर्थ के पण्डितों ने अपने अलग अलग क्षेत्र नियत किये। दूसरे पंडितों ने जीवन-मरण और हानि लाभ इत्यादि सैंकड़ों परिस्थितियों में जनता को दान देने के लिये महात्तम बताये। तीर्थों की प्रशंसा में बहुत सी पुस्तकें लिखीं गईं। पण्डित लोग उन पुस्तकों को पढ़-पढ़ कर जनता के दिलों में उन तीर्थों के महात्तम बिठाते चले गये। चारों ओर देवि-देवता, गुरु भक्ति, गुरु सिद्धि, चमत्कार, करामात, स्वर्ग-नर्क और पुन्य-दान इत्यादि के चर्चे चलने लगे। जैनियों के तीर्थों की भाँति गया, जगन्नाथ, रामेश्वर, सोमनाथ, केदारनाथ, ज्वालामुखी, हिन्गलाज, हरिद्वार, बद्रीनाथ, कैलाशनाथ, प्रयाग राज, काशी, अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, त्र्यम्बकेश्वरी, गोदावरी, उज्जैन इत्यादि सैंकड़ों स्थानों पर लोग दूर दूर से पैदल या सवारी से चलकर मुक्ति प्राप्त करने के भाव से यात्राएं करने लगे। प्रत्येक तीर्थ के पण्डितों ने अपने अपने तीर्थों के दूसरे तीर्थों से बढ चढ कर बडे ऊंचे ऊंचे

महात्म वर्णन किये। भांति भांति की कविताएं लिखकर याद कराई गई। देवि-देवताओं, अवतारों और कर्त्तारों की प्रशंसा और आदर सम्मान में बहुत से कवियों ने अपने अपने मतानुसार अपने अपने इष्ट देव के लिये कवितायें बना कर जनता में प्रचलित कीं।

कहाँ तक कहा जाये उस काल से लेकर आज तक सैकड़ों गुरु और आचार्य उत्पन्न हुए। उन में से बहुत से गुरु अनपढ़ और बहुत से पढ़े लिखे थे। उन सभी ने एक दूसरे से हेर-फेर या कुछ कमी वेशी के साथ अपने अपने विचारों का प्रचार करके लोगों को अपना अनुयाई बनाया। उनमें से हर एक ने अपने अपने बतलाये हुए सिद्धान्तो पर चलने से लोगो को मुक्ति प्राप्त करा देने या वैकुण्ठ में चले जाने का निश्चय कराया। इस गुरु भक्ति और सिद्धि ने बहुत से रंग दिखाये। बहुत से लोग गुरु या आचार्य बन बन कर आनन्द भोगने लगे। इस प्रकार इस देश मे सन्यासी, नानक पंथी, कबीर पंथी, रामानुजी राम स्नेही और राधास्वामी इत्यादि बहुत से सम्प्रदाय और उपसम्प्रदाय उत्पन्न होते चले गये। इस गुरु भक्ति और गुरु सेवा का यह परिणाम निकला कि साधु-सन्यासियों, फकीरों और भिखमंगों की संख्या मे दिन प्रतिदिन वृद्धि होती चली गई। उन सब की जो संख्या आज है, वह किसी दशा मे भी एक करोड से कम नहीं। सनातन धर्म के अन्दर जो और सम्प्रदाय तथा उपसम्प्रदाय उत्पन्न होते चले गये, उन सबकी नींव किसी न किसी पीर, फ़कीर, गुरु, सिद्ध, अवतार, कर्त्तार, देवी या देवता की श्रद्धा भक्ति और उपासना पर अवश्य स्थिर है। अतः जितने लोग इन सम्प्रदायों के मानने वाले हैं, हम उन सबको सनातन धर्म का ही अंग समझ कर सनातन धर्मी ही समझते हैं। सनातन धर्म भारतवर्ष के अतिरिक्त नैपाल, भूटान और पूर्वी द्वीपो में भी पाया जाता है। इस समय इन सबकी संख्या २५ करोड़ के लगभग प्रतीत होती है।

सनातन धर्म का उद्गम (Source)

(१) वेदों में जो ३३ जड देवताओं के गुणों का वर्णन किया गया है उनकी पूजा या उपासना की कोई आज्ञा नहीं दी गई है। आगे चल कर वेद के उन तेंतीस कोटि (श्रेणी) के देवताओं की जगह शब्द कोटि को 'करोड' मान कर तेंतीस करोड देवता कायम कर दिये गये। उन देवताओं को शक्तिशाली और चैतन्य मान कर उनकी उपासना का रिवाज प्रचलित कर दिया गया, परन्तु यह याद रहे कि उन तेंतीस करोड देवताओं की आज तक किसी ने कोई गिनती नहीं कराई और न ही कोई व्याख्या की है। परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक शक्तिशाली चमत्कार और भयानक वस्तु देवता मानली गई और उसकी पूजा व उपासना आरम्भ करदी गई।

(२) वाम-मार्ग के देवी-देवताओं अर्थात् महादेव, पार्वती, गणेश, दुर्गा, काली, महाकाली, ज्वाला, चण्डी, कामुख्या, चण्डिका, डंकनी, शांकनी, बुगला मुखी, चन्द्रमुखी, माता, शीतला, भूतनाथ. भैरव नाथ, भूत, प्रेत, चुडैल, जादू, मन्त्र, तन्त्र, मूठ, सिद्धि, करामात, चमत्कार, जानवरों की भेंट. बीमारियों या आपत्तियों को टालने के लिये देवी-देवताओं की पूजा, उपासना करके उनको वाम-मार्गियों के ढंग से प्रसन्न करने की विधियों पर विश्वास जमा कर अपने धर्म का अंग बना लिया। इन समस्त बातों को धर्म का अंग बना लेने से दूसरी जातियों ने हिन्दुओं को जाहिल गवार, मूर्ति पूजक इत्यादि बहुत से बुरे नामों से पुकारा।

(३) बौद्ध मत की कुछ शिक्षाओं को अपना कर हिन्दुओं ने वेद और सत-शास्त्रों की गहरी दार्शनिक बातों के मनन करने से दिल को चुरा कर केवल सीधी सादी बातों के समझने और मानने पर विश्वास जमा लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि बुद्धि निर्बल और अस्वस्थ होती चली गई। शूरवीरों ने अपने हथियारों को अलग फेंक कर शत्रुओं पर प्रेम और प्यार से सफलता प्राप्त करनी चाही किन्तु न कर सके। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से शूरवीर और बलवान निर्बल

और कायर होते चले गये। देश में दुर्बलता आती चली गई। इसी का यह परिणाम हुआ कि यह देश दूसरों के आधीन हो गया।

(४) जैनियों की देखा देखी बहुत सी लागत के बड़े बड़े मन्दिर बनवाये गये, उनमें सोने चाँदी, हीरे जवाहरात से जडी हुई मूर्तियाँ बनवाकर स्थापित की गईं। मन्दिरो में अरबों रुपयों की सम्पति इकट्ठी होने लगी। जैनियों के २४ तीर्थंकरों की भांति २४ अवतार बनाये गये। जैनियों के आदि पुराण के ढंग पर या उनसे भी बढ चढ़ कर पुराण और उपपुराणों की रचना की गईं। मूर्तियों के दर्शन करने और उनको चेतन और ज्ञानवान मानकर स्नान कराने, भोग लगाने और उनकी भक्ति से अपनी कामनाओ को पूरा कराने, जैनियों के तीर्थों के ढगों पर अपने तीर्थ कायम करके उनके बडे बडे महात्तम वर्णन करने, जैनियों के भिन्न भिन्न व्रत और उपवासों की जगह अपने अलग अलग व्रत और उपवास कायम करके उनको ही मुक्ति प्राप्ती के साधन समझने लगे। यह सब विचार लगभग जैनियों से अपनाये गये। मन्दिरो में सम्पत्ति जमा करने का परिणाम यह हुआ कि विदेशी लोगों ने उन मन्दिरों को लूटने और उनकी मूर्तियों को तोड़ने तथा देश पर शासन करने के भाव से बहुत से लोगों को विदेश से बुलवाया। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत से हिन्दु सदा के लिये हिन्दु धर्म को छोड कर हिन्दु धर्म के कट्टर विरोधी बन गये। देश दूसरों के आधीन हो गया। इसके जो परिणाम निकले उन सब की यहाँ व्याख्या करना सम्भव नहीं।

(५) शंकर महाराज की शिक्षा से जनता ने संसार को एक स्वप्न समझ कर और ईश्वर के भिन्न भिन्न रूप जानकर अपना विश्वास जमा लिया। लोगो ने इस संसार को एक बन्धन समझ कर उस बन्धन को काटने के लिये घर बार को त्याग कर और सन्यासी बन कर जंगलों में जाकर रहने को उत्तम समझा। उनकी देखा देखी बहुत से फकीरों, सन्यासियों, वैरागियों आदि की संख्या मे बृद्धि होती चली गई। बहुत से शूरवीर राजे महाराजे लंगोटे बाँध कर और भस्म रमा कर गली कूंचो में भीख माँगते हुए फिरने लगे। भिखमंगों की सख्या में बृद्धि होने से ग्रहस्थियो पर अनुचित भार पड़ने लगा। इन भिखमंगों की

संख्या आज भी इस देश में आप देख कर अनुभव लगा सकते हैं।

(६) कुछ दूसरे आचार्यों अर्थात् श्री रामानुज, श्री माधवाचार्य, श्री वल्लभाचार्य श्री नम्बरिकाचार्य और श्री ज्ञानेश्वर इत्यादि की शिक्षाओं से गुरु-भक्ति और अंधविश्वास में अधिक श्रद्धा होती चली गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि इस देश के महान् पुरुषों अर्थात् श्री रामचन्द्र, श्री सीता माता, श्री कृष्णचन्द्र का भेरूप बनवाकर गली कूंचों मे नचवाया गया और उनके हाथों में कटोरे देकर, भीख मंगवा कर कमाई करने का साधन बनाया गया।

(७) इस देश में इस्लाम मत के प्रचलित होने से यहाँ के हिन्दुओं ने पीरों, कबरों, जिन, सय्यद आदि को पूजना आरम्भ करके अपने धर्म का अंग बना लिया।

सनातन धर्म के सिद्धान्त

यदि सनातन धर्म के सिद्धान्तों के विषय मे यह कहा जाये तो कुछ अनुचित न होगा, कि उनका मूल तो वैदिक सिद्धान्त ही है किन्तु समय, परिस्थिति, वातावरण, संघर्ष और अनेकानेक आचार्यों की भिन्न भिन्न विचारधाराओं के कारण इनका व्यवहारिक रूप दूसरी सिद्धान्त धारा को लेकर चल पड़ा। अत: इस समय उस समय से लेकर जो जो विचार धारायें क्रमश: सिद्धान्त रूप में पनपती और प्रचार होती हुई बढ़ कर और अदल बदल कर आज दिखाई पड़ रही हैं उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) कुछ सनातन धर्मावलम्बी ब्रह्मा, विष्णु और महेश को स्वयं ईश्वर न मान कर भिन्न भिन्न गुण कर्म और स्वभाव से शक्तिशाली देवता मानते हैं।

(२) कुछ लोग श्री (लक्ष्मी) को, कुछ ब्रह्मा को, कुछ विष्णु को और कुछ महादेव को सृष्टि कर्त्ता समझते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश को संसार का उद्धार करने, दुष्टों को दंड देने और भलाई फैलाने के

लिये कभी कभी मनुष्य के रूप में संसार में अवतार धारण करने में वह लोग विश्वास करते हैं।

(३) कुछ लोग २४ अवतारों और कुछ दशावतारों में विश्वास करते है।

(४) अवतारों की प्रतिमाओं की सेवा-पूजा उनके नाम स्मरण से पापों के कट जाने में वह लोग आस्था (Faith) रखते हैं और इन्हीं की भक्ति, उपासना से वह सहज ही वैकुण्ठ में जाने पर विश्वास करते हैं।

(५) पंच पूजा अर्थात् विष्णु, अम्बिका, गणेश, शिव और सूर्य की प्रतिमाओं के पूजन का एक विशेष महात्तम मानते है।

(६) तीर्थ यात्राओं के करने तथा वहीं पर नहा धो कर दान पुन्य करने और देव प्रतिमाओं के दर्शन करने से हर प्रकार के दुःख दरिद्रता के दूर हो जाने में श्रद्धा रखते हैं।

(७) गुरु, सन्तो महात्माओं के दर्शन करने और उनकी हर बात पर विश्वास करके चलने में अश्वमेध यज्ञ का फल मिलने की आशा पर विश्वास रखते हैं।

(८) शरीर के छोड़ने के समय यम के दूतों का आना और जीवात्मा को निकाल कर बहुत से भयानक और कठिन रास्तों से यम के दरबार में लेजाना और वहाँ से यम की आज्ञा और अपने कर्मानुसार स्वर्ग, नर्क तथा दूसरी योनियों की प्राप्ती में विश्वास करते हैं।

(९) ज्योतिष की फलित विद्या के आधार पर सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्तपति, राहू और केतु इत्यादि ग्रहों के अच्छे या बुरे चक्र से धनी या कंगाल, राजा या फकीर, सुखी या दुखी होना मानते हैं और उन ग्रहों के बुरे चक्र से भांति भांति के दान पुन्य और जाप इत्यादि करने से निकल जाने पर विश्वास करते है।

(१०) प्रत्येक रोग या आकस्मिक आपत्ति लाने वाले भिन्न भिन्न देवता माने जाते है और इन देवताओं को भिन्न भिन्न विधियों से

प्रसन्न करके उन बीमारियों या आकस्मिक विपत्तियों के टल जाने पर यकीन रखते हैं।

(११) ये स्वर्ग और नर्क के स्तित्व को मानते हैं। स्वर्ग में हर तरह का सुख और नरक में हर तरह का दुख मिलने की कल्पना करते हैं।

(१२) पित्रों (बाप, दादा) की अमावस्या, आदित्या देवी (सूर्य-पुत्री) की एकम, अश्वनी कुमारों (देवताओं की वैद्यों की) दोयज गौरी पार्वती की तीज, गणेश (शिवजी के पुत्र) की चौथ, नाग (वासु की) पंचमी, कार्तिक स्वामी (शिव के दूसरे पुत्र) की छट, नेंतू की सप्तमी वामन (अवतार) द्वादशी और त्रयोदशी, नृसिंह (अवतार) या अनन्त की चौदश और चन्द्रमा की पूर्णमासी। इसके अतिरिक्त रविवार (सूर्य का) सोम (चन्द्रमा का) मंगल (देवता विशेष) बुध (देवता विशेष) बृहस्पति (देव गुरु) शुक्र (असुर गुरु) और शनि (असुर राज) के दिन व्रत और उपवास रखने, दान पुन्य, करने, कथा भागवत कहलाने तथा सुनने से सुखों की प्राप्ती होना समझते हैं। सूर्य ग्रहण तथा चन्द्रग्रहण होने को उन देवताओं पर राहु तथा केतु आदि असुरों द्वारा कष्ट प्राप्त होना समझते हैं और ऐसे अवसर पर दान आदि करना शुभ तथा पुन्य समझते हैं।

(१३) यह लोग श्राद्ध तर्पण में विश्वास करते हैं अर्थात् विधि पूर्वक अपने मृत पित्रों की मृत्यु तिथि पर इसके साथ ही प्रत्येक वर्ष के निश्चित दिनों में उनकी आत्मा की शान्ति के लिये ब्राह्मणों को विधि-पूर्वक भोजन कराते तथा दक्षिणा देते हैं वह यह विश्वास भी करते हैं कि यह भोजन इत्यादि पित्रों को प्राप्त हो गया है।

(१४) यह लोग प्रतिमाओं के सामने नाचने, गाने तथा कीर्त्तन करने में ब्रह्मानन्द की प्राप्ती समझते हैं।

(१५) कुछ अन्य कर्मकांडी व्यवहारों मे भी इनका वैदिक धर्म वालों से मतभेद है।

नीचे सनातन धर्म के कुछ विशेष सिद्धांतों की संक्षेप में सुबोध व्याख्या की जाती है—

स्मृति-धर्म---चारों आश्रमों के अनुसार कार्य करने को स्मृति धर्म कहते है।

भागवत धर्म ज्ञान और भक्ति के द्वारा आयु भर गृहस्थ मे रहने का नाम भागवत धर्म है।

ईश्वर, जीव और प्रकृति--के विषय में सनातनधर्मावलम्बियों के भी वही विचार हैं जो वैदिक धर्मावलम्बियों के हैं। अन्तर केवल इतना है कि सनातन धर्मानुयाई अवतार वाद में विश्वास करते हैं जबकि वैदिक धर्म वाले इससे विरोध रखते हैं।

अवतार वाद

अवतार शब्द के अर्थ जैसा कि हम पहले भी लिख आये हैं, उतरने या नीचे आने के हैं। अतः ईश्वर के अवतार धारण करने के यह अर्थ हैं कि ईश्वर शरीर धारण करके संसार में आता है।

सनातन धर्मानुयाई हर ईश्वरीय अवतार पर कुछ ऐसा विश्वास रखते हैं--वैसे तो ईश्वर हर जगह मौजूद है किन्तु वह अपने भक्तों के लिये छोटा हो जाता है। पुराणों में लिखा है कि जब जब संसार में धर्म की हानि होकर पाप बढ़ जाता है, तब तब ईश्वर अवतार धारण करता है। ईश्वर अवतार इसलिये धारण करता है कि वह राक्षसों का नाश करके धर्म-मर्यादा और भक्तों की रक्षा करे तथा अपनी लीलायें दिखलाये। ईश्वर अवतार धारण करके बड़े-बड़े चमत्कार दिखलाया करता है और दुष्टों को मार कर श्रेष्ठ लोगों को उभारा करता है।

खोज करने से कुछ ऐसा ज्ञात होता कि यह अवतार वाद का सिद्धान्त 'वेदान्त' मे लिया गया है। ऐसा भी अनुभव होता है कि जिस

किसी प्राणी में विशेष ज्ञान और विशेष शक्ति पाई गई. उसी को अवतार मान लिया गया। अवतार तीन प्रकार के माने जाते हैं—(१) पूर्णावतार (२) कलावतार (३) अंशावतार। यजु० अध्या० ४० म० ८ में इस प्रकार लिखा है कि परमात्मा किसी से उत्पन्न नहीं हुआ और न ही वह कभी शरीर धारण करता है। इत्यादि।

श्रीमद् भगवद्गीता में जगत की उत्पत्ति से लेकर अब तक २३ अवतारों के उत्पन्न होने का वर्णन पाया जाता है। २४ वे अवतार कलकी भविष्य में अवतार लेंगे, ऐसा विश्वास किया जाता है। गरुड़, शिव और वराह पुराणों में ससार की उत्पत्ति से अब तक ६ अवतारों के पैदा होने का वर्णन पाया जाता है और दसवे अवतार कलंकी के भविष्य में पैदा होने का उल्लेख मिलता है। परन्तु यह याद रहे कि जितने भी अवतारों का वर्णन पाया जाता है उन सब ने भारतवर्ष में ही अवतार धारण किये थे। सतयुग, त्रेता तथा द्वापर युगों में ईश्वर के ६, ६ और ७, ७ बार अवतार धारण करने का उल्लेख मिलता है। किन्तु कलियुग में जब कि १५ भाग अधर्म और पाँच भाग धर्म रहना बतलाया जाता है, केवल दो ही अवतारों का वर्णन आया है। एक तो बुद्ध और दूसरे कलकी जो भविष्य में होंगे।

श्री मद् भगवद्गीता के अनुसार २४ अवतारों के नाम यह हैं—

(१) पुरुष (२) वराह (३) नारद (४) नारायण (५) कपिल (६) दत्तात्रेय (७) यज्ञ (८) ऋषभ (९) पृथु (१०) मत्स्य (११) कूर्म (१२) धन्वन्तरी (१३) मोहिनी (१४) नृसिंह (१५) वामन (१६) परसुराम (१७) रामचन्द्र (१८) कृष्णचन्द्र (१९) व्यास (२०) कच्छ (२१) बलदेव (२२) बुद्ध (२३) मच्छ (२४) कलकी।

गरुड शिव और वराह पुराणों के अनुसार यह दस अवतार माने जाते हैं—

(१) मत्स्य (२) कूर्म (३) वराह (४) नृसिंह (५) वामन (६) तथा (७) परसुराम (८) रामचन्द्र (९) बुद्ध (१०) कलंकी।

नोट—किसी किसी पुराण में तथा के स्थान पर कृष्ण लिखा है।

भगवान ने सतयुग में एक बार मच्छ, एक बार कच्छ, एक बार वराह (सूवर) और एक बार नृसिंह का रूप धारण करके अवतार लिया था। कच्छ का अवतार पृथ्वी को कायम रखने के लिये, क्योंकि दैत्य पृथ्वी को डगमगाते थे। वराह का अवतार हिरणाक्श को मारने के लिये हुआ था, क्योंकि वह पृथ्वी को इकट्ठी करके सागर में ले जा रहा था। नृसिंह अवतार हिरणाकश्यप को मारने के लिये लिया था, जो अत्याचारा पर उतरा हुआ था।

जितने भी अवतार हुए, उनमे से कुछ तो ब्रह्मा ने, कुछ विष्णु ने और कुछ महादेव ने धारण किये थे। श्री रामचन्द्र और श्रीकृष्णचन्द्र विष्णु के अवतार माने जाते है। श्री रामचन्द्र को बारह कला अवतार और श्री कृष्णचन्द्र १६ कला अवतार माने जाते है। बुद्ध को महादेव का अवतार माना जाता है। लिखा है कि कलियुग मे इन अवतारो के नाम स्मरण करने से सब प्रकार के पाप कट जाते हैं।

इस अवतार वाद के साथ ही वैदिक धर्म के अध्याय मे वर्णित अवतार वाद को भी देखिये—

देवी देवताओं की आवश्यकता

देवी-देवताओ की सत्ता के विषय मे सनातन धर्मियों का ऐसा विश्वास है कि जैसे राजा को अपने राजकार्य चलाने के लिये दूसरे कर्मचारियों, अर्थात् वायसराय, गवर्नर, कमिश्नर, कलक्टर, जज, पेशकार और अर्दली इत्यादि हजारों कर्मचारियों की आवश्यकता पडती है, जैसे प्रत्येक कर्मचारी को अपने अपने क्षेत्र मे काम और प्रबन्ध करने का भार सौपा जाता है, ऐसे ही ईश्वर को भी इस ब्रह्माड और लोक लोकान्तरों के चलाने और उनका प्रबन्ध करने के लिये देवी-देवताओं की जरूरत पडा करती है। जैसे प्रत्येक राज्य कर्मचारी अपने अपने क्षेत्र मे अपने अपने अधिकार के अनुसार प्रजा को लाभ या हानि पहुचा सकता है, इसी प्रकार देवी या देवता भी लाभ या हानि आदि पहुँचा सकते हैं। जैसे राज्य कर्मचारियों को प्रसन्न रखने से लाभ है और अप्रसन्न करने से हानि होती है, ऐसे ही देवी-देवताओ को प्रसन्न रखने से लाभ और

अप्रसन्न रखने से हानि होती है। जैसे राजा अपने कर्मचारियों की रिपोर्ट को सुनता है और उनकी सिफारिश पर गौर करता है और बहुधा मान भी लेता है, ऐसे ही ईश्वर भी अपने देवी-देवताओं की सिफारिश को मान लेता है। जैसे राजकर्मचारी का आदर करने और उनकी आज्ञा का पालन करने से राजा का आदर सम्मान होता है, ठीक इसी प्रकार देवी-देवताओं का आदर सम्मान करने और उनकी आज्ञा को मानने से ईश्वर का आदर सम्मान और आज्ञा पालन करना समझा जाता है। जैसे राजा के पास पहुंचने के लिये दूसरे कर्मचारियों की आज्ञा और सहायता की आवश्यकता पड़ती है, इसी प्रकार ईश्वर प्राप्ती के लिये देवी-देवताओं का सहारा लेना पड़ता है।

इसके साथ ही ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव को भी देखिये कि वह इस सिद्धान्त से मेल खाते हैं या नहीं।

देवी-देवताओं के स्मरण की महिमा

पुराणों और सनात धर्म की कुछ दूसरी पुस्तकों में देवी-देवताओं की सख्या ३३ करोड लिखी है परन्तु उन सबके नामों और कामों का कोई उल्लेख नहीं है। किन्तु यदि ध्यान से देखा जाये तो इन देवी-देवताओं में प्रत्येक शक्तिशाली, चमत्कार, लाभदायक, हानिकारक, भयानक, चेतन, अचेतन वस्तु सम्मिलित हो जाती हैं। अत प्रत्येक सनातनी इन ३३ करोड देवी-देवताओं की सत्ता पर आँख मींच कर विश्वास रखता है, किन्तु उन सब की व्याख्या आज तक किसी ने भी नहीं की है। उन ३३ करोड़ देवी-देवताओं में से कोई कोई अपनी दृष्टि किसी विशेस देवी-देवताओं पर रखता है और उसको अपना इष्ट देव मान कर उसकी पूजा, उपासना करने को ही लाभ दायक मान कर उसका नाम स्मरण करने में पूर्ण सुख अनुभव करता है।

पुराणों के पढ़ने से ऐसा पता चलता है कि इन देवी-देवताओं के नाम स्मरण करने की महिमा बहुत अधिक है। लिखा है कि सतयुग में ध्यान, त्रेता में यज्ञ तथा द्वापर में पूजा करने से जो फल मिलता था, कलियुग मे वह फल केवल नाम स्मरण करने से ही मिल जाता है।

देवी-देवताओं के चमत्कार

देवी-देवताओं तथा अवतारो की सिद्धि और चमत्कारों के विषय में तदि पूरा कर्णन किया जाये तो एक बडा ग्रन्थ ही बन जाये, परन्तु नमूने के तौर पर नीचे केवल कुछ चमत्कारों का उल्लेख किया गया है। इसी से आप अनुमान लगा सकते हैं—

हनुमान का सूर्य निगल जाना, हनुमान का पूंछ बढ़ाना और चिंऊटी जैसा शरीर धारण कर लेना, देवताओं का पहाड़ जैसा शरीर बना लेना, अगस्त मुनि का ढाई अजली में समुद्र पी जाना। श्री कृष्ण चन्द्र के मुँह में तीनों लोकों का दिखाई पड़ना, श्री कृष्ण चन्द्र का ऊगली पर पहाड़ उठा लेना। द्रोपदी का राज दरबार में श्री कृष्ण द्वारा लाखों गज चीर बढ़ा देना, श्री रामचन्द्र जी के जन्म के दिन ७२० घण्टे का एक दिन होना तथा श्री रामचन्द्र जी का वन से वापसी पर लाखों नर नारियों से लाखों रूप धारण करके आध घण्टे में ही मिल कर कुशल मङ्गल पूछना। कुछ दूसरे संतों और योगियों के चमत्कार नमूने के तौर पर इस प्रकार हैं—पानी का घी और दूध बना देना, राख को मुट्ठी में दवा कर सोना या चाँदी या कोई दूसरी अमूल्य धातु बना देना, थोड़ा सा भोजन हजारों लाखो नर-नारियों को पेट भर खिला देना, शुक्र, शनीचर का कोठे पर कोठे भरे भोजन खा जाना। तनिक सी देर मे आँखों से ओझल होकर हजारों कोस की दूरी तक पहुंच जाना, बाँझ औरत के बच्चा पैदा कर देना इत्यादि-इत्यादि।

सनातन धर्मावलम्बी इन बातों पर भी विश्वास रखते हैं—हनुमान जी को पवन (हवा) का पुत्र मानना, भीष्म पितामह को गगा (नदी) का पुत्र जानना, महादेव के सिर से गंगा की धारा निकलना। महादेव की स्त्री पार्वती को पर्वत (पहाड़) की लड़की समझना- रावण को दस मुख और २० हाथ वाला मानना, गणेश जी का सिर और मुख हाथी का समझना, दुर्गा के आठ हाथ मान लेना, विष्णु के चार हाथ और चार मुँह जानना, महादेव के पेशाब करने से चाँदी, सोने तथा दूसरी सब धातुओं का उत्पन्न हो जाना, काशी मे औरंगजेब द्वारा मन्दिर तोडे जाते समय लाट भैरों और काली भैरों के कई एक चमत्कार दिखाना, विश्वनाथ की मूर्त का मलेच्छ (मुसलमान) की सूरत देखना अच्छा न समझ कर कुँवे में कूद पड़ना और वहाँ से निकल कर वेनी

माधव भक्त के घर में जाकर रहना, जगन्नाथ में श्राद्ध करने से पित्रों का स्वर्ग में चला जाना, जगन्नाथ में पित्रों का स्वयं हाथ निकाल कर पिंड लेना। कलकत्ते की काली और कामुरुका देवी का मुँह से बोल कर भेंट माँगना, जगन्नाथ में एक ही चूल्हे पर सात हंडियाँ ऊपर नीचे रख कर सब से पहले सबसे ऊपर की हाँडी का खाना पकना और सबसे नीचे की हाँडी का सबसे बाद में पकना, जगन्नाथ का झूठा प्रसाद खाने से सब प्रकार के दुःख-दर्द का मिट जाना और न खाने से बड़ा भारी दुःख होना, जगन्नाथ महाराज का रथ स्वयं चलना और थमना, पापी को जगन्नाथ के दर्शन न होना, जगन्नाथ महाराज का अपना चोला बार-बार बदलना, रामेश्वरम् के शिव मन्दिर में गंगोत्तरी का जल चढाने से शिव-लिंग का बढ जाना, सोमनाथ जी का रथ पृथ्वी से ऊपर चलना, कृष्णचन्द्र का नृसिंह का भात भर देना, कृष्णचन्द्र का प्रह्लाद भक्त को स्वयं आकर बचाना और सहायता करना, ज्वालामुखी की मूर्त्ति साक्षात्कार देवी है। जो जो भोग उस देवी पर चढाया जाता है, आधा वह खुद खा लेती है और आधा वापस कर देती है।

मूर्ति-पूजा

सनातन धर्मी मूर्ति-पूजा में विश्वास रखते हैं। उनकी मूर्ति-पूजा के विषय में बहुधा वैसी ही श्रद्धा है जैसी जैनियों की है। उनका कहना है कि मूर्तिपूजा ईश्वर उपासना की पहली सीढी है। जब किसी मनुष्य के लिए विचारमात्र की कल्पना असम्भव होती है तो उसके लिए मूर्ति पूजा आवश्यक है जो मनुष्य मूर्तिपूजा की सिढी से ऊपर नहीं चढता तो उसके लिए मूर्तिपूजा निष्फल है। मूर्तिपूजा से आत्मा की उन्नति में सहायता मिलती है मूर्तिपूजा केवल आत्मज्ञानी ही छोड़ सकता है वर्ना सबके लिए मूर्तिपूजा बड़ी आवश्यक है। यदि मनुष्य को ऊपर पहुचना है तो उसे इस मूर्तिपूजा की सिढी पर अवश्य चढ़ना होगा आत्मज्ञानी को छोड कर सभी स्वभाव से मूर्तिपूजक है।

जब मनुष्य मूर्तिपूजा की सीढी पार कर जाता है तब उसे प्रेम का आदर्श अनुभव होने लगता है। सब प्राणीमात्र उसके लिए बराबर होते है। फिर उसे मन्दिरों, गिरजाओं और मस्जिदों में जाने की आवश्यकता नहीं रहती उसे हर तरफ ईश्वर का ही स्वरूप नजर आने लगता है।

सनातन धर्मियों का यह भी कहना है कि हर वस्तु के हर भाग मे परमेश्वर का ही स्वरूप है। जिन लोगों के ज्ञान और ध्यान में परमेश्वर का यह सर्वव्यापी स्वरूप एक दम नहीं आ सकता वह उस पारब्रह्म और शुद्धस्वरूप को जानने के लिए मन को स्थिर करके परमात्मा की भिन्न भिन्न शक्तियों में से किसी भी एक शक्ति पर ध्यान करना आरम्भ करदें तो ऐसा करने से ईश्वर की ही पूजा और उपासना होती है। अवतारों, कर्त्तारों, देवी-देवताओं, गुरूओं, और महान पुरूषों की मूर्तियों के दर्शन करने का प्रयोजन परमेश्वर की ओर मन लगाने और उसकी ओर झूकाव करना है । किसी देवी-देवता इत्यादि की पूजा उपासना से ईश्वर की उपासना ही होती है, उसका फल सर्वव्यापी परमात्मा ही दिया करता है। जिसकी जैसी भावना होती है उसको वैसा ही फल मिल जाता है। जो लोग इस विधि से मन और चित्त लगाकर ईश्वर का भजन और पूजन करते हैं, वह उन्नति पर उन्नति करते हुए अन्त में उस पारब्रह्म परमेश्वर को पा ही लेते हैं । इसलिए मुर्तिपूजा, श्रध्दा, प्रेम, और बुद्धि के अनुसार करनी चाहिए।

पुराणों मे मूर्तिपूजा करने और मन्दिर निर्माण कराने के बड़े बड़े महात्तम वर्णन किये गये हैं। अत. श्री मद भगवत गीता के अध्याय २७ स्कन्द ११ में ऐसा लिखा है कि जो मनुष्य मूर्ति की प्रतिष्ठा करता है वह अगले जन्म मे राजा होता है। जो मन्दिर निर्माण करता है वह तीन लोक का राज्य प्राप्त करता है और जो मूर्तियां की पूजा करता है वह ब्रह्म लोक जाता है। कुछ पुस्तकों में यह लिखा है कि मन्दिरों मे सफाई करने और मूर्तियों के दर्शन करने से पापी से पापी मनुष्य के भी पाप कट जाते है। देवताओं की मूर्तियों का चरणामृत पीने से पाप नष्ट हो जाते है, अकाल मृत्यु पास नहीं आती और चरणामृत को छूने वाला मनुष्य गंगास्नान का भागी बन जाता है।

प्रत्येक पुराण मे भिन्न भिन्न इष्ट देवों के मन्दिर बनवाकर उनकी मूर्तियो की प्रतिष्ठा कराने और सेवा पूजा करने के बहुत अधिक महात्तम वर्णन किये गये है। पुराणों में ऐसे भी बहुत से उदाहरण पाये जाते हैं जिनमें चरणामृत छूने या पीने से बहुत से पापी मनुष्य बैकुन्ठ को चले गये। प्रत्येक पुराण में भिन्न २ देवताओं की प्रतिष्ठा कराने, उनकी सेवा पूजा करने, चरणामृत को छूने तथा पीने, घी दूध और शहद में स्नान

कराने आदि कार्यों से मनुष्य के हर तरह के पाप छूटकर स्वर्ग प्राप्ति के वर्णन पाये जाते हैं। राजपूत राजाओं के समय में इस देश में बड़ी लागत के मंदिर बने और मूर्ति पूजा का बहुत अधिक जोर हुआ।

भक्ति

भक्ति वह शक्ति या प्रेरणा है जो सारे संसार मे एक ही रूप और प्रभाव के साथ पाई जाती है। भक्ति और उपासना के विचार भिन्न २ धर्मों में भिन्न २ मात्रा और रूपों में पाये जाते हैं। ईश्वर भक्ति बड़ा कठिन तप है। प्रेम प्रेम पुकारने से प्रेम नहीं होता। प्रेम में सौदावाजी नहीं होती। स्वार्थ से भरा प्रेम प्रेम न होकर चापलूसी या नीति कहा जाता है। विशुद्ध प्रेम और भक्ति के लिये विश्वास और आस्था की जरूरत है। इसी प्रकार जो मनुष्य परमात्मा से कुछ मागने या अन्य स्वार्थ साधन करने के लिये प्रेम करता है, वह सच्चा भक्त या सच्चा प्रेमी नहीं कहला सकता। सच्चा प्रेमी सदा दिया करता है, वह लेने की कभी इच्छा नहीं करता सच्चे प्रेमी में भय नहीं होता। ईश्वर भक्त प्राणीमात्र को समान दृष्टि से देखता है। जो भक्ति किसी स्वार्थ के लिये की जाती है वह रजोगुण प्रधान भक्ति कहलाती है। इस प्रकार की भक्ति से न तो आत्मिक उन्नति ही होती है और न ही चित्त की शुद्धि होती है। निस्वार्थ प्रेम के साथ ईश्वर से सम्बन्ध जोड़ने का नाम ही सच्ची भक्ति है। शास्त्रों में इसी को उत्तम भक्ति कहा गया है।

खोज करने से ऐसा पता चलता है कि इस वर्त्तमान भक्ति-मार्ग की नीव ईसा से ६०० वर्ष पहले इस देश में पड़ चुकी थी। यह भक्ति मार्ग उपनिषदो का की सगुण उपासना से निकाला हुआ प्रतीत होता है। वर्त्तमान भक्ति मार्ग ११वीं शताब्दि में दक्षिण से प्रसार होना आरम्भ हुआ था। दक्षिण में इस भक्ति मार्ग का प्रसार करने वाले बहुत से आचार्य हुये हैं। उन् आचार्यों का कहना है कि ब्रह्म को प्राप्त करने का सब से आसान तरीका भक्ति है। जो मनुष्य अधिक चतुर और बुद्धि-मान नहीं होता तथा अधिक गहरी और दार्शनिक बातों को समझ नहीं सकता, उसके लिये केवल यह भक्ति मार्ग ही उत्तम है। लगातार अभ्यास करने से मन दृढ होता चला जाता है। ईश्वर के स्वरूप को

ध्यान में लाने और मन को उसकी ओर लगाने से भक्ति रस का अनुभव होने लगता है। कीर्त्तन का भक्ति में ऊंचा स्थान बताया गया है।

परन्तु देखने मे यह आता है कि बहुधा लोग उन देवी या देवताओं की भक्ति इस विचार से करते हैं कि उनमे ऐसी महान शक्ति, करामात, चमत्कार और अधिकार पाए जाते हैं कि यदि वह भक्ति से प्रसन्न हो जायें तो हर प्रकार का सुख और लाभ पहुच जाता है। यदि वह अप्रसन्न हो जायं तो हर प्रकार का दुःख, बिमारी तथा हानी पहुंच जाती है। इसी स्वार्थ को लेकर बहुधा लोग उन देवी देवताओं को प्रसन्न रखने के कारण उनकी प्रतिमाओं की सेवा और पूजा किया करते है। इस सेवा और पूजा को ही वह भक्ति के नाम से पुकारा करते है।

प्रत्येक देवी या देवता के प्रसन्न करने की विधि भिन्न भिन्न बताई गई है। प्रत्येक देवी देवताओं के लिये कुछ विशेप वस्तुएं निश्चित है। अतः उन देवी देवताओं में से कुछ ऐसे भी हैं जो बकरा, बकरी, कटडा, कटडी, मुर्गा, मुर्गी और भैस या भैंसा इत्यादि से प्रसन्न होते हैं।

पुराणों में कई प्रकार की भक्ति का वर्णन पाया जाता है। उनमें से कुछ यह हैं:—

देवी-देवताओं के नाम का स्मरण करना, तीर्थ यात्रायें करना, कुम्भ स्नान करना, प्रात. और सांयकाल मन्दिरों में जाकर मूर्तियो की पूजा और दर्शन करना, उनपर जल, फूल और फल इत्यादि चढ़ाना, उन्हें मोहन भोग कराना, मन्दिरों की परिक्रमा करना, आरती करना, घटा, घडियाल, झांझ और शख आदि बाजे बजाना, माथे पर तिलक या छाप लगाना, माला फेरना, ऊंची या धीमी आवाज से सीताराम, राधेश्याम, ब्रह्मदेव, और बजरंग बली आदि का उच्चारण करना कीर्त्तन करना, सतों की चरण सेवा करना, तुलसी, पीपल और आंवला वृक्षों की पूजा करना, पूरणमासी, इकादशी और अमावस्या आदि तिथियां में व्रत या उपवास रखना भक्ति कहलाती है। पुराणो मे इस प्रकार की भक्ति के बहुत अधिक महात्तम वर्णन किये गये है।

सनातन धर्म में बहुत से उच्च कोटि के भक्त जैसे सूर, तुलसी, मीरा, चैतन्य महाप्रभु और रामकृष्ण परम हंस आदि हुये हैं। भक्ति मार्ग पर माधवाचार्य,लम्बारकाचार्य, वल्लभाचार्य,रामानुजाचार्य,रामानन्दाचार्य, ज्ञानेश्वर, कबीर, नौर नरसिंह महता ने अधिक जोर दिया।

इष्ट देव

कुछ सनातन धर्मावलम्बी किसी विशेष देवी या देवता की भक्ति की ही ओर झुके हुए पाये जाते हैं। उस देवी या देवता को वह अपना इष्ट देव मानकर केवल उसी की पूजा और उपासना करना लाभदायक समझा करते है। उस देवी या देवता को प्रसन्न करके उसके द्वारा स्वयं लाभ उठाने और शत्रुओं को हानि पहुंचाने में विश्वास रखते हैं। वह लोग अपने इष्ट देव की अधिक प्रसशा और आदर सम्मान तो करते ही हैं. साथ ही उनमें वह ऐसे चमत्कार भी मानते हैं, जिनका बुद्धि से कोई सम्बन्ध नहीं है।

कुम्भ के मेले—भारतवर्ष में कुम्भ के चार मेले होते हैं। एक हरिद्वार में, दूसरा प्रयाग में, तीसरा गोदावरी पर और चौथा उज्जैन में शिप्रा के तट पर। इन मेलों से बड़ा कोई मेला नहीं होता। इनमें से प्रत्येक मेला बारह वर्ष के पश्चात् होता है और प्रत्येक में एक दूसरे से तीन तीन वर्ष का अन्तर है। इन मेलों मे सम्मिलित होकर स्नान और दान पुन्य करने का बड़ा महात्तम है, और यह कहा जाता है कि इन मेलों पर स्नान करने से सात जन्मों के पाप नष्ट होकर मनुष्य स्वर्ग में जाने का भागी बन जाता है। इसी श्रद्धा के साथ भारत के कोने कोने से प्रत्येक सनातन धर्मी स्त्री या पुरुष हर प्रकार का कष्ट उठा कर इन मेलों में सम्मिलित होने की इच्छा करता है। साधु-सन्यासी और भिखमंगों में से शायद ही कोई ऐसा हो जो इन मेलों मे सम्मिलित न होता हो।

खोज करने से इन मेलों का प्रारम्भ इस प्रकार ज्ञात होता है कि जब श्री शंकराचार्य बौद्ध और जैन मतों के खंडन में सफल हो गये तो उनके साथ उनके शिष्यों की एक भारी भीड रहने लगी। स्वामी जी ने इस भीड़ को देखकर खाने, पीने और ठहरने इत्यादि के कष्टों को अनुभव किया। तब उन्होंने अपने शिष्यों के अलग अलग संघ बनाकर

इधर उधर प्रचार करने को कहा। हर तीसरे वर्ष बारी बारी से इन ऊपर लिखे चारों स्थानों पर इकट्ठे होकर अपने अपने प्रचार के कार्यों को बताने और धर्म प्रचार करने की आज्ञा दी। शंकर महाराज का दूसरा प्रयोजन इन मेलों को प्रचलित करने का यह भी था कि ग्रहस्थी लोग अपने घरों से आकर विद्वानों, पंडितों और आचार्यों के व्याख्यानों से लाभ उठायें, जीवन सुधारने और मुक्ति प्राप्त करने की विधि को उपदेशों द्वारा सुन कर मनन करें तथा जीवन उच्च बनाएं। साथ ही समस्त भारत की जातियाँ भिन्न भिन्न प्रदेशों के इन पवित्र स्थानों में आस्था रखते हुए एकता के सूत्र में बँध जायें। इन्हीं कारणों से इन मेलों को कल्याण कारी और मुक्ति का दाता भी कहा जाता है।

इन मेलों के बारे में ऐसी पौराणिक कथा प्रसिद्ध है कि समुद्र मंथन से प्राप्त अमृत-कुम्भ के लिये जब देवताओं और राक्षसों में झगड़ा हो गया तो देवगुरु बृहस्पति अमृत कुम्भ को लेकर भागे। उनके पीछे कुम्भ छीनने के लिये असुर गण भी दौड़े। इसी छीना झपटी में चार स्थानों पर अमृत कुम्भ से अमृत की कुछ बूंदें छलक कर गिर गईं। कुछ बूंदें गोदावरी तट पर, कुछ उज्जैन में शिप्रा के तट पर, कुछ हरिद्वार में गंगा तट पर और कुछ इलाहाबाद में त्रिवेणी तट पर गिरीं। इसी कारण इन चारों स्थानों पर स्नान करने से अमृत में स्नान करने जैसा पुन्य और कल्याण प्राप्त होता है।

तीर्थ

वास्तव में तीर्थ उन स्थानों को कहा गया है जहां महात्मा ऋषि और मुनि लोग रहा करते थे या जहां पर शूरवीरों ने अपने राष्ट्र के लिये प्राण दे दिये थे। ऋषि मुनियों के दर्शन, सत्संग और सेवा पूजा के लिये लोग वहां जाया करते थे। कुछ लोगों ने उन तीर्थों के नये नये महात्तम बना लिये और उनका वास्तविक रूप भुलाकर कमाई करने के नये नये ढंग बना लिये। सनातन धर्मियों के हृदयों में उन तीर्थ स्थानों के लिये बड़ी श्रद्धा है। किन्तु उन स्थानों पर पहुंच कर स्नान, ध्यान और दान पुन्य करने से ही स्वर्ग के अधिकारी बन जाने में श्रद्धा रखते हैं।

यजुर्वेद, मंत्र ६१ अध्याय १६ में ऐसा लिखा है—"तीर्थ दो प्रकार के होते हैं। एक तो ब्रह्मचर्य, गुरु-सेवा, वेद इत्यादि शास्त्रों के पढने पढ़ाने तथा सतसग, ईश्वर उपासना और सत्य बोलने में निहित है। दूसरे समुद्र इत्यादि यात्राओं को भी तीर्थ कहते हैं।" कुछ इसी प्रकार के विचार पुराणों में भी प्रकट किये गये हैं। अत. पद्म पुराण में लिखा है कि चाहे गंगाजल मे कोई जीवन भर स्नान करता रहे तो भी दुष्ट स्वभाव और दुष्ट विचार वाला मनुष्य शुद्ध नहीं हो सकता। शिव पुराण में भी इसी प्रकार के विचार पाये जाते हैं। लिंग पुराण में यह लिखा है कि बाहर से शरीर की कितनी ही सफाई रक्खो, यदि अन्तः करण साफ नहीं है तो वह मनुष्य मलीन ही है। बहुधा सभी पुराणों में इसी प्रकार की शिक्षा पाई जाती है।

यह सब कुछ होने पर भी सनातनधर्मी उन तीर्थों पर जाकर दर्शन, स्नान, दान, और पुन्य करने के महात्तम और महिमा के हृदय से विश्वासी हैं। विशेष विशेष अवसरों पर काशी, मथुरा, प्रयागराज, देव प्रयाग, बद्रीनाथ, केदारनाथ, जगन्नाथ, द्वारकापुरी, रामेश्वर, पचवटी, चित्रकूट, गोकुल, अयोध्या, हरिद्वार, गंगोत्री, जमनोत्री, तपोवन, गोवर्धन, विन्ध्याचल, नगरकोट, कुरुक्षेत्र, गोदावरी, तथा नर्वदा आदि स्थानों पर जाकर गंगा, जमना और नर्वदा इत्यादि नदियों और तालावों में नहाने धोने से समस्त इच्छाएं पूर्ण होकर अन्त में बैकुण्ठ में चले जाने पर विश्वास रखते हैं।

उन तीर्थों के कुछ महात्तम इस प्रकार वर्णन किये गये हैं—

हरिद्वार—पद्मपुराण में लिखा है कि हरिद्वार "हर का द्वार" है। वह धर्म, अर्थ और मोक्ष का देने वाला है। मनुष्य वहाँ जाकर स्नान, दान, पुन्य और दर्शन करके मुक्त हो जाता है।

प्रयागराज—योग शास्त्र और पद्मपुराण में ऐसा लिखा है कि जो मनुष्य सवेरे ही प्रयाग मे स्नान करता है वह महा पाप से छूट कर परम पद को प्राप्त होता है। प्रयागराज मे शरीर त्यागने से मुक्ति हो जाती है। और भी कई पुराणों में प्रयागराज की महिमा बहुत अधिक

वर्णन की गई है। अत लिखा है कि माघ के महिने में प्रयागराज मे स्नान करने का फल दूसरे तीर्थों से करोड़ गुना अधिक मिलता है।

जगन्नाथ—पद्मपुराण में लिखा है कि यहाँ पर चांडाल का छुवा हुआ भोजन ब्राह्मण के खाने योग्य हो जाता है। इस स्थान पर विष्णु साक्षात् वास करते हैं। वहाँ लक्ष्मी स्वयं भोजन बनाती है। विष्णु भगवान के भोग से बचा हुआ भोजन जो कोई भी खाता है, वह मुक्त हो जाता है। चैत्र के महीने में श्री जगन्नाथ जी के दर्शन करने से मुक्ति सहज ही प्राप्त हो जाती है और मन की समस्त कामनाये पूर्ण हो जाती हैं।

मथुरा—वराह पुराण मे लिखा है कि मथुरा तीनों लोकों से निराली है। स्वर्ग-लोक,मृत्यु-लोक और पाताल लोक में कोई भी दूसरा ऐसा तीर्थ नहीं है। यह तीर्थ भगवान का निवास स्थान है। इसी लिये इसको 'भगवान का द्वार' कहते हैं। जो लोग मथुरा में रहते हैं, वह मरने पर अवश्य मुक्ति पाते हैं। जो फल दूसरे तीर्थों में बार बार स्नान करने से होता है, वह फल यहाँ पर केवल एक बार स्नान करने से ही हो जाता है। मथुरा जाकर यमुना में स्नान करने से तो मुक्ति मिलती ही है, परन्तु जो मनुष्य मथुरा शब्द बोलता है, वह भी पापों से छूट जाता है।

पुष्कर—पद्मपुराण में इस तीर्थ का सबसे अधिक महात्तम वर्णन किया गया है और ऐसा लिखा है कि यहाँ पर जो गधा भी रहता है, वह चतुर्भुज भगवान के बराबर है। एक जगह ऐसा भी लिखा है कि सतयुग में तो सब तीर्थों मे स्नान करने से मुक्ति प्राप्त होती थी, त्रेता मे पुष्कर में स्नान करने से मुक्ति होती थी। द्वापर में कुरुक्षेत्र में स्नान करने से मुक्ति प्राप्त होती थी, किन्तु अब कलियुग में गंगा स्नान करने से मुक्ति होती है।

वृन्दावन—यह श्री कृष्णचन्द्र के बचपन के खेल, कूद और लीलाओं का स्थान है। जो वहाँ जाता है, भगवान उसको अपना भक्त समझ कर अपना लेते हैं।

गोवर्धन—श्री कृष्णचन्द्र के चमत्कारों का स्थान है। इसकी यात्रा उसको नसीब होती है जो भगवान के प्यारे होते हैं।

तपोवन—तपोवन में रहने से मनुष्य तपस्वी हो जाते हैं।

कुरुक्षेत्र—कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के वक्त दान देने और तालाब में स्नान करने से सात जन्म के पाप दूर हो जाते हैं।

विन्ध्याचल—विन्ध्याचल में वन्ध्येश्वरी, काली आठ हाथों वाली देवी है। वह तीन वक्तों में तीन रूप बदलती है। इसके क्षेत्र में कोई मक्खी नहीं घुस सकती। इसके दर्शन से दुश्मनों का नाश और मन की मुराद पूरी हो जाती है।

केदारनाथ—केदारनाथ और बद्रीनाथ देवताओं की पूजा छः मास तक मनुष्य और छः मास तक देवता करते हैं। इनसे बड़ा और कोई देवता नहीं है। इनके दर्शनों के पश्चात कभी कोई क्लेश नहीं आसकता और न ही स्वर्ग जाने में कोई बाधा पड़ती है। देवप्रयाग और गंगोत्री में गौमुख और काशी में नारायण के दर्शन होते हैं।

अयोध्या—यह कई बार उजड़ कर स्वर्ग में जा चुकी है। वहाँ पर जाकर सरयू में स्नान करने से मनुष्य स्वर्ग में चला जाता है।

पद्मपुराण, मतस्य पुराण और विष्णु पुराण में गंगा को सबसे उत्तम तीर्थ और मुक्ति का दाता बतलाया गया है। गरुड़ पुराण में यह लिखा है कि मरने के पश्चात् जिनकी हड्डियाँ गंगा में पड़ती है वह भी स्वर्ग को चले जाते हैं।

गंगा की उत्तपत्ति भिन्न भिन्न पुराणों में भिन्न भिन्न देवताओं द्वारा बतलाई गई है।

तुलसी, पीपल और आँवले के वृक्षों की महिमा—कई पुराणों में यह लिखा है कि तुलसी के वृक्ष में सब देवता वास करते हैं। इसलिये जो तुलसी की पूजा करता है, वह सब देवताओं की पूजा

और सब तीर्थों का फल प्राप्त कर सकता है। जो तुलसी को प्रणाम करता है, उसकी आयु, बल, यश और धन दौलत अधिक बढ़ जाते हैं। तुलसी विष्णु भगवान को बहुत प्यारी है। पीपल के देखने, छूने और प्रणाम करने से सब पाप मिट जाते हैं। ऐसा ही आंवले के विषय में भी लिखा है।

श्राद्ध—बहुधा सभी पुराणों में पित्रों के श्राद्ध करने का उल्लेख पाया जाता है। शिव, भविष्य, मत्स्य तथा वराह पुराण में श्राद्ध के विषय में पूरा वर्णन पाया जाता है। उन पुराणों में लिखा है कि श्राद्ध से प्रसन्न होकर पितृ धन, दौलत, विद्या और सन्तान इत्यादि सब प्रकार के सुख देते हैं। मत्स्य पुराण में लिखा है कि दही, दूध, घी, खांड और अनाज के भोजन से पितृ एक माह तक तृप्त रहते हैं। मास से दो माह तक, हिरन के मास से तीन माह तक, मेंढे के मांस से चार माह तक और पक्षियों के मास से पांच माह तक तृप्त रहते हैं। बकरे के मांस से छः माह तक, चितकबरे हिरन के मांस से सात माह तक, बारह सिंगे के मांस से आठ माह तक, भैंसे इत्यादि के मांस से नौ माह तक, मछलियों के मांस से दस माह तक, कछुवे इत्यादि के मास से ग्यारह माह तक और गऊ के दूध तथा खीर इत्यादि भोजन से पूरे एक वर्ष तक तृप्त रहते हैं।

सृष्टि उत्पत्ति

सृष्टि-उत्पत्ति के विषय में पुराणों में भिन्न भिन्न मत पाए जाते हैं। पद्म पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा जी के कहने से जब उनके पुत्रों ने सृष्टि न रची तब उन्हें बड़ा क्रोध आया। उस क्रोध से तीनों लोक जलने लगे। चारों ओर हाहाकार मच गया। तब उनकी भवें कुटिल हो गईं और माथा सिकुड़ने लगा। इससे रुद्र का अवतार हुआ। रुद्र का आधा अंग स्त्री और आधा अंग पुरुष का था। ब्रह्मा जी के कहने से स्त्री और पुरुष का रूप अलग अलग हो गया। इस जोड़े से मनुष्यो-त्पत्ति आरम्भ हुई।

अग्नि-पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा जी ने अपने आधे अंग से

स्त्री और आधे अंग से पुरुष को पैदा किया। ऐसा ही शिव पुराण और मार्कण्डे पुराण में भी लिखा है।

लिंग पुराण में लिखा है कि जब ब्रह्मा जी के पुत्र सृष्टि की उत्पत्ति न कर सके, तब उनके साथ ब्रह्मा जी ने तप किया। इस पर शिव महाराज प्रसन्न हुए। तब ब्रह्मा जी का ललाट भेद करके स्त्री और पुरुष पैदा किये गये।

ब्रह्मदेव रत पुराण मे लिखा है कि श्री कृष्णचन्द्र की प्रेरणा और इच्छा से दो प्रकार के रूप अर्थात बांये भाग से स्त्री और दाएं भाग से पुरुष पैदा हुआ।

गणेश उत्पत्ति—शिव पुराण में श्री गणेश जी की उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है—

जब शिवजी महाराज पार्वती जी से विवाह करने के पश्चात् कैलाश पर्वत पर रहने लगे तब एक दिन दो सखिया पार्वती जी से बात चीत कर रही थीं और यह कह रही थीं कि शिवजी महाराज के पास तो बहुत गुण और शक्तियां उपस्थित हैं, किन्तु आपके पास कुछ भी नहीं है। पार्वती जी ने कहा कि उनके गुण और शक्तिया भी तो हमारे ही गुण और शक्तियां हैं। एक दिन जब पार्वती जी अपने मन्दिर में स्नान कर रही थीं तो शिवजी महाराज नन्दी के मना करने पर भी अन्दर चले गये। इस पर पार्वती जी को लज्जा अनुभव हुई और उन्होंने सखियों की उस दिन की बातचीत को याद किया। अतः पार्वती जी ने हाथ में जल लेकर अपने शरीर से मैल उतार कर अपना एक बेटा पैदा करके द्वार पर बैठा दिया और उसका नाम गणेश जी रख दिया गया।

एक दिन की घटना है कि जब गणेश जी द्वार पर बैठे थे तो अन्दर मन्दिर में पार्वती जी अपनी सखियों के साथ स्नान कर रही थीं। उस समय शिवजी महाराज अन्दर जाने लगे गणेश जी ने उन्हें मना किया और कहा कि अन्दर माता जी स्नान कर रही हैं। इसलिये आप अन्दर मत जाइये। किन्तु शिवजी महाराज ने कुछ भी परवाह न

की ओर अन्दर जाने लगे। इस पर गणेश जी ने लकडी उठा कर शिवजी महाराज पर आक्रमण कर दिया। शिवजी महाराज को क्रोध आया। उन्होंने गणों को आज्ञा दी कि वह गणेश जी को मारदें। गणों और गणेश जी में लड़ाई छिड़ गई। उसी समय वहां ब्रह्मा जी भी आ गये। गणेश जी ने उनका भी अपमान किया। यह देख कर शिवजी महाराज को बड़ा क्रोध आया। शिवजी महाराज और गणेश जी में संग्राम हो गया। शिवजी महाराज ने त्रिशूल से गणेश जी का सिर शरीर से अलग कर दिया। इस बात पर पार्वती जी को बहुत क्रोध आया। पार्वती जी ने ऐसी जहरीली मक्खियां पैदा करदीं जो सबको काट कर मारने लगीं। उसी समय वहां नारद जी आ गये। वह शिवजी महाराज को साथ लेकर अन्दर मन्दिर में गये। नारद जी ने पार्वती जी को बहुत कुछ समझाया। इस पर पार्वती जी ने यह कहा कि यदि मेरा पुत्र जीवित हो जाये और सब लोग उसकी पूजा करने लगें तब मैं मानूंगी अन्यथा नहीं। शिवजी महाराज ने कहा, 'अच्छा ऐसा ही होगा।' शिवजी महाराज ने गणेश जी के कटे हुए सिर की खोज कराई, मगर वह कहीं न मिला। तब शिवजी महाराज ने देवताओं से कहा कि तुम सब पहाड़ की ओर चले जाओ। तुम्हारे रास्ते में जो प्राणी सबसे पहले तुम्हे मिल जाये उसका सिर काट कर मेरे पास ले आओ। देवता चल दिये और उन्हे रास्ते में सबसे पहले एक दांत वाला हाथी मिला। अत उसी का सिर काट कर शिवजी महाराज के सामने रख दिया। शिवजी महाराज ने उस सिर को गणेश जी के कटे सिर की जगह रख दिया। ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी महाराज ने कहा कि जिस तेज से हम सब पैदा हुए है, वही तेज इसमें भी आ जाये। यह कहना था कि गणेश जी उठ बैठे तभी से गणेश जी का सिर हाथी का चला आ रहा रहा है और उनकी पूजा होती आ रही है। कुछ दूसरे पुराणों में यह कथा कुछ अदल बदल के साथ लिखी गई है।

सदाचारी जीवन (Moral life)

एक प्रकार से सदाचारी जीवन के विषय मे सनातन धर्मावलम्बियों के भी वही सिद्धान्त हैं, जो वैदिक धर्मानुयाइयों के है।

किन्तु समय के साथ साथ उन सिद्धान्तों में बंधन और शिथिलता, आती चली गई। कर्म-काण्ड पर अधिक जोर दिया जाने लगा। छूवाछूत और भोजन तक सदाचार के अन्तर्गत समझा जाने लगा। सदाचार जीवन से सम्बन्धित न होकर वर्गों और विचारों तक ही बंध कर रह गया।

स्वर्ग और नर्क

स्वर्ग—स्वर्ग के विषय मे पौराणिकों की ऐसी धारणा है कि स्वर्ग ऐसी किसी अज्ञात पुन्य भूमि पर स्थिर है जहा पृथ्वी से मोक्ष-प्राप्त महान् आत्माये देवताओं द्वारा अभिनन्दित सब प्रकार के दु ख, चिन्ता और क्लेशों से परे स्वर्गीय सुखों का उपभोग करते हैं।

उनकी धारणा है कि स्वर्ग जाते समय मार्ग में वैतरणी नदी को गऊ की पूंछ पकड़ कर पार करना पडता है तथा अनेक दिव्य वस्तुओं के साथ साथ स्वर्ण का पर्वत सुमेरु भी मार्ग में ही मिलता है। चारों ओर हरिकीर्तन, ईश्वर स्तुति, शंख और घडियाल की आनन्दमय ध्वनि सुनाई पड़ती रहती हैं।

नर्क—सनातनधर्मावलम्बियों की ऐसी धारणा है कि नर्क भी स्वर्ग से दूर ऐसे अज्ञात और भयानक भू-भाग, में स्थिर है जहाँ मृत्युलोक की दुष्ट और अनेक पाप कर्मों के पश्चात् मृत्यु को प्राप्त नीच आत्माएँ यम के दूतों द्वारा घोर कष्ट पाते हैं। साँप, बिच्छु तथा अनेक विषधारी कीड़े मकोड़े काटते रहते हैं, तेल के कढ़ाहे पकते रहते हैं और अनेक भयानक सींग वाले यम के दूत अनेक प्रकार के महा कठिन दु.ख पहुचाते हुए उन तेल के कडाहों में ही पकने के लिये उन्हे डाल देते हैं। कहीं दल दल में धंसाते हैं तो कहीं उबले हुए गर्म पानी में पकाते हैं।

सारांश यह है कि नर्क इतना भयानक है कि उसके स्मरण मात्र से ही बड़े से बड़े दुष्ट के भी रोएं खडे हो जाते हैं।

वर्ण

वैदिक काल में वर्ण चार थे, जो कर्म से माने जाया करते थे। धीरे धीरे कर्म का सिद्धान्त कम होता चला गया और सनातन धर्मावलम्बियों ने वर्ण व्यवस्था को जन्म से मानना आरम्भ कर दिया, अर्थात् जिस वर्ण मे कोई बच्चा पैदा होगा वह उसी वर्ण का कहलायेगा, चाहे उसके कर्म कैसे भी क्यों न हों। उद्योग फैल रहे थे और प्रत्येक व्यवसाय करने वाला अपने काम में दूसरे की अपेक्षा अधिक चतुर होने के कारण आसानी और लाभ के लिये अपने पुत्रों को भी अपने ही व्यवसाय में डालने लगा। व्यवसाय पीढ़ी दर पीढ़ी वर्णों की ही भांति चलने लगे। अब एक ही व्यवसाय के लोगों मे आपस मे एक दूसरे के लिये अधिक खिंचाव पैदा हुआ और वह अपने को और दूसरे वर्णों या व्यवसाय वालों से अलग समझने लगे। इस प्रकार प्रत्येक व्यवसाय वाले की अपनी अलग अलग जातियाँ एक ही धर्म के अन्तर्गत बनती चली गईं और अन्त में भारत मे जातियों का जाल सा बिछ गया। आज अनेक पुराणों और कहावत तथा किंवदन्तियों के सहारे प्रत्येक जाति अपना पुराना सम्बन्ध वैदिक काल से ही सिद्ध करती है और इसके लिये सबने अपनी अपनी उत्पत्ति की अनेक बड़ाई से भरी हुई कथाएँ गढ मढ ली है। आगे चल कर वर्णों और जातियों मे भी उपवर्ण, उपजाति और गोत्र तथा अनेक वंशावलियाँ चल पड़ीं। यह उपजातियाँ या गोत्र बहुधा भौगोलिक प्रदेशों के अनुसार भी चल पड़े। उपजातियों से ही गोत्र निकलते चले गये। जातियों के आपसी तनाव और स्वाभिमान के कारण छुआछूत और छुटाई बड़ाई के विचार भी दिन पर दिन और अधिक बढ़ते चले गये, आज दिन यह जिस संख्या में दिखाई पड़ रहे है उसे आसानी से समझना भी कठिन है।

सम्प्रदाय

यों तो सनातन धर्म के बहुत से सम्प्रदाय है परन्तु उनमें यह दो बडे सम्प्रदाय माने जाते है। एक शैव मत और दूसरा वैष्णव मत।

शैव मत—इस मत का प्रारम्भ वाम-मार्गियों के समय में हो गया था, किन्तु उस समय इसकी कोई विशेष उन्नति नहीं हुई थी। इसके पश्चात् जब वाम-मार्ग का पतन होना आरम्भ हुआ तो इस मत ने कुछ उभारा लेना आरम्भ कर दिया। इसके पश्चात् जैन और बौद्ध मतों का जन्म हो गया। उन दोनों ने वाम-मार्ग के साथ शैव मत का भी खंडन किया। जब तक इन दोनों मतों का जोर चलता रहा, उस समय तक शैव मत बड़ा संकुचित घेरे में रहा। आठवीं शताब्दी मे स्वामी शंकराचार्य का जन्म हुआ। उन्होंने जैन और बौद्ध मतों का खंडन करते हुए मायावाद की शिक्षा दी। उस समय शैव मत ने अधिक उभारा लिया। श्री शंकराचार्य को शिव का अवतार मान कर उनकी पूजा होने लगी। शिव की पूजा का भी अधिक जोर बढा। शिव की पूजा से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ती पर लोगों का पूरा विश्वास होता चला गया। मार्कन्डे और शिव पुराण लिखे गये। उनमें शिव महाराज को ईश्वर का पद देकर उनकी पूजा और उपासना का विधान चलाया गया। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, रुद्र, सूर्य और दूसरे देवी-देवता शिवजी महाराज के सेवक कहे गये।

शैव मत का महामन्त्र—शैव मत की पूजा के मन्त्र बहुधा पाँच अक्षर वाले होते हैं जैसे हर-हर-बम-बम, महादेव, ओम, नमो, शिवाय इत्यादि। इस मत के अनुयाई 'शिवरात्री' को बड़े उत्साह से मनाते हैं। उस दिन व्रत या उपवास रख कर रात भर जागरण करते है और शिव-मन्दिरो मे जाकर शिव की पूजा और उपासना करते हैं।

शैव मत वाले गले में रुद्राक्ष की माला, माथे पर राख का टीका लगाने को भक्ति का अंग समझते हैं और साथ ही इन दोनों बातों को स्वर्ग प्राप्ति में सहायक मानते हैं। उनका कहना है कि इनको देख कर यम के दूत डर जाते हैं।

शैव मत में कितने ही साधु-सन्तो तथा सिद्धो के सम्प्रदाय हैं। उनमे कुछ कनफटे, गिरी, पुरी इत्यादि के नाम से विख्यात है। इनकी एक दूसरे से सैद्धान्तिक भिन्नता है।

इस मत की धर्म पुस्तक शिव और मार्कन्डे पुराण इत्यादि हैं।

वैष्णव मत—इस मत का उभार शैव मत के विरोध में राजा भोज से लगभग १५० वर्ष पश्चात पटकोप नामक कंजराचार्य ने किया था। उनके पश्चात् उनके शिष्य मनिवाहन और यावनाचार्य ने उस मत का प्रसार किया था। इन सबके पश्चात् १०३७ ई० में रामानुजाचार्य ने इसमें चार चांद लगा दिये। उनके बाद स्वामी रामानन्द ने इसके प्रचार मे काफी योग दिया।

चक्रान्त—वैष्णव शख, चक्र, गदा, पद्म (कमल का फूल) को भगवान विष्णु के विशेष चिन्ह मानते हैं। यह लोग इन चारों वस्तुओं को दूध मे भिगो कर और आग मे तपा कर भुज मूलों पर लगाते है। इसी का नाम चक्रान्त है। उनका विश्वास है कि इन चिन्हों को देख कर यम के दूत डर जाते हैं और वे उनमें से किसी को भी स्वर्ग में जाने मे रोक नहीं सकते। इन चिन्हों से शरीर को सजाने से मोक्ष अवश्य मिल जाता है ऐसा ये लोग विश्वास करते हैं। माथे पर पुन्डर अर्थात् त्रिशूल की शकल का टीका लगाने और उसके बीच मे पीले रंग की लकीर को श्री लक्ष्मी जी का चिन्ह मान कर खींचने, ऊँगली में अँगूठी और गले मे डोडों की माला पहनने को भगवान का वाणा समझते हैं।

उनका विश्वास है कि विष्णु भगवान ही जगत के कर्त्ता, स्थिर रखने और नाश करने वाले हैं। वह अद्वितीय हैं। वह अनन्त, अनादि, सर्वज्ञ, अपरिवर्तनशील और पूर्ण हैं। हरणी गर्भ, हरि, वसुदेव, पुरुषोत्तम, नारायण, ब्रह्म, पद्मनाभ, लक्ष्मीपति, इत्यादि उन्हीं के भिन्न भिन्न नाम हैं।

वैष्णवों के महामन्त्र—इस मत के अनुयाइयों की पूजा के मंत्र ऊं नमो नारायण, ऊं श्री मते नारायणे नमः, ऊं भगवते वासुदेवाय नमो नमः, इत्यादि हैं। इन मंत्रों के जाप को वह मुक्ति प्राप्ति का साधन समझते हैं।

इस मत के साधुओं के भी शैव मत की भाँति कई एक सम्प्रदाय है। उनमें रामानन्दी, माधोनन्दी, रामप्रसादी और गौड बंगाली

इत्यादि हैं। इनके विचारों में भी कुछ मतभेद है। उनके तिलक के चिन्ह और गले की कंठियों में एक दूसरे से भिन्नता है।

वैष्णव वेदों पर अधिक श्रद्धा नहीं रखते। वह विष्णु भगवान को ही समस्त ब्रह्मान्ड और लोक लोकान्तर को रचने वाला मानते हैं। शिव, इन्द्र, रुद्र, सूर्य और दूसरे देवी देवताओं को विष्णु भगवान के सेवक समझते हैं। वह शैव मत से घृणा करते हैं और शैव मन्दिरों में जाना अच्छा नहीं समझते। मास, शराब इत्यादि तामसिक पदार्थों से घृणा करते हैं। यह लोग श्री रामानुजाचार्य को अपना आदि गुरु मानते हैं।

वैष्णवों की वैसे तो बहुत सी पुस्तकें हैं किन्तु 'विष्णु पुराण', 'भक्त माल' और चौरासी वैष्णवों की कथा इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

कुछ उपसम्प्रदाय यह हैं—

दादू पंथ—यह लोग वेद शास्त्रों को छोड कर अपने गुरु दादू जी के नाम को राम के नाम के साथ जोड़ कर जपने को ही मुक्ति का साधन समझते हैं। उनका मत्र 'दादूराम, दादूराम,' है।

दादूराम जी गुजरात में पैदा हुए। वहाँ से आकर अजमेर में तेली का काम करने लगे और साथ ही अपने मत का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। बहुत से चेले और चेलियाँ बना ली गई। दादू पंथी गुजरात और मारवाड़ में कुछ मौजूद है। इस मत का आरम्भ १६०० ई० के लगभग हुआ था।

राम स्नेही—यह लोग राम नाम के स्मरण को ही सब कुछ जानते हैं। किसी वेद या शास्त्र से कोई प्रयोजन नहीं रखते। राम नाम के जपने से ही ज्ञान, ध्यान और मुक्ति मानते हैं। यह बहुधा मूर्ति-पूजा नहीं करते। इस पंथ में अधिकतर स्त्रियाँ सम्मिलित हैं। शिष्य बनाते समय गुरु अपना झूठा भोग खिलाता है। राम-स्नेही अधिकतर राजपुताने की ओर बसे हुए हैं। उनमें सब ऊँच-नीच जातियों के लोग सम्मिलित हैं। जो राम नाम का अधिक स्मरण करता है, वह

सतगुरु कहलाता है। सतगुरु के चरणामृत को पीने में बड़ा महात्तम मानते हैं। यदि कोई रामस्नेही यात्रा को जाता है तो अपने गुरु का नाखून या दाढ़ी का बाल पवित्र समझ कर साथ ले जाता है और उसका प्रति दिन चरणामृत लेता है। स्त्रियां गुरु की सेवा पूजा करने में बड़ा महात्तम मानती हैं। पति सेवा से कतराती हैं। इस पंथ वाले अपने को सब से उत्तम और दूसरों को तुच्छ समझते हैं। उनकी धर्म पुस्तक का नाम 'साखी' है। इस पंथ वालों मे भी दो तीन सम्प्रदाय हैं। जिनमें एक दूसरे से कुछ बातों में भिन्नता है।

इस पंथ के चलाने वाले श्री रामचरण नामी एक साहूकार शाहपुर (मेवाड) के रहने वाले थे।

वल्लभ पंथ—यह लोग बड़े ठाठ बाट से रहते हैं। इस पथ वालेप्रत्येक वस्तु मे से कुछ भाग गुरु के नाम का अवश्य निकालते हैं। नई दुल्हन भी पहले पहल गुरु के चरणों में जाकर प्रणाम करती है। यह लोग अपने इस मत को ही केवल पुष्टि मार्ग बतलाते हुये कहते हैं कि वल्लभ गुरु की सेवा मे आये बिना उद्धार नहीं हो सकता। गुरु की सेवा पूजा मे ही आनन्द प्राप्ति समझते हैं। इस सम्प्रदाय वाले गुसाई कहलाते हैं।गुरु को भी गुंसाई जी के नाम से ही पुकारते हैं। गुरू अधिकतर रंगीन रेशमी कपडे पहनते हैं। होली के दिन श्री कृष्णचन्द्र का रूप बनाकर खूब रंग जमाते हैं। इस पंथ वाले कृष्ण चन्द्र को ही सब कुछ समझते हैं। उनका विश्वास है कि इस पंथ मे आते ही जीवात्मा और शरीर के सब पाप नष्ट हो जाते हैं। उनका ऐसा भी विश्वास है कि गुरु महाराज अर्थात गुंसाई जी इस पंथ वाले का सम्बन्ध ईश्वर से करा देते हैं। वल्लभाचार्य का ससार के उद्धार करने के लिये जन्म लेना मानते हैं। उनका सबसे उत्तम मंत्र 'श्री कृष्णा शरणं मम् अर्थात् मै श्री कृष्ण की शरण में आता हूँ' है।

यह पथ वल्लभाचार्य ने प्रचलित किया था। वल्लभाचार्य का जन्म १४७३ ई० मे हुआ था और वह १५३१ ई० तक जीवित रहे। इस प्रकार यह मत कोई ४५० वर्ष पुराना है। वल्लभाचार्य जब बच्चे थे तब उन्हे बनारस के निकट एक जंगल में डाल दिया था। लक्ष्मी भट्ट

और उसकी पत्नी उधर से जा रहे थे। उन्हों ने बच्चे को उठा कर अपने पुत्र की तरह पाला। वल्लभाचार्य ने काशी में शिक्षा पाई। उन का एक ब्राह्मण कन्या से विवाह हो गया, वह अपनी पत्नी को लेकर ब्रज में चले आये। वहां आकर कृष्ण के उपासक बनकर वैष्णव मत को मानने लगे। सन्यास लेकर शिष्य और शिष्याए बनानी आरम्भ करदीं। श्री कृष्णचन्द्र की भक्ति और रास लीला का प्रसार किया। उन्होने सब को कृष्ण भक्ति से उद्धार होने की शिक्षा दी। यह द्वैत-वादी थे। उन्हों ने कई एक पुस्तकें भी लिखी हैं। उनमें से एक पुस्तक 'सिद्धान्त रहस्य' है। इस पंथ वाले इस पुस्तक को बड़ी श्रद्धा के साथ पढ़ते हैं।

धर्म ग्रन्थ

वेद—सनातन धर्मावलम्बी वेदो की प्रधानता को उतना ही मानते हैं, जितना वैदिक धर्मानुयाई।

वेदों को ब्रह्मकृत मानकर उनका आदर सम्मान करते हैं। पुराण और दूसरे धर्म ग्रन्थों मे वेदो की बडी महिमा गाई गई है और यह निश्चय कराया गया है कि वेद ज्ञान का भंडार हैं, उनकी शिक्षा पर चलने से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। पुराणों में वेदों की निन्दा करने वाले को नास्तिक कहा गया है। श्री मद्भागवत गीता मे लिखा है कि धर्म वही है जो वेद मे वर्णन किया गया है। इस के अतिरिक्त अधर्म है। वेद नारायण का रूप है। दूसरे पुराणो मे भी बहुधा इसी प्रकार के विचार पाये जाते हैं। वैदिक और पौराणिक धर्मानुयाइयों मे आपस मे कुछ वैदिक ऋचाओं की व्याख्या करने मे मत भेद है। इस के अतिरिक्त पौराणिक धर्मानुयाई चारो उपवेदो, ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक तथा उपनिषदों मे भी उतनी ही श्रद्धा रखते है, जितनी वैदिक धर्मा-नुयाई। किन्तु यह लोग पुराणो, रामायण, सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, योग वशिष्ठ, महूर्त्त चिन्तामणि, स्त्री कुण्ड, सन्तान सूत्र, और सत्यनारायण की कथा इत्यादि पुस्तकों को बडी श्रद्धा से पढ़ते है।

सनातन धर्म की नीव अधिकतर पुराणों पर आधारित है। इसी

कारण इसे पौराणिक मत भी कहते है।

पुराण संख्या में १८ हैं, जिनके नाम यह हैं:—

(१) मारकण्डे पुराण (२) भूपित पुराण (३) भागवत् पुराण (४) ब्रह्मदेवरत पुराण (५) ब्रह्माण्ड पुराण (६) शिव पुराण (७) विष्णु पुराण (८) वराह पुराण (९) लिंग पुराण (१०) पद्म पुराण (११) नारद पुराण (१२) कूर्म पुराण (१३) अग्नि पुराण (१४) मत्स्य पुराण (१५) ब्रह्म पुराण (१६) वामन पुराण (१७) स्कन्द पुराण (१८) गरुड़ पुराण।

इन पुराणों के अतिरिक्त कुछ उप-पुराण भी है, जिनके नाम स्थानाभाव के कारण छोड़ दिये गये हैं।

पुराणों के विषय में सनातन धर्मानुयाइयों की ऐसी श्रद्धा है कि यह सब पुराण व्यास मुनि ने रचे थे, जो वेदों के पूरे ज्ञाता थे। व्यास मुनि ने कलियुग के लोगों के कल्याण के लिये इनकी रचना की थी। यह वेदों के आधार पर लिखे गये हैं। उनका ऐसा भी कहना कि पुराणों का पद वेदों से किसी दशा में भी कम नहीं है। पुराणों में वेदों की शिक्षा को बहुत सरल करके दर्शाया गया है। इसलिये कहना पड़ता है कि जो पुराणों को मानता है, वह वेदों को ही मानता है। श्रीमद्भगवत-गीता में लिखा है कि वेद* ने स्त्री और शूद्र को वेद सुनने का अधिकार नहीं दिया था इसलिये व्यास मुनि ने वेदो के अर्थ और भावों को लेकर सबके कल्याण के लिये पुराणों की रचना की थी, ताकि स्त्री और शूद्र भी पुराणों को पढ़ कर या सुन कर कल्याण प्राप्त कर सकें। महाराज युधिष्ठिर के राज्य को अब सम्वत् २०११ विक्रमी में ५०४५ वर्ष हो चुके हैं। वाराही संहिता में लिखा है कि वि० सं० आरम्भ होने से ५०८ वर्ष पहले युधिष्ठिर का २५२६ स० था।

वराह, पद्म, लिंग, कूर्म और भागवत इत्यादि पुराणों में ऐसा लिखा है कि सतयुग में धर्म के चार चरण, त्रेता में तीन चरण, द्वापर

*यजुर्वेद अध्याय २६ मन्त्र २ में (वेदों के सुनने का अधिकार सबको दिया है। स्त्री या शूद्र पर कोई पाबन्दी नहीं)।

मे दो चरण और कलियुग में धर्म का एक चरण रहता है, इसलिये कलियुग मे अक्सर लोग झूठ बोलने वाले, दूसरों के धन-दौलत पर नज़र रखने वाले, दूसरे की स्त्रियों को बुरी नज़र से देखने वाले, माता-पिता से घृणा और बुरा व्यवहार करने वाले तथा नास्तिक विचार के हो जाते हैं। इसलिये व्यास मुनि ने इन पुराणों की रचना की थी। अतः यह पुराण कलियुग मे कल्याण के दाता हैं और इनमें आपस में कोई विरोध नहीं है।

सब पुराणों में भक्ति-भाव पर अधिक जोर दिया गया है और भक्ति की बड़ी महिमा गाई है। कुछ पुराणों में शिव की, कुछ में विष्णु की और कुछ मे श्री कृष्ण चन्द्र की भक्ति पर जोर दिया गया है। कुछ पुराणों मे ब्रह्मा को निर्माण करने वाला (Creater) विष्णु को स्थिर रखने वाला (Preserver) और शिव को नाश करने वाला Destroyer) कहा गया है। कुछ पुराणों में विष्णु को और कुछ पुराणों में शिव को निर्माण करने वाला बतलाया गया है। कुछ पुराणो में शिव को प्रधानता दी गई है, कुछ में विष्णु को और कुछ में ब्रह्मा को। प्रायः यह कहा गया है कि मनुष्य चाहे किसी नाम और किसी रूप में उपासना करे, वह सब विष्णु या शिव की ही उपासना कहलाती है। पुराणों में ऊंचे से ऊंचे और गहरे से गहरे विचार भी पाये जाते हैं। उनमें पहले राजाओं का इतिहास, देवी-देवताओं के भिन्न भिन्न वर्णन, मूर्ति-पूजा के विचार, तीर्थों के महात्तम, स्वर्ग और नर्क की व्याख्या के अतिरिक्त बहुत सी सदाचार सम्बन्धी शिक्षाए भी पाई जाती हैं। राजपूतों के समय में पुराणों की शिक्षा का अधिक जोर हुआ। बहुत से मन्दिर बनाये गये और मूर्त्ति-पूजा का प्रचार किया गया।

समस्त पुराणों को एक साथ पढ़ने से पता चलता है कि यह पुराण व्यास मुनि के लिखे हुए नहीं है और न ही ये पॉच हज़ार वर्ष पुराने ही सिद्ध होते हैं। इन पुराणों में एक दूसरे से बहुत सी भाषा तथा शैली इत्यादि बातो में विचित्रता पाई जाती है। इसलिये कहना पड़ता है कि यह सब पुराण एक समय में एक ही व्यक्ति के लिखे हुए नहीं है। प्रत्येक पुराण ने अपने अपने विचार के अनुसार अपने अलग-अलग इष्ट-देवों की प्रशसा की है। कुछ विद्वानों ने खोज के पश्चात्

ऐसा लिखा है कि राजा भोज से पहले किसी पुराण का नाम नहीं आया है।

पुराणों में जो भिन्नता पाई जाती है उनमें से नमूने के तौर पर कुछ यह है:—

(१) देवी-भागवत-पुराण के हिन्दी अनुवाद की भूमिका मे लिखा है कि यह भागवत-पुराण वोपदेव का बनाया हुआ है। वोपदेव के भाई जयदेव ने गीत गोविन्द भी लिखा था। यह दोनों राजा भोज के समय में हुए थे। राजा भोज ४८४ ई० में हुए थे। इसके पश्चात् लीला खेलने वालों ने उन कहानियो में अधिक वृद्धि की थी। भागवत पुराण विष्णु पुराण से कुछ पहला लिखा हुआ है। इन दोनों पुराणों में श्री कृष्णचन्द्र की भक्ति पर अधिक ज़ोर दिया गया है और श्री कृष्णचन्द्र का जीवन-चरित्र भी वर्णन किया गया है।

(२) ऐसा कहा जाता है कि श्री सुकदेव जी (व्यास मुनि के पुत्र) राजा परीक्षत (अर्जुन के पौत्र) को भागवत सुनाया करते थे, किन्तु भीष्म पितामह जब घायल होकर कुरुक्षेत्र के मैदान में पड़े थे और युधिष्ठिर उनके पास बैठे बात-चीत कर रहे थे तब भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा कि श्री सुकदेव जी मर गये (महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ३२२, ३२३) जिस समय भीष्म पितामह और युधिष्ठिर में यह बाते हुई थीं उस समय परीक्षत गर्भ में थे।

इसी पुराण में एक राजा के लड़के का एक वेश्या पर आशक्त होकर एक यवन बन जाने का वर्णन पाया जाता है।

(३) कुछ पुराणो मे बुद्ध देव का भी प्रसंग आता है और उन्हे विष्णु का अवतार माना गया है। बुद्ध देव का जन्म सन् ६२३ ईसा पूर्व मे हुआ था।

(४) विष्णु पुराण में बौद्ध और जैन मतों का खण्डन किया गया है बौद्ध और जैन लगभग एक ही समय में हुए हैं।

(५) पद्म पुराण और कूर्म पुराण में श्री शंकराचाय को महादेव का अवतार माना गया है। श्री शकराचार्य ८०० ई० में हुए हैं।

(६) मत्स्य पुराण में राजा विक्रमादित्य का वर्णन पाया जाता जाता है। उनका संवत् इस समय २०११ चल रहा है।

(७) ब्रह्म पुराण और स्कन्द पुराण में जगन्नाथ के मन्दिर का बड़ा महात्तम लिखा है। यह मन्दिर राजा नंग भीमदेव ने सं० २३१ वि० में बनवाया था। इस मन्दिर पर यह तिथि लिखी है।

(८) ब्रह्माण्ड पुराण और पद्म पुराण में तम्बाकू पीने को बुरा बताया गया है। तम्बाकू पहले पहल इस देश में अमरीका से अकबर के समय में आया था, ऐसा तुज्के-जहाँगिरी में लिखा है।

(९) पद्म पुराण में सोमनाथ, काशी, रामेश्वर, मथुरा इत्यादि तीर्थों के मन्दिरों को यवनों द्वारा तोडे जाने का वर्णन पाया जाता है। यवन इस देश में सन् ७०० ई० में आने आरम्भ हुए थे।

(१०) व्यास मुनि ने उत्तर मिमांसा अर्थात् वेदान्त दर्शन की रचना की। पातञ्जली ऋषि के योगदर्शन का भाष्य किया और महाभारत पुस्तक लिखी। इनकी भाषा और शैली तथा पुराणों की भाषा-शैली और विचारों में भी आकाश पाताल का अन्तर है।

पुराणों की विभिन्नता सम्बन्धी कुछ विशेष बातें नीचे लिखी गई हैं—

(१) भागवत पुराण में जैसे काशी को सबसे श्रेष्ठ तीर्थ माना है वैसे ही पद्म पुराण में सबसे श्रेष्ठ माना है।

(२) देवी भागवत पुराण में लिखा है कि यही पुराण पाप के नाश करने वाला है, दूसरा कोई नहीं।

(३) मत्स्य पुराण में यह वर्णन है कि यह शास्त्र सबसे मुख्य है। जो कोई इसके एक पद का भी जाप करता है, वह पापों से छूट कर विष्णु लोक को चला जाता है।

(४) वामन पुराण में लिखा है कि इस पुराण के जाप से सब प्रकार के पाप छूट जाते हैं क्योंकि यह सबसे प्रधान है।

(५) ब्रह्म वैवरत पुराण के आरम्भ में लिखा है कि यह सब पुराणों से श्रेष्ठ और वेद की त्रुटियों को भी ठीक करने वाला है।

(६) वराह पुराण में लिखा है कि इसके जाप से मनुष्य मुक्ति पा जाता है।

(७) शिव पुराण में ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि कलियुग में शिव पुराण के अतिरिक्त दूसरा कोई धर्म मनुष्य को मुक्ति नहीं दिला सकता। कलियुग में इस पुराण से अधिक मनुष्य को शुद्ध करने वाला दूसरा कोई पुराण नहीं है। वेद आदि शास्त्र इसके बराबर नहीं हैं।

(८) लिंग पुराण में ऐसा लिखा है कि जो कोई इस पुराण को आदि से अन्त तक पढ़ता या सुनता है, वह परम गति को प्राप्त करता है। तप, यज्ञ और दान इत्यादि से जो पुण्य होता है वही इस पुराण के सुनने से होता है।

(९) मारकण्डे पुराण में ऐसा लिखा है कि जो मनुष्य इस पुराण को किसी योग्य पंडित से पढ़वाता, सुनता और पूजा करता है, वह अपने पापों से छूट कर अपने कुल को पवित्र करता है। वह स्वयं पवित्र होकर विष्णु लोक को चला जाता है। यही उत्तम पुराण है जो कलियुग में पापों का नाश करता है।

(१०) गरुड़ पुराण में लिखा है कि यही वह पुराण है कि जिसके सुनने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं और दुःखों का नाश होता है। इसके सुनने से समस्त कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं।

(११) विष्णु पुराण में लिखा है कि जो इस पुराण को पढ़ेगा, वह समस्त पापों से छूट जायेगा।

(१२) अग्नि पुराण में लिखा है कि इसका लिखने वाला और सुनने वाला दोनों भगवान हैं। यह पुराण सब में श्रेष्ठ है। इस जैसा कोई दूसरा शास्त्र नहीं है। जो कोई इसके एक श्लोक को भी पढ़ता है, वह ब्रह्म लोक को चला जाता है।

(१३) वायु पुराण में लिखा है कि अगर कसाई भी इसे एक बार सुनले तो वह भी मुक्त हो जाता है।

कहाँ तक कहा जाये, दूसरे पुराणों में भी इसी प्रकार की अपने अपने विषय में प्रधानता दिखलाई गई है। कुछ पुराणों में यह भी कहा गया है कि यह पुराण वेदों के अनुकूल बनाए गये हैं।

कुछ पुराणों की विभिन्नता के दूसरे नमूने इस प्रकार पाए जाते हैं—

(१) विष्णु पुराण में विष्णु की पूजा को उत्तम और शिव की पूजा को तुच्छ बतलाया गया है।

पद्म पुराण में विष्णु की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि जो लालच में फँस कर और विष्णु को छोड़ कर किसी दूसरे देवता की पूजा करता है वह पाखण्डी है। जो ब्राह्मण विष्णु के सिवाय किसी और देवता पर चढ़ा हुआ भोग ग्रहण करता है, वह चाण्डाल के बराबर है।

(२) लिंग पुराण में लिखा है कि विष्णु और ब्रह्मा शिव की माया को नहीं पा सकते। लिंग और शिव पुराणों में शिव को ईश्वर और ब्रह्मा तथा विष्णु को सेवक बतलाया है।

(३) देवी-भागवत-पुराण में ब्रह्मा से विष्णु और विष्णु से महादेव को बड़ा बतलाया गया है।

(४) शिव पुराण में शिव की प्रशंसा करते हुए लिखा गया है कि त्रिलोक के स्वामी ब्रह्मा और विष्णु के स्वामी शिव जी महाराज हैं। जो इनको छोड़ कर किसी दूसरे की पूजा करता है, वह चाण्डाल है।

(५) श्रीमद् भागवत पुराण में श्रीकृष्णचन्द्र की भक्ति को सबसे उत्तम बतलाया गया है और दूसरे देवि देवताओं का घृणा से वर्णन किया गया है।

(६) भविष्य पुराण मे केवल सूर्य भगवान की सेवा-पूजा को उत्तम बतलाया गया है।

इसी प्रकार हर एक पुराण में अलग २ तीर्थों की महिमा और अलग अलग इष्ट देवों की प्रशंसा करने तथा मुक्ति प्राप्त करने का वर्णन पाया जाता है। बहुत से पुराणों में भिन्न-भिन्न महामन्त्रों के जाप में ही मुक्ति का रहस्य बताया गया है।

गीता

गीता का अर्थ है 'गाया हुआ' या 'सुनाया हुआ'। गीता को कर्मशास्त्र या कर्म योग शास्त्र के नाम से भी पुकारा जाता है। गीता के विषय में ऐसी उपमा दी जाती है कि उपनिषद् गाय है, कृष्ण जी ग्वाल हैं, अर्जुन बछड़ा है और गीता दूध है। महाभारत के युद्ध के आरम्भ होने से कुछ ही देर पहले कुरुक्षेत्र के मैदान में जब अर्जुन युद्ध से घृणा करके ज्ञान और मोह की बातें करने लगा तथा सन्यास लेकर जंगलों में जाने के लिये इच्छा प्रकट कर रहा था, उस समय श्री कृष्णचन्द्र ने अर्जुन को जो उपदेश दिया वही गीता पुस्तक मे लिखा है। यह पुस्तक पाच हजार वर्ष से भी अधिक पुरानी है। श्री कृष्णचन्द्र ने अर्जुन को उपदेश देकर युद्ध के लिये तय्यार किया तथा जंगलों में जाने से रोक कर कर्मयोग की शिक्षा दी और यह बतलाया कि कर्मयोग ही मनुष्य का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। गीता की वास्तविक शिक्षा इसी कर्मयोग पर आधारित है। अतः संक्षेप में गीता की शिक्षा यह कही जा सकती है कि ज्ञान, बुद्धि और भक्ति के द्वारा सम-बुद्धि धर्म के अनुसार अपने अपने कर्त्तव्य को निस्वार्थ भाव से आयु भर पालन करना ही मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। मुक्ति प्राप्ति के लिये कर्मों का त्याग करके, जंगलों में जाकर अलग बैठना आवश्यक नहीं है। यह पुस्तक पिंड, ब्रह्मान्ड, ज्ञान और आत्म विद्या की गहरी और पवित्र बातों को संक्षेप में किन्तु स्पष्ठ रूप से समझाने वाली एक श्रेष्ट पुस्तक है।

असली गीता के ७०० श्लोक हैं और यह १८ अध्यायों में विभाजित हैं। इनमें एक श्लोक धर्त्तराष्ट्र का, ४० सञ्जय के, ८० अर्जुन

के और ५७६ श्री कृष्णचन्द्र के हैं। कुछ गीताओं में उससे अधिक श्लोक भी पाये जाते हैं, किन्तु वह बाद के बढ़ाये हुये स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं।

गीता का भाष्य बहुत से आचार्यों और विद्वानों ने किया तथा बहुत सी टीकाएं लिखी गईं। इस समय जो सबसे पुराना भाष्य मिलता है वह श्री शंकराचार्य का है। अत. यह कहना कठिन है कि श्री शंकराचार्य से पहले गीता का क्या अर्थ समझा जाया करता था। शंकर के पश्चात् श्री मधुसूदन, श्री रामानुजाचार्य, श्री वल्लभाचार्य, श्री लम्बार्काचार्य, श्री ज्ञानेश्वर और श्री तिलक महाराज ने भी गीता के भाष्य किये थे। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से विद्वानों ने गीता के भाष्य और टीकाएं लिखीं। प्रोफैसर मैक्समूलर ने भी अंग्रेजी भाषा में गीता का भाष्य किया किन्तु उनके भाष्य का आधार श्री शंकराचार्य का भाष्य ही है। गीता के भाष्यों की आपस में तुलना करने से यह ज्ञात होता है कि उनमें एक दूसरे से काफी मत भेद है। इस मत भेद का वास्तविक कारण यह दिखाई पड़ता है कि बहुधा प्रत्येक सम्प्रदाय के आचार्यों ने अपने अपने सम्प्रदाय के उद्देश्यों के अनुसार गीता के अर्थ ठहराए।

श्री शंकराचार्य ने अपने भाष्य में यह दर्शाया है कि ज्ञान प्राप्त करने के लिये कर्म एक साधारण साधन है। सब कार्यों को छोड और एकान्त में जाकर ज्ञान प्राप्त करने से ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

श्री मधुसूदनाचार्य भी शंकर मत के ही मानने वाले थे। अत उन्होंने भी गीता के वही अर्थ किये जो श्री शंकर ने किये थे।

श्री रामानुजाचार्य १०३७ ई०, इन्होंने श्री शंकर मत का खंडन किया। इस लिये उन्होंने गीता का प्रयोजन कर्म छोडना नहीं वरन कर्म करना बतलाया। इसके साथ ही उन्होंने श्री कृष्णचन्द्र की भक्ति करने को मुक्ति का साधन बतलाया और यह कहा कि गीता का सारांश श्री कृष्णचन्द्र की भक्ति है। श्री कृष्णचन्द्र की भक्ति का प्रचार करने वाले सब से पहिले यही आचार्य थे।

श्री माधवाचार्य ११११ ई०, इन्होंने शंकराचार्य के माया-

वाद तथा कर्म त्याग का खंडन किया और यह सिद्ध किया कि जीव और ब्रह्म एक नहीं हैं वरन अलग अलग हैं। उन्होंने गीता का प्रयोजन यह बतलाया कि भक्ति की अपेक्षा निष्काम कर्म करना ही मनुष्य का श्रेष्ठ कर्त्तव्य है।

श्री चैतन्य महा प्रभु:—१४८५ ई०, उनके भी यही विचार है।

श्री वल्लभाचार्य—१४७३—१५३१ ई०, इन्होंने गीता का प्रयोजन भगवत भक्ति बतलाकर यह समझाया कि ईश्वर की कृपा के बिना ज्ञान और मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। यह द्वैतवादी थे। इन्होंने शंकर के सामयावाद का खंडन किया। श्री कृष्णचन्द्र की भक्ति तथा रास लीला का प्रचार किया, और सब को श्री कृष्ण भक्ति के द्वारा उद्धार करने की शिक्षा दी।

श्री निम्बार्काचार्य—यह ११वीं शताब्दी में हुये। यह ईश्वर, जीव और प्रकृति को अलग अलग मानते थे। इन्हों ने भगवत भक्ति की ओर अधिक ध्यान दिया। श्री कृष्णचन्द्र के साथ राधिका जी को सम्मिलित करके दोनों की एक साथ भक्ति करना ही गीता का विशेप प्रयोजन बताया।

श्री ज्ञानेश्वराचार्य—१२७५ ई०, इन्होंने गीता के प्रथम छः अध्यायों में कर्म करने की, बीच के छः अध्यायों मे भक्ति की और अंतिम छः अध्यायों में ज्ञान की शिक्षा बतलाई। अत: आपने इन तीनों बातों पर जोर दिया और कहा कि मोक्ष प्राप्त करने के लिये योगाभ्यास ही सर्व श्रेष्ठ साधन है किन्तु कर्म करना ही परमावश्यक है।

तिलक महाराज:—इन्हों ने अपने 'गीता रहस्य' में ज्ञानेश्वर महाराज की सम्मति को ही ठीक माना है।

रामायण—यह श्री रामचन्द्र जी के सुन्दर चरित्र का इतिहास है। सबसे प्राचीन वाल्मिकी रामायण है। यह संस्कृत मे है। यही प्रमाणिक रामायण मानी जाती है। दूसरी तुलसी कृत

रामायण है। यह हिन्दी भाषा में है। इसको तुलसीदास जी ने अकबर बादशाह के समय में लिखा था, जिसको लगभग ४०० वर्ष हो चुके हैं जिस समय यह रामायण लिखी गई उस समय इस देश में वैष्णव मत और शैव मत का जोर चल रहा था। गोस्वामी तुलसीदास जी वैष्णव मत के मानने वाले थे; इस लिये उन्होंने अपनी रामायण में भक्ति भाव पर अधिक ज़ोर दिया है। सनातन धर्मी इसे इतिहास न समझ कर एक धार्मिक ग्रंथ मानते हैं और बड़े प्रेम तथा श्रद्धा के साथ इसकी कथा कहलाया करते हैं। इसी रामायण के आधार पर प्रतिवर्ष रामलीला मनाये जाने का प्रचार हुआ। इस रामायण के अतिरिक्त आदि रामायण, मूल रामायण, महा रामायण, हनुमान नाटक इत्यादि राम से सम्बन्धित ग्रन्थ हैं किन्तु उनके लिखे जाने का समय और लिखने वालों के विषय में कुछ पता नहीं चलता।

योग वशिष्ट—यह पुस्तक लगभग ३०० वर्ष पुरानी मालूम पड़ती है। इस में भी श्री रामचन्द्र जी का इतिहास है। इसके बनाने वाले का भी कुछ पता नहीं चलता।

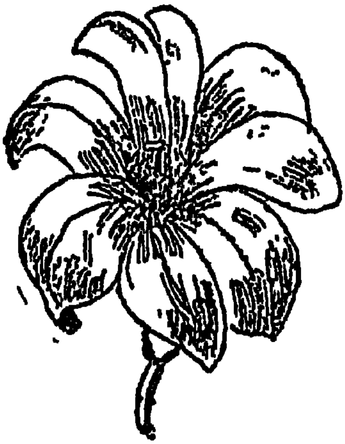
नीचे वेद और पुराण के कुछ विचार और विशेषताएं तुलनात्मक रूप में सक्षेप में लिखी गई हैं—

पुराण	वेद
(१) पुराणों में बहुत सी बातें बुद्धि, प्रकृति और सत्य ज्ञान के विरुद्ध पाई जाती हैं।	(१) वेद में बुद्धि, प्रकृति और सत्यज्ञान के विरुद्ध, कोई बात नहीं है।
(२) पुराणों में भिन्न भिन्न बहुत से देवी देवताओं, अवतारों कर्त्तारों, नदी नालों, तीर्थों और वृक्ष आदि की पूजा उपासना का वर्णन पाया जाता है।	(२) वेद में केवल एक ईश्वर की ही पूजा का विधान है।
(३) पुराणों मे श्री कृष्णचंद्र,	(३) वेद में केवल ज्ञान के

पुराण	वेद
विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, सूर्य, चन्द्रमा, देवी देवता, गङ्गा, यमुना त्रिवेणी, नर्वदा, सालगराम तथा दूसरे देवी देवताओं, वृक्षों आदि की भक्ति करने से मुक्ति प्राप्त होने के विचार पाये जाते हैं।	के द्वारा ही मुक्ति प्राप्त होने का वर्णन पाया जाता है।
(४) पुराणों में पुत्र आदि के किये हुये अच्छे या बुरे कर्मों का प्रभाव माता पिता पर भी पड़ने का वर्णन मिलता है।	(४) वेद में अपने किये हुये अच्छे या बुरे कर्मों का अच्छा या बुरा प्रभाव अपने ही ऊपर पड़ने का वर्णन मिलता है, किसी अन्य पर नहीं।
(५) पुराणों मे वेद का पढ़ना और सुनना स्त्री और शूद्र के लिए मना किया है।	(५) वेद में स्त्री पुरुष को वेद पढ़ने और सुनने का अधिकारी बनाया है।
(६) पुराणों में बहुत कुछ इतिहास है।	(६) वेद में कोई इतिहास नहीं है।
(७) पुराणों में एक दिन में तीन बार मूर्तिपूजा और उपासना आदि करने की आज्ञा दी है।	(७) वेद ने एक दिन में केवल दो बार ही ईश्वर उपासना करने की आज्ञा दी है। एक बार कार्य आरम्भ होने से पहिले और दूसरी बार कार्य समाप्त होने के बाद।
(८) पुराणों में जाति जन्म से मानी है।	(८) वेद ने गुण, कर्म और स्वभाव से जाति बनाये जाने की आज्ञा दी है।
(९) कुछ पुराणों में यज्ञ में	(९) वेद ने मांस खाने और

पुराण	वेद
मांस की आहुति डालने और देवताओं को मद्य से प्रसन्न करने का वर्णन पाया जाता है।	शराब पीने को बहुत बुरा बताया है।
(१०) पुराणों ने पति सेवा के अतिरिक्त भांति २ के व्रत, गंगा यमुना इत्यादि तीर्थों के दर्शन, स्नान तथा दान पुन्य करने और मूर्ति पूजा इत्यादि करने को उत्तम बताया है।	(१०) वेद ने पति सेवा उत्तम बताते हुये मूर्ति पूजा का खंडन किया है।
(११) पुराणों ने गंगा, यमुना इत्यादि तीर्थों पर जाकर स्नान और दान पुण्य करने में ही मुक्ति का रहस्य बताया है।	(११) वेद ने उत्तम और श्रेष्ठ मनुष्यों की संगति को तीर्थ कहा है।
(१२) पुराणों ने भूखे रहने को व्रत माना है।	(१२) वेद ने नियम पालन करने को ही व्रत कहा है।
(१३) पुराणों में स्त्री के लिये किसी को गुरु बना कर उस की सेवा करने पर जोर दिया है।	(१३) वेद ने स्त्री को किसी अन्य पुरुष के साथ एकांत में जाने से मना किया है।
(१४) पुराणों में लाखों वर्ष तक जीवित रहने का वर्णन मिलता है।	(१४) वेद ने अधिक से अधिक मनुष्य की आयु ४०० वर्ष बताई है।
(१५) पुराणों में ईश्वर को साकार, निराकार और विकार वाला माना है जो अपने भक्तों की रक्षा के लिये अवतार भी धारण	(१५) वेद ने ईश्वर को अजन्मा, सर्व व्यापक, सर्वयज्ञ, सर्व शक्तिमान, निराकार, अजर, अमर शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, न्याय

पुराण	वेद
कर लेता है।	कारी, दयालु, और अनन्त इत्यादि गुणों वाला बतलाया है।
(१६) पुराणों ने एक पुरुष के लिये एक समय में कई विवाह कर लेना बुरा नहीं बतलाया।	(१६) वेद ने एक समय में एक पुरुष को एक स्त्री के साथ ही विवाह करने की आज्ञा दी है।



श्रीकृष्णचन्द्र

श्रीकृष्णचन्द्र महाराजा चन्द्र की ४२वीं पीढी में उत्पन्न हुए थे, इसी लिए उन्हें चन्द्रवशी कहा जाता है। ५००० वर्ष से कुछ अधिक समय हुआ, यमुना नदी के किनारे पर मथुरा राजधानी में महाराज उग्रसैन राज्य करते थे। वह बड़े प्रतापी और न्यायकारी थे। उनके राज्य में सब प्रजा आनन्दपूर्वक रहती थी। उनकी रानी का नाम पवनरेखा था। उससे एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम कंसदेव रक्खा गया। कंसदेव आरम्भ से ही नटखट और असभ्य था। उसने लिखने-पढ़ने की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। जब वह जवान हुआ तो उसने अपने पिता को पकड़ कर कारागार में डाल दिया और स्वयं राजा बन बैठा। थोड़े ही समय मे समस्त प्रजा उसके अत्याचारों से तिलमिला उठी। उसके एक बहन देवकी थी, उसका विवाह राजा सूरसैन के बेटे—वसुदेव के साथ कर दिया गया था। कंस ने राजा सूरसैन पर आक्रमण करके उसका राज्य नष्ट कर दिया था। अत. कंस को उस विवाह के पश्चात् ऐसा अनुमान हुआ कि सम्भवः है वसुदेव से जो सन्तान उत्पन्न हो वह मुझे किसी प्रकार की हानि पहुचाये। इसी लिये उसने अपनी बहन देवकी और बहनोई वसुदेव को कारागार में डाल दिया। कारागार में वसुदेव के यहाँ देवकी से छः पुत्र पैदा हुए और सातवां गर्भपात हुआ। उन सबको कंस अपने हाथ से मारता रहा। आठवें गर्भ से श्रीकृष्णचन्द्र का भादों वदी अष्टमी को रात के बारह बजे उसी कारागार में जन्म हुआ। यह पुत्र बड़ा सुन्दर और होनहार था। माता-पिता ने उसको बचाने की चेष्टा की। अन्त में यह निश्चय हुआ कि किसी तरह इसको गोकुल में नन्द अपने मित्र के यहाँ भेज दिया जाये। वसुदेव श्रीकृष्ण-चन्द्र को लेकर चल दिये। उस समय पहरेदार सोये पड़े थे। वसुदेव नन्द के यहाँ जब पहुचे तो देखा कि उसी रात को नन्द की रानी यशोदा के एक लड़की पैदा हुई है। वसुदेव उस लड़की को लेकर कारागार वापस आ गये।

श्रीकृष्णचन्द्र के पैदा होने, कारागार की फाटक खुलने और यमुना पार करने आदि के विषय में कुछ पुराणों और दूसरे ग्रन्थों में

बहुत से चमत्कार भरे पड़े हैं। जब कंस को देवकी के यहां पुत्री पैदा होने का समाचार मिला तो वह स्वयं कारागार मे पहुंचकर और उस लड़की को लेकर एक पत्थर पर पटक कर मार डाला।

इधर नन्द जी के यहाँ श्रीकृष्णचन्द्र का पालन-पोषण होने लगा। वसुदेव और देवकी भी कभी २ अवसर पा कर अपने पुत्र को देख कर दिल ठंडा कर लिया करते थे। वसुदेव की ज्येष्ठ पत्नि रोहिणी के गर्भ से श्रीकृष्ण के जन्म से कुछ पहले ही श्री बलराम जी का जन्म हो चुका था। श्रीकृष्ण के पैदा होने की बात बहुत दिनों तक छिप न सकी और कंस को उस लड़के के पैदा होने और नन्द जी के यहां पालन-पोषण होने का पता चल गया। कंस ने कुछ बदमाश स्त्रियां और पुरुष उस लड़के को मारने के लिए नियुक्त किये, किन्तु वह उसका कुछ न बिगाड़ सके। जब नन्द जी ने गोकुल में कंस के भेजे राक्षसों का अधिक उत्पात देखा तो वह लड़के को लेकर गोकुल से वृन्दावन चले आये। गोकुल और वृन्दावन में कृष्णचन्द्र की बाल-लीलायें दिखाने के विषय मे बहुत अधिक लिखा गया है। एक पुस्तक "बृज-विलास" जो सं० १८२७ वि० में लिखी गई थी, उसमें और भक्तमाल, प्रेमसागर इत्यादि बहुत सी पुस्तकों मे श्रीकृष्णचन्द्र की बाल-लीलाओं में से गोपियों के साथ रंग-रलियां मनाने, रास-विलास करने और मक्खन चुराने आदि पर अधिक जोर दिया गया है। भक्तमाल पुस्तक को ४०० साल के लगभग हुए नाभा जी ने लिखा था। इस पुस्तक में श्रीकृष्ण-चन्द्र पर बहुत से कलंक लगाये गये हैं। भागवत पुराण मे भी कृष्णचन्द्र का जीवन-चरित्र कुछ ऐसा ही लिखा है। महाभारत और गीता के श्रीकृष्ण में हमे दिव्य गुणों की ऐसी अद्भुत झाकी दिखाई पड़ती है जो विश्व-इतिहास में सर्वश्रेष्ठ है। श्रीकृष्ण महायोगेश्वर, तेजस्वी, राजर्षि, विशुद्ध, पुण्यमय, प्रेम-मय, दयामय, दृढ़ कर्मी, धर्मात्मा, वेदों के ज्ञाता, नीतिज्ञ, धर्म के ज्ञाता, लोक-हितैषी, क्षमाशील, न्यायवान, शास्त्री, निराभिमानी और तपस्वी थे। किन्तु प्रेम सागर, ब्रज विलास, सूरसागर और गीत-गोविन्द इत्यादि ग्रन्थों में श्रीकृष्णचन्द्र के तेजस्वी और उच्च गुणों का वर्णन न करके केवल उनके चरित्र को अश्लील श्रृंगार, रास क्रीडा, नाचरंग और व्यभिचार के नंगे दृश्यों से भर दिया है।

जिसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दु जाति कृष्ण-चरित्र भव्य रूप और उनकी वास्तविक शिक्षा को भुला कर अश्लील, गंदे और रसीले विचारों को ग्रहण करती तथा इसी प्रकार पतन के गहरे गड्ढे में गिरती चली गई। श्रीकृष्णचन्द्र से कुछ पहले गोकुल और वृन्दावन में इन्द्र पूजा की प्रथा इस लिये चली आ रही थी ताकि देवराज इन्द्र प्रसन्न होकर समय पर वर्षा करदें। श्रीकृष्णचन्द्र ने इन्द्र की उस पूजा का रिवाज हटा कर वेदों के अनुसार यज्ञ और हवन करने का प्रचार किया। श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम गोवर्धन* गये। वहां पर यज्ञ और हवन किया, इससे वर्षा होने लगी। इस प्रकार इन्द्र-पूजा का चला आता हुआ रिवाज समाप्त किया।

वृन्दावन में रहते हुए श्रीकृष्णचन्द्र लोगों को अच्छे अच्छे उपदेश सुनाते रहे। लोगों का उन पर प्रेम बढ़ता चला गया। उधर कंस श्रीकृष्णचन्द्र को मारने की प्रतिक्षण चेष्टा करने लगा। उसने उनको मारने के लिये सभी कुछ किया, मगर वह उनका बाल भी बाँका न कर सका।

अन्त में कंस ने अपने मन्त्रियों की राय से यह निश्चय किया कि श्रीकृष्ण को किसी तरह मथुरा में बुला कर हत्या करदी जाये। मथुरा में धनुर्यज्ञ करने का बहाना किया गया। एक आदमी को रथ लेकर श्रीकृष्णचन्द्र को लाने के लिये वृन्दावन भेजा गया। श्रीकृष्णचन्द्र मथुरा आ गये। मथुरा उस समय बड़ा सुन्दर शहर था। श्रीकृष्णचन्द्र जब कंस के सभा भवन में जा रहे थे तो रास्ते में उन्हें एक धनुष देकर उसे चढ़ा कर तोड़ देने को कहा गया। वह धनुष इतना भारी था कि पहले कोई भी उसे न तोड सका था। श्रीकृष्णचन्द्र ने उसे चढ़ा कर तोड़ दिया। यह देखकर सब लोग चकित रह गये। सभा-भवन में जाने के रास्ते पर कंस ने एक मस्त हाथी छुड़वा कर महावत को यह कह दिया था कि जब श्रीकृष्णचन्द्र यहां आवें तो उनके पीछे यह हाथी छोड़ देना। श्रीकृष्णचन्द्र जब वहां पहुँचे तो महावत ने ऐसा ही किया।

---

*गोवर्धन किसी पर्वत विशेष का नाम न था, बल्कि गोकुल से कुछ दूरी पर वह स्थान था जहां वहां के निवासी खाद के लिये गोबर इकट्ठा किया करते थे।

श्रीकृष्णचन्द्र उस हाथी का काम तमाम करके आगे बढ़े और सभा-भवन मे पहुँचे। सभा-भवन के निकट कस ने एक अखाड़ा तैयार करा रक्खा था और राज्य-भर के प्रसिद्ध पहलवान बुला रक्खे थे। सभा-भवन मे कस के मन्त्री ने खड़े होकर श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम से कहा, 'यदि आप बड़े पराक्रमी हैं तो अखाडे मे उतर कर अपनी शक्ति का परिचय दो'। यदि तुमने ऐसा न किया तो महाराज कंस की आज्ञानुसार तुम्हें दंड दिया जायेगा'। श्रीकृष्णचन्द्र की आयु उस समय केवल ११ वर्ष की थी। मन्त्री के यह शब्द सुनते ही दोनों भाई आग-बबुला हो अखाड़े में कूद पड़े। इनसे कुश्ती करने के लिये दो बड़े पहलवान मुष्टिक और चाणूर अखाड़े मे आये। चाणूर से श्रीकृष्णचन्द्र और मुष्टिक से बलराम लड़े। उन दोनों भाइयों ने उन दोनों पहलवानों को मार डाला। चारों ओर हाहाकार और खलबली मचती चली गई। कंस ने फिर उन पर कई मस्त हाथी छुड़वाए। दोनों भाइयों ने उन हाथियों को भी मार डाला। इस पर कंस तिलमिला उठा। उसने अपने सेनापति को आज्ञा दी कि इन दोनों भाइयों को पकड़ कर मार दिया जाये। कंस की यह बात सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र जी को क्रोध आ गया। उनका चेहरा तमतमाने लगा और वह विकराल दिखाई पड़ने लगे। कंस श्रीकृष्णचन्द्र की यह रंगत देखकर घबरा गया। इधर कृष्णचन्द्र ने भी भॉप लिया कि कंस भयभीत हो रहा है। श्रीकृष्णचन्द्र तुरन्त कंस के पास पहुचे और उसके बाल पकड़ कर उसको आसन से नीचे खींच लिया। कस के होश उड़ गये। उसे हाथ हिलाने का भी अवसर न मिल सका। श्रीकृष्णचन्द्र ने उसकी छाती पर बैठ कर पीटते-पीटते उसका दम निकाल दिया। कस के पिता अर्थात् अपने नाना उग्रसैन और अपने माता-पिता को बन्धन से मुक्त कराया। राजा उग्रसैन को राज्य कार्य सौंपा गया। अब वह दोनों भाई अपने माता-पिता के साथ मथुरा में रहने लगे। सब दुराचारियो और दुष्टों को दंड दिये गये। अत्याचार समाप्त करके शान्ति और न्याय का शासन आरम्भ हुआ। माता-पिता ने श्रीकृष्ण और बलराम को सादिपिनिका ऋषि के पास विद्या पढ़ने भेजा। उनका आश्रम उज्जैन के निकट एक बन मे था। वहां रह कर दोनों वेद आदि सभी शास्त्र और अस्त्र-शस्त्र में निपुण होकर घर आए।

मगध का राजा जरासन्ध बड़ा शक्तिशाली और दुष्ट स्वभाव वाला था। कंस का नाश सुन कर वह श्रीकृष्णचन्द्र का शत्रु बन गया। उसने एक भारी सेना लेकर मथुरा पर आक्रमण कर दिया। राजा उग्रसैन की आज्ञा पा कर श्रीकृष्ण और बलराम उससे लड़ने गये। जरासन्ध की सेना मार भगा दी गई और जरासन्ध लज्जित होकर चला गया। जरासन्ध ने फिर मथुरा पर आक्रमण किया किन्तु फिर हारा। जरासन्ध ने १७ बार आक्रमण किये, किन्तु इसी प्रकार हारता रहा। जरासन्ध केवल श्रीकृष्णचन्द्र से ही वैर भाव रखता था। जरासन्ध के आक्रमणों से मथुरा की प्रजा तंग आ गई। जब श्रीकृष्ण ने यह देखा कि आक्रमण मेरे ही कारण होते हैं तो वह मथुरा छोड़ कर भारत के पश्चिमी किनारे पर पहुँचे। वहां जाकर द्वारकापुरी नाम का नगर बसाया और वहीं रहकर शासन करने लगे। जरासन्ध ने द्वारकापुरी पर भी आक्रमण करने के लिये सेना भेजी। कालयवन जरासन्ध का सेनापति था। वह बड़ा बहादुर और शूरवीर था। श्रीकृष्णचन्द्र और कालयवन का युद्ध हुआ। श्रीकृष्णचन्द्र वहां से भाग कर गिरिनार पर्वत की एक गुफा में जा छिपे। उस गुफा में मुचकुन्द ऋषि सो रहे थे। श्रीकृष्णचन्द्र ने उन पर अपना कपड़ा डाल दिया ताकि कालयवन उन्हें ही श्रीकृष्णचन्द्र समझे। कालयवन इस गुफा में पहुँचा तो उसने मुचकुन्द को ही श्रीकृष्ण समझ कर लात मारी। मुचकुन्द जाग पड़ा। श्रीकृष्णचन्द्र वहां से वापस आए और सेना को मार भगा दिया। उधर कालयवन को मुचकुन्द ने स्वाहा कर दिया। जरासन्ध यह समाचार सुनकर भुन गया। वह स्वयं सेना लेकर द्वारकापुरी पहुचा। श्रीकृष्णचन्द्र एक पहाड़ी पर जाकर छुप गये। जरासन्ध को यह समझा दिया गया कि श्रीकृष्णचन्द्र मर गये। इसलिये वह वापस चला आया।

श्रीकृष्णचन्द्र ने रुक्मणी से अपना विवाह किया। रुक्मणी के विवाह के लिये उसका भाई रुक्मी राजी न था क्योंकि वह उसका विवाह शिशुपाल के साथ करना निश्चय कर चुका था। अतः कृष्णचन्द्र रुक्मणी का हरण कर लाये। शिशुपाल और जरासन्ध से युद्ध हुआ मगर युद्ध में उन्हें हरा दिया गया। नरकासुर के राज्य में बड़े अत्याचार हो रहे थे। उसने कितनी ही राजकन्याओं को अपने यहां बंदी बना

रक्खा था। श्रीकृष्णचन्द्र ने उसे मार कर राजकन्याओं को स्वतन्त्र कर दिया।

इसी प्रकार कई एक अत्याचारी राजाओ का इन्होंने संहार करके शान्ति स्थापित की थी।

श्रीकृष्ण ने अपनी वहन सुभद्रा का विवाह अर्जुन से कर दिया। इस प्रकार पांडवों और श्रीकृष्णचन्द्र में सम्बन्ध हो गया था। पाडवों ने राजसूय यज्ञ कराया जिसमें जरासन्ध और शिशुपाल भी सम्मिलित हुए। अब इन्होंने जरासन्ध को मारने का उचित अवसर समझा। श्रीकृष्णचन्द ने भीम के द्वारा जरासन्ध का वध करा दिया। इस यज्ञ मे सभी ने श्रीकृष्णचन्द को सभापति बनाया। किन्तु यह बात शिशुपाल सहन न कर सका। उसने श्रीकृष्ण का अपमान करना आरम्भ कर दिया। श्रीकृष्णचन्द बहुत देर तक शिशुपाल की गालियां सुनते रहे। अन्त में क्रोध आ गया और उन्होंने अपने चक्र से शिशुपाल का सिर उड़ा दिया। यज्ञ से निवृत्त होकर वह द्वारकापुरी में आकर शान्ति के साथ राज्य करने लगे।

कौरव और पांडवों मे द्वेष चल रहा था। श्रीकृष्णचन्द ने उन्हें काफी समझाया, किन्तु समझाने का कोई प्रभाव न हुआ और उन दोनों में युद्ध होना अनिवार्य हो गया। कौरव और पांडव एक ही दिन और एक ही समय श्रीकृष्णचन्द के पास सहायता के लिये पहुँचे। श्रीकृष्णचन्द ने दोनों को सन्तुष्ट करना चाहा। उन्होंने कहा कि एक ओर मेरी सेना रहेगी और एक ओर मैं अकेला रहूँगा। मैं युद्ध में कोई हथियार भी नहीं उठाऊँगा। दुर्योधन उनकी सेना लेकर और अर्जुन उन्हे लेकर प्रसन्न हो गये।

कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों ओर की सेनाएँ डट गई। श्रीकृष्ण-चन्द अर्जुन के सारथी बने और उनका रथ दोनों दलों के बीच में ले जाकर खड़ा कर दिया। अर्जुन ने जब अपने सम्बन्धियों को देखा तो वह मोह में फंस गये और धनुष फेंक कर कहने लगे कि मै अपने सम्बन्धियों का नाश नहीं करूंगा। श्रीकृष्णचन्द ने उस समय अर्जुन को उपदेश देकर युद्ध करने के लिए तय्यार किया। जो उपदेश उस

समय दिया गया था उसी को भगवत् गीता कहते हैं। इस युद्ध में श्रीकृष्णचन्द्र ने चतुरता और नीति से पाण्डवों की हर प्रकार से सहायता की। पाण्डव विजयी हुए। युधिष्ठिर सिंहासन पर बैठाये गये। यह सब कुछ हो जाने पर श्रीकृष्णचन्द्र द्वारकापुरी लौट आये।

एक समय ऐसा आया कि सब यादवों ने तीर्थ-यात्रा करने का निश्चय किया। श्रीकृष्णचन्द्र के साथ वह सब लोग चल दिये। एक दिन समुद्र के किनारे उन सब यादवों ने मदिरापान किया। जब वह सब नशे में चूर हो गये तो आपस में लड़ पड़े। लड़ाई यहां तक हुई कि वह सब वहीं लड़ कर मर गये। श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम दूर बैठे हुए उनका युद्ध देखते रहे।, बलराम को इसका बड़ा दुःख हुआ। अतः उन्होने अपने प्राण वहीं त्याग दिये। श्रीकृष्णचन्द्र निराश होकर एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठे थे। एक जरा नामी शिकारी उधर आ निकला। उसने दूर से श्रीकृष्णचन्द्र को हिरण समझ कर तीर चला दिया। वह तीर श्रीकृष्णचन्द्र के पैर में जा लगा। जरा ने पास जाकर देखा तो पश्चात्ताप करते हुए क्षमा मांगी। श्रीकृष्णचन्द्र ने उसी जगह अपने प्राण त्याग दिये।

श्रीकृष्णचन्द्र के मुख्य २ प्रचलित चमत्कार यह हैं:—

(१) विष्णु भगवान् मे चतुर्भुजी रूप में उत्पन्न होने से पहले वसुदेव और देवकी को दर्शन देकर यह कहा था कि मैं तुम्हारे यहा जन्म ले रहा हूँ। मुझे गोकुल में नन्द के यहां छोड़ आना। वहां मैं अपनी बाल-लीलाये दिखाकर मथुरा आऊंगा।

(२) जब श्रीकृष्णचन्द्र का कारागार मे जन्म हुआ तो वसुदेव उन्हें लेकर गोकल चल दिये। उस समय वर्षा हो रही थी। शेषनाग ने उन पर वर्षा न पड़ने देने के कारण अपने फन को फैलाकर उनके सिर पर छत्र की भांति बना दिया।

(३) उस समय यमुना नदी इसलिए चढ़ी हुई थी कि वह श्रीकृष्णचन्द्र के चरण छूना चाहती थी। श्रीकृष्णचन्द्र ने यमुना की यह इच्छा देखकर अपना चरण नीचे कर दिया। यमुना चरण छूते ही उतर गयी और रास्ता दे दिया।

(४) जब वसुदेव श्रीकृष्णचन्द्र को लेकर कारागार से चले तो कारागार के फाटक अपने आप खुलते चले गये और सब पहरेदार मूर्छित हो गए।

पाँच वर्ष तक की आयु की कुछ लीलायें:—

(५) कंस ने एक स्त्री को नन्द के यहां श्रीकृष्णचन्द्र को मारने के लिए भेजी। उस स्त्री ने अपनी छाती के जहर लगा रक्खा था। उसने बड़े प्यार से श्रीकृष्णचन्द को उठा लिया और छाती पिलाने लगी। श्रीकृष्णचन्द उसकी जीवन शक्ति को अपने मुंह से हरण करने लगे। जब उस स्त्री का दम निकलने लगा तो वह वहीं मर कर गिर पड़ी। श्रीकृष्णचन्द पर जहर का कोई असर नहीं हुआ।

(६) कंस ने एक और बलवान भेजा। उसने आकर श्रीकृष्णचन्द्र को उठा लिया। श्रीकृष्णचन्द्र ने उसकी जीभ पकड़ कर ऐंठ दी। वह बलवान उन्हे छोड़कर भाग गया। फिर कागासुर नामी बलवान को भेजा। श्रीकृष्णचन्द ने उसकी भी गरदन ऐंठ कर भगा दिया। इसी प्रकार और भी कितने ही बलवान आये परन्तु वह सब या तो मार दिये गये या जान बचा कर भाग गये।

(७) एक दिन यशोदा से शिकायत की गई कि श्रीकृष्णचन्द्र ने मिट्टी खाई है। यशोदा ने उन्हे धमका कर मुंह दिखाने को कहा। श्रीकृष्णचन्द ने अपना मुंह खोला तो उसमें यशोदा को तीनों लोक दिखाई पड़े।

(८) एक दिन यशोदा ने कृष्णचन्द्र पर नाराज होकर उन्हें एक भारी ओखल से बांध दिया। मकान के आंगन मे पास-पास दो पेड़ खड़े थे। श्रीकृष्णचन्द्र ने ओखल खिसका कर आंगन के दोनों पेड़ों में अटका दिया और ऐसा जोर से झटका मारा कि वे दोनों वृक्ष गिर गये।

वृन्दावन में ५ वर्ष से ऊपर की आयु की कुछ बाल-लीलाये—

(९) कंस का भेजा हुआ एक राक्षस बछड़े का रूप धारण करके

श्रीकृष्णचन्द्र को मारने के लिए आया। श्रीकृष्णचन्द्र ने उसको पकड़ कर जान से मार डाला।

(१०) वकासुर एक भयानक पक्षी का रूप धारण करके आया। उसने श्रीकृष्णचन्द्र को उठाकर अपने पेट मे रख लिया। श्रीकृष्णचन्द्र ने उसके पेट में ऐसे ज़ोर का दर्द पैदा किया कि उसने व्याकुल होकर श्रीकृष्णचन्द्र को बाहर निकाल दिया। श्रीकृष्णचन्द्र ने उसकी चोंच पकड़ कर चीर डाली और प्राण निकाल दिये।

(११) जंगल में ग्वाल-बालों के कुछ गाय और बछड़े देवताओं ने लेजाकर छिपा लिए। ग्वाल-बालक व्याकुल हो गये। श्रीकृष्णचन्द्र ने इसी रंग-रूप के और गाय और बछड़े उत्पन्न करके उन सबको सन्तुष्ट कर दिया।

(१२) श्रीकृष्णचन्द्र ने उंगली पर गोवर्धन पहाड़ को छत्र की भांति सात दिन तक उठा कर वर्षा के तूफान से बचा लिया।

इसी प्रकार के और भी बहुत से चमत्कार श्रीकृष्णचन्द्र के विषय में प्रचलित हैं। वास्तव में यदि देखा जाय तो स्वामी चैतन्य (1485 A.D.) के पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्र की आध्यात्मिक भक्ति समाप्त होकर यह आधुनिक भक्ति प्रचलित हुई थी। वल्लभाचार्य (1473—1531 A.D.) ने इस आधुनिक भक्ति का ज्यादा प्रसार किया। भागवत के लिखे जाने के पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्र को कलंक लगाये जाने आरम्भ हुए थे।

यहूदी-मत

यहूदी-मत

यहूदी-मत का दूसरा नाम मूसाई-मत—Judaism और तीसरा नाम इब्रानी है। यहूदी लोग इस मत के विषय में ऐसा विश्वास करते है कि यह मत जहुआ (ईश्वर) की ओर से सृष्टि की उत्पत्ति के साथ-साथ प्रचलित हुआ था। ह० इब्राहीम, ह० इज्हाक, ह० याकूब इत्यादि सब पैगम्बर और नबी इसी मत के मानने वाले थे। इस मत का प्रारम्भ मिश्र देश से हुआ था। इसे ह० मूसा ने प्रचलित किया था, इसलिये यह मत लगभग ३६०० वर्ष से कुछ अधिक पुराना सिद्ध होता है। यदि इसे ह० इब्राहीम द्वारा प्रचलित माना जाये तो ४००० वर्ष से कुछ अधिक वर्ष पुराना सिद्ध होता है। ह० इब्राहीम ह० मूसा से ५४५ वर्ष पहले पैदा हुए थे। ह० मूसा ह० ईसा से १७१६ वर्ष पहले उत्पन्न हुए थे। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाये तो यहूदी मत पारसी मत की परिवर्त्तित दशा में साफ दिखाई पड़ता है। जब पारसी मत में कुछ खराबी आकर दशा बिगड़ती चली गई तो बनिस्राईल जाति को सीधे-सच्चे रास्ते पर लगाने के लिये इस मत का प्रचार आरम्भ हुआ था। यहूदियों के जितने पैगम्बर या नबी हुए, उन सबकी शिक्षा भारतवर्ष और यूनान की धार्मिक शिक्षा के विरुद्ध थी। उन्होंने शुभ-कार्यों के करने पर तो अवश्य जोर दिया किन्तु धार्मिक, सूक्ष्म और जटिल सिद्धान्तों का समावेश न किया।

ईसाई लोग भी ह० इब्राहीम से लेकर ह० ईसा तक समस्त नबी और पैगम्बरों का बड़ा सम्मान करते हैं और कहते हैं कि वह सब पैगम्बर और नबी उसी शिक्षा के मानने वाले थे, जिसका प्रचार ह० ईसा ने किया था। मुसलमान लोग भी ह० इब्राहीम से लेकर ह० मुहम्मद तक जितने नबी और पैगम्बर हुए, उन सबका बड़ा आदर और सम्मान करते हैं और कहते हैं कि वह सब नबीं, पैगम्बर और रसूल उसी शिक्षा के प्रचारक थे, जिसका प्रचार ह० मुहम्मद ने किया था और जो कुरान में लिखा हुआ है।

खोज करने से कुछ ऐसा पता चलता है कि इरान, यूनान और

मिश्र आदि देशों में यहूदी मत से पहले पारसी मत प्रचलित हो रहा था। जब पारसी मत की दशा बिगड़ गई तो उन देशों के लोग चरित्र से गिरी हुई बाते करने लगे। उनमे बुरे बुरे रीति-रिवाज प्रचलित हो गए, न्याय-अन्याय के विचार जाते रहे। चन्द्रमा, सूर्य, तारागण, अग्नि, गाय, बैल, साँप, वृक्ष तथा पर्वत आदि जड़ पदार्थों की पूजा और उपासना प्रचलित हो गई, भाँति भाँति के देवता बना लिये गये। लोग उन देवी-देवताओं की श्रद्धा और भक्तिभाव से धन-दौलत, सम्मान और सन्तान आदि प्राप्त करने के लिये पूजा और उपासना करने लगे। वहा के लोग जादू, मन्त्र तन्त्र, जिन्न, भूत, प्रेत, चुड़ैल, रमल और ज्योतिष इत्यादि बातों के विश्वासी होते चले गये। सौतेली माँ, बुवा, मौसी, बहन और सास इत्यादि से विवाह करने लगे। व्यभिचार खूब बढ़ता चला गया। पशुओं और लड़कों से भी व्यभिचार करने में कोई लज्जा न रही। ऐसे समय में ह० मूसा ने उत्पन्न होकर उन तमाम बुरी बातों को मिटा कर मूर्त्ति-पूजा का खण्डन किया, तथा एक ईश्वर की पूजा और उपासना की शिक्षा दी। ह० जरतुश्त की भांति अपने को ईश्वर का पैग़म्बर और नबी मनवाने पर जोर दिया। पारसियो की 'अवस्ता' का खण्डन करते हुए 'तौरेत' को ईश्वरीय पुस्तक बतला-कर विश्वास जमाने का प्रचार किया। परन्तु पशुओं का वध जो वाम-मार्गी प्रभाव से उन देशों में प्रचलित हो गया था, बुरा न समझा जाकर कायम रक्खा गया। ह० मूसा ने अपने सिद्धान्तों को एक मत या मजहब का रूप देकर बनिस्राईल जाति को यह निश्चय करा दिया, कि ईश्वर पर ईमान लाओ, मुझे ईश्वर का पैगम्बर नबी या रसूल समझो और तौरेत पुस्तक को ईश्वरीय पुस्तक समझ कर विश्वास करो। जो इन सब बातों पर विश्वास नहीं करेगा उसकी मुक्ति कभी नहीं होगी और वह नरक में जाकर भांति भांति के कष्ट सहन करेगा। अतः लोगों ने स्वतन्त्रता से दार्शनिक तौर पर विचार करना छोड़ दिया और वह आंखें मींच कर ह० मूसा के सिद्धान्तों को मानते चले गये। यह बात हम पारसी मत में भी लिख आये हैं कि पारसी मत में जब दार्शनिक तौर पर विचार करने की स्पिट समाप्त हो गई थी, तब उसने एक मत या मजहब का रूप बना लिया था। पारसी लोग भी स्वतन्त्रता से दार्शनिक तौर पर विचार करने के सिद्धान्त को समाप्त करके कुछ विशेष सिद्धान्तों पर विश्वास जमाते चले गये। उन्होंने भी ह० जरतुश्त

को ईश्वर का पैग़म्बर, रसूल और नबी मानने और 'अवस्ता' को ईश्वरीय पुस्तक समझ कर विश्वास करने का प्रचार आरम्भ कर दिया था। इसी प्रकार यहूदी मत ने भी वही सब बातें कायम करदी थीं। यहूदी मत से सामी—Semitic विचारों की उत्पत्ति पक्की हो गई। यहूदी पैगम्बरों, आचार्यों और विद्वानों ने लोगों को मजहब में फिलॉसफी का हस्तक्षेप करने से यह कहकर मना किया कि ईश्वर की सत्ता और उसकी पवित्र पुस्तक फिलॉस्फी से ऊंची है। ईश्वर पर पूर्ण विश्वास रखना ही काफ़ी है। ईश्वर की सत्ता बुद्धि और युक्ति से सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यहूदी मत का यह सिद्धान्त अधिकतर मिश्र और सीरिया की विचारधारा तथा सभ्यता पर आधारित है। बहुत आगे चलकर अलेजेन्ड्रिया के एक व्यक्ति 'फिल्लो'—30 B.C.—40 A.D. ने इसी विचारधारा का अति प्रसार किया। यही विचार-धारा और सभ्यता ईसाइयत और इस्लाम में आ गई थी। यही कारण है कि यहूदी, ईसाई और मुस्लिम सामी या समेटिक—Semitic कहलाते हैं। यह तीनों मत ईश्वर की सत्ता और उसके रंग-रूप को एक समान मानते हैं। उनके सदाचारी जीवन की शिक्षा भी बहुधा एक जैसी है। किन्तु इस पर भी इन तीनों मे एक दूसरे से बहुत विरोध है। इस विरोध का संक्षेप में यह कारण प्रतीत होता है—यहूदी तौरेत पुस्तक को ईश्वरीय पुस्तक मानने और ह० मूसा को ईश्वर का नबी, पैगम्बर और रसूल जानकर ईमान लाने पर जोर देते हैं। जो ऐसा विश्वास नहीं करता उसे काफिर समझते हैं। यहूदी ह० ईसा को न तो पैग़म्बर मानते हैं और न ही ईश्वर का बेटा समझते हैं। वह इञ्जील New Testament को ईश्वरीय पुस्तक समझते है। यही कारण है कि यहूदियों ने ह० ईसा को सूली पर चढ़ाकर मार डाला था। फिर यहूदियों और ईसाइयों में बडे भयानक युद्ध हुए। ईसाई ह० मूसा को पैग़म्बर और तौरेत को ईश्वरीय पुस्तक तो समझते हैं किन्तु यह कहते हैं कि यहूदियों ने तौरेत की गलत व्याख्याएं कर करके जब मजहब को खराब कर दिया था, तब ईश्वर ने अपने प्यारे पुत्र ईसा को दुनिया में 'इञ्जील' देकर उसका प्रचार करने और लोगों का उद्धार करने के लिये भेजा था। जो ह० ईसा को ईश्वर का बेटा और इञ्जील को ईश्वरीय पुस्तक मानकर विश्वास नहीं करता, वह काफिर है। ह० मुहम्मद ने यह कहा कि ह० मूसा और ईसा सच्चे नबी और पैगम्बर तो थे किन्तु ह० ईसा ईश्वर

के पुत्र नहीं थे। तौरेत और इञ्जील भी ईश्वरीय पुस्तकें हैं किन्तु यहूदियों और ईसाईयों ने उन पुस्तकों में मिलावट और कमी-बेशी करके वास्तविक मजहब का रूप बदल दिया था, इसीलिये ईश्वर ने उन पहली सब पुस्तकों को रद्द करके कुरान को मुहम्मद साहब पर उतारा था और उसका प्रचार कराने के लिये ह० मुहम्मद को अपना अन्तिम पैग़म्बर, रसूल और नबी चुनकर दुनिया में भेजा था।

जो ह० मुहम्मद और कुरान पर ईमान नहीं लाता वह काफिर है यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानों के एक दूसरे से बहुत से धार्मिक-युद्ध—Crusades हुए। इन युद्धों से पुस्तकें भरी पड़ी हैं। उनको पढ़कर हृदय काँप उठता है। इनमें जितने भी युद्ध हुए और एक ने दूसरे पर जितने अत्याचार किये, वह किसी को पैग़म्बर, रसूल और नबी मानने या न मानने, ईश्वरीय पुस्तक जानने या न जानने के कारण ही हुए। इसके अतिरिक्त इन युद्धों, लड़ाई-झगड़ों का और कोई विशेष कारण प्रतीत नहीं होता। इन तीनों मतों में जो मत-भेद आरम्भ में शुरू हो गये थे, वही आज तक बराबर चले आ रहे हैं। इन मत-भेदों को दूर करने के बहुतों ने प्रयत्न किये, किन्तु कोई भी तो कुछ न कर सका। बल्कि उनमें अधिक मत-भेद उत्पन्न होकर अलग-अलग सम्प्रदाय बनते चले गये।

ऐसा कहा जाता है कि जब बनिस्राइल की ऊपर लिखी दशा चल रही थी, तब जहुआ (ईश्वर) ने अपना पहला प्रण याद किया और अपनी आज्ञाओं का प्रचार कराने तथा भ्रमित लोगों को सीधे रास्ते पर चलाने के लिये उसी जाति में ह० मूसा को उत्पन्न किया। ह० मूसा की वंशपरम्परा ह० इब्राहीम से मिलती है। लिखा है कि जहुआ ने ह० मूसा से साक्षात् प्रकट होकर यह कहा, "मैं ह० इब्राहीम इत्यादि तेरे पूर्वजों का ईश्वर हूँ। मैंने तुझे अपना पैगम्बर चुन लिया है। मेरी प्यारी बनिस्राइल जाति भ्रमित होकर कष्ट उठा रही है। मैंने इस जाति की चीख पुकार सुनी है। इसलिये मैं तुझे अपनी आज्ञाएं देकर यह आदेश देता हूँ कि मेरी प्यारी बनिस्राइल जाति को मेरी आज्ञाएं समझाकर उसे भ्रम से निकाल और सीधे सच्चे रास्ते पर लगा"। कहा जाता है कि ह० मूसा ईश्वर से होरब पर्वत पर बातचीत

करके और ईश्वर की आज्ञाएं लेकर अपनी जाति के पास आए और उसे ईश्वर की आज्ञाओं पर चलने के लिये तैयार करने लगे।

दीन मुसाई या यहूदी मत के मानने वाले बड़े बड़े शक्तिशाली राजा महाराजा हुए। उनमें से कई एक तो ऐसे कहे जाते हैं, जो राजा होने के अतिरिक्त रसूल और पैगम्बर भी माने जाते हैं। उनमें से ह० दाऊद (David) और ह० सुलेमान (Solomon) के नाम उल्लेखनीय हैं। इस मत के मानने वाले बादशाहों की राजधानी बहुधा 'यरूशलम' रहती चली आई है। इस मत का प्रभाव १००० वर्ष से कुछ अधिक समय तक रहा। काज़ियों और काहानों (पुजारी) का बहुत अधिक प्रभाव रहा। उनके सामने कोई मुंह खोलने का साहस नहीं कर सकता था। इस मत के प्रसार और प्रचार मे बहुत से लड़ाई-झगड़े, रक्तपात और लुट-खसोट हुए। पारसियों से भी इस मत के मानने वालों के बहुत से लड़ाई-झगड़े हुए। यहूदियों ने अरब देश और उसके आसपास के देशों को यहूदी राज्य में सम्मिलित करके लोगों से यहूदी मत मनवाया।

यहूदियो के उन्नति-काल में यहूदियों का फिलिस्तीन, रूम, श्याम, ईरान और फारस इत्यादि देशों में बड़ा प्रभाव रहा और फिलिस्तीन तथा बैबीलोनिया यहूदियों का ६०० ई० तक केन्द्र बना रहा। जब ईसाई मत प्रचलित हुआ तो ईसाइयो ने यहूदियो को काफी हानियाँ पहुँचाई। इसके पश्चात् जब इस्लाम का समय आया तो मुसलमानों ने यहूदियों के राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया। बहुत से यहूदियों को मुसलमान बनाया गया। जो यहूदी इस्लाम की तलवार से बच गये, वह उन देशों को छोड़कर इधर उधर जा बसे। दूसरे महायुद्ध में जर्मनी के डिक्टेटर हर हिटलर ने जर्मनी इत्यादि देशों से लगभग पचास लाख यहूदियों को देश-द्रोह के अभियोग में निकाल कर बाहर कर दिया था। इस समय यह लोग फिलिस्तीन मे आबाद कर दिये गये हैं। उनकी अब भी अरबी मुसलमानों से काफी छेड़छाड़ चलती रहती है। यहूदी लोग बड़े मालदार, कारोबारी और जोड़ तोड़ वाले हैं। उनकी संख्या संसार में १ करोड़ के लगभग होगी।

एसी-एसियन-Essenes सम्प्रदाय

यवूदिया राज्य में लगभग २०० वर्ष ईसा पूर्व बौद्ध धर्म का भी काफी जोर फैला हुआ था। बौद्ध धर्म की शिक्षा से प्रभावित होकर उन देशों में एक 'ऐसी' या 'ऐसियन'—Essense सम्प्रदाय स्थापि हो गया था। इस सम्प्रदाय ने यहूदियों के हिंसात्मक पशुवध से घृणा करते हुए अहिंसा और दया के सिद्धान्तों को अपना लिया था। उन्होंने यहूदियों की शिक्षा और रीति-रिवाजों के विरुद्ध आवाज उठा कर सादा जीवन, दया और प्रेम का प्रचार आरम्भ कर दिया था। थोड़े ही समय उनके इस प्रचार से इस सम्प्रदाय का काफी जोर हो गया था। यही सम्प्रदाय आगे चल कर यहूदी मत के पतन के कारण बना। इसी सम्प्रदाय की शिक्षा से प्रभावित होकर ईसाई मत का प्रचलित होना प्रतीत होता है।

यहूदी मत के सिद्धान्त

(१) ईश्वर एक है जो पूज्यनीय है।

(२) किसी भी प्रकार कि कोई मूर्ति पूजा करना उचित नहीं है।

(३) ह० मूसा को ईश्वर का पैगम्बर (दूत) जान कर उस पर विश्वास करना अति आवश्यक है।

(४) लड़का पैदा होने से आठवें दिन खतना करा देना आवश्यक है।

(५) सिब्त Sabbath day (शनिश्चर) के दिन सब कारोबार छोड़ कर ईश्वर की पूजा-उपासना करने से ईश्वर की आज्ञा पालन होती है।

(६) यहूदी आवागमन को नहीं मानते। जन्नत और दोजख के स्तित्व को आसमान पर समझते हैं। जन्नत में हर प्रकार का सुख और दोजख में हर प्रकार का दुःख मिलने पर विश्वास रखते हैं। प्रलय (कयामत) के दिन को मानते हैं परन्तु प्रलयके पश्चात् सृष्टि की फिर उत्पत्ति होने या न होने तथा इस वर्तमान सृष्टि से पहले भी किसी सृष्टि के होने या न होने के विषय में कुछ नहीं कहते। हिसाब के दिन (Day of judgement) को मानते हैं और मुर्दों के जीवित हो उठने पर विश्वास रखते हैं।

जगत की उत्पत्ति आदम और हव्वा से मानते हैं। आकाश, जिन्न, भूत-प्रेत, शैतान और फरिश्तों की सत्ता को मानते हैं। रोज़ा, ज़कात (दान-पुन्य), सदका, जानवरों का वध (कुर्बानी), तलाक, पुनर्विवाह करने पर विश्वास रखते हैं। अभाव से भाव कर देने में आस्था रखते हैं।

जहुआ (ईश्वर)

जहुआ एक है जो दयालु और कृपालु है। वह मनुष्य के पापों को क्षमा करने वाला है। ईश्वर बाप-दादा के पापों का दंड उनके बेटे-पोतों की तीसरी और चौथी पीढ़ियों तक देता है। जहुआ अनन्त और अनादि है। उसको किसी ने पैदा नहीं किया। जहुआ सर्व शक्तिमान है। उसमें अभाव से भाव कर देने की शक्ति मौजूद है। जहुआ न्यायकारी, दयालु, संहारक (जब्बार और क़हार) सर्वव्यापक और तमाम ब्रह्मांड के रचने और बिगाड़ने वाला है। उसकी शक्ति से बाहर संसार में कोई वस्तु नहीं है। जहुआ जिस पर चाहे अपनी करुणा और दया करता है और जिसको चाहे अप्रसन्न होकर महाकष्ट दे देता है। जहुआ में तमाम गुण हैं। वह वैसे तो हर जगह मौजूद हैं परन्तु उसका विशेष स्थान पवित्र हैकिल (देव-घर) में है और उसका तख्त ऊपर आसमान पर है।

जीव

समस्त जीव जहुआ ने पैदा किये हैं। मनुष्य के विषय में तो यह कहा गया है कि वह सब जन्नत या दोज़ख में रह कर सुख या दुःख अनन्त काल तक भोगते रहेंगे परन्तु जीव-जन्तु तथा पशु-पक्षियों में जो जीव हैं उनके विषय में कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला गया।

प्रकृति

इसके विषय में कोई प्रकाश नहीं डाला गया।

सृष्टि-उत्पत्ति

संसार में मनुष्य की उत्पत्ति का क्रम ह० आदम और हव्वा के जोड़े से कहा जाता है। नूह के तूफान के पश्चात फिर संसार में मनुष्य और दूसरे प्राणियों का प्रसार नूह के तीन बेटों अर्थात सम, हाम और याफ्त के द्वारा होना बतलाया जाता है। तौरेत मे सृष्टि उत्पति के बारे में ऐसा लिखा है—ईश्वर ने ससार-निर्माण करने की सोची तो प्रथम अपनी आज्ञा से (अभाव) से) पृथ्वी और आकाश को पैदा किया। ईश्वर की रुह (जीवात्मा) पानी के ऊपरी तल पर चल फिर रही थी। ईश्वर ने कहा, 'रोशनी हो जा,' रोशनी हो गई। ईश्वर ने देखा, रोशनी अच्छी है तो उसने रोशनी को अँधेरे से अलग किया और इस प्रकार उसने रोशनी को दिन और अँधेरे को रात कहा। यही पहला दिन हुआ। दूसरे दिन ईश्वर,ने फिजा (हवा) को बनाया और फिजा को नीचे के पानी से अलग किया। तीसरे दिन ईश्वर ने आकाश के नीचे के पानी को एक जगह एकत्रित होने की आज्ञा दी। अत: ऐसा ही हुआ। जो पानी एकत्रित हुआ, उसे समुद्र कहा और सूखी भूमि को पृथ्वी कहा। फिर पृथ्वी पर घास, बूटी और फलदार वृक्षों को उगने और फलने-फूलने की आज्ञा दी। अत: ऐसा ही हुआ। चौथे दिन ईश्वर ने चन्द्रमा, सूर्य और तारागण को प्रकाश देने के लिये उत्पन्न किया। पाँचवे दिन ईश्वर ने जल-जन्तुओं तथा पक्षियों को बनाया। छठे दिन ईश्वर ने पशु और कीड़े मकोड़ों को उत्पन्न करना चाहा। अत ऐसा ही हुआ। फिर ईश्वर ने कहा कि हम मनुष्य को अपनी ही सूरत और रंग रूप पर बनाएँ जो समुद्र की मछलियों. आकाश के परिन्दों, पृथ्वी के पशुओं और समस्त कीड़े-मकोड़ो पर अधिकार रक्खें। अत: ईश्वर ने नर-नारी को अपने रंग रूप पर बना कर उनमें अपनी ही रूह फूँकी और समस्त वस्तुओं का निर्माण-कार्य समाप्त किया गया। ईश्वर ने छ' दिन में निर्माण-कार्य समाप्त करके सातवे दिन अर्थात् शनिवार को पवित्र ठहराया।

ईश्वर ने पूर्व की ओर अदन में एक बाग लगाया। इस बाग में जीवन और भले बुरे की पहचान के वृक्ष भी लगाए। ईश्वर ने उस एक मनुष्य को जिसे उसने अपने रंग रूप पर मिट्टी से बनाया था, उस बाग

की देख भाल के लिये रख दिया। ईश्वर ने उस मनुष्य को उन दोनों वृक्षों के फल खाने से मना कर दिया था। ईश्वर ने समस्त पशु-पक्षी मिट्टी से बनाए और उन को वह उस बाग़ मे आदम के पास लाया। आदम ने ही उन समस्त पशु-पक्षी, कीडे-मकोड़े इत्यादि के नाम रक्खे। ईश्वर को आदम के अतिरिक्त कोई सहायक उस जैसा न मिला, तब ईश्वर ने आदम पर गहरी नींद भेजी तो वह सो गया। ईश्वर ने आदम की पसलियों में से एक पसली निकाल ली। वह उस पसली से एक स्त्री बना कर आदम के पास लाया। उस स्त्री को आदम की बीवी बनाकर उसका नाम हव्वा रख दिया। फिर वह दोनों उस बाग में नंगे रहने लगे।

एक दिन शैतान ने सॉप की शकल में आकर हव्वा को उस बुरे भले की पहचान के वृक्ष के फलखाने के लिए बहकाया। हव्वा ने उस वृक्ष का फल लेकर स्वयं खा लिया और अपने पति को भी खिला दिया। फल खा कर उन्हें होश आया कि हम नंगे हैं। उन्होंने अंजीर के पत्तों की लुंगियॉ बना कर पहनीं। ईश्वर बाग़ में आया और उन दोनों को बुला कर यह पूछा कि तुमने वह फल क्यो खाया है? उन्होंने कह दिया कि सॉप ने बहका दिया था इसलिये खा लिया। तब ईश्वर ने आदम से कहा कि मैं तेरे और तेरी स्त्री के बीच और तेरी तथा तेरी स्त्री की प्रणालियों के बीच बैर-भाव डालूँगा और हव्वा से कहा कि तू दर्द के साथ सन्तान पैदा करेगी और तुझ पर तेरा पति शासन करेगा। ईश्वर ने सोचा कि कहीं यह दोनों उस जीवन के वृक्ष का फल न खालें और फिर सदैव अमर रहें। इस लिये ईश्वर ने उन दोनों को उस बाग़ से निकाल दिया तथा उन्हे पृथ्वी पर इधर-उधर चले जाने को कहा। इसी जोड़े से मनुष्य उत्पन्न होकर सारे संसार में फैल गये। (पैदायश बाब १-३)

नूह का तूफ़ान

जब ईश्वर ने देखा कि संसार में मनुष्य के बुरे कर्म अधिक बढ़ गए हैं और वह सदा बुरे विचारों की ही तरफ जाते हैं, तब ईश्वर ने मनुष्य और दूसरे सब प्राणियों को उत्पन्न करने का [illegible]

ताप अनुभव किया। अतः उसने उन सबको नष्ट कर देने का निश्चय किया। मगर ह० नूह ईश्वर को अच्छा लगा। ईश्वर ने ह० नूह से कहा कि मैं संसार में ४० रात-दिन के लिये तूफान लाने वाला हूं। इस लिए तू लकड़ी की एक नाव ३०० हाथ लम्बी, ५० हाथ चौड़ी और ३० हाथ ऊची बनाकर उसमें एक रोशनदान रख लेना। ईश्वर ने कहा कि जब मै तूफान लाऊँ तो तू तेरे बेटे, तेरी स्त्रियाँ, तेरे बेटों की स्त्रियाँ तथा समस्त प्राणियों के नर और मादा का एक एक जोड़ा उस नाव में रख लेना। अतः नूह ने ऐसा ही किया। ४० रात-दिन तक लगातार वर्षा होतीं रही। पृथ्वी क समस्त प्राणी मर गये। जब पृथ्वी का सब पानी सूख गया तो ईश्वर ने ह० नूह को नाव से निकल आने को कहा। वह सब बाहर निकल आये। इस पर नूह ने ईश्वर के लिये एक वेदी (मज्बाह) बनाई। सब पवित्र पशु-पक्षियों में से थोड़े से लेकर अग्नि की भेट (Burnt offering सोख्तनी क़ुर्बानी) चढ़ा दिये। ईश्वर ने नूह से यह प्रण किया कि भविष्य में मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा। ईश्वर ने ह० नूह और उसके बेटों से कहा कि पृथ्वी को मनुष्यों से भर दो। हर चलता फिरता जानवर तुम्हारे खाने के लिये है। परन्तु तुम उनका रक्त कभी न खाना, क्योंकि खून उनकी जान है। फिर दुनिया में ह० नूह के तीनों बेटों सम, हाम और याफ्त से मनुष्य-प्रणाली फैली है। (पैदायश बाब ६-६)

लिखा है समस्त पृथ्वी पर एक ही भाषा बोली जाती थी। नूह के तूफान के बाद उसके बेटे चलकर सिनआर देश के मैदान में आए। वह वहीं बस गये। उन्होने कहा कि आओ हम अपने लिये एक नगर और एक बुर्ज जिसकी चोटी आकाश तक पहुंचे, बनाएं और यहां अपना नाम करें। ईश्वर उस नगर और बुर्ज को जिसे आदम के पुत्र बनाने लगे, देखने को उतरा। ईश्वर ने कहा कि देखो, यह सब लोग एक है और इन सबकी एकही भाषा है। वह जो यह करने लगे हैं तो अब कुछ भी जिसका वह इरादा करे, उनसे बाकी न छुटेगा। सो आओ हम वहाँ जाकर उनकी भाषा में विभिन्नता डालें, ताकि वह एक दूसरे की बात न समझ सकें। बस ईश्वर ने उनको वहां से समस्त पृथ्वी पर इधर उधर बिखेर दिया। इसलिये वह उस नगर के बनाने से विरत (बाज़) रहे और उसका नाम बाबुल हुआ। क्योंकि ईश्वर ने वहां समस्त पृथ्वी की

भाषाओं में विभिन्नता डाली और वहां से ईश्वर ने उनको समस्त पृथ्वी-तल पर बिखेरा। (पैदायश, बा० ११, आ० १ से ६ तक)

यहूदी सृष्टि की उत्पत्ति आदम और हव्वा से मानते हैं। किन्तु आदम और हव्वा की उत्पत्ति के समय को अब १६५४ ई० में ७५३८ वर्ष होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि सृष्टि की उत्पत्ति लगभग ८००० वर्ष से है। नीचे लिखी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है—

ह० आदम से ह० नूह तक	—	२२४२ वर्ष
,, नूह से ,, इब्राहीम तक	—	१०८१ ,,
,, इब्राहीम से ,, मूसा तक	—	५५४ ,,
,, मूसा से ,, ईसा तक	—	१७१६ ,,
,, ईसा से ,, मुहम्मद तक	—	५७१ ,,
,, मुहम्मद के जन्म से आज तक		१३८३ ,,
जोड़	—	७५३८ वर्ष

(तारीख़ हिजरी पृष्ठ ४ से ८ और तारीख़ उलफिदा)

बनिस्राइल जाति Israelite

नूह के तीनों बेटों की नस्ल में बहुत आगे चलकर 'ताराह' उत्पन्न हुए। उनके तीन पुत्र थे। एक का नाम इब्राहीम, दूसरे का नाम नहूर और तीसरे का नाम हारान था। इब्राहीम की बीवी का नाम सारी और नहूर की स्त्री का नाम मलीका था। यह दोनों हारान की बेटी थीं। या यूं कहिये कि इब्राहीम या नहूर की स्त्रियों के साथ ही वे उनकी सगी भतीजियां भी थीं। (पैदायश व० १२ आ० २६)। ह० इब्राहीम ईश्वर की आज्ञा से अपनी स्त्री और अपने भतीजे अर्थात् साले ह० लूत को साथ लेकर अपने भाइयों के पास इधर उधर घूमते फिरते मिश्र में आ गये। ह० इब्राहीम के कोई सन्तान न थी अर्थात् उन्होंने अपनी एक मिश्री बांदी जिसका नाम हाजरा था के पास जाकर उससे ह० इस्माइल पैदा किये। इसके पश्चात् ह० इब्राहीम की स्त्री से भी एक पुत्र पैदा हो गया। उसका नाम इजहाक रक्खा गया। ईश्वर ने

ह० इब्राहीम को अपना पैग़म्बर चुन लिया और उनके बाद फिर ह० इसमाइल और इज़्हाक़ को भी पैगम्बर बना दिया। एक बार ह० इज़्हाक अपनी स्त्री को जो बड़ी सुन्दर थी साथ लेकर जरार में रहने लगे। वहां के लोगों ने उनसे पूछा कि यह कौन है तो ह० इज़्हाक़ ने कहा कि यह मेरी बहन है। एक दिन लोगों ने उस स्त्री से ह० इज़्हाक़ को छेड़ छाड़ करते देखकर पूछा कि तुमने झूठ क्यों बोला है, जबकि यह तुम्हारी स्त्री है? ह० इज़्हाक ने कहा कि मैंने झूठ इसलिये बोला है कि कहीं कोई इसे मेरी स्त्री समझ कर इसके साथ व्यभिचार न कर बैठे।

ह० इज़हाक से ह० याकूब (Jacob) हुए। ईश्वर ने उन्हें भी पैगम्बर चुना। ईश्वर ने याकूब का नाम बदल कर इस्राइल रक्खा। उनको नबी चुन कर उनसे भी वही प्रण किये जो उनके बाप दादा से किये थे। ह० याकूब के बारह बेटे हुए। उनमें से एक ह० युसुफ (Joseph) थे। ह० याकूब से जो प्रणाली चली वही बनिस्राइल कहलाने लगी। इनके १२ कबीले थे। उन १२ कबीलों में से एक लावी कबीला था। इस लावी कबीले में ह० मूसा पैदा हुए। जितने भी नबी, पैगम्बर या रसूल पैदा होने बताए जाते हैं वह सब इसी बनिस्राइल जाति में हुए थे।

यहूदियों का कहना है कि बनिस्राइल जाति संसार की समस्त जातियों से ईश्वर को अधिक प्यारी है। ईश्वर ने इस जाति की रक्षा करने और पापों के क्षमा करने का विशेष प्रण कर रक्खा है। 'तौरेत' में इस जाति की ईश्वर द्वारा रक्षा करने के विषय में बहुत कुछ लिखा हुआ है।

ख़तना

जिस समय ह० इब्राहीम के यहां ह० इज़्हाक पैदा हुए तो कहा जाता है कि ईश्वर ने ह० इब्राहीम को यह कहा था कि तुम मेरी आज्ञा पूरी करते रहना। हर एक लड़के की उत्पत्ति के आठवें दिन उसकी ख़तना करा दिया करना। यह ख़तना कराना उस प्रण का चिन्ह होगा

जो मेरे और तुम्हारे बीच में हुआ है। (अहबार बाब १२ आयत १ से ४ तक) ह० इब्राहीम का जब खतना हुआ वह ६६ वर्ष के थे। (पैदायश बाब १७ आ० ६-११)

कयामत या प्रलय—लिखा है कि कयामत का ईश्वर ने एक दिन नियत कर रक्खा है। किन्तु उस दिन का पता ईश्वर के अतिरिक्त और किसी को नहीं है।''' अपनी आँखें आकाश की ओर उठाओ और नीचे पृथ्वी पर दृष्टि डालो, क्योंकि आकाश धूएं की भांति ओझल हो जायेंगे और पृथ्वी कपड़े की तरह पुरानी हो जायेगी और इस पर रहने वाले प्राणी मच्छरों की भांति मर जायेंगे। (यसअय्याह बाब ५१ आयत ४ से ६ तक)

हिसाब का दिन और मैदाने महशर—न्याय के दिन ईश्वर अपने प्रकाश, तेज और सामर्थ्य के साथ आकाश से जमीन पर उतरेगा और अपना न्याय करेगा। समस्त मुर्दे जीवित किये जायेंगे, अन्धों को आंखें दी जायेंगी। बहरों के कान खोले जायंगे। लंगड़े हिरन की भांति चौकड़ियां भरेंगे और गूंगे गाने लगेंगे। बादशाह देखेंगे और उठ खड़े होंगे। अमीर प्रणाम करेंगे। तब ईश्वर समस्त जातियों को अपने सामने मैदाने मशहर में इकट्ठा करेगा और प्रत्येक को उसके कर्मानुसार जन्नत या दोजख में सदैव के लिये भेज देगा। किन्तु बनिसराइल जाति पर ईश्वर अपनी विशेष दया-दृष्टि रक्खेगा और उसको इस प्रकार क्षमा करेगा कि वह प्रसन्न हो जायेगी।

जन्नत और दोजख—इनका स्तित्व आकाश पर बताया जाता है किन्तु इनके विषय में कोई विशेष निश्चित् स्थान और उसका परिमाण नहीं बताया गया है। कहा जाता है कि जन्नत मे सब प्रकार का सुख और दोजख में हर प्रकार का महाकष्ट उठाना पड़ेगा। (यसअय्याह बाब ५५, आयत ३)

फरिश्ते—ईश्वर ने फरिश्तों को बना कर संसार के प्रबन्ध करने

का अलग अलग कार्य सौंप रक्खा है। फरिश्तों की संख्या किसी को ज्ञात नहीं है किन्तु ईश्वर ही जानता है।

जकात—लिखा है कि ईश्वर ने ह० मूसा से कहा कि तू अपनी आय और अपने संचित कोष में से यात्रियों, अनाथों और विधवाओं को भी प्रति वर्ष दिया करना। (इसतसना बाब २३, आयत १६,२०)

रोज़ा—ईश्वर ने कभी कभी रोज़ा रखने की भी आज्ञा दी है। अत' एक जगह लिखा है कि जो रोज़ा मैं चाहता हूँ, वह यह नहीं है कि अत्याचार की जंजीरें तोड़ें और जूवे के बन्धन खोलें तथा पीड़ितों को स्वतन्त्र बनाएं, वरन प्रत्येक जूवे को तोड़ डालें। जिस दिन रोज़ा रक्खे उस दिन अपनी रोटी भूखों को खिलाएं और नंगों को कपड़ा पहनाएं। (यसअय्याह बाब ५८, आ० ३-८)

सूद—ईश्वर ने मूसा से कहा कि तू अपने भाई को ब्याज पर ऋण न देना। चाहे रुपये का ब्याज हो, अनाज का ब्याज हो या किसी और चीज़ का ब्याज हो। तू परदेशी को ब्याज पर कर्ज़ देना चाहे तो दे देना परन्तु भाई को ब्याज पर कदाचित् कर्ज़ न देना। (इसतसना बाब २३ आयत १६-२०)

विवाह—बनिस्राइल की पुत्रियां जिनसे चाहें विवाह करें किन्तु अपने बाप दादा के वंश में ही विवाह करना चाहिये। इस प्रकार उनका उत्तराधिकार उस कबीले से निकल कर दूसरे क़बीले में नहीं जायेगा। एक मर्द जितनी चाहे स्त्रियां रख सकता है, किन्तु काहन (पुजारी) अधिक स्त्रियां न रक्खे। जब यहूदियों के यहां पत्नियों की अधिक संख्या बढ़ती चली गई तो आगे चल कर यहूदियों ने अधिक से अधिक चार पत्नी रखने का नियम बना लिया था। (गिनती बाब ३६, आ० ६-६)

तलाक़ और पुनर्विवाह—यदि कोई पुरुष किसी से विवाह करे और बाद में उसमें कोई ऐसी अनुचित बात पाए कि जिससे उस स्त्री की ओर उसका ध्यान न रहे तो वह उसको तलाक नामा लिखकर

दे दे और उसको अपने घर से निकाल दे। जब वह घर से निकल जाये तो वह दूसरे पुरुष की स्त्री बन सकती है और यदि वह दूसरा पुरुष मर जाये या उससे अप्रसन्न होकर तलाक़ नामा लिख दे तो वह पहला पति उससे विवाह न करने पाए। यदि कई भाई इकट्ठे रहते हों और उनमें से एक सन्तान-हीन मर जाये तो स्वर्गीय आत्मा की पत्नि किसी अन्य से विवाह न करे बल्कि उसके पति का भाई उसे अपनी पत्नि बनाले। इस पत्नि से जो पहला बच्चा उत्पन्न हो वह स्वर्गीय आत्मा की सन्तान के नाम से ही पुकारा जायेगा। यदि स्वर्गीय आत्मा का भाई विवाह करने पर राजी न हो तो वह स्त्री अपने देवर के जूते मारे और और उस पर थूके। (इस्तनाय, बाब २४ आयत १ से ४, बाब २५, आयत ५ से ६)

उत्तराधिकार (विरासत)—ईश्वर ने मूसा से कहा कि बेटियों को बेटों के साथ अवश्य उत्तराधिकार का भाग मिलना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति मर जाये और उसके कोई पुत्र न हो तो उसका उत्तराधिकार उसकी पुत्री को देना। यदि पुत्री भी न हो तो उसके भाइयों को देना। यदि भाई भी न हो तो उसके बाब के भाइयों को देना। यदि बाप के भाई भी न हो तो जो व्यक्ति उस वंश मे सबसे निकट सम्बन्धी हो उसको उत्तराधिकार देना। (गिनती, बाब २६, आयत ४ से ११)

दास और दासियाँ भी उत्तराधिकार के रूप में उत्तराधिकारी को ही मिलेंगे। (अहबार बाब २५, आ० ४५, ४६)

पशु-वध और उसकी विधि

यहूदी मत के अनुसार सबसे पहला और परम सिद्धान्त पशु-पक्षियों का किसी विशेष अवसरों पर ईश्वर के नाम से वध करना आवश्यक है। प्रत्येक वध का जो फल मिलता है उसका तथा वध करने की विधि का वर्णन तौरेत में लिखा है—

अग्नि-भेंट—(सोख्तनी कुर्बानी—Burnt offering)—जब कोई बनिस्राइल ईश्वर के लिये चढ़ावा चढ़ाए तो वह गाय, बैल, भेड़ या बकरी का हो। वह पशु स्वस्थ हो। उसे लाकर वेदी के पास खड़ा करना चाहिये, ताकि ईश्वर उसे प्रसन्नता के साथ ग्रहण करे। फिर उस

पशु के सिर पर हाथ रक्खा जाए, ताकि वह उसकी तरफ से स्वीकार हो। इसके बाद उस पशु का वध किया जाये। हारून के बेटे जो काहिन (पुजारी) हैं, वे उसका रक्त लेकर वेदी (Altar) के चारों ओर छिड़कें। तब उस पशु की खाल खींची जाये और उसके टुकड़े-टुकड़े करके अलग किए जाये। वही पुजारी वेदी पर आग रक्खे और आग पर लकडियाँ क्रम से चुन दे तथा उस पशु के अंगों और चर्बी को वेदी की आग पर रक्खे। परन्तु अंतड़ियों और पैरों को पानी से धोकर रक्खे। इस प्रकार वेदी पर उस मांस को जलाने का नाम अग्नि-भेंट या सोख्तनी-कुर्बानी है। (पूर्ण विवरण के लिये देखिये-अहबार बाब अव्वल, आयत १ से १७ तक)

इसके अतिरिक्त और अवसरों पर भी पशु-पक्षियों के वध करने का तौरेत में वर्णन पाया जाता है। जैसे-पवित्र होने पर कुर्बानी, सुरक्षा के लिए कुर्बानी, अपराध होने पर कुर्बानी रोगी के अच्छे होने की कुर्बानी. किसी प्रसन्नता पर कुर्बानी, विपत्तियां टल जाने इत्यादि बहुत से अवसरों पर कुर्बानी करने की आज्ञा दी गई है। इन कुर्बानियों की विधि में एक दूसरे से कुछ अन्तर है।

क़स्सास (बदला)

यदि किसी की कोई हानि हो जाये तो जान के बदले जान, आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत, कान के बदले कान, पैरों के बदले पैर घाव के बदले घाव और चोट के बदले चोट लगाई जाये।

अपवित्र मनुष्य

कोढ़ी या कोढ़ के निशान वाला, लंगड़ा, अपाहिज, अंगहीन, अधिक अंग वाला और हराम की सन्तान दसवीं पीढी तक अपवित्र रहते हैं। उसको ईश्वर के उपासकों में सम्मिलित होने की अधिकार नहीं है।

ह० ईसा ने ऐसे सब मनुष्यों को ईश्वर-उपासकों में सम्मिलित

होने का अधिकार दे दिया था, इसी कारण यहूदियों को हजरत ईसा की यह बात बुरी लगी।

काफिर से व्यवहार

जो मनुष्य बुरे कार्य करे और ईश्वर की आज्ञाओं को भंग करे, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, काफिर होने के कारण वध कर देने योग्य है। (अहबार, बाब १६, आयत ५ व ६)

यदि कोई स्त्री या पुरुष मूर्तियों, सूरज, चाँद या तारों में से किसी की (जिसकी पूजा और उपासना की आज्ञा नहीं दी गई) पूजा या उपासना करे तो उसका द्वार से निकाल कर ईंट-पत्थर से मार कर वध कर दिया जाए। (इस्तस्नाय, बाब १७, आयत २ से ६ और बाब १३, आयत ६ से ९ तक)

शत्रु से व्यवहार

ईश्वर ने कहा है—

'जब तू अपने शत्रु से युद्ध करने के लिये किसी नगर पर चढ़ाई करे तो पहले उसे सन्धि का सन्देश देना और यदि वह तेरे संदेश को मान जाये तो तू नगर में प्रवेश करके अधिकार कर लेना। वह सब निवासी तेरे आधीन कर देते हुये तेरी सेवा किया करें। यदि वह तुमसे सन्धि न करे, वरन लड़ने पर तैयार हो तो तू उसके नगर को घेर लेना और जब तेरा अधिकार हो जाये तो वहां के प्रत्येक पुरुष की हत्या कर देना, परन्तु स्त्रियों, बच्चों, पशुओं और उस नगर की सब लूटी गई वस्तुओं को तू अपने लिये रख लेना तथा उस लूट के माल को खाना। (इस्तस्नाय, बाब २०, आयत १० से १५ तक)

सैनिक-बंदियों से व्यवहार

ह० मूसा ने ईश्वर की यह आज्ञा अपनी सेना के अधिकारियों को इस प्रकार सुनाई—

'लड़ाई में जिस प्रकार भी पुरुष, युवक और ऐसी स्त्रियाँ हाथ

आएं, जो पुरुषों का मुँह देख चुकी हों, जान से मार डाली जाये। उन लड़कियों को जो अछूती हों अपने लिये जीवित रख लेना। यदि तुम बन्दियों में से किसी सुन्दर स्त्री को देखकर आशक्त हो जाओ और उससे विवाह करना चाहो तो उसको पवित्र करके उससे विवाह कर लेना। (गिनती, बाब ३१, आयत १७ से १९ तक और इस्तस्नाय, बाब २१, आयत १० से १६ तक)

दास या दासियां

ईश्वर ने ह० मूसा से कहा—

'तुम अपनी जाति में से दास या दासियाँ मत बनाना, बल्कि उनमें से बनाना या खरीदना जो जातियां तुम्हारे चारों ओर रहती हैं, या उन्हें बनाना जो परदेशी जातियां हों। यदि कोई स्वामी किसी दास या दासी को लाठी से मारे और वह मर जाये तो उसे 'अवश्य दण्ड दिया जाये। यदि वह दास या दासी दो दिन तक जीती रहे तो स्वामी को दण्ड न दिया जाये। दण्ड इसलिये न दिया जाये, क्योंकि वह उसका माल है। (खरूज, बाब २१, आयत २० और २१) यदि कोई दास या दासी छ: वर्ष सेवा करे तो वह सातवे वर्ष स्वतन्त्र होकर बिना कुछ दिये जा सकता है। यदि वह अकेला आया हो तो अकेला जाये। यदि उसका विवाह उसके स्वामी ने किया हो और उस औरत से सन्तान हुई हो तो वह स्त्री और सन्तान स्वामी के पास रहेंगे। यदि वह दास प्रेम के कारण न जाना चाहे तो उसका स्वामी ईश्वर के पास ले जाकर उसका कान छीद दे तब वह रह सकता है। (खरूज, बाब २१, आयत १ से ६ तक)

क्वारी कन्या से विवाह

ईश्वर ने कहा—

''यदि कोई विवाहित लड़की से प्रेम करे तो वह दोनों ईंट पत्थर से मार दिये जायें। यदि किसी पुरुष को कोई क्वॉरी कन्या मिल जाये, जिसकी सगाई न हुई हो और वह उसके साथ प्रसंग करे तथा दोनों पकड़े जायें तो वह पुरुष जिसने प्रसंग किया है, लड़की के पिता को

चांदी के पचास मिसकाल (चांदी का सिक्का) दे और वह लड़की उस की पत्नी बना दी जाये, क्योंकि उसने उसका सम्मान नष्ट किया है और वह पुरुष इसको जीवन भर तलाक़ न देने पाये। (इस्तसनाय बाब २२, आयत २२, २३, २८, २९ और खारूज, बाब २२, आयत १६ व १७)

पुजारी और काज़ी से व्यवहार

ईश्वर ने कहा—

'पुजारी और काज़ी हर दशा और अवस्था में आदरणीय हैं। उनके प्रत्येक निर्णय का पालन किया जाये। (इस्तस्नाय, बाब १७ आयत ९ व १०)

लूट के माल का विभाजन

ईश्वर ने हज़रत मूसा को आदेश दिया—

'तू लूट के माल को दो भागों मे विभाजित करके एक भाग सैनिकों को देना और दूसरा भाग अपने दूसरे लोगों को बांट देना। सैनिकों में हर पाँच सौ भेड़-बकरी गाय-बैल और गधे में से तू अपने भाग का स्वयं रख लेना। चांदी, सोना, आभूषण इत्यादि को भी बनिस्राइल जाति के सहायतार्थ अवश्य लेना। (गिनती, बाब ३१, आयत २६ से २९ तक और ५१ से ५४ तक)

हलाल और हराम पशु

ईश्वर ने मूसा से कहा—

'तू बनिस्सराइल से कह कि पृथ्वी के सब पशुओं में से जिनको तुम खा सकते हो, वह यह हैं—

गाय, बैल, भेड़, बकरी, हिरन, छोटा हिरन, चकारा, साबर, नील गाय, जंगली भेड़ तथा पशु जिनके पंख अलग और चिरे हुए हैं तथा जो जुगाली करते हैं, तुम उन सबको खा सकते हो।

ऊँट, साफ़ान—Coney, ख़रगोश को न खाना, क्योंकि वह

जुगाली तो करते हैं किन्तु इनके पैर चिरे हुए नहीं हैं, इसलिये अपवित्र हैं। सूअर— यह भी अपवित्र है। इसके पांव तो चिरे हुए हैं मगर जुगाली नहीं करता। (इस्तस्ना, बा०१४, आ० ३ से ८ तक)

जल-जन्तु—जो जन्तु समुद्र, नदी या नाले इत्यादि में रहते हैं, उनमें से वह जन्तु खाने चाहियें जिनके पर और छिलके होते हैं। जिन के पर और छिलके नहीं हैं, वह अपवित्र हैं। (इस्तस्ना, बा० १४, आ० ९ व १०)

पक्षी—सब पक्षी खाए जा सकते हैं, किन्तु जो गंदे होने के कारण कदाचित न खाने चाहियें, वह यह हैं—

उकाब, कक्कड़, चील, बाज, कव्वे, शुतरमुर्ग, चुगद, कोयल, उल्लू, काज, गिद्ध, बगुले, हुद हुद और चिमगादड़ इत्यादि। सब परों वाले और रेंगने वाले पक्षियों, कीड़े मकोड़ों तथा पशुओं में से वह खा सकते हो जिनके पृथ्वी के ऊपर कूदने फाँदने के लिये पॉव के ऊपर टॉगे होती हैं। (इस्तस्ना, बा० १४, आ० ११ से २० तक) नेवला, चूहा, छिपकली गोह, सांडा और गिरगिट अपवित्र होने के कारण खाने के योग्य नहीं हैं। हर प्रकार के जानवर जो अपनी मौत मरे हों, उनको खाना नहीं चाहिए। हिंसक पशुओं से फाड़े हुए पशुओं का मांस खाना मना किया गया है। (अहबार, बा० १७, आ० १५ व १६)

रक्त—सब जानवरों का रक्त निषेध (हराम है, क्योंकि रक्त पशुओं की जान है (इस्तस्ना, बा० १४, आ० २९)

निषेध-कार्य

ईश्वर ने मूसा से कहा—

किसी सम्बन्धी के शरीर को वस्त्रहीन न करना; माता या विमाता के शरीर को वस्त्रहीन न करना; बहन चाहे पिता की पुत्री हो या माता की, उसके शरीर को वस्त्र हीन न करना; पोती या दुहिता के शरीर को वस्त्रहीन न करना। फूफी, मौसी, चची, पुत्रवधु और भाभी के शरीर

को वस्त्रहीन करना, साली से विवाह करना या उसके शरीर को वस्त्रहीन करना, अपनी स्त्री के शरीर को वस्त्रहीन करना (जबकि मासिक धर्म हो रहा हो), पड़ोसी की स्त्री और पुरुष के शरीर को वस्त्र हीन करना तथा किसी पशु से व्यभिचार करना यह सब निषेध कार्य हैं। हे मूसा! तुझे इन सब कार्यों के करने से मना किया जाता है, क्योंकि तुझ से पहले सब लोग ऐसा किया करते थे, इसलिये वह सब पापी हुए (अहबार, बा० १८, आ० ६ से २८ तक)

मुक्ति के साधन

तौरेत में मुक्ति के साधन इस प्रकार वर्णन किए गये हैं—

ईश्वर पर विश्वास लाना और उसी को अपना पूज्यनीय समझना, तौरेत को ईश्वरीय पुस्तक मान कर उसके अनुसार कार्य करना; ईश्वर से प्रार्थना पर प्रार्थना करना; अपने को पवित्र बनाना; बुरे कामों से सदा बचना; व्यभिचार से बचना; अच्छे और भले कार्य करना, न्याय को स्थिर रखना; सत्य पर चलना, दीन-दुखियों की सहायता करना, अनाथों की विनती सुनना; विधवाओं का सहायक होना और ह० मूसा को ईश्वर का प्रतिनिधि (इमानतदार) और पैगम्बर मानकर उसका सदा आदर करना।

ह० मूसा को दस आदेश—Commandments

ईश्वर ने मूसा को सीना Sinai पर्वत पर यह दस आदेश दिये थे—

(१) तेरा ईश्वर मैं हूँ। जो तुझे मिश्र देश से अर्थात् दासवृत्ति (गुलामी) से छुड़ा कर लाया, वह मैं हूँ। मेरे सामने तू दूसरे देवताओं को न मानना। तू अपने लिये कोई घड़ी हुई मूर्ति न बनाना और न ही तू उसकी पूजा या उपासना करना तथा तू उनके आगे सिर भी मत झुकाना, क्योंकि मैं तेरा ईर्षालू— Jealous ईश्वर हूं।

(२) तू अपने पिता ईश्वर का नाम व्यर्थ न लेना क्योंकि जो मेरा नाम व्यर्थ लेता है, मैं उसको निर्दोष नहीं समझूंगा।

(३) याद करके सिब्त के दिन—Sabbath day शनिवार को पवित्र मानना और उस दिन कोई कार्य करना। मैंने यह दिन पवित्र ठहराया है। जो उसका अपमान करेगा, वह अवश्य मारा जायेगा।

(४) तू अपने माता-पिता का आदर-सम्मान करना ताकि तेरी आयु बड़ी हो और जो देश तेरा स्वामी ईश्वर तुझे देता है, उसमें तेरा भला हो।

(५) तू हत्या न करना।

(६) व्यभिचार न करना।

(७) तू चोरी न करना।

(८) तू अपने पड़ोसी के विरुद्ध झूठी गवाही न देना।

(६) तू अपने पड़ोसी की पत्नी के प्रति लालच मत करना।

(१०) त अपने पड़ोसी की किसी भी वस्तु का लालच न करना।
(इस्तना, बा० ५, आयत ७ से २२ तक)

ईश्वर की अन्य आज्ञाएं

ईश्वर ने ह० मूसा को जो और आज्ञाएं दीं, उनमें से कुछ यह हैं—

(१) जो अपने माता-पिता को मारे या अपशब्द कहे, उसका वध कर देना ही योग्य है।

(२) यदि कोई किसी गर्भ वती स्त्री को ऐसा मारे कि उसका गर्भ गिर जाये परन्तु और कोई हानि न हो तो उसे उतना जुर्माना दिया जाये जितना उसका पति मांगे। यदि कोई हानि हो जाये तो जान के बदले जान, आंख के बदले आंख, दाँत के बदले दाँत, हाथ के बदले हाथ, पॉव के बदले पॉव, जलाने के बदले जलाना, घाव के बदले घाव और चोट के बदले चोट लगाई जाये।

(३) यदि कोई अपने दास या दासी को मार कर आँखें फोड़दे या दाँत तोड़दे तो उसे स्वतन्त्र कर दिया जाये।

(४) यदि कोई बैल सींग मार कर किसी को मारे तो वह बैल जान से मार डाला जाये। यदि बैल को पहले से ही मारने की आदत थी और उसके स्वामी को बतला भी दिया गया हो तो ऐसी दशा में मालिक भी मारा जाये। यदि वह बैल किसी दास या दासी को सींग मार कर मार दे तो बैल का स्वामी उस दास या दासी के स्वामी को ३० मिस्काल देवे और बैल मार दिया जाये।

(५) जो किसी पशु से बुरा काम करे वह भी हत्या कर देने के योग्य है।

(६) यदि कोई ईश्वर को छोड़ कर किसी अन्य देवी या देवता के आगे पशु-भेंट (कुर्बानी) चढ़ाए तो उसको नष्ट कर दिया जाये।

(७) जो कोई सिब्त के दिन का अपमान करे, वह अवश्य मार डाला जाये।

(८) जो कोई किसी की स्त्री से व्यभिचार करे तो वह और वह स्त्री दोनों जान से मार डाले जायें।

(९) जो अपनी सोतेली माता से व्यभिचार करे, वह दोनों भी जान से मार डाले जायें।

(१०) जो कोई किसी पुरुष से व्यभिचार करे, वह दोनों भी जान से मार डाले जायें।

(११) जो कोई अपनी स्त्री और सास को रक्खे, वह तीनों जान से मार डाले जायें।

(१२) जो औरत किसी जानवर से व्यभिचार करे तो वह दोनों जान से मार डालें जायें।

(१३) जो अपनी बहन से व्यभिचार करे , वह दोनों जान से मार दिये जायें।

(१४) जो कोई अपनी मौसी या फुफी के शरीर को वस्त्र-हीन करे, तो उनके पाप का फल उन्हें ही मिलेगा। चची या ताई के शरीर को वस्त्र हीन करने से उनका पाप भी उन्हें ही मिलेगा और वह निःसन्तान मरेंगे।

(१५) जो कोई अपनी भाभी को वस्त्र-हीन करे, वह और जादूगर स्त्री या पुरुष जान से मारे जायें। (अहबार, बा० २०)

(१६) जिसका खतना न हुआ हो, वह अपने लोगों में काट डाला जाये क्योंकि उसने मेरा प्रण तोड़ा है। (पैदायश, बा० १७, आ० १४)

(१७) साल भर में तीन बार मेरे लिये ईद मनाना। ईदेफतीर को मानना। उसमें मेरी आज्ञानुसार अबीब महीने के निश्चित समय पर ७ दिन तक बिना खमीर की रोटियाँ खाना, क्योंकि इस महीने में तू मिश्र से निकला था और कोई मेरे आगे खाली हाथ न आए। जब तेरी फसल का पहला फल आए तो फसल काटने की ईद मनाना। जब तू अपने खेत का फल एकत्रित करे तो एकत्रित करने की ईद मनाना और साल में तीनों बार तुम्हारे सब पुरुष मेरे आगे उपस्थित हुआ करें। तू फरिश्तों की बात मानना। यदि तू उसे अप्रसन्न करेगा तो वह तुझे क्षमा नहीं करेगा।

(१८) यदि तू मेरी आज्ञाएँ मानेगा और फरिश्तों के कहे अनुसार चलेगा तो मैं तेरे शत्रुओं का शत्रु हूंगा।

(१९) तू मूर्तियों की पूजा-उपासना न करना बल्कि उनके टुकड़े टुकड़े कर डालना।

(२०) तू अपने भाई हारून को मेरी सेवा के लिये काहिन (पुजारी) बनाना और भविष्य में उसकी सन्तानें मेरी सेवा के कार्य किया करें तथा मेरा उपहार ग्रहण किया करें।

(२१) तू काहिन को सदा पवित्र जानना। क्योंकि वह मेरे लिये भेंट प्रस्तुत करता है।

(२२) तू मेरे लिये मेरी आज्ञानुसार भेंट उपस्थित किया करना।

(२३) तू मेरी प्रत्येक आज्ञा को मानना। यदि न माना तो तुझे महा कठिन दंड दूंगा। (खरूज)

ह० मूसा कैसे पैग़म्बर बने

लिखा है—

जब हजरत मूसा मिश्र छोड़कर मिद्यान देश में चले आए तो

वहाँ आकर खायल के यहां भेड़ बकरी चराने पर नौकर हो गये। वह एक दिन होरब पर्वत के निकट भेड़ बकरियां चरा रहे थे कि इतने में ही ईश्वर का एक फरिश्ता एक झाडी में से अंगारे के रूप में उनके सामने प्रकट हुआ। उन्होंने उस झाड़ी की ओर दृष्टि की तो उस झाड़ी में आग लगी हुई देखी, परन्तु वह झाड़ी जली न थी। यह देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ और वह उसे देखने के लिये उसकी ओर बढ़े। ईश्वर ने ह० मूसा को आते देखकर झाड़ी में से पुकारा, "हे मूसा! हे मूसा! मूसा ने कहा, 'मै उपस्थित हूँ'।' ईश्वर ने मूसा से कहा, 'जूते उतार कर मेरे पास चला आ'। वह जूते उतार कर ईश्वर के निकट पहूंचे। ईश्वर ने कहा, 'मै तेरे बाप इब्राहीम, इज्हाक और याकूब का ईश्वर हूँ'। मूसा ने डर कर अपना मुँह छिपा लिया। तब ईश्वर ने कहा, 'मैंने तेरी जाति की फरियाद सुनी है, जो बेगार और कष्टों में फंसी हुई है। मै उनके कष्टों को जान कर उतरा हूँ, ताकि उनको मिश्रियों से छुड़ा कर एक अच्छे और विशाल देश, में जहां दूध और शहद बहता है—अर्थात् कन्आइयों और यबूसियां के देश में पहुँचाऊँ। हे मूसा! तू फरऔन के पास जा और मेरी प्यारी बनिस्राइल जाति को मिश्र से निकाल ला। मै भी तेरे साथ तेरी सहायता के लिये रहूँगा। इसके अतिरिक्त ईश्वर ने मूसा को और भी बहुत-सी बाते समझाई। उनकी लाठी मे सर्प बनने की शक्ति पैदा की और उन्हे बहुत से चमत्कार दिखाने में समर्थ बना दिया। इस प्रकार जहुआ ने ह० मूसा को अपना पैगम्बर चुन लिया।

लिखा है कि उस समय से अब तक बनिस्राइल जाति मे कोई नबी मूसा की भांति नहीं उठा, जिसने ईश्वर से आमने सामने होकर बातें की हों। (खरूज, बाब ३, आयत १ से १२ तक)

तौरेत मूसा पर कैसे उतरी

लिखा है कि जब ह० मूसा अपनी जाति को मिश्र से निकालने में सफल हो गये तो वह उसे अपने साथ लेकर तीन माह तक इधर उधर जंगलों में फिरते रहे। अन्त मे सीना पर्वत के जंगल में आ गये और वहाँ आकर डेरे लगा लिये। ह० मूसा सीना पर्वत पर चढ़ कर ईश्वर के पास गये। ईश्वर ने मूसा से कहा, 'यदि तुम मेरी बात मानो

और मेरे प्रण पर चलो तो मेरी सब जातियों में से तुम ही मेरी विशेष सम्पत्ति ठहरोगे और देख मैं काले बादलों में से तेरे पास इसलिये आया हूं कि जब मैं तुझ से बातें करूं तो यह सब लोग सुनें और सदा तेरा विश्वास करें। तू उन लोगों से कहदे कि वह नहा-धो कर और कपड़े पहन कर पवित्र हो जायें और तीसरे दिन सीना पर्वत के निकट मेरी बातें सुनने के लिये आ जायें। तू उन लोगों के लिये चारों ओर सीमा बाँध कर उनसे कह देना कि खबरदार! तुम न तो उस पहाड़ पर चढ़ना और न उसको छूना। जो कोई ऐसा करेगा, वह सीमा को तोड़ेगा और जान से मारा जायेगा। जब नरसिंहा फूँका जाये तो वह सब पहाड़ के निकट आ जायें।

ह० मूसा ने ये सब बातें पहाड़ से उतर कर अपने लोगों को सुनाईं। जब तीसरा दिन आया तो प्रातः काल ही बादल गर्जने लगे, बिजली चमकने लगी और पहाड़ पर काली घटा छा गई। नरसिंहे की बहुत जोर से ध्वनि की गई। उसकी ध्वनि सुनकर सब लोग पहाड़ के नीचे आ कर खड़े हो गये। सीना पर्वत ऊपर से लेकर नीचे तक धूँवे से भर गया, क्योंकि आग के अंगारे में होकर ईश्वर उस पर उतरा और धूँवा ऊपर उठा। उस समय सारा पर्वत हिल गया। ईश्वर ने पर्वत की चोटी पर मूसा को बुलाया। ईश्वर ने जो जो बातें ह० मूसा को कहीं, हजरत मूसा ने वह सब बातें लिख लीं।

जब ईश्वर उस पर्वत पर मूसा से बातें कर चुका तो ईश्वर ने साक्षी के लिए दो तख्तियाँ (लोहे) ह० मूसा को दीं। वह लोहे दोनों तरफ से लिखी हुई थीं और जो उसमें लिखा था, वह भी ईश्वर का ही लिखा हुआ था। उन्हें लेकर मूसा वापिस आ गये।

ऐसा भी लिखा है कि कुछ दिनों के पश्चात वह तख्तियाँ टूट गई थीं। तब ईश्वर ने मूसा से कहा, 'तू अपनी पहली तख्तियों जैसीं दो तख्तियाँ और घड़वा लेना। मैं उन तख्तियों पर वहीं लिखूँगा जो पहली तख्तियों पर लिखा हुआ था'। (खरूज, बाब २४, आ० ८ से २१, बाब ३१, आ० १८, आ० ३४, आ० १)

ईश्वर ने मूसा से कहा कि बनिस्राल से कहना कि तुमने स्वयं

देख लिया है कि मैंने तुम्हारे साथ बातें की है। (खरूज, बा० २०. आ० २२) ईश्वर ने कहा, कि जिस बात की मैं तुम्हें आज्ञा देता हू, उसमें तुम न कुछ बढ़ाना और न कुछ घटाना (इस्तस्ना, बाब ४, आ० २)

सच्चे और झूठे नबी की पहचान

ह० मूसा ने बनिस्राइल से कहा, "ईश्वर तेरा स्वामी तेरे लिये तेरे ही भाइयों मे से मेरे जैसा एक नबी भेजेगा। तू उसकी बात सुनना। ईश्वर अपनी वाणी उसके मुंह में डालेगा और जो कुछ उसको आज्ञा दी जायेगी, वह वही तुमसे कहेगा। जो कोई ईश्वर की बातो को कि जिनको वह ईश्वर का नाम लेकर कहेगा, या सुनेगा तो ईश्वर उससे हिसाब लेगा।

किन्तु जो गुस्ताख (धृष्ट) बन कर कोई ऐसी बात कहेगा कि जिसके कहने की उसको आज्ञा नहीं दी गई और देवी-देवताओं के नाम से कुछ कहेगा तो वह नबी वध करने के योग्य होगा। वास्तविक नबी की पहचान यह है कि जब वह नबी ईश्वर के नाम से कुछ कहे और उसके कहने के अनुसार वह बात पूरी न हो तो समझ लो कि वह बात ईश्वर की कही हुई नही है, बल्कि उस नबी ने स्वयं धृष्ट बन कर वह बात कही है। तू उससे कुछ भय न करना। (इस्तस्ना, बा० १८, आ० १५ से २२ तक)

(यदि तेरे बीच कोई नबी या पैगम्बर या स्वप्नदर्शी प्रकट हो और तुझे किसी अद्भुत भेद या चिन्ह की खबर दे और वह बात या चिन्ह वैसा ही हो जाये तो तू उसकी बात का कदाचित विश्वास न करना और न सुनना बल्कि उस नबी का वधकर डालना, क्योंकि वह तुझे ईश्वर के विरुद्ध उभारने की प्रेरणा देता है ताकि तुझे उस रास्ते से कि जिस पर ईश्वर ने तुझे चलने की आज्ञा दी है, बहकाए। इस प्रकार तू अपने बीच से बुराई को दूर करना, परन्तु जो मूसा की बुराई करेगा तो ईश्वर का क्रोध और विरोध उस पर पड़ेगा। इस्तस्ना, बा० १३, आ० १ से ५ तक)

पुस्तकें

यहूदियों की धार्मिक या ईश्वरीय नाम पुस्तक का पुराना अहदनामा Old Testament or Hebrew Bible है। इसे साधारण तौर पर तौरेत के नाम से भी पुकारा जाता है। तौरेत ३६ पुस्तकों के समूह का नाम है। कहा जाता है कि इन पुस्तकों में ईश्वर की वह आज्ञायें लिखी हैं, जो ह० मूसा को कभी कभी ईश्वर से मिलने पर मिलती रहीं हैं।

तौरेत की पहली पाँच पुस्तकें Pentateuch के नाम से प्रसिद्ध हैं। वह पाँचों किताबे यह हैं—

(१) पैदायश-Genesis (२) खरूज-Exodus (३) अहबार-Leviticus (४) गिनती-Number (५) इसतसना-Deuteronomy.

पैदायश—Genesis, इस पुस्तक में दुनिया के ६ दिन में बनाने, आदम और हव्वा के उत्पन्न करने, ह० नूह, इब्राहीम- इस्हाक, याकब, युसुफ और उनके भाइयों का इतिहास, फरओन और बनिस्राइल जाति का पूरा वर्णन किया गया है।

खरूज—Exodus, इसमें फरओन महाराज का शेष इतिहास, ह० मूसा की उत्पत्ति, मिदियान देश में जाकर ह० मूसा का भेड़-बकरी चराने पर नौकर होना, होरब पर्वत पर ईश्वर से मिलना, मिश्र देश में वापस आना बनिस्राइल जाति को मिश्र से निकालना, फरओन को उसकी सेना के साथ दरिया में नष्ट करना, इसराइल जाति को साथ लेकर जंगलों में फिरना, कभी कभी सीना पर्वत पर ईश्वर से मिलकर उसकी आज्ञायें प्राप्त करना और दूसरी कुछ सदाचार की बातों का वर्णन किया गया है।

अहबार—Leviticus, इसमें ईश्वर का ह० मूसा से मिलकर मूर्ति-पूजा करने से मना करना, हर प्रकार की कुरबानी (भेंट) की विधि

समझाना, हलाल और हराम पशु-पक्षियों का विस्तार के साथ वर्णन करना, दूसरी जातियों से व्यवहार करने की बातें जितलाना, ईश्वर-मन्दिर बनवाने का तरीका समझाना, काहनो और पुजारियों का आदर सम्मान करना तथा कुछ सदाचार की बातों का वर्णन किया गया है।

गिनती—Number, इसमें ह० मूसा का जंगल में अपनी जाति की जन-गणना कराना, दूसरी जातियों के साथ अपनी जाति को युद्ध के लिए तय्यार करना, दूसरी जातियों से लड़कर उनका राज्य छीनना, ईश्वर का ह० मूसा की सहायता करना, पुरुष-स्त्री, क्वारी और विवाहित लड़की तथा दास और दासी के साथ व्यवहार करने की बातें बताना, लूट के माल का विभाजन करने की विधि समझाने इत्यादि का वर्णन पाया जाता है।

इसतसना—Deuteronomy, इसमें हर प्रकार की मूर्ति-पूजा करने से मना करना, मूर्ति-पूजकों से व्यवहार करने की विधि समझाना, तलाक देने, पुनर्विवाह करने, सूद न लेने, खतना कराने, करने और न करने योग्य कार्यों को समझाना, कुछ सदाचार की बातों पर प्रकाश डालना तथा ह० मूसा की मृत्यु का वर्णन मिलता है।

इन पाँचों पुस्तकों में बहुत सी बातों का बार बार वर्णन किया गया है।

लिखा है कि ह० मूसा की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् बनिस्राइल जाति की दशा फिर बिगड़ गई थी। वह पहले की भांति मूर्ति-पूजा इत्यादि बातें करने लगी थी। इस जाति की यही दशा देख कर ईश्वर को फिर दया आई और उसने ह० दाऊद को अपना पैग़म्बर चुना। उन्हें ईश्वर ने अपनी आज्ञाओं का प्रचार करने के लिए ज़बूर Psamls नाम की पुस्तक दी थी। इस पुस्तक में भी बहुधा वहीं बातें पाई जाती हैं जो उससे पहली पुस्तकों में लिखी हुई मिलती हैं।

पुराने अहदनामे में इन ६ पुस्तकों के अतिरिक्त ३३ दूसरी पुस्तकें भी सम्मिलित हैं, उनमें इतिहास और कुछ दूसरी सदाचार इत्यादि बातें वर्णन पाई जाती हैं।

ह० मूसा

वास्तव मे मूसा यहूदियों के नबी और पैगम्बर हैं, किन्तु मुसलमान भी उनको अपना नबी और पैगम्बर मानते हैं। ह० मूसा के जीवन चरित्र के विषय में यहूदियों और मुसलमानों, दोनो की ही धार्मिक पुस्तकों में लिखा है। किन्तु उन दोनों की किताबों में बहुत सी आवश्यक बातों मे भिन्नता पाई जाती है। अत हमने ह० मूसा के जीवन चरित्र के विषय में मुसलमानो की धार्मिक पुस्तकों को छोड़ कर केवल यहूदियों की धार्मिक पुस्तको से ही लेकर लिखा है। ह० मूसा का दूसरा नाम हलीम है। उनके पिता का नाम उमरां और माता का नाम बीवी खातून था। वह बनिस्राइल जाति के लावी फिरके से सम्बन्ध रखते थे। ह० मूसा की पैदायश मिश्र देश में हुई थी। उस समय उस देश का राजा फरओन था। फरओन का नाम वास्तव में तोलेस था। किन्तु उसके नास्तिक होने के कारण उस को फरओन के नाम से पुकारते थे। वह न्याकारी, चतुर और दूरदर्शी था। उसके दरबार में बड़े बड़े योग्य ज्योतिषी और जादूगर रहते थे। फरओन ने ईश्वर होने का दावा करके लोगों से अपने को ईश्वर कहलवाया और जिस किसी ने ऐसा कहने औ मानने से इनकार किया, उसी का वधकरा दिया गया। फारओन ने कहारा शहर से कोई २ मील की दूरी पर बड़े मजबूत और ऊंचे मीनार बनवाए थे। उनके खण्डहर अब तक पाए जाते हैं।

वास्तव में बनिस्राइल जाति किनआन देश की रहने वाली थी, परन्तु वह किसी समय वहा से आ कर मिश्र देश में रहने लगी थी। यह जाति उस समय पारसी धर्म अर्थात् अग्नि पूजक थी। और ईश्वर विश्वासी थी। इस जाति ने फरओन को खुदा कहने और मानने से इनकार कर दिया था। इसी कारण वह उनसे नाराज हो कर उन को भांति २ के कष्ट दिया करता था। उसने इस जाति में से बहुत से बन्दी, दास और दासियां बना ली थीं। और उनसे बेगार लिया करता था।

फरओन राजा ने अपने ज्योतिषों के कहने से अपने राज्य में

यह आज्ञा जारी कर रखी थी कि बनी इसराइल जाति में जो लड़का पैदा हो वह तुरन्त जान से मार दिया जाये। उसने यह आज्ञा इस कारण जारी की थी कि ज्योतिषी ने उस को यह बतला रखा था कि बनी इसराइल जाति में एक व्यक्ति ऐसा उत्पन्न होगा कि जो तुम्हारी जान का लेवा बनेगा। अत. इस आज्ञा के आधीन हजारों बच्चे मारे गए। इबरानी जाति अपने दुखों के कारण हर समय मुसीबत मे रहती थी। लिखा है कि इस जाति का रोना पीटना ईश्वर के कानो तक पहुंचा और उसने इस जाति का रोना पीटना सुन कर अपना वह प्रण याद किया कि जो उसने इस जाति के पूर्वजों और पैगम्बरो अर्थात ह० इब्राहीम, ह० इजहाक और ह० याकूब के साथ इस प्रकार कर रखा था कि "मै बनी इसराइल जाति को कभी कष्ट मे न डालूंगा। बल्कि सदा उसके सुख और उन्नति का ध्यान रखूंगा।"

जिन दिनों फारओन की यह कठोर आज्ञा प्रचलित थी उनही दिनों ह० मूसा मिश्र देश में उत्पन्न हुए थे। उनकी माता ने अपनी चतुराई से उन को छिपा लिया और उनकी पैदायश का किसी को पता न चलने दिया। इसी प्रकार उन को उन की माता ने ३ महीने तक छिपाये रक्खा परन्तु जब अधिक समय तक छिपाने की गुंजायश न देखी तो एक दिन अपनी जान के डर से सरकन्डों का टोकरा ले कर और उस पर चिकनी मिट्टी तथा राल लगा कर बच्चे को उस मे रख कर दरया के किनारे पर झाऊ मे चुपके से टोकरा रख आई। दैव योग से ऐसा हुआ कि वह टोकरा दरया में बह गया। जब वह टोकरा बहता हुआ आ रहा था तो फारओन की बेटी, जो उस समय अपनी सहेलियों के साथ उस दरया पर सैर के लिए आई थी, नजर पड़ गया। टोकरा निकलवाया गया और जब खोल कर देखा गया तो उस में एक अति सुन्दर बच्चा रोता हुआ पाया गया। लडकी को उस पर दया आई। वह उस को ले कर अपने महल में वापस आ गई। उस लड़की ने उस बच्चे को अपने पिता को दिखलाया और उसके पालने के विषय में चर्चा किया तो उसके पिता ने पालने की आज्ञा दे दी। उस के पालने के लिए एक इबरानी स्त्री को बुलाया गया। दैव योग से ऐसा हुआ कि उसकी माता बीबी खातून ही उस के पालने पर नियुक्त कर दी गई।

उस लड़की ने बच्चे का नाम मूसा इस कारण रखा कि उस को पानी से निकाला गया था। ह० मूसा फ़रऔन के महल में राज कुमार की भान्ति परवरिश पाने लगे और जब वह जरा बड़े हुए तो उन की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया गया। इसी तरह रहते-सहते उन की आयु १६ या २० वर्ष की हो गई।

एक दिन ह० मूसा बाहर घूम रहे थे तो देखा कि एक मिश्री एक इबरानी को बहुत बुरी तरह से मार पीट कर रहा है। ह० मूसा ने अपनी जाति के आदमी को पिटते देख कर उस की तरफ़दारी की और उस मिश्री को मार कर उसी जगह दबा दिया। इस घटना का भेद फ़रऔन पर भी खुल गया। उसने ह० मूसा को राज दरबार में बुलाया किन्तु ह० मूसा अपनी जान के भय से मिश्र छोड़ कर मिदयान देश में चले गये।

एक दिन मिदयान देश में ह० मूसा एक कुंए के पास बैठे हुए थे। वहां कुछ लड़कियां पानी भरने आ गई। ह० मूसा ने पानी भरने में उनकी सहायता कर दी। इस बात से वह लड़कियां उनसे अति प्रसन्न हुई। उन्होंने घर जा कर अपने पिता रिवायल से इस का चर्चा किया। उनका पिता ह० मूसा को बुला कर अपने घर ले गया और खाना खिलाया। ह० मूसा उन ही के यहां रह कर भेड़ बकरी चराने लगे। कुछ दिनों पश्चात् रवायल ने अपनी बेटी सफूरा का विवाह उनके साथ कर दिया। ह० मूसा के यहा उस लड़की से एक लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम जेरसूम रक्खा गया।

एक दिन ऐसा हुआ कि ह० मूसा जंगल में होरब पर्वत के निकट भेड़ बकरी चरा रहे थे तो ईश्वर का एक फ़रिश्ता एक झाड़ी में से आग की चिन्गारी की भान्ति उन पर प्रगट हुआ। ह० मूसा ने जब उस झाड़ी की ओर दृष्टि की तो उस झाड़ी में आग लगी हुई देखी परन्तु वह झाडी भस्म नहीं हुई। उनको यह देख कर आश्चर्य हुआ और झाड़ी को देखने के लिए उसकी ओर बढ़े। जब ईश्वर ने उन को आते देखा तो झाड़ी मे से पुकारा और कहा कि 'ए मूसा! ए मूसा!' मूसा ने कहा 'मैं हाजिर हू' तब ईश्वर ने उनसे कहा कि वह 'जूते उतार कर ईश्वर के निकट पहुचे तो ईश्वर ने कहा कि 'मैं तेरे

खिलाफत का काम चलाया। अन्त में वह भी ११० साल की उम्र में चल बसे।

यशू के बाद कुछ समय तक बनिस्राइलयों का कोई राजा या खलीफा नहीं हुआ। बनिस्राइल यहूदी मजहब से फिर कर जो कुछ उनकी समझ में अच्छा या बुरा आया बिला रोक टोक करते रहे। (कुज्जात बाब २१ आयत २४-२५)।

ह० दाऊद—समोइल के बाद दाऊद राजा या खलीफा बने। उन्होंने ह० मूसा के मत को फैलाने में बड़ा काम किया। बहुत सी धार्मिक लड़ाईयां लड़ीं। श्याम देश को विजय करके यरुशलम अपनी राजधानी बनाया। उन्होंने ४० साल खिलाफत का काम करके अपने सब से छोटे बेटे सुलेमान को राज कार्य शभाल दिया। अन्त में वह भी १२० साल की आयु में मर गए। उन पर ईश्वर की किताब जबूर (Psamlsh) का दिया जाना कहा जाता है।

ह० सुलेमान—अपने बाप दाऊद के बाद खलीफा बने। उन्होंने दरया फिरात से फिलसतियून के देश और मिश्र की सीमा तक राज्य किया। ईश्वर ने उन्हे भी अपना पैगम्बर बनाया और उन पर भी अपनी वाणी का प्रकाश किया। उन्होंने ईश्वर का यरूशलम में बहुत विशाल मन्दिर बनवाया। ह० सुलेमान ने अपनी स्त्रियों के लिए अलग अलग बड़े सुन्दर महल बनाये थे। लिखा है कि उन का तख्त अनोखा और बड़ी लागत का था जो हवा में उड़ा करता था। उन के आधीन जिन्न और देव बतलाए जाते हैं और कहा जाता है कि वह अपना सब काम उन्हीं के द्वारा कराया करते थे। उनके लगभग ७०० स्त्रियां और ३०० बांदियां थीं। उन स्त्रियां मेंसे

कुछ ने उन्हें ह० मूसा के मत से फेर कर मूर्ति पूजक वना दिया था। लिखा है कि ईश्वर सुलेमान के इस कार्य से नाराज़ हुआ और कहा कि तुझसे राज्य छीन कर तेरे ही नौकर को दूंगा। किन्तु ऐसा तेरे जीवन में नहीं करूंगा वल्कि तेरे वेटे के हाथ से छीनूंगा। ह० सुलेमान ४० वर्ष खिलाफत करने के पश्चात् यरुशलम में चल वसे। उन की जगह उन का वेटा राजा और खलीफा वना। उनके विपरीत उनका नौकर खड़ा हो गया और राज्य पर आपत्ति आनी आरम्भ हो गई। (सलातीन वाव १-२)

जैन धर्म

जैन धर्म

शब्द जैन जिन शब्द से निकला है, जिसके अर्थ 'जीतने वाले-Victor के है। किन्तु अमर कोश में जिन और बौद्ध के एक ही जैसे अर्थ हैं। अर्थात् जो बात समझ में आ जाये, उसे मानना और जो बात समझ में न आए उसे न मानने वाला जैन या बौद्ध कहलाता है।

जैन विद्वानो का कहना है कि जैन धर्म बौद्ध या हिन्दू धर्म की शाखा नही है, वरन् यह धर्म स्वयं अनादि और शाश्वत है। वह यह भी कहते हैं कि जैसे सृष्टि उत्पत्ति का कोई आरम्भ और अंत निश्चित नहीं है, इसी प्रकार इस धर्म के प्रारम्भ होने की भी कोई तिथि नहीं है। अत यह धर्म अनादि-काल से संसार के साथ साथ चला आ रहा है और अनन्त काल तक इसी प्रकार चलता रहेगा। यह बात और है कि किसी क्षेत्र विशेष में कुछ समय के लिये दशा बिगड़ जाने के कारण उसका रंग फीका पड़ जाये। किन्तु तीर्थंकरों और मुक्त आत्माओं के द्वारा इस धर्म का पहले की भाँति फिर प्रभाव हो जाता है। सारांश यह है कि जैसे संसार मे महा प्रलय होकर समस्त संसार और लोक-लोकान्तरों की समाप्ती नहीं हुआ करती वरन् ससार के किसी क्षेत्र विशेष पर उसको प्रभाव पडा करता है इसी प्रकार यह धर्म भी संसार से कभी नष्ट नहीं हुआ करता।

जिस प्रकार दूसरे धर्म या मजहब वाले अपने अपने धर्म या मज़हब को अनन्त और अनादि सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते हैं, इसी प्रकार जैन विद्वान् भी अपनी वर्त्तमान धर्म सम्बन्धी पुस्तकों में इस धर्म के अनन्त और अनादि होने के विश्वास पर बल दिया करते हैं। इसके समर्थन में वे ऋग्वेद, यजुर्वेद, वाल्मिकी रामायण, महाभारत, मार्कन्डे पुराण और भगवत गीता इत्यादि के उद्धहरण देकर यह सिद्ध करने की

चेष्टाएं करते हैं कि उनके धर्म और तीर्थंकरों का वर्णन उन सब पुस्तकों*
में यत्र-तत्र पाया जाता है। वे यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते
हैं कि जहांतक एतिहासिक ज्ञान का सम्बन्ध है, इस धर्म की प्रधानता
बराबर दिखाई पड़ती है।

जहां तक जैन धर्म के अतिरिक्त दूसरे निष्पक्ष और स्वतन्त्र
विचार के विद्वानों ने इस धर्म के विषय में जांच की है, वे इस
परिणाम पर पहुँचे हैं कि जैन धर्म लगभग २५०० वर्ष पुराना सिद्ध
होता है। जो जैन विद्वान् इसको अनन्त और अनादि सिद्ध करने की
चेष्टाएं किया करते हैं, उनका विचार तथ्य पूर्ण नहीं है। ये विद्वान् कहते
हैं कि महाभारत से २५०० वर्ष पश्चात् तक के किसी भी प्रामाणिक ग्रन्थ
या इतिहास में इस धर्म का कोई चिन्ह नहीं पाया जाता। उनका ऐसा
भी कहना है कि जिन शास्त्रों से वह जैन धर्म के अनादि और अनन्त
होने के विषय में उद्धहरण दिया करते हैं, वास्तव में उन
शास्त्रों में जैन धर्म का कोई संकेत नहीं पाया जाता। ऐसी दशा में यह
कह देना अनुचित न होगा कि जैन धर्म को अनादि और अनन्त सिद्ध
करना भ्रम है। वह उन शास्त्रो से उद्धरण देकर उनके अशुद्ध अर्थ
लगा कर अपने विचारों का उनके साथ जबरदस्ती सामजस्य स्थापित
करने तथा अपने मत के समर्थन कराने की असफल चेष्टाएँ किया
करते हैं।

इसके विरुद्ध ऐसा प्रमाण मिलता है कि ऊपर लिखे गये शास्त्रों
के उद्धरण जैन शास्त्रों में बहुधा पाए जाते हैं। आज से पिछले २५००
वर्षो मे इस देश में हिन्दुओं के जितने धर्म-ग्रन्थ लिखे गये, उनमें थोड़ा
या बहुत जैन धर्म का वर्णन पाया जाता है और जैन शास्त्रों में हिन्दू
धर्म तथा प्रचलित रीति-रिवाजो का बहुधा वर्णन मिलता है। इसके
अतिरिक्त अब तक जो जैन मूर्तियाँ पृथ्वी या पर्वतादि खोदने से
निकली हैं वह भी २५०० वर्ष से अधिक पुरानी सिद्ध नहीं होती। इस

---

* ऋग्वेद, अष्टक १, अ० ६, द्दग १६। यजु० अ० ६, मत्र-
२५। ऋग्वेद, अस्टक २, अध्याय ७, द्दग १७। यजू, अध्या० १६, मत्र-
१४। योग विशिष्ट, अ० १५, श्लोक ५। वाल्मिकि रामायण, सर्ग १४
वालकांड श्लोक ३२। महाभारत, वन पर्व, अध्या० १८३। मार्कन्डे
पुराण। भगवत गीता, स्कन्द ५ अ० २।

लिए इन समस्त वादों को दृष्टि में रखते हुए जैन-धर्म अनादि और अनन्त कदाचित् सिद्ध नहीं होता। अतः जैन धर्म को २५०० वर्ष पुराना मानना ही उचित है।

जैन और बौद्ध धर्म एक ही काल की उत्पत्ति हैं, या यूँ कहिये कि यह दोनों धर्म अपने समय की प्रतिक्रियाओं का ही दूसरा नाम हैं। इन धर्मों की उत्पत्ति से पूर्व उपनिषदों के विषय में दो विचार धाराएँ, एक द्वैत वाद और दूसरी अद्वैत वाद प्रचलित हो रही थीं। इन धर्मों के प्रचलित होने से पूर्व इस देश में वाम मार्ग, चारवाक मत, शैव और वैष्णव मत प्रचलित थे। भगवान महावीर के समय में इस देश की दशा बड़ी विचित्र थी। जात-पात और ऊच नीच के बखेड़े चल रहे थे। ब्राह्मणों ने जनता को अपने चंगुल में फँसा रक्खा था। अपना पेट भरने और स्वार्थ की पूर्ति के लिये छूत-छात के विचार प्रचलित हो रहे थे। शूद्र और स्त्री जाति का अपमान होता था। देश में चारों ओर मिथ्या बातों और बुरे रीति-रिवाजों का प्रभाव चल रहा था। देवताओं के नाम पर पशुओं के अतिरिक्त मनुष्यों की बलियाँ भी दी जाया करती थीं। भगवान महावीर ने अपनी आँखों से यह सब बातें होती देखीं तो उन का कोमल हृदय काँप उठा। वह इन बातों को सहन न कर सके और इन सब बुरी बातो का नाश करने के लिये दृढ़ निश्चय कर लिया। अतः उन्होंने चारवाक के सिद्धान्तों में कुछ संशोधन किया और वाम-मार्ग तथा शैव मत के खंडन करने का निश्चय किया। दक्षिणी के जैन धर्म के सिद्धान्तों में कुछ अदल बदल के साथ पूर्व और उत्तर में बौद्ध मत का प्रचार हुआ। इन दोनों धर्मों के विद्वानो ने दर्शनों की विचार-धारा पर अलग अलग विचार किया। इस प्रकार शैव मत, बौद्ध और जैन धर्मों में एक दूसरे से 'विभिन्नता होती चली आई। यदि निष्पक्ष होकर ध्यान पूर्वक देखा जाये तो जैन और बौद्ध धर्म दोनों वैदिक धर्म की ही शाखाएँ हैं। वह वैदिक धर्म से किसी प्रकार भी अलग नहीं की जा सकते। जैन धर्म तो वैदिक धर्म के अति निकट है।

जैन धर्म ने ईश्वर की सत्ता पर ध्यान न देकर केवल जीवन को उच्च बनाने का ही उपदेश दिया। जैन धर्म ने चारवाक मत के प्रवर्त्तक

ब्रहस्पति की भाँति वेदों को गदी और झूठी कहानियों का समूह तथा हिंसा की खान बतला कर उनके प्रति घृणा पैदा की। इनदोनों धर्मों ने वाम-मार्ग, शैव मत तथा हिन्दू धर्म का विरोध किया। वेद या उनके आधार पर जो पुस्तकें उनके हाथ आईं, उन सब पुस्तकों को नष्ट किया गया। यह दशा लगभग ३०० वर्ष तक चलती रही। बौद्ध और जैन विद्वानों में भी आपस में काफ़ी विरोध चलता रहा और वह दोनों एक दूसरे को घृणा और वैर-भाव की दृष्टि से देखते रहे।

कहा जाता है कि जैन धर्म की शिक्षा सीधी सादी और हृदय मे विराग उत्पन्न करने वाली है। जहाँ तक देखा गया है, यह बात सच है। इस धर्म मे दर्शन की चाशनी नजर आती है किन्तु, साथ ही कुछ ऐसी बातें भी पाई जाती हैं जो बुद्धि और प्रकृति के विरुद्ध सिद्ध होती हैं।

जैन धर्म का कोई एक या दो प्रमाणिक शास्त्र नहीं है जिस-को पढ़ कर इस धर्म से पूरी जानकारी प्राप्त की जा सके।

बौद्धों और जैनियो से हिन्दुओं का विरोध इस कारण था कि यह दोनों धर्म वाले वेदों का अपमान करते थे और ईश्वर की सत्ता से इन्कार करते थे। हिन्दुओं के दूसरे देवताओं का भी उन्होंने काफी विरोध किया। जैनियों की इस दशा को देख कर ब्राह्मण लोग जैन धर्म के विरोधी हो गये। उनके विरोध में भाँति भाँति के शास्त्र लिखे गये और यहाँ तक लिखा गया कि यदि जान लेने के लिये पीछे से हाथी आ रहा हो तब भी जैन मन्दिर मे आकर अपनी जान नहीं बचानी चाहिए। कहाँ तक कहा जाये हिन्दुओं के लिये जैन मन्दिरों में जाना किसी दशा में भी अच्छा नहीं बताया गया। उनके ग्रन्थों को पढ़ना भी निषेध कहा गया है।

इस देश मे मूर्ति-पूजा, तीर्थों का महात्तम इत्यादि बातों का प्रसार करने वाले अधिकतर जैन धर्मावलम्बी ही हैं। उनकी देखा देखी हिन्दू धर्म में वे सब बातें अधिकतर प्रचलित हुई हैं।

जैन धर्म का भारतवर्ष के दक्षिणी भाग में लगभग ३०० वर्ष तक काफी जोर रहा। इस धर्म के मानने वाले बड़े बड़े प्रतापी और

शक्तिशाली राजा महाराजा हुए। जैन धर्म का प्रचार भारतवर्ष से बाहर होना सिद्ध नहीं होता। श्री शंकराचार्य ने ८०० ई० में बौद्ध और जैन धर्मों का खंडन किया, उनके शास्त्रों को नष्ट किया गया, उनके मंदिरों की मूर्तियों को तोड़ा गया, और बहुत से जैनियों को हिन्दू धर्म में सम्मिलित किया गया। शंकर महाराज के डर से बहुत से जैनियों ने अपने तीर्थंकरों की मूर्तियों को अपमान से बचाने के लिये किसी किसी जगह दबा दिया, जो आज कल खुदाई होने से यत्र तत्र निकलती रहती हैं। शकर महाराज ने जैन मत की उन्नति को रोकने के लिये ऐसा दृढ़ बाध लगाया कि उसके पश्चात् जैन धर्म का वह गौरव और गरिमा आज तक दृष्टि में नहीं आया। शकर महाराज के पश्चात् उनके संघ वालों ने, रामानुज आचार्य और चैतन्य महाराज ने भी इस धर्म को काफी हानि पहुँचाई।

भारतवर्ष में जैनियों की संख्या इस समय लगभग १२ लाख है। इस धर्म के मानने वाले इस समय वैश्य लोग हैं। वह बड़े कारोबारी हैं। कुछ समय पहले जैनी लोग अपने शास्त्र अन्य धर्मावलम्बियो को नहीं दिखाया करते थे, वरन् हाथ से लिखवाकर मन्दिरों में ही सुरक्षित रक्खा करते थे। किन्तु अब कुछ दिनों से दूसरे धर्म वालों की देखा देखी उनके शास्त्र छप कर बाजार मे बिकने लगे हैं। यही कारण है कि उनके शास्त्र अब पढ़ने को मिलने लगे हैं।



जैन-धर्म के सिद्धांत

१—जैन धर्मावलम्बी ईश्वर को तो मानते हैं किन्तु वह किसी एक ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता या सुख दुःख देने वाला नहीं मानते।

२—अल्पज्ञ (महदूद) जीव ज्ञान प्राप्त करके और मुक्ति पाकर सर्वज्ञ (लामहदूद) हो जाया करता है और फिर वह सर्वदर्शी, अनन्त सुखी, अनन्त वली, परम शांत और परम श्रद्धावान् बन कर ईश्वर कहलाता है।

३—२४ तीर्थंकर जो अबतक मुक्त हो चुके हैं, वह सब ईश्वर बन गये हैं। वह सब गुणों में बराबर हैं। वह सब शांत चित्त हैं। उन के मन, वचन और काय (शरीर) नहीं हैं। इस लिए जगत बनाने और बिगाड़ने के विचार उनके अन्दर उत्पन्न नहीं होते।

४—परमात्मा अर्थात तीर्थंकरों की जो भक्ति, उपासना और वन्दना की जाती है, वह उनके उच्च जीवन से शिक्षा प्राप्त करके अपने विचारों को शुद्ध करने के लिए की जाती है। उनको प्रसन्न करके फल पाने के लिये नहीं।

५—अपनी आत्मा को परमात्मा के बराबर गुण वाला जानकर राग, द्वेष और मोह छोड़ कर उनका ध्यान करने से मोक्ष प्राप्त होता है।

६—सब जीव चैतन्य हैं और वह सब अलग अलग हैं।

७—परमाणु अचेतन या जड़ हैं

८—संसार के सब द्रव्य स्वभाव से नित्य (गैरफ़ानी) हैं, किन्तु दशा परिवर्तन में वह अनित्य (फ़ानी) हैं।

९—प्रत्येक संसारी जीव अपने अच्छे या बुरे कर्मों के कारण जो शरीर धारण करता है वह पवित्र नहीं है।

१०—प्रत्येक जीव स्वतन्त्र है। वह आपही अपने अच्छे या बुरे भावों

से पाप या पुन्य के कर्म बांधता है और वही अपने अच्छे और पवित्र भावों से कर्मों का नाश करके मुक्ति पा सकता है।

११—जीवात्मा को उसके कर्मों के अतिरिक्त और कोई सुख दुःख देने वाला नहीं है। जैसे खाना-पीना और भोजन इत्यादि स्वयं रक्त, वीर्य और रस बन कर अपना फल देते हैं, इसी प्रकार अच्छे और बुरे कर्म भी सूक्ष्म शरीर में अपना प्रभाव उत्पन्न करके जीवात्मा को सुख और दुख की ओर ले जाते है। जीवात्मा आवागमन द्वारा अपने सुख दुःख का भोग करते हैं।

१२—यह जगत अनन्त और अनादि है तथा अचैतन्य पदार्थों का समूह है।

१३—मुक्त जीवात्मा सदा आत्मिक आनन्द में मग्न रहती है। वह फिर कभी कर्मों में नहीं बंधती और यही कारण है कि मुक्ति हो जाने पर फिर जन्म लेना नहीं पड़ता।

१४—क्रोध, मान, माया और लोभ यह चार जीवात्मा के शत्रु हैं। इनका संहार करके ही आनन्द की प्राप्ति होती है।

१५—अहिंसा परम धर्म है। सब पर दया करना और किसी जीव को किसी प्रकार का कष्ट न देना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

१६—महा प्रलय कभी नहीं होता बल्कि किसी विशेष क्षेत्र में दशा बिगड़ जाने के कारण प्रलय हो जाया करती है। कुछ समय पश्चात वह क्षेत्र फिर बस जाया करता है।

१७—मद्य, मांस और मधु (शहद) का खाना बहुत बुरा है।

१८—स्वर्ग, नर्क के अस्तित्व को किन्हीं विशेष स्थानों पर मानते हैं।

१९—जिन्न, शैतान और फरिश्तों इत्यादि के अस्तित्व को नहीं मानते।

२०—वेदादि शास्त्रों को धर्म शास्त्र नहीं मानते।

२१—तीर्थंकरों की मूर्तियों की पूजा करने, उनके आगे शीश झुकाने, उन पर फूल-फल और सामग्री इत्यादि चढ़ाने से मन की शुद्धि होना मानते हैं।

ईश्वर

जैन धर्मानुयाई एक ईश्वर को नहीं, वरन् बहुत से ईश्वरों को मानते हैं। वे अपने ईश्वरों को लगभग उसी तरह से मानते और पूजते हैं जैसे कि ईश्वर-वादी। ईश्वर के विषय में उनका ऐसा मत है कि जिस जीवात्मा के पहले समस्त कर्म झड़ जाते हैं तो वह स्थूल शरीर छोड़ कर सूक्ष्म शरीर के साथ पूर्ण रूप से शुद्ध होकर लोकाकाश के अन्त में सिद्ध क्षेत्र पर जाकर ठहर जाता है। वहां वह मग्न होकर रहने लगता है। वहा वह न किसी में मिलता है और न अशुद्ध होकर जन्म धारण करता है। उसी को परमात्मा, पारब्रह्म, परम-प्रभु और परम सुखी कहते हैं। इसलिये कहना पड़ता है कि ईश्वर एक नहीं है, वरन् सभी मुक्त जीवात्माएं ईश्वर हैं। ईश्वर शान्त चित्त होता है, उसके मन, वचन और काय (शरीर) नहीं होता तथा प्रत्येक ईश्वर अपने अपने ज्ञानानन्द में इसी प्रकार मग्न रहता है, जैसे कोई साधू किसी स्थान पर बैठे हुए ध्यान में मग्न रहता है। सब ईश्वर गुणों में समान होते हैं, परन्तु वह सब भिन्न भिन्न हैं। उनके भावों में संकल्प और विकल्प नहीं आते। जहां विचारों की तरंगें होंगी, वहां आनन्द आ ही नहीं सकता और न ही वह आत्मानन्द का भोग कर सकता है। यही कारण है कि सच्चिदानन्द ईश्वर में संसार रचने, उसे स्थिर रखने और प्रलय करने के विचार नहीं आ सकते। ईश्वर में कोई शुभाशुभ कामना नहीं होती। इसी लिये ईश्वर सृष्टि-कर्त्ता नहीं हो सकता।

जैनी ईश्वर को सृष्टि-कर्त्ता आदि मानने में यह दोष प्रकट करते हैं:—

(१) जो लोग ईश्वर को जगत-कर्त्ता, सर्व व्यापक और निराकार मानते हैं, वह भूल करते हैं। सर्वव्यापक में न हलचल आ सकती है और न ही निराकार साकार हो सकता है। निर्विकार से इच्छा नहीं हो सकती, इसलिये ईश्वर को सृष्टि रचने और न्याय आदि करने के चक्कर में पड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि ईश्वर को सर्व व्यापक, अन्तर्यामी और सर्व-शक्ति राजा मान लिया जाये, तो उसके राज्य में कोई पाप नहीं होना चाहिये। क्योंकि वह पाप करने वाले को तुरन्त रोक सकता है।

किन्तु ऐसा सम्भव नहीं, पाप बराबर होते रहते हैं। इससे ऐसा सिद्ध होता है कि परमात्मा इन झगड़ों में कदाचित् नहीं पड़ा करता। अतः ऐसा मानना ही उचित है कि संसार के निर्माण, नाश और स्थिर रखने वाला तथा जीवों को उनके कर्मोनुसार फल देने वाला कोई नहीं है। जीवात्मा को कर्मों का फल देने वाले उसके अपने अच्छे या बुरे कर्म ही हैं। यह संसार सदा से चला आ रहा है और सदैव इसी प्रकार चलता रहेगा। ईश्वर चैतन्य और ज्ञानवान अवश्य होते है, किन्तु वह कोई कार्य नहीं किया करते।

(२) यदि ईश्वर नित्य और तृप्त है, तब उसमे कोई कार्य नहीं हो सकता। यदि कोई कार्य होता है तो विरोधी कार्य नहीं हो सकता। या यों कहिये कि शुभाशुभ कर्म, सुख-दु:ख रूप-फल, लोक-परलोक, विद्या-अविद्या, बन्धन और मोक्ष कुछ नहीं हो सकते। ईश्वर के आनन्दमय होने से उसमें यह भाव 'कि मैं अनेक रूप हो जाऊं' आ ही नहीं सकता। दो वस्तुएं होने से ही परस्पर बन्धन और छुटकारा हो सकता है। एक शुद्ध पदार्थ में ऐसा होना असम्भव है।

(३) यदि जीवात्मा कर्त्ता न हो तो उसका जन्म या मोक्ष नहीं होना चाहिये। नियम यह है कि जो करता है वही भोगता है। जो ब्रह्म शुद्ध आशय रहित है, उसमें शरीर धारण करके क्रिया करने का भाव आ ही नहीं सकता। अर्थात् वह अवतार धारण कर ही नहीं सकता।

(४) यदि जीवात्मा मुक्त हो गया तो फिर उसका ईश्वर के आधीन रहना सम्भव नहीं है। क्योंकि मुक्त का अर्थ स्वाधीनता है। मुक्ति का कारण तो एक शुद्ध आत्म-समाधि है, वहा कर्म-काण्ड की कल्पना ही नहीं रहती।

(५) जीवात्मा में जब तक कमी रहती है, वह जीवन और मरण के चक्कर में फँसा रहता है। जब वह कमी दूर हो जाती है तो वह परमात्मा के समान स्वतन्त्र हो जाता है। ईश्वर मुक्त जीव को

ससांर में फिर किस दोष के कारण भेजता है ?

जीव

जीव ऐसे क्रियात्मक पदार्थ को कहते है, जिसमें चेतना Consciousness हो. जो सुख-दुःख अनुभव करता हो, जिसमे ज्ञान हो और जो देख, सुन तथा जान सके। यह नित्य. अमर, अविनाशी और स्वतन्त्र है।जीव संख्या मे असंख्य हैं और वह भिन्न भिन्न हैं। यह ज्ञानवान, चेतन और प्राणमय हैं। जिसका कभी नाश नहीं होता।

ससारी जीव के चार प्राण होते हैं, जिनके कारण वह शरीर मे जीवित रहता है और उन्हीं के वियोग से मृत्यु हो जाती है।जीव अपने अच्छे-बुरे कर्म आप बाँधता है और आवागमन द्वारा सुख-दुःख भोगता है। प्रत्येक जीव स्वभावत- ही सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त सुखी. अनन्त बली परम शान्त और परम श्रद्धावान है। किसी और पदार्थ या द्रव्य, में यह गुण नही हैं।

प्रकृति

प्रकृति मे चेतना नहीं है वरन् वह जड़ है। इसमें पाच तत्व और होते हैं—(१) पुद्गल (२) धर्मास्तिकाय (३) अधर्मास्तिकाय (४)-आकाश-Space (५) काल-Time

पुद्गल या परमाणु—यह अनन्त हैं। जिसमे रूखा, चिकना. ठंडा, गर्म, हल्का, भारी, नर्म और कठोर—यह आठ स्पर्श गुण, व श्वेत, काला. पीला, लाल और नीला यह पाँच रग तथा खट्टा, मीठा, चरचरा, कड़ु, कसैला, यह पाँच रस और सुगन्ध-दुर्गन्ध आदि सभी मिला कर पुद्गल में २० गुण हैं। या यों समझिये कि जो कुछ भी पाँच इन्द्रियों से ग्रहण करते हैं वह पुद्गल हैं। यह पाँचों इन्द्रियाँ तथा यह हमारा शरीर भी पुद्गल ही है। बहुत से सूक्ष्म पुद्गल इन्द्रियों से ग्रहण या अनुभव भी नहीं होते। कर्मों का बन्धन भी पुद्गल रूप है, इन्हीं से कर्म बनते हैं। पुद्गल का सबसे छोटा भाग परमाणु कहलाता है।

धर्मास्तिकाय—यह लोक व्यापी अमूर्तीक द्रव्य है, जिसका विशेष गुण यह है कि जब जीव और पुद्गल अपनी शक्ति से गमन करें तब बिना प्रेरणा के उनकी सहायता करता है।

अधर्मास्काय—यह भी लोक व्यापी अमूर्तीक द्रव्य है. जिसका विशेष गुण यह है कि जब जीव और पुद्गल अपनी शक्ति से ठहरते हैं, तब बिना प्रेरणा के उनकी सहायता करता है।

आकाश—यह सबसे बड़ा अनन्त अमूर्तीक द्रव्य है, जिसका विशेष गुण सब द्रव्यों को उदासीन भाव से स्थान देना है।

काल द्रव्य—अमूर्तीक एक परमाणु या प्रदेश के बराबर गणना में असंख्य हैं। उनको कालाणु भी कहते है। इनका विशेष गुण सब द्रव्यों की अवस्थाओं के पलटने में उदासीन भाव से सहायक होना है। समय,विपल और पल आदि काल द्रव्य की अवस्थाएँ हैं, जिनको व्यवहार काल कहते हैं। जीव और पुद्गल तो प्रत्यक्ष कम प्रकट हो हैं, परन्तु शेष चारों द्रव्यो का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमको इस सिद्धांत पर विचार करना चाहिये कि जगत में प्रत्येक कार्य के लिये उपाहस और निमित्त दो कारणों की आवश्यकता पडती है जो स्वयं कार्य मे रमा रहता है उसे उपादान कारण और जो सहायक होते हैं उसे निमित्त कारण कहते है।

जीव और पुद्गल चलते, फिरते, ठहरते, स्थान पाते तथा अवस्थाओ को बदलते है। यह चारो काम वह दोनों अपनी ही शक्ति से करते हैं, इसीलिए अपने उपादान कारण वह स्वयं हैं और निमित्त कारण चार भिन्न भिन्न कार्यो के चार द्रव्य हैं, अर्थात धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल हैं। यदि धर्म तथा अधर्मास्तिकाय द्रव्य न माने जाये तो जीव और पुद्गल एक लोक की मर्यादा में न रह कर अनन्त आकाश मे बिखर जायेगा। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय वहीं तक रहते हैं जहाँ तक जगत है। इसलिए जीव और पुद्गल जगत में ही चलते और ठहरते है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश में एक से अधिक प्रदेश होते हैं, इसलिए इन पाँच को जैन सिद्धान्त मे स्तिकाय कहा गया है।

सृष्टि और प्रलय

यह जगत अनादि और अनन्त है। इसका कोई कर्त्ता नहीं है। यह चैतन्य और अचैतन्य ६ द्रव्यों का समूह है। वह ६ द्रव्य यह हैं—(१) जीव (Soul) (२) पुद्गल (Matter) (३) धर्मास्तिकाय (Medium of motion) (४) अधर्मास्तिकाय (Medium of rest) (५) आकाश (Space) और (६) काल (Time)। संसार के कोई वस्तु न अचानक बनती है और न अचानक बिगडती है—या यों कहिये कि सत्य का कभी नाश और असत्य की कभी उत्पत्ति नहीं होती—अभाव से भाव नहीं होता—Nothing is destroyed and nothing is created, इसलिए कहना पड़ता है कि संसार के मूल पदार्थ का कभी नाश नहीं होता। केवल इतना होता है कि जीव और पुद्गल का रंग रूप बदलता रहता है। अत: यह मानना ही उचित है कि यह संसार सदैव से चला आ रहा है और सदैव इसी प्रकार चलता रहेगा। इसको किसी ने नहीं रचा और न कोई इसको स्थिर रखता है। कर्त्ता की आवश्यकता उस समय होती है जब कोई पदार्थ अनन्त और अनादि न माना जाय। जीव और प्रकृति अनन्त और अनादि है, इसलिए वह स्वभाव से अपना कार्य करते चले आ रहे है।

संसार मे प्रत्येक वस्तु के बनाने के लिए दो कारणों की आवश्यकता होती है। एक उपादान कारण, अर्थात् वह पदार्थ जिससे कोई चीज बनती है। दूसरा निमित्त कारण, अर्थात् वह पदार्थ जिसके सहारे से कोई चीज बनाई जाती है। उपादान कारण जीव और पुद्गल है। शेष चारों द्रव्य निमित्त कारण हैं, जो क्रम से अपना अपना कार्य करते है। जैसे पानी से भाप का बनाना। इसमें पानी उपादान कारण है और अग्नि आदि निमित्त कारण हैं। ऐसा कभी नहीं होता कि परमाणु बिना चेष्टा के पडे रहें। ऐसा तो हो जाता है कि कभी कोई क्षेत्र विशेष बिगड़कर उजाड हो जाय, किन्तु फिर वह उजड़ा हुआ क्षेत्र बस जाता है। किसी क्षेत्र विशेष में कभी थोड़े बहुत समय के लिए प्रलय हो जाती है, किन्तु महा प्रलय कभी नहीं होती।

जैन धर्म का उद्देश्य

कहा जाता है कि जैन धर्म का उद्देश्य संसारी-आत्मा के पाप-पुन्य रूपी कर्म तथा कलुष और मलिनता को धोकर उसको संसार के जन्म-मरण आदि दुखों से मुक्त कर स्वाधीन परमानन्द मे पहुचा देना है। जिससे यह अशुद्ध आत्मा शुद्ध होकर परमात्म पद में सदैव के लिये स्थिर हो जाये।

जैन-महामंत्र

जैन लोग इस महामंत्र को बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ उच्चारण करते हैं। इस मंत्र के जाप करने का वे बडा महात्तम समझते हैं। उस महा-मंत्र का सार यह है—

लोक में सब अरहन्तो को नमस्कार हो, सब सिद्ध लोगों को नमस्कार हो; समस्त आचार्यों को नमस्कार हो; समस्त उपाध्याओं को नमस्कार हो, समस्त साधुओं को नमस्कार हो।

पाँच व्रत

(१) अहिंसा—का पालन करना परम धर्म है। अहिंसा के दो भेद हैं-एक भाव अहिंसा, दूसरी द्रव्य अहिंसा। राग, द्वेष और मोह आदि भावों का होना भाव अहिंसा और शरीर के अंगादि का घात द्रव्य अहिंसा कहलाती है।

(२) सत्य—प्रमाद आदि में पड़ कर हानि कारक वचन कहना असत्य कहलाता है। सत्य को ग्रहण और असत्य का त्याग करना चाहिये।

(३) अचौर्य व्रत—प्रमाद आदि मे पड़ कर दूसरों की वस्तु गिरी, पडी, भूली तथा बिसरी उठा लेना चोरी है। इसका त्याग करना चाहिये।

(४) मैथुन का न करना ब्रह्मचर्य कहलाता है।

(५) परिग्रह त्याग व्रत—चेतन और अचेतन पदार्थों से मोह करना परिग्रह कहलाता है। इसका त्याग करना आवश्यक है।

धर्म के दस लक्षण

(१) उत्तम क्षमा—तनिक भी क्रोध न करके शान्त और प्रसन्न रहना उत्तम क्षमा है।

(२) उत्तम मार्दव—ज्ञान-तप आदि में श्रेष्ठ होने पर सत्कार या अपमान किये जाने पर भी शान्त चित्त रहना, उत्तम मार्दव कहलाता है।

(३) उत्तम आर्जव—मन-वचन काय की सरलता रखकर कपट के भाव को न आने देना उत्तम आर्जव कहलाता है।

(४) उत्तम सत्य और आत्मोद्धार—के लिये सच्चे तत्वों का श्रद्धान व ज्ञान रखते हुए सत्य वचन बोलना उत्तम सत्य कहलाता है।

(५) उत्तम शौच—लोभ को त्याग कर मन में सन्तोष और पवित्रता रखना उत्तम शौच है।

(६) उत्तम संयम—भली भाँति पाँच इन्द्रियों और मन को वश में रखना तथा पृथ्वी आदि ६ प्रकार के जीवों की रक्षा करना उत्तम संयम है।

(७) उत्तम तप—अनशन, उपवास आदि १२ प्रकार से तप के पालन करने में उत्साही रहने का नाम उत्तम तप है।

(८) उत्तम त्याग—मोह-ममता न करके समस्त प्राणी मात्र को अभय दान देना और उनको ज्ञानवान बनाना तथा अन्य प्रकार के उपकार करने का नाम उत्तम त्याग है।

(९) उत्तम आकिंचन्य—सर्व परिग्रह त्याग कर यह भाव रखना कि संसार में मेरी आत्मा के अतिरिक्त और कोई प्राणी नहीं है।

(१०) उत्तम ब्रह्मचर्य—समस्त कर्मों के भाव को त्याग कर अपनी ब्रह्म-स्वरूप आत्मा में लीन होना, अपनी स्त्री और पर-स्त्री का त्याग करना उत्तम ब्रह्मचर्य है।

कर्मों का फल

स्वाभाविक तौर पर जीवात्मा अपने कर्म आप बांधते है और आप ही उसका फल भोगते हैं, या यों कहिये कि जैसे कोई मदिरा पीता है और नशे मे चूर होकर बुरा फल भोगता है, इसी प्रकार जीवात्मा स्वय कर्म करता है और स्वय ही उसका फल भोगता है। कर्मों की जो स्थिति हो जाती है उसी ढंग से वह कर्म अपना फल देकर गिर जाते, अर्थात् समाप्त हो जाते हैं। जब कर्म स्वयं क्रमपूर्वक बंध जाते हैं तो उसके कुछ देर पश्चात् वह अपना अच्छा या बुरा फल कर्मानुसार देना आरम्भ कर देते हैं। वह उस समय तक फल देते रहते हैं जब तक उनकी मर्यादा पूरी न हो जाये। जिस समय तक कर्म अपना फल देना आरम्भ नहीं करते, उस समय का नाम आबाध-काल है। यह नियम नहीं है कि पिछले जन्म का फल इस जन्म मे या इस जन्म का फल अगले जन्म में होता है, वरन् क्रम से बंधे कर्म इस जन्म का फल इस जन्म में और अगले जन्म में भी दे दिया करते हैं। यह कर्मों की स्थिति भी कर्म स्वयं ही किया करते है। किन्तु पुरुषार्थ से पाप कर्म हटाया जा सकता है। पापकर्म अच्छे कर्मों से बदले जा सकते है। जैसा बाहरी निमित्त होगा वैसा ही कर्म-फल होगा। इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जैसे कोई विषैली वस्तु खाने के पश्चात् दूसरी कोई विष के प्रभाव को नाश करने वाली वस्तु खा ली जाये तो विष का प्रभाव नष्ट हो जाता है। बस यही विधि कर्मों के फल की है। ईश्वर पाप पुण्य के फल देने इत्यादि के धन्धों में नहीं पड़ता। यदि वह इन धन्धों में पड़ने लगे तो मुक्ति का आनन्द नहीं भोग सकता।

मुक्ति या निर्वाण

जीव और पुद्गल के मेल से संसार बनता है। इन दोनों के अलग २ हो जाने का नाम ही मोक्ष या निर्वाण है। पहले बंधे हुए समस्त कर्मों का पूर्ण रूप से निर्जरा अर्थात् त्याग हो जाने, तथा सब प्रकार के कर्मों के छूट जाने का नाम ही मुक्ति या निर्वाण है।

मोक्ष प्राप्त करके आत्माएं सिद्ध कहलाती हैं। इनमें आत्मा के

अनन्त गुण सब प्रकट हो जाते हैं। उनका निवास लोक के अग्र भाग मे रहता है। शरीर के छूट जाने पर उनका आकार बना रहता है, वह छोडे हुए शरीर के प्रमाण स्वरूप होता है। मुक्त अवस्था में आत्माएं निरन्तर परमानन्द में लीन रहती हैं। उनके कोई चिन्ता और राग आदि भाव नहीं होते। वह योगी की भांति ससार के प्रपंच से हटी हुई एकान्त में स्वरूप की समाधि मे अपने आप ही आनन्द अनुभव करती हैं।

मुक्त आत्माएं परम पवित्र, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा परम शान्त होती हैं। उनमे कोई चिन्ता-रागादि भाव नहीं होते। वह किसी से कोई स्वार्थ नहीं रखतीं, वरन् सदा आनन्द रस का पान करतीं रहती है। वे किसी को न बनाती, न बिगाडती, न सुखी व दुखी करती हैं। जैसे जला हुआ बीज फिर नहीं उगता, वैसे ही कर्म बन्ध के मिट जाने पर सिद्ध जीव जन्म नहीं लेता।

मुक्ति का स्थान

ऊर्ध्व लोक में एक स्थान सिद्ध-शिला है, जो स्वर्गपुरी के ऊपर है। वह स्थान ४५ लाख योजन (१ योजन = ४ कोस) लम्बा-चौड़ा और ८ योजन ऊचा है। वह दूध और मोतियों जैसा सफेद है, सोने जैसा चमकदार है और बिल्लौर जैसा साफ और चमकीला है। वह सिद्ध-शिला चौदहवे लोक की चोटी पर है। उसके ऊपर शिवपुर धाम है। वहा मुक्त जीवात्मा स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करती हैं। वहा दुःख, पीड़ाएं, जीवन और मृत्यु आदि कष्ट नहीं होते, वरन् आठो प्रकार के कर्मों से मुक्त जीव अलग रह कर परम सुखी रहता है।

मुक्ति के साधन

राग, द्वेष और मोह को त्याग कर तथा उच्च समाधि लगा कर, समस्त कर्मों का नाश करके जीवात्मा को परमात्मा के बराबर शुद्ध और पवित्र बनाने से मुक्ति प्राप्त होती है। मुक्ति प्राप्ति के लिये इन सात तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक है। वह तत्त्व यह हैं—

(१) जीव-(Soul) (२) अजीव-(Non Soul) (३) आस्रव-

(पुद्गल का जीव में आना) (४) बन्ध-(पुद्गल का जीव के साथ बंधन-Bondage of matter with soul) (५) संवर-(पुद्गल का आते हुए रुकना-Check of inflow) (६) निर्जरा-(पुद्गल का जीव से छुटना-Separation of matter from soul) (७) मोक्ष (स्वतन्त्रता-Totsl liberation from matter)

मुक्ति प्राप्त करने के लिये सच्चा विश्वास, सच्चा ज्ञान और सच्चा आचरण होना चाहिये। इसी का नाम रत्न-त्रय-धर्म है। इन सात तत्त्वों को समझाने के लिये इस प्रकार व्याख्या की गई है—जीव नाव है, अजीव जल है, आस्रव जल के आने का छिद्र है, बन्ध जल का ठहरना है, संवर छिद्र को बन्द करना है, निर्जरा जल को बाहर फेंकना है और मोक्ष नाव का इस प्रकार यात्रा को पार करके उस निश्चित् द्वीप में पहुँचना है। इन सातों तत्त्वों में से जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष ग्रहण करने योग्य है और शेष तीन तत्त्व त्यागने योग्य हैं।

मूर्त्ति पूजा

कहा जाता है कि संसार मे जैसे भक्ति मार्ग सदा से चला आ रहा है, वैसे ही भक्ति योग-(Object of worship) भी सदा से चला आ रहा है। उनका कहना है कि जैसे लोक मे किसी को पहचानने के लिये नाम रखना अनिवार्य है, वैसे ही किसी के अपने पास न होने के कारण उसे जानने के लिये उसकी मूर्त्ति या चित्र आवश्यक है। जो गृहस्थी देवपूजा करे उसकी उपस्थिति न हो तो पूजा में पूर्ण ध्यान नहीं लग सकता। यदि जीवन-मुक्त परमात्मा या अरहन्त साक्षात मिले तो हमें उनकी सेवा और पूजा करनी चाहिये। यदि वह सामने न हों तो उनकी वैसी ही ध्यानाकार मूर्त्ति स्थापित कर उस मूर्त्ति के द्वारा परमात्मा की भक्ति करनी चाहिये। भाव मे जैसा प्रभाव साक्षात् अरहन्त के ध्यानमय वीतराग शरीर के दर्शन से होगा, वैसा ही प्रभाव उनकी ध्यानमय मूर्त्ति के दर्शन से होगा। इसलिये अरहन्त देव की पूजा के लिये उनकी मूर्त्ति का सामने होना अति आवश्यक है। मूर्त्ति पूजा से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होते हैं और कष्ट दूर होकर ज्ञान में वृद्धि होती है।

देव पूजा

अरहन्त देव और सिद्ध परमात्मा का पूजन तथा उनके गुणों का वर्णन करना देव पूजा कहलाती है। देव पूजा अपने विचारों को शुद्ध और पवित्र बनाने के लिये की जाती है। इस पूजा और भक्ति से दिल में शान्ति उत्पन्न होती है। उनके पवित्र जीवन से अपना जीवन शान्त बनता है और पाप कर्म करने से मन हट जाता है।

देव पूजा दो प्रकार की होती है—एक द्रव्य पूजा, दूसरी भाव-पूजा।

द्रव्य पूजा—जल, फल, चावल, दीप, धूप, चन्दन और केसर इत्यादि को मूर्त्ति पर भेंट चढाने का नाम द्रव्य पूजा है। श्रावक (गृहस्थ जैनी) द्रव्य पूजा को ही आसान समझ कर किया करते हैं।

भाव पूजा—अरहन्त देव और सिद्ध परमात्मा के गुणों पर विचार करने का नाम भाव पूजा है। साधू लोग योगाभ्यास और ध्यान के द्वारा बिना मूर्ति के इस पूजा को किया करते हैं।

श्रावकों के करने योग्य कर्म

श्रावकों के लिये नित्य ये कर्म करने का विधान मिलता है—देव पूजा, गुरु भक्ति, शास्त्रों का पढ़ना और स्वाध्याय करना, संयम-Self-control और ध्यान करना—Meditation दूसरे नियम यह हैं—जैन धर्म के सिद्धान्तों में कदाचित् संशय न करना, दुखी और कष्ट में फंसे हुए जीवों से घृणा न करना, किसी की देखा-देखी कोई अधर्म का काम न करना, किसी के ऐब न निकालना, अपने धर्म पर हर दशा मे दृढ़ता से स्थिर रहना और दूसरों को दृढ बनाना, धर्म और धर्मात्मा से प्रेम रखना, धर्म के फैलाने मे हर सम्भव यत्न करना, देव-पूजा, अरहन्त देव तथा देव भगवान का दर्शन और पूजन करना, गुरु, आचार्य और साधू की भक्ति करना तथा उनसे उपदेश सुनना, दान देना, इन्द्रियों को वश मे रखना, खान-पान को निश्चित् विधि से खाना-

पीना। (शास्त्रों में पूरी विधि लिखी है); सदैव जल छान कर पीना और नदी आदि के जल को दोहरे कपडे से छान कर पीना तथा उसमें से निकले हुए जीवों को उसी जगह पहुँचा देना जहां से पानी लिया गया हो, रात को भोजन न करना; प्रति मास दो अष्टमी, दो चौदस को उपवास रखकर ध्यान लगाना, दूध, दही, घी, मिठाई, नमक और तेल इन छ. रसों में से सब या एक या एक से अधिक को सदा या किसी निश्चित् समय के लिये त्याग कर देना इत्यादि।

श्रावकों के न करने योग्य कर्म
(सदाचारी जीवन—Moral life)

जैन धर्म ने श्रावकों को इन बातों के करने से मना किया है—शराब, मास और शहद का सेवन करना, किसी प्राणी मात्र को कोई कष्ट न देना, वरन् यथा शक्ति अहिंसा धर्म का पालन करना। पाप कर्म करना, झूठ बोलना, चोरी करना, किसी को बुरा वचन कहना, परिग्रह न करना, (वस्तुओं में मोह का त्याग) बावली कुआँ या तालाब इत्यादि बनाना क्योंकि इनमें जीव पड़ते हैं और अहिंसा होती है।

दान

दान दो प्रकार के होते हैं। एक पात्रदान दूसरा करुणा दान। पात्र दान केवल जैन मुनि और श्रावक के लिये है। करुणा दान समस्त दुखी और असहाय प्राणिमात्र के लिये है।

आय का चौथा भाग, छटा भाग या दसवाँ भाग अवश्य दान करना चाहिये।

वर्ण-व्यवस्था

जैन विद्वान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चारों वर्ण जन्म से मानते हैं, कर्म से नहीं। किन्तु ऐसा भी लिखा हुआ मिलता है कि ऋषभ देव महाराज (प्रथम तीर्थंकर) ने प्रथम वर्ण व्यवस्था कर्म से स्थापित की थी।

तीर्थ-स्थान

पंजाब को छोड़ कर शेष समस्त भारतवर्ष में जैनियों के तीर्थ पाए जाते हैं। यह तीर्थ वह स्थान हैं, जहाँ तीर्थंकर पैदा हुए या ज्ञान प्राप्त किया या किसी दूसरे शुभ और पवित्र कार्य में योग दिया। जैन लोग उन तीर्थों पर इस भावना और श्रद्धा के साथ जाते हैं कि वहाँ जाकर मूर्तियों के दर्शन करने से हर प्रकार का आनन्द और सुख प्राप्त होता है और निर्वाण- प्राप्ति का मार्ग स्पष्ट और सुगम हो जाता है तथा समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

जैनियों के कुछ प्रसिद्ध तीर्थ स्थान यह हैं—

(१) सम्मेद शिखर-पर्वत—यह हजारी बाग जिले में एक पहाड़ी है। कहा जाता है कि श्री ऋषभदेव, वासुपूज्य, नामीनाथ और श्री महावीर के अतिरिक्त शेष २० तीर्थंकरों ने यहाँ निर्वाण प्राप्त किया था।

(२) मन्दार गिरि—यह भी जि० भागलपर में है। यहाँ श्री वासुपूज्य ने मोक्ष प्राप्त किया था।

(३) चम्पापुर—यह भी जि० भागलपुर में है। यहाँ श्री वासुपूज्य का जन्म हुआ था और यहाँ पर ही उन्होंने तप और ज्ञान प्राप्त किया था।

(४) पावापुर—बिहार में है यह श्री महावीर स्वामी के मोक्ष प्राप्त करने का स्थान है।

(५) कुंडलपुर—यह भी बिहार में है। यहाँ श्री महावीर का जन्म हुआ था।

(६) बनारस—यहां श्री सुपार्श्वनाथ का जन्म हुआ था।

(७) राजग्रह—यह बिहार में है। यहाँ श्रेणिक आदि जैन राजा हुए।

(८) सिंहपुरी—बनारस मे है। यहाँ ११वे तीर्थंकर श्री श्रयांसनाथ का जन्म हुआ।

(९) हास्तिनापुर—मेरठ से २४ मील है। यहाँ जैनियो के १६वे, १७वें और १८वे तीर्थंकर हुए।

(१०) महावीर जी—श्री महावीर जी जयपुर में है। यहाँ श्री महावीर जी का महान मंदिर है।

(११) आबू—आबू रोड से १८ मील पर्वत पर है। यहाँ अमूल्य जैन मन्दिर हैं।

(१२) डोण गिरि—यहाँ २५ जैन मन्दिर हैं।

(१३) गिरनार—जूनगढ़ में है। यहाँ श्री नेमिनाथ भगवान और ८२ करोड मुनि मोक्ष को प्राप्त हुए थे।

जैनियों के सम्प्रदाय

जैनियो के दो बडे सम्प्रदाय हैं। एक दिगम्बर, दूसरा श्वेताम्बर। श्वेताम्बर के भी कई उपसम्प्रदाय हैं। उनमें तेरह-पंथी, ढोंगी और ढूंढ़िया इत्यादि प्रसिद्ध है। इसी प्रकार दिगम्बरों के भी कई उपसम्प्रदाय हैं। इन सब सम्प्रदायों में कई बातों मे एक दूसरे से मत-भेद हैं।

ढूंढ़िया 1500 A. D. यह सम्प्रदाय पत्थर की मूर्ति की पूजा नहीं करता। नहाने और खाने के समय को छोड़ कर हर समय मुंह पर पट्टी बाँधे रहता है। मुंह पर पट्टी इस कारण बाँधी जाती है। ताकि मुंह की गर्म भाप से जीव न मर जाएँ। यह लोग प्रत्येक जाति के घर का भोजन खा लेते हैं।

दिगम्बरों और श्वेताम्बरों में एक दूसरे से बहुत सी बातों में सिद्धान्तिक विभिन्नता है। पहले श्वेताम्बरों के मथुरा और वलाभी केन्द्र थे और दिगम्बरों के उत्तरी बंगाल में पुंडरधन्न और दक्षिणी भारत में मैसूर यथा कर्नाटक केन्द्र समझे जाते थे।

नीचे श्वेताम्बरों तथा दिगम्बरों के कुछ सिद्धान्तिक मतभेद लिखे गये हैं।

दिगम्बर	श्वेताम्बर
(१) दिगम्बर साधू नंगे रहते हैं और वह गृहस्थ नहीं भोगते।	(१) श्वेताम्बर साधू कपड़े पहनते हैं और गृहस्थ भी भोगते हैं।
(२) दिगम्बर साधू भिक्षा देने वाले के मकान पर ही खाना खा लेते हैं। साथ नहीं ले जाते। वह दिन में एक बार भोजन करते हैं।	(२) श्वेताम्बर साधू किसी के मकान पर भोजन नहीं करते, वरन् किसी निश्चित् स्थान पर ले जाकर खाते हैं। वह एक बार से अधिक बार भी भोजन कर लेते हैं।
(३) दिगम्बर तीर्थङ्करों की नग्न-प्रतिमाओं की पूजा करते हैं और उनके मन्दिरों में भी नंगी प्रतिमा ही होती है।	(३) श्वेताम्बर तीर्थङ्करों की प्रतिमाओं को खूब कपड़े तथा आभूषणों से सज्जित करके पूजा करते है। इसी प्रकार वह अपने मन्दिरों में मूर्त्तियां रखते हैं।
(४) स्त्री केवल ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकती, क्योंकि वह नग्न नहीं रह सकती। इसी कारण उसको मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।	(४) स्त्री ज्ञान प्राप्त कर सकती है तथा वह मोक्ष भी पा सकती है।

दिगाम्बर	श्वेताम्बर
(५) तीर्थङ्करों में अद्भुत शक्तियां होती हैं। वह सर्वथा निष्काम होते हैं। उनमें कोई दुर्बलता नहीं होती। उनका शरीर काफूर जैसा स्वच्छ और निर्मल होता है। उनके शरीर में कोई रोग, दुःख या दर्द नहीं होता। उन्हें मल-मूत्र त्यागने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।	(५) तीर्थङ्कर साधारण मनुष्यों की भाँति खाते पीते और मल-मूत्र त्याग करते हैं। उन्हें भी दुःख, शोक और प्रसन्नता अनुभव होती है।
(६) ये ६ द्रव्य मानते हैं और काल द्रव्य को भी उन ६ द्रव्यों में ही सम्मिलित करते हैं।	(६) यह पाँच द्रव्यों को मानते हैं।
(७) महावीर स्वामी प्रथम त्रिशला के गर्भ में ही आए थे। उनका विवाह नहीं हुआ था और न ही उन्होंने गृहस्थ का भोग किया था, वरन् तपस्या करके ही निर्वाण प्राप्त कर किया था।	(७) प्रथम महावीर स्वामी एक ब्राह्मणी के गर्भ में आए थे। इन्द्र के द्वारा गर्भ हरण किये जाने पर त्रिशला के गर्भ में आए थे। उनका विवाह हुआ था और उन्होंने गृहस्थ का भी भोग किया था। इसके पश्चात् वह मोक्ष को प्राप्त हुए।

श्वेताम्बरों में १२वीं शताब्दी में हेमचन्द्र नामक प्रसिद्ध आचार्य हुए। उन्होंने बहुत से संस्कृत ग्रन्थों का निर्माण किया।

कुछ प्रसिद्ध जैन परिभाषाएँ

देव—जो क्रोध, मान, माया, और लोभ को त्याग देते हैं, वही सर्वदर्शी, वीतरागी, परम शान्त और देव कहलाते हैं।

केवली—जो लोग केवल ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति पा जाते हैं, वे केवली कहलाते हैं।

सिद्ध—जिन्होंने आठों प्रकार के कर्मों तथा अपने शरीर को मिटा दिया है और जो लोक-अलोक का पूरा ज्ञान रखते हैं, ऐसे मनुष्य शरीर त्याग कर मुक्ति प्राप्त करके शुद्ध आत्मा या सिद्ध परमात्मा कहलाते हैं।

अरहन्त-Worthy—जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान; अनन्त सुख और अनन्त शक्ति वाले होते हैं तथा जिनका शरीर सुन्दर और चमकदार होता है और जो स्वयं सत-धर्म पर चलते हैं तथा दूसरों को उपदेश देकर धर्म का मार्ग बतलाया करते हैं साथ ही जिनमें राग द्वेष और मोह नहीं होता वह आत्माएँ मोक्ष को प्राप्त करके अरहन्त कहलाती हैं।

साधु—जो अज्ञान, राग और मोह को मिटा कर ईश्वर का पद प्राप्त करने के लिए रात दिन आत्मा की उन्नति करने की चेष्टाएँ किया करते हैं, जो अपने पास रुपया, पैसा, बर्त्तन इत्यादि कुछ नहीं रक्खा करते; जो ४ हाथ आगे तक पृथ्वी को देख कर चला करते हैं, जो जीवों की रक्षा के लिए अपने पास मोर पंख रक्खा करते हैं, जो अपने सिर के बालों को अपने हाथों से नोच कर बिल्कुल नंगे रहा करते हैं, ऐसे मनुष्य ही साधु कहलाया करते है। ऐसे साधु ही अरहन्त और सिद्ध परमात्मा बन जाते हैं। वह जो शास्त्र रचा करते हैं, वही सच्चे शास्त्र कहलाते हैं। जैन साधु हर दशा में आदरणीय होते हैं।

श्रावक—गृहस्त जैनी श्रावक कहलाते हैं। शब्द सरावगी श्रावक का ही बिगड़ा हुआ नाम है।

परम देव—जिस जीवात्मा में अज्ञान, क्रोध, मान, माया और लोभ का दोष नहीं होता, जो पूर्ण तत्व ज्ञानी, सर्वदर्शी और परम शान्त होती है, वही जीवात्मा परम देव बन जाती है। उसी को सर्वज्ञ, वीतराग, अरहन, केवली, तीर्थङ्कर और जिन आदि नामों से पुकारते हैं।

तीर्थङ्कर—जो महान आत्मा या महापुरुष पवित्र और शुद्ध बन कर ईश्वर का पद प्राप्त कर लेता है; जो धर्म तीर्थ का प्रकाश किया करता है; वही तीर्थङ्कर कहलाता है। उनकी प्रतिमा के दर्शन से हृदय में वैराग्य की लहर उत्पन्न होती है। ऐसी आत्माओं का संसार में कभी कभी ही प्रादुर्भाव होता है। वह इसी जन्म में मुक्ति पा जाते हैं। संसार में अब तक ऐसी आत्माएं संख्या में केवल २४ हुई हैं, जो जन्म ले कर मुक्ति पा चुकी हैं और तीर्थङ्कर कहलाती हैं।

जैन विद्वानों का कहना है कि तीर्थङ्कर माता को बिना कष्ट दिये ही जन्म लिया करते हैं। उनके जन्म पर देवता गण प्रसन्नता प्रकट करते हैं और वह उनको करोड़ों घडों से स्नान करा कर उनका नाम-करण संस्कार किया करते हैं। देवता गण ही उनके पहनने के लिये कपड़े लाया करते हैं। प्रत्येक तीर्थङ्ककर जन्म से ही पूर्ण ज्ञानी होता है। उनके पढ़ने-लिखने या ज्ञान प्राप्त करने के लिये किसी गुरु या आचार्य की आवश्यकता नहीं पड़ा करती। जब तीर्थङ्कर को वैराग्य हो जाता है, तब फिर इन्द्र आदि देवता उनके पास आते हैं। वह उनको नये नये वस्त्र पहना कर तथा पालकी में बिठा कर और पालकी को अपने कंधों पर उठा कर वन में ले जाते हैं। वहाँ तीर्थङ्कर अपने कुल कपड़े उतार कर तथा अपने हाथों से अपने सिर के बालों को नोच कर मुनि की क्रिया किया करते हैं। जब तक केवल ज्ञान प्राप्त न हो जाये, तप करते रहते हैं। जब उन्हें पूर्ण ज्ञान हो जाता है, तब वह ईश्वर का पद प्राप्त कर लेते हैं। ईश्वर का पद पाने पर उनमे अति शक्ति और ज्ञान आ जाता है और उनका नाम अरहन्त प्रसिद्ध हो जाता है उन पर भूख, प्यास, सर्दी गर्मी और सुख-दुःख आदि अपना कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। उन-का शरीर कपूर की भाँति स्वच्छ और पवित्र हो जाता है। जब उनकी ऐसी दशा हो जाती है, तब इन्द्रादि देवता फिर आते हैं और आकर एक सभा समस्त मनुष्यों, पशु-पक्षियों की किया करते हैं। उस सभा में

तीर्थंकर अपना धर्मोपदेश दिया करते हैं। साधू और सन्त लोग उन उपदेशों को लिख लेते हैं, जो धर्म शास्त्र कहलाने लगते हैं। जब उनकी आयु पूरी होने को होती है तब निर्वाण के दिन से एक महीना पहले खाना, पीना और धर्म चर्चा इत्यादि सब कुछ बन्द कर देते हैं। वह एक स्थान पर ध्यान लगा कर बैठ जाया करते हैं। इस प्रकार शरीर छोड़ कर निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं। वह आकाश की ओर जाकर लोक के अंतिम भाग में रहने लगते हैं। उस स्थान पर रह कर वह आत्मिक प्रसन्नता में मग्न रहते हैं। ऐसा हो जाने पर उन्हे ईश्वर भगवान या सिद्ध कहते हैं।

जैन धर्म के बहुत से सिद्धान्त वैदिक धर्म से मिलते-जुलते हैं। किन्तु कुछ सिद्धान्तों मे मूलतः मतभेद है। जैन लोग जगत, जीव, जीव के कर्म और बन्ध अनादि मानते हैं। वैदिक धर्मानुयाई ऐसा नहीं मानते। नीचे मूल सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पाठक गण इसके विषय में दार्शनिक रूप से निर्णय करें और साथ ही इसी पुस्तक में नास्तिक मत पृष्ठ १७३ व १७४ देखे।

जैन धर्म	वैदिक धर्म
(१) सृष्टि के रचने वाला कोई नहीं है। यह सृष्टि अनादि और अनन्त है। सब वस्तुएं अपने अपने स्वाभाविक गुणों के मिश्रण से बनती हैं।	(१) सृष्टि का रचने वाला ईश्वर है। संसार में कोई कार्य बिना कर्त्ता के नहीं हो सकता और बिना कर्म के कोई कार्य नहीं होता। ईश्वर अपनी असीम शक्ति से सृष्टि को बनाता है और फिर निश्चित् समय पर प्रलय करके संहार कर देता है। संसार की सब वस्तुएं मिश्रित हैं, इसीलिये यह सृष्टि नाशवान् है, अनादि नहीं। मिश्रित वस्तु

कदाचित अनादि नहीं हो सकती। परमाणुओं का स्वयं मिलना-जुलना और अलग होना असम्भव है। अतः उनको नियम-बद्ध मिलाने वाली कोई चेतन और ज्ञानवान शक्ति अवश्य होनी चाहिये। वह शक्ति ऐसी हो, जिसे हर वस्तु का पूर्ण ज्ञान हो। इसके अतिरिक्त इस विचित्र ब्रह्माण्ड की रचना को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इसका बिना कर्त्ता के बनना असम्भव है। बस इसके रचने वाले का नाम ही ईश्वर है।

(२) ईश्वर केवल एक है, जो अनन्त और अनादि है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो बहुत से ईश्वर मानने से बहुत से दोष उत्पन्न हो जाते हैं। जीवात्मा स्वभाव से ही अल्पज्ञ है, इसलिये अल्पज्ञ जीवात्मा असीम शक्तिमान, पूर्ण ज्ञानवान और सर्वज्ञ कभी नहीं बन सकती। न ही ईश्वर जैसी असीम शक्ति और पूर्ण ज्ञान ही प्राप्त कर सकती है। जो प्रथम-बद्ध होकर मुक्त हो, वह फिर

(२) ईश्वर एक नहीं है, वरन् प्रत्येक मुक्त जीवात्मा अनन्त शक्ति सम्पन्न और पूर्ण ज्ञानवान होकर ईश्वर कहलाती है। वह जीवात्मा मोक्ष पाकर हर प्रकार के कर्म से अलग रहती है। क्योंकि ईश्वर प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं होता, इसलिये सर्वव्यापक परमेश्वर प्रत्यक्ष हुए बिना अनुमान में भी नहीं आ सकता। ईश्वर कर्म करने से अलग रहता है। क्योंकि जो कर्म करते हुए होता तो कर्म

का फल भी भोगना पड़ता। इसलिये जैसे जैनी लोग अपने ईश्वर को कोई कर्म न करने वाला मानते हैं, वैसे ही दूसरे ईश्वर विश्वासी भी मानें तो ठीक है।

बन्धन में अवश्य पड़ेगा; क्योंकि उसका स्वाभाविक गुण सदैव मुक्त नहीं है। ईश्वर देखने वालों को दिखाई देता है। किन्तु इन चर्म-चक्षुओं से नहीं वरन् उसके देखने की विधि योगाभ्यास और विज्ञान है। इसके अतिरिक्त जगत में ईश्वर की शिल्प कुशलता और चतुरता को देख कर ईश्वर सिद्ध होता है। पाप करने के समय जो डर, भय, सन्देह और लज्जा उत्पन्न होती है, वह भी अन्तर्यामी ईश्वर की ओर से एक सावधानी की सूचना होती है। ईश्वर की सत्ता हर प्रकार से सिद्ध है। ईश्वर चेतन है। चेतन शक्ति कभी कर्म करने से अलग नहीं रहा करती और यदि कर्म करने से अलग मानी जाये, तो वह पत्थर और ईंट की भाँति जड़ पदार्थ माननी पड़ेगी।

(२) ईश्वर व्यापक नहीं है। जो वह व्यापक होता तो फिर सब वस्तुएं भी चेतन क्यों नहीं हैं? जब वह सब में व्यापक है तो फिर यह ऊंच नीच का भेद-भाव कैसा?

(२) व्याप्य और व्यापक एक नहीं होते। व्याप्य एकदेशी (महदूद) और व्यापक सर्व-देशी (ग़ैर महदूद) होता है। जैसे आकाश सब में व्यापक है, किन्तु फिर भी पृथ्वी और

आकाश एक नहीं हैं। ऐसे ही ईश्वर और जगत भी एक नहीं हैं। ईश्वर चेतन है, वह सब में व्याप्त है किन्तु सब वस्तुएं चेतन नहीं हैं।

जैसे धर्मात्मा और अधर्मी, विद्वान और मूर्ख बराबर नहीं होते। इसी प्रकार अच्छे गुण, कर्म और शीलादि गुण कम या अधिक होने से यह ऊंच-नीच का भेद होता है। इससे ईश्वर की सत्ता के विषय में कोई दोष नहीं आता।

(४) यदि ईश्वर सृष्टि कर्त्ता होता, तो फिर माता-पिता आदि का का क्या काम ?

(४) ईश्वरीय सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर है, जैवी-सृष्टि का नहीं। जो जीवों के कर्त्तव्य-कर्म हैं उनको ईश्वर नहीं करता, वरन् जीव स्वयं करता है। ईश्वर ने अन्न-जल इत्यादि असंख्य पदार्थ उत्पन्न कर दिये हैं। मनुष्य उनसे विधि पूर्वक अपना काम चलाएं। आदि सृष्टि में ईश्वर ने जीव के शरीरों और साँचों को बनाकर सृष्टि का कार्य चलता कर दिया था। इसके आगे ईश्वरीय विधान के अनुसार उत्पत्ति आदि कार्य करने का काम जीव का है। यदि ईश्वर सृष्टि न रचे तो

फिर कौन रचे ? जीव तो अल्पज्ञ होने से रच नहीं सकता। प्रकृति जड़ पदार्थ है। वह स्वयं कुछ नहीं कर सकती। इस लिये ईश्वर ही कर्त्ता हो सकता है।

(५) जो ईश्वर को जगत का कर्त्ता मानें तो ईश्वर का कर्त्ता कौन है ?

(५) कर्त्ता का कर्त्ता और कारण का कारण कभी नहीं हो सकता। क्योंकि प्रथम कर्ता और कारण के होने से ही कार्य होता है। जिस मे संयोग-वियोग नहीं होता, जो प्रथम संयोग-वियोग का कारण है, उसका कर्त्ता और कारण किसी प्रकार नहीं हो सकता।

(६) द्रव्य ६ हैं। अर्थात् जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल और आकाश।

(६) द्रव्य चार हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय द्रव्य नहीं है, वरन् गुण हैं। यह दोनों गुण जीव में सम्मिलित हैं।

(७) जो अच्छा या बुरा जीवन मिलता है, वह सब कर्मों के क्रम पूर्वक बंधने से मिलता है। कर्म स्वयं अच्छा या बुरा फल दिया करते हैं। इसमे ईश्वर की आज्ञा की कोई आवश्यकता नहीं है। ईश्वर ऐसे धन्धों में नहीं पड़ा करता। यदि ऐसे धन्धों में पड़ने लगे तो आनन्दमय नहीं रहता।

(७) कर्म जड़ पदार्थ हैं। वह किसी को स्वयं सुख–दुःख नहीं दे सकते और न ही कर्म में ऐसा करने का ज्ञान होता है। उन कर्मों को जाँच कर उनके आधार पर चेतन ईश्वर जो असीम शक्ति सम्पन्न और ज्ञानवान है, वही जीवात्मा को सुख–दुःख भोगने के लिये जीवन या मोक्ष दिया करता है। इसको सरलता से

यों समझिये कि जैसे बिना राजा के कोई डाकू, लुटेरा, बदमाश या पापी स्वयं कारागार में जाकर दण्ड नहीं भुगतने लगता और न ही फाँसी के तख्ते पर स्वयं खड़ा होकर और फंदा लगा कर फाँसी पा लेता है, वरन् राजा के विधान के अनुसार पकड़ा जाकर दण्ड पाता है। इसी प्रकार कोई भी जीव अपने कर्मों का फल स्वय नहीं भोगना चाहा करता। दंड देने के लिये किसी ऐसी शक्ति की आवश्यकता होती है, जो न्यायकारी और सुख-दुःख देने के योग्य हो। बस जो ऐसा करता है, वही ईश्वर है। ईश्वर को कर्म फल देने में कोई कष्ट उठाना नहीं पड़ता और न ही उसके आनन्दमय होने में कोई बाधा पड़ती है, क्योंकि दुःख एक देशी को होता है, सर्व देशी को नहीं होता।

(८) पुद्गल ही पाप और पुण्य तथा अच्छे और बुरे कर्म कराता है।

(८) पुद्गल (परमाणु) जड पदार्थ है। उसमें पाप-पुण्य, अच्छे और बुरे कार्य कराने की कोई शक्ति नहीं है। इसलिये वह बिना कर्त्ता के स्वयं कुछ नहीं कर सकता। न ही

उसमें किसी विधान और नियम के अनुसार विभिन्न पदार्थों के अंशों को मिलाकर मिश्रित पदार्थ बनाने की शक्ति और ज्ञान है। यह शक्ति और ज्ञान तो केवल ईश्वर में ही है।

(९) जीव अपने पुराने इकट्ठे किए हुए कर्मों से ही शरीर धारण कर लेता है। अतः ईश्वर का मानना व्यर्थ है।

(९) जो केवल कर्म ही शरीर धारण के निमित्त कारण हों और ईश्वर कारण न हो, तो जीव बुरी योनि में कभी न जाये, वरन् सदैव उत्तम योनियों को धारण किया करे। यदि कहो कि कर्म ही बाधक (प्रतिबन्धक) हैं तो भी जैसे चोर आपसे आप बन्दीगृह में नहीं आ जाता और स्वयं फाँसी नहीं पाता, किन्तु राजा देता है। इसी प्रकार जीव को शरीर धारण कराने और उसका कर्मानुसार फल देने वाला ईश्वर ही है।

(१०) मादक या उत्तेजक वस्तुओं की भाँति ही कर्म भी स्वयं अपना प्रभाव उत्पन्न करके फल देने लगते हैं।

(१०) जैसे मद्य-पान करने वालों को मद्य का नशा कम अनुभव होता है और अनभ्यासी को अधिक ठीक वैसे ही नित्य बहुत पाप-पुण्य करने वालों को न्यून और कभी-कभी थोड़ा थोड़ा

पाप-पुण्य करने वालों को अधिक फल मिलना चाहिये अर्थात् छोटे कर्म करने वालों को अधिक फल मिलना चाहिये। किन्तु यह अन्याय होगा।

(११) जिसका जैसा स्वभाव होता है, उसका वैसा ही फल हुआ करता है।

(११) जिसका जैसा स्वभाव होता है उसका यह स्वभाव परिवर्तित नहीं हो सकता। हाँ, जैसे शुद्ध वस्त्रों में अनेक कारणों से मैल लग जाता है और उन कारणों के उपायों से वह मैल छूट भी सकता है। ऐसा मानना ही उचित है।

(१२) संयोग के विना कर्म परिणाम को प्राप्त नहीं होता। जैसे दूध और खटाई के संयोग के विना दही नहीं बनती, इसी प्रकार जीव और कर्म के योग से कर्म का परिणाम होता है।

(१२) जैसे दही और खटाई का मिलाने वाला कोई तीसरा होता है वैसे ही जीवों को कर्मों के फल के साथ मिलाने वाली कोई तीसरी शक्ति होनी चाहिये। क्योंकि जड़ पदार्थ स्वयं नियमानुसार इकट्ठे नहीं हो सकते। जीव अल्पज्ञ होने से स्वयं अपने कर्म-फल को प्राप्त नहीं हो सकते। अत: ऐसा सिद्ध होता है कि विना ईश्वर-स्थापित सृष्टि कर्म के कर्म-फल-व्यवस्था नहीं हो सकती।

(१३) जो कर्म से मुक्त हो जाता है, वही ईश्वर कहलाता है।

(१३) कर्म अनादि काल से जीव के साथ लगे हैं। उनसे जीव कदाचित मुक्त नहीं हो सकता। अतः मुक्त जीव भी कर्म करता है।

(१४) मोक्ष पाकर जीव अनन्त शक्ति-सम्पन्न और असीम ज्ञान-मय हो जाता है। इसी लिये उसे ईश्वर कहते हैं। जैसे जला हुआ बीज या छिलका उतरा हुआ धान्य फिर नही उग सकता, इसी प्रकार मुक्त जीव फिर संसार में आने के लिये शरीर धारण नहीं किया करता और न ही वह जीवन-मरण के चक्कर में पड़ा करता है।

(१४) जीव में कर्म और कर्म करने का स्वभाव तथा गुण अनादि काल से होते हैं। यदि ऐसा न होता तो समस्त जीव पत्थर की भाँति जड़ पदार्थ हो जाते। फिर वह मुक्ति का सुख और आनन्द क्या भोग सकते? जबकि उसको भोगने का स्वभाव या गुण भी उनमें न होता। इसलिये मानना पड़ेगा कि मुक्ति पाने पर भी जीव कर्म करने से वंचित नहीं रहते।

यदि कहो कि जीव मुक्ति में क्रियाहीन होते हैं, तो वह ज्ञानहीन भी मानने पड़ेंगे। ऐसा मानने से जीव को जड़ मानना पड़ेगा और जड़ मानने से जीव मुक्ति का आनन्द प्राप्त नहीं कर सकता।

जीव अल्पशक्ति वाला है। वह सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता और न ही वह अनन्त शक्ति सम्पन्न तथा असीम ज्ञानमय

ही हो सकता है।

मुक्ति परिमित कर्मों का फल होता है। इसलिये परिमित कर्मों का फल भी परिमित ही होना चाहिए। यही न्याय भी है। परिमित कर्मों का फल अनिश्चित समय तक अपरिमित नहीं हो सकता। यदि ऐसा माना जाय तो यह न्याय न होगा। इसके अतिरिक्त किसी विशेष साधन से जो वस्तु प्राप्त होती है वह नित्य कदाचित नहीं हो सकती। इसी प्रकार मुक्ति भी नित्य नहीं हो सकती। इस लिये ऐसा मानना ही उचित है कि जीव ईश्वर के निश्चित किये हुए समय तक मुक्ति का आनन्द भोग कर ईश्वर के विधान के अनुसार संसार में जन्म लिया करता है। ईश्वर फिर उन जीवों को उन्नति करने का अवसर दिया करते हैं।

जीव अनादि काल से अल्पज्ञ है। वह चाहे जितनी अपनी शक्ति और ज्ञान क्यों न बढ़ा ले, किन्तु वह फिर भी अनन्त ज्ञानी और अनन्त बली कदाचित् नहीं हो

सकता। न ही उसमें सृष्टि कर्त्ता ईश्वर के तुल्य गुण आ सकते हैं और न ही वह ईश्वर कहला सकता है।

(१५) जैन शास्त्र ज्ञान से भरपूर हैं। वेदादि शास्त्रों में वह ज्ञान नहीं है, वरन् उनमें गपोड़ और वहुत सी वुरी वातें भरी हैं। वह स्वार्थी लोगों के वनाये हुए हैं।

(१५) यह वात जैन शास्त्र और वेद आदि शास्त्रों की तुलना करने से ही स्पष्ट हो सकती है। इस प्रकार कह देने से कोई प्रमाणिक निर्णय नहीं हो सकता। जैन शास्त्रों मे जहाँ अच्छी वातें हैं वहाँ कुछ ऐसी वातें भी पाई जाती हैं, जो वुद्धि प्रकृति के विरुद्ध हैं, किन्तु वेद में कोई ऐसी वात नहीं पाई जाती।

जैन शास्त्र

जहाँ तक देखा गया है, जैन शास्त्र अधिकतर तीसरी शताब्दी के आरम्भ में लिखे गये। जैन शास्त्रों के सिद्धान्तों में परिवर्तन बहुत कम हुआ है, जैन शास्त्र अधिकतर साधुओं और मुनियों के बनाए हुए हैं, जो भिन्न भिन्न काल में रचे गये। इन शास्त्रों में से कुछ में तो तीर्थङ्करों के अपने अपने समय में दिये हुए उपदेश लिखे हुए कहे जाते हैं। कुछ शास्त्रों में साधुओं और मुनियों ने जैन धर्म सम्बन्धी बातों को भिन्न भिन्न रूप मे दर्शाया है।

जैन शास्त्रों को चार भागों में बाँटा जा सकता है। उनको जैनियों के वेद कहा जाता है। वह चार भाग यह हैं।

(१) प्रथमानुयोग—इनमें २४ तीर्थङ्करों का इतिहास है।

(२) करूणानुयोग—इनमें गणित, ज्योतिष, लोक, अलोक, जीवों के भाव और कर्म बन्ध के भेद आदि बातों का वर्णन पाया जाता है।

(३) चरणानुयोग—इनमें गृहस्थियों तथा मुनियों के आचरण का वर्णन है।

(४) द्रव्यानुयोग—इनमें ६ द्रव्यों आदि का कथन है।

जैन शास्त्रों में जहाँ सदाचारी जीवन और अहिंसा व्रत का उच्च कोटि का वर्णन पाया जाता है, वहाँ कुछ शास्त्रों में जहाँ लोक-लोकान्तरों का वर्णन, चन्द्रमा सूर्य की संख्या या मनुष्य तथा पशु-पक्षियों की आयु का उल्लेख, या मनुष्य की ऊँचाई आदि का वर्णन या भूगोल-खगोल आदि के विचार प्रकट किये गये हैं, तो उनसे बुद्धि और प्रकृति के विरुद्ध बातें भी मिलती है। जैन शास्त्रों में से कुछ नाम ये हैं—

(१) आदि पुराण (२) २४ पुराण (३) नेम स्त्र (४) रत्न सार (५) विवेक सार (६) न्याय दीपिका इत्यादि इत्यादि।

जैन सभाएँ

श्वेताम्बर जैनियों ने अपने शास्त्रों पर विचार करने के लिये ३१३ ई० में अपने विद्वानों और आचार्यों की २ सभाएँ बुलाई थीं। इनमें एक मथुरा में और दूसरी वलभी में हुई थी। इन सभाओं में जैन शास्त्रों पर विचार किया गया और खोज तथा काँट-छाँट के साथ उनमें कुछ संशोधन भी किया गया। इसके पश्चात् फिर एक सभा ४५३ ई० में वलभी में हुई। इस सभा में पहली सभाओं के निर्णय को स्वीकार कर लिया गया। ४७० ई० में दिगम्बरों ने मथुरा में एक सभा बुलाई। उस में भी शास्त्रों पर विचार किया गया। कुछ सभाएँ ऐसी भी हुई हैं, जिनमें श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदाय के जैन सम्मिलित हुए। उनमें भी सभी शास्त्रों पर विचार हुआ किन्तु इनमें कोई पारस्परिक निर्णय न हो सका।

तीर्थंकर

जैनियों के इस समय तक जो २४ तीर्थंकर हो चुके हैं, उनके नाम कद और आयु नीचे लिखी गई है। यह सब तीर्थंकर क्षत्री वंश में थे। एक तीर्थंकर से दूसरे तीर्थंकर के निर्वाण पाने का मध्यकाल अरबों वर्ष बताया जाता है।

क्रम सं०	नाम तीर्थंकर	क़द	आयु
१	ऋषभदेव	५०० धनुष	८४ लाख पूर्व
२	अजीतनाथ	४५० ,,	७२ ,, ,,
३	सम्भवनाथ	४०० ,,	६० ,, ,,
४	अभयनन्दननाथ	३५० ,,	५० ,, ,,
५	सुमतिनाथ	३०० ,,	४० ,, ,,
६	पद्मप्रभ	२५० ,,	३० ,, ,,
७	पार्श्वनाथ	२०० ,,	२० ,, ,,
८	चन्द्रप्रभु	१५० ,,	१० ,, ,,
९	सौविनाथ	१०० ,,	२ ,, ,,
१०	शीतलनाथ	९० ,,	१ ,, ,,
११	श्रेयांसनाथ	८० ,,	८४ लाख वर्ष
१२	वासुपूज्य	७० ,,	७२ ,, ,,
१३	विमलनाथ	६० ,,	६० ,, ,,
१४	अनन्तनाथ	५० ,,	३० ,, ,,

क्रम सं०	नाम तीर्थंकर	क़द	आयु
१५	धर्मनाथ	४५ धनुष	१० लाख वर्ष
१६	शान्तिनाथ	४० ,,	१ ,, ,,
१७	कोन्थूनाथ	३५ ,,	९५ हजार वर्ष
१८	अरहनाथ या अमरनाथ	३० ,,	८४ ,, ,,
१९	मिल्लभीनाथ	२५ ,,	५५ ,, ,,
२०	मुनि सूर्तनाथ	२० ,,	३० ,, ,,
२१	नेमीनाथ	१५ ,,	१० ,, ,,
२२	नेमीनाथ (द्वितीय)	१० ,,	१ ,, ,,
२२	पार्श्वनाथ (द्वितीत)	९ हाथ	१०० वर्ष
२४	महावीर स्वामी	७ ,,	७२ ,,

नोट—(१) एक धनुष=४ हाथ या २ गज (२) पूर्व=८४ लाख ×८४ लाख ×८४ लाख; ८४ लाख वर्ष=१ पूर्व अंक; ८४ पूर्व अक=१ पूर्व

श्री महावीर

कहा जाता है कि पहले जन्म में श्री महावीर स्वामी भरत के पुत्र मारीच थे, जो श्री ऋषभदेव के साथ तप करते हुए भ्रष्ट हो गये थे। श्री महावीर के जन्म के सम्वत् के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है, किन्तु यह बात स्पष्ट है कि उनका जन्म चैत्र कृष्णा १३ को हुआ था। उनका जन्म सम्वत् इस समय २४७६ चल रहा है। उनके पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम त्रिशाला था। उनका जन्म लिच्छिवी क्षत्रिय वंश के राजा के यहां वैशाली (मुज्जफ्फरपुर जिले में) हुआ था। उनका जन्म का नाम वर्धमान था। जैन शास्त्रों में उनके जन्म के विषय मे बहुत कुछ बढ़ा-चढ़ा कर लिखा गया है। अतः लिखा है कि जिस समय उनका जन्म हुआ, इन्द्र आदि देवताओं ने इन्द्रलोक से आकर उन्हें १ करोड़ ६० लाख कलशों से स्नान कराया था और उनका नाम वर्धमान और वीर रक्खा था। उनका ऐसा भी कहना है कि श्री महावीर स्वामी पहले तीर्थङ्करों की भाँति पूर्ण तत्त्व-ज्ञानी और सब विद्याओं में निपुण उत्पन्न हुए थे। संसार में आकर उन्हें किसी बात के सीखने या समझने तथा किसी गुरु या आचार्य की आवश्यकता नहीं पड़ीं। उन्हें जन्म से ही धर्म-कर्म तथा संसार की सब बातें पूर्ण रूप से ज्ञात थीं। ऐसा भी कहा जाता है कि उनके दर्शन से ही सब भ्रम तुरन्त मिट जाया करते थे। इसी कारण उनका नाम सन्मति प्रसिद्ध हुआ।

श्री महावीर स्वामी के आरम्भिक जीवन के विषय में ऐतिहासिक तौर पर बहुत कम बातें मालूम होती हैं, किन्तु यह बात स्पष्ट है कि वह बचपन से ही गम्भीर विचारक थे और सांसारिक वस्तुओं से उन्हे अनुराग न था। इतिहास से तो यह बात सिद्ध होती है कि यशोदा नाम की राजकुमारी से उनका विवाह हुआ था, किन्तु जैन शास्त्रों मे ऐसा लिखा है कि जब श्री महावीर की आयु ३० वर्ष की हुई तो उनके विवाह कर देना चाहा। मगर उन्हे अपनी ७२ वर्ष की आयु का पहले से ही ज्ञान था, इसी कारण उन्होंने विवाह कराने से इन्कार कर दिया।

चाहे जो भी हो वह ३० वर्ष की आयु हो जाने पर घर-बार छोड़ कर जंगलों में तपस्या करने के लिए चले गये। १२ वर्ष तक

उन्होंने घोर तपस्या की। इस तपस्या मे उन्हे बहुत कुछ कष्ट दिये गये, किन्तु वह सबको सहन करते रहे। इसी कारण उनका नाम महावीर प्रसिद्ध हुआ। जैन शास्त्रो में ऐसा भी लिखा है कि जब श्री वर्धमान वैराग्य लेकर वन में जाने को तैयार हुए, तो उनके विचारों को देखकर इन्द्र आदि देवता वहां आ पहुँचे। उन्होंने वहां आकर उन्हें स्नान कराया। नये और अच्छे वस्त्र पहनाए और पालकी में बिठा कर स्वयं पालकी अपने कन्धों पर उठाली और वन में ले गए।

महावीर स्वामी ने घोर तपस्या करके काम, क्रोध, मद, लोभ आदि कामनाओं पर विजय प्राप्त कर ली। इसी लिए उन्हे जिन-Victor भी कहा जाता है। तपस्या से निवृत्त होकर वह केवल ज्ञानी बने और अरहन्त पद में आ गये।

भगवान् महावीर के समय में भारतवर्ष की दशा बहुत बिगड़ी हुई थी। जाति-पाँति के बखेड़े और छुआ-छूत के विचारों से एक दूसरे के साथ घृणा का बर्ताव किया जा रहा था। धर्म के ठेकेदारों ने जनता को अपने चंगुल मे फांस रक्खा था। कोई उनके सामने बोलने का साहस नहीं कर सकता था। अछूत और स्त्री जाति का अपमान होता था। देश में चारों ओर बुरे और गन्दे रीति-रिवाज प्रचलित थे। देवी-देवताओ के नाम पर केवल पशु पक्षियों का ही नहीं वरन् मनुष्यों का भी बलिदान किया जाता था। स्वार्थी लोग जैसे तैसे अपना स्वार्थ पूरा कर रहे थे। भगवान् महावीर ने यह सब अनर्थ अपनी आखों से देखे। इन बातों को देखकर उनका कोमल हृदय कांप उठा। वह इन बातों को सहन न कर सके। उनके मस्तिष्क में विचारों का तूफान उत्पन्न हो गया। इसी कारण वह सब राजपाट और सुख-चैन छोड़ कर जगलों मे गये। उन्होंने १२ वर्ष तक घोर तप किया और १३वें वर्ष जंगलों से वापस आकर उन सब बुरी और गन्दी बातों को दूर करने का प्रचार किया।

उन्होंने ३० वर्ष तक अपने प्रचार के कार्यों को चालू रक्खा, मगध अंग, मिथिला तथा कौशल आदि देशों का भ्रमण किया। वह सत्य, अहिंसा, पवित्र जीवन, सत्य विश्वास, सत्य ज्ञान तथा सत्य आचरण पर जोर देते थे। उनके धर्म का सार हम जैन धर्म में लिख

आए हैं। दिवाली के दिन राजगृह (बिहार) के निकट पावा नामक स्थान पर ७२ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया। उनके देहान्त की तिथि मे मतभेद है। कोई ५२७, कोई ४७८ और कोई ४६८ ईसा पूर्व में उनका देहान्त बतलाता है।

जैन लोग भी अपने तीर्थङ्करों के अन्दर बहुत से चमत्कार, सिद्धियां और करामात होनी मानते हैं। श्री महावीर स्वामी के विषय मे यों तो बहुत से चमत्कार लिखे हुए हैं, किन्तु उनमें से नमूने के तौर पर कुछ ये हैं—

(१) श्री महावीर स्वामी ने एक बार पैर के अँगूठे से पृथ्वी को दबाया तो जोर पड़ने पर शेषनाग कांप उठा था (कल्प भाष्य पृ० ४६)

(२) श्री महावीर स्वामी को एक बार सांप ने काट लिया था तो उनके शरीर से रक्त के बजाय दूध निकला था। वह सर्प आठवें स्वर्ग-लोक को चला गया था। (कल्प भाष्य पृ० ४७)

(३) एक बार श्री महावीर स्वामी के पैर पर खीर पकाई गई किन्तु उनके पैर पर कोई आंच न आई।

(४) एक अप्सरा ने एक थाली में सरसों का ढेर लगा कर उसको फूलों से ढांपा और उस पर सुई लगादीं। वह महावीर का नाम लेकर, उन सुइयों पर खूब नाची। किन्तु पांव में न तो सुई चुभी और न ही थाली से सरसों बिखरी (तत्वविवेक पृ० २२८)

बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म

बुद्ध के अर्थ बुद्धि से सिद्ध होने के हैं। अर्थात् जो बात सरलता से समझ में आ जाये, उसको मानना और जो समझ में न आये, उस-को न मानने वाला बौद्ध कहलाता है। बौद्ध धर्म का दूसरा नाम अनात्म धर्म है। (जीव की सत्ता न मानने वाले)

जैन धर्म और बौद्ध धर्म दोनों एक ही समय की उत्पत्ति हैं। किन्तु जैन का प्रसार इतनी तेजी से नहीं नहीं हुआ, जितनी तेजी से बौद्ध धर्म का हुआ। बौद्ध धर्म का प्रारम्भ कपिल वस्तु के राजकुमार सिद्धार्थ ने ६०० वर्ष ईसा पूर्व किया था। सिद्धार्थ ने ही अपना नाम गौतम बुद्ध अथवा शाक्य मुनि रख लिया करता था। इसी कारण यह धर्म उन्हीं के नाम पर प्रसिद्ध हो गया था यह धर्म लगभग २५०० वर्ष पुराना है।

वास्तव में यदि ध्यान पूर्वक देखा जाये तो बुद्ध महाराज ने अपना कोई नवीन धर्म उत्पन्न करके नहीं चलाया था और न ही उन्होंने उसके नवीन होने का अधिकार जताया। जिस समय जैन और बौद्ध धर्मों का जन्म हुआ, जैसा कि हम जैन धर्म में भी लिख आए हैं, ब्राह्मण लोग धर्म के ठेकेदार बने हुए थे। उनका एक अलग धर्म ही ब्राह्मण धर्म के नाम से ही चल पड़ा था। ब्राह्मण कहते थे कि जो लोग यज्ञ नहीं करेंगे- वह मोक्ष नहीं पा सकेंगे। उन दिनों वैदिक धर्म के सिद्धात लोप हो चुके थे, वाम मार्ग, उसके रीति-रिवाजों तथा तन्त्र विद्या का घर घर में खूब जोर चल रहा था। इस देश में चारों ओर अज्ञान के बादल छाए हुए थे। सैंकड़ों जातियाँ उत्पन्न होकर आपस मे ऊंच-नीच और छुटाई बड़ाई के विचारों में लिप्त हो रही थीं। धर्म के नाम पर पशुओं की बलियाँ दी जाया करती थी। उन पशुओं के साथ साथ गाय और उनके बछड़े भी देवी-देवताओं के नाम पर काटे जाया करते थे। देश में चारों ओर ब्राह्मणों का अहंकार और अभिमान बढ़ रहा था ये अपने को सब दूसरी जातियों को अपेक्षा अधिक पवित्र और

शुद्ध मानते थे। स्त्री और शूद्र का अपमान होता था तथा धर्म और कर्म की दशा बिगड़ी हुई थी। ब्राह्मणों की आज्ञा के बिना कोई कान तक हिलाने का साहस न कर सकता था। राजाओं पर उनका पूरा प्रभाव था। ऐसी दशा को देख कर उस समय कुछ नये नये सन्यासी और उपदेशक उत्पन्न हो गये थे, जो ब्राह्मण धर्म के दोषों को खोल कर जनता के सन्मुख रख रहे थे। उन ब्राह्मणों और सन्यासियों ने धर्म के विषय पर कुछ नये ढंग से विचार करना आरम्भ किया। आत्मा और परमात्मा तथा प्रकृति और पुरुष पर वह लोग नवीन दृष्टि कोण से विचार करने लगे। उन्हीं सन्यासियों और उपदेशकों से प्रभावित होकर जैन और बौद्ध धर्मों का प्रचलन हुआ था। जैन धर्म का प्रचार जैसा कि हम पीछे लिख आए है, भगवान महावीर ने और बौद्ध धर्म का प्रचार गौतम बुद्ध ने अपने अपने अलग अलग विचारों के साथ प्रारम्भ किया था।

गौतम बुद्ध ने उस समय के उन बुरे रीति-रिवाजों और खराब बातों की तरफ ध्यान दिया। हिंसक बलियों को देखकर उनका हृदय कांप उठा। अतः उन्होंने उन सब बुरी बातों को मिटाने का निश्चय किया। एक दिन वह चुपके से घर से निकल खड़े हुए और जंगलों में चले गये। वहां उन्होंने कुछ सन्यासियों से मिल कर विद्या पढ़ी और समाधि लगाने की विधि सीखी। एक बार समाधि की दशा में उन्हें कुछ अच्छी बातों का प्रकाश हुआ। वह उन विचारों को लेकर और अपना नाम बुद्ध रख कर आबादी में वापिस आए और अपने विचारों का प्रचार करना आरम्भ कर दिया।

जिस ईश्वर को प्रसन्न करके जीवात्मा को मोक्ष में सुख और आनन्द पहुँचाने के लिये देश भर में बुरे रीति-रिवाज प्रचलित हो रहे थे, बुद्धदेव ने उन दोनों, अर्थात् ईश्वर और जीवात्मा की सत्ता के प्रति असहमति प्रकट की। ब्राह्मणों की संस्कृत भाषा की ठेकेदारी तोड़ कर पाली और प्राकृत भाषा पर जोर दिया। जाति-पाँति के झंझटों को तोड़ कर छूवा-छूत और ऊंच-नीच को मिटा कर अछूतों तथा शूद्रों को प्रेम से गले लगाने की शिक्षा दी। इसका परिणाम यह हुआ कि शूद्र लोग अधिक संख्या में बौद्ध मत ग्रहण करते चले गये। बुद्धदेव ने

ईश्वर, जीव और दूसरे गहरे और गूढ प्रश्नों की मीमांसा पर ध्यान न देकर तथा कर्मकाण्ड इत्यादि को छोड कर केवल पवित्र जीवन व्यतीत करने का ही उपदेश दिया। उन्होंने ब्राह्मणों की मनमानी और स्वार्थमय बातों तथा अन्ध-नियमों का खंडन किया। बुद्ध देव की सरल, सुगम और उच्च शिक्षा लोगों की समझ में आती चली गई और लोग पर्याप्त सख्या में उनके अनुयाई बनते चले गये। बुद्ध देव ने उपनिषदों से प्रभावित होकर अपना मत प्रचलित किया था। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो बौद्ध धर्म कुछ सिद्धान्तों को छोड़ कर वैदिक धर्म की अमर फुलवारी का ही एक फूल है। इसी कारण बौद्ध धर्म को बहुत से विद्वानों ने वैदिक धर्म या हिन्दू मत की बेटी कहा है। बौद्ध शास्त्रों के अधिकतर आधार स्तम्भ वैदिक धर्म ग्रन्थ ही प्रतीत होते हैं। बुद्ध देव ने अपना प्रचार अधिकतर इन दो बातों पर स्थिर किया था— प्रथम यह कि कर्मों के कारण से ही इस नाम और रूप रखने वाले शरीर को (आत्मा को नहीं) संसार में बार बार जन्म लेना पड़ता है, दूसरे यह कि कर्मों का चक्र समाप्त करके ही वास्तविक शान्ति प्राप्त हो सकती है। बुद्ध देव ने आयु भर स्वयं धर्म प्रचार का काम किया, बहुत से भिक्षु बनाए और उनको भारतवर्ष के अतिरिक्त दूसरे देशों में भी धर्म-प्रचार के लिये भेजा गया। थोडे ही समय में इस धर्म की काफी उन्नति हुई। किन्तु यह याद रहे कि इस धर्म के प्रसार में कभी कोई लडाई झगडा या रक्तपात नहीं हुआ। वरन् उन्होंने धर्म प्रचार में ऐसा करना बहुत बुरा बतलाया। भगवान् बुद्ध ने भिक्षुओं को यह कह कर इधर उधर भेजा था, "हे भिक्षुओ 'आज समस्त संसार अन्धेरे में फसा हुआ है। आत्मा शरीर रूपी पिंजरे में प्रकाश के लिये तड़फ रही है। इसलिये तुम लोग जाओ और दुनिया में चारों ओर सच्चाई तथा पवित्रता का प्रचार करके लोगों को अन्धेरे से निकालो"।

बुद्ध देव के सामने ही बुद्ध धर्म की पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी। किन्तु उनके पश्चात् और भी दिन प्रतिदिन उन्नति होती चली गई। कश्मीर, अफगानिस्तान और पंजाब बौद्ध धर्म के केन्द्र बन गए। यह दशा ५०० ई० तक बराबर चलती रही। गंगा के मैदान का उत्तरी भाग ब्राह्मणों का महत्त्वपूर्ण केन्द्र था, किन्तु यहां पर भी बौद्ध और

ब्राह्मण धर्म बराबर चलते रहे और यही दशा बंगाल तथा बिहार की भी हुई। दक्षिण में जैन धर्म की अपेक्षा बौद्ध धर्म सफल न हो सका।

आगे चल कर सन् १ ई० में बौद्ध धर्म दो बड़ी धाराओं में विभाजित हो गया था। उनमें से एक धारा का नाम महायान और दूसरी का नाम हीनयान था। फिर आगे चल कर इन दोनों सम्प्रदाओं के भी कई उपसम्प्रदाय अर्थात् वज्रयान, सहजयान और प्रमुख आदि बन गए थे। बौद्धों ने हिन्दुओं के वेदादि शास्त्रों को बहुत बुरा भला कहना आरम्भ कर दिया था। यह बात ब्राह्मणों को बहुत बुरी लगी। इस कारण वह सदैव बौद्ध धर्म का विरोध करते रहे।

बौद्ध धर्म को भारतवर्ष और पूर्वी देशों में इस्लाम् से समय समय पर हानि पहुचती रही। गुप्त वंश के राजाओं ने भी उसे विशेष रूप से हानि पहुँचाई। सबसे बड़ा धक्का कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य ने सन् ८०० ई० में लगाया। इसके पश्चात बौद्ध धर्म वाले शैव मत से प्रभावित होकर जादू, मंत्र-तंत्र इत्यादि बातों पर विश्वास इसलिए करने लगे थे ताकि लोग उनके चमत्कारों को देख कर बौद्ध धर्म से प्रभावित रहे। बौद्ध लोग भी शाकिनी, डाकिनी तथा दूसरे देवी-देवताओं को योग और समाधि आदि विधियों से सिद्ध करने में लग गये। बुद्ध महाराज ने ऐसी सब बातों को मिथ्या बताया था। बुद्ध देव के निर्वाण के पश्चात् ब्राह्मण धर्म की बहुत सी बाते बौद्धों मे आ गई थीं। फिर वह बाते अधिक संख्या में बढती ही चली गईं। इस प्रकार भी बौद्ध लोग हिन्दुओं को अपनी ओर खींचते रहे। किन्तु याद रहे कि यह सब बातें बौद्धों के महायान पंथ मे भी आई गई थीं, हनियान पंथ वाले इन सब बातों से अलग रहे थे। बुद्ध मत में एक सिद्ध उपसम्प्रदाय या मन्त्रयान प्रचलित हो गयी था, जो यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र के द्वारा सिद्धि इत्यादि किया करता था और इसी कारण वह सिद्ध कहलाता थे। इन सिद्धों का महान केन्द्र दक्षिणी में श्री पर्वत था। इन सिद्धों का सातवीं शताब्दि तक खूब जोर रहा। भैरवी चक्र जो वाम-मार्गियों का सिद्धान्त था, उनका भी वही सिद्धांत बन गया था। फिर सिद्धों या यन्त्रयान वालों में कुछ परिवर्तन हुआ तो यह ८०० ई० मे वज्रयान सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हो गया। इस सम्प्रदाय ने तन्त्र विद्या को अधिक प्रधानता दी। यन्त्रयान सम्प्रदाय में

जब मद्य और मैथुन का समावेश हो गया तो वह वज्रयान सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुआ। इस प्रकार महायान पंथ सदाचार से हाथ धो बैठा। यह वज्रयान ८०० ई० से ११७५ ई० तक चलता रहा, किन्तु फिर इसका भी पतन हो गया। यन्त्रयान और मन्त्रयान में ८४ प्रसिद्ध सिद्ध हुए हैं। इन सिद्धों का समय ७६७ ई० से लेकर १२५७ ई० तक माना जाता है। किन्तु इसके पश्चात् भी कुछ समय तक इनकी परम्परा चलती रही, जो नाथ पंथ के नाम से पुकारी जाती रही। यह सब सिद्ध ईश्वर वादी हो गये थे। इन नाथों में मत्स्येन्द्र नाथ और गोरख नाथ अति प्रसिद्ध हुए। कुछ साधू अब भी इस पथ के पाए जाते हैं। इन सिद्धों ने मद्य और मैथुन का त्याग कर दिया था। सदाचार की ओर उनका अधिक ध्यान था। उन्होंने प्राकृतिक नियमों के अनुसार जीवन बिताना उत्तम बतलाया और इच्छाओं को अनुचित रूप से मारना बुरा कहा। उन सिद्धों ने बहुत से ग्रन्थ लिखे थे। बौद्ध धर्म के मानने वाले बड़े बड़े शक्तिशाली राजा, महाराजा हुए। उनमें से अशोक, कनिष्क, हर्ष आदि इतिहास में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। उन राजाओं ने इस धर्म के प्रसार में चार चाँद लगाए। भारतवर्ष के अतिरिक्त इस धर्म का प्रसार लका, श्याम, बरमा, इन्डोचाइना, जापान, पूर्वी द्वीप समूह, चीन, तिब्बत, भूटान, नैपाल, तुर्किस्तान, रोम, अफगानिस्तान, यूनान और मिश्र आदि देशों में कराया गया। इस देश में धर्म इसका जोर १००० वर्ष तक रहा, तत्पश्चात् इसका, १२०० ई० तक पूर्ण रूप से पतन हो गया। तुर्किस्तान, अफगातिस्तान, यूनान रोम, श्याम और मिश्र से इस धर्म को इस्लाम ने मिटा दिया। चीन, जापान, भूटान, नैपाल, तिब्बत, बरमा और दूसरे पूर्वी देशों तथा कश्मीर आदि में इस समय भी इस धर्म के अनुयाई मौजूद हैं। बौद्धों की संख्या इस समय ससार के दूसरे मतानुयाईयों में तीसरे नम्बर पर मानी जाती है।

बौद्ध धर्म का प्रसार

बौद्ध धर्म से पहले इस देश में जो दशा चल रही थी, उस का वर्णन तो हम जैन धर्म इत्यादि में पीछे कर आये हैं। अत बुद्ध देव ने उस बुरी दशा का अनुभव किया और यह कहा कि धर्म वह होना चाहिये जो समस्त संसार के लिए एक हो और जिसका मनुष्य मात्र सुगमता से पालन कर सके। बुद्ध देव ने अपने विचारो के प्रसार के लिए भिक्षु और भिक्षुणियाँ तय्यार कीं। उन्हे यह आदेश दिया कि वे देश की चारों दिशाओं में जाकर सबको प्रेम पूर्वक बौद्ध-धर्म की शिक्षा देने के साथ साथ यह भी आदेश दें कि सब मनुष्य सुख और शान्ति का जीवन बिताये और मनुष्य मात्र के साथ मित्रता का व्यवहार करें।

सबसे पहले बुद्ध देव ने अपने ६० शिष्य बनाएं और उन्हें भिक्षु (मिश्नरी—Missonaries) बनाकर धर्म-प्रचार के लिए इधर उधर भेजा। इसके पश्चात् वे और भी भिक्षु बनाते रहे जो धर्म-प्रचार के लिए इधर उधर जाते रहे। बुद्ध देव ने अपने धर्म के प्रचार के लिए संघ स्थापित किये, जिनमें भिक्षु या धर्म-प्रचारक रहने लगे। भिक्षुओं का प्रधान कार्य धर्म का प्रचार करना निश्चित किया गया। संस्कृत भाषा के स्थान पर पाली भाषा या साधारण बोल-चाल की भाषा मे धर्म प्रचार होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्म के सिद्धांत जन-साधारण की समझ में आसानी से आते रहे और वह बौद्ध धर्म ग्रहण करते चले गये। बुद्ध देव ने धार्मिक कट्टरता को समाप्त करके जाति-पाती के भेद को मिटा दिया। ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक सब दीक्षा से लेकर समान पद प्राप्त करने लगे। ब्राह्मण लोग शूद्रों को अपने यज्ञ और कर्म-कण्ड आदि कार्यों मे सम्मिलित नहीं होने देते थे। बुद्ध देव ने सबको धार्मिक कार्योंमें सम्मिलित होने की आज्ञा दे दी। यही कारण था कि बहुत से शूद्र बौद्ध-धर्म ग्रहण करते चले गये। पशुओं और मनुष्यों की बलि से जनता में असतोष बढ़ रहा था। बुद्ध देव ने सब प्रकार की बलियों का विरोध किया, इसीलिए भी बौद्ध मत का अधिक प्रसार होता चला गया।

बौद्ध-धर्म के कई शक्तिशाली राजा-महाराजा हुए। उनमें से अशोक, २७३-२३२ ईसा पूर्व कनिष्क ७८-१०१ ई० और हर्षवर्धन

६०७-७४८ ई० के नाम अति प्रसिद्ध हैं। उन राजाओं ने इस धर्म के प्रसार में बहुत अधिक योग दिया। महाराज अशोक और हर्षवर्धन ने इस धर्म को राज-धर्म बना कर प्रचार का विभाग ही अलग बना दिया था। उस विभाग ने इस धर्म के प्रसार में एक महत्वपूर्ण भाग लिया। महाराज अशोक ने धार्मिक न्यायालय भी अलग बना दिये थे और पुलिस का धार्मिक विभाग Inquisition department अलग स्थापित कर दिया था। इस विभाग का कार्य दूसरे धर्म वालों की देख-भाल इत्यादि करना था। इस विभाग ने जनता के हृदयों में एक प्रकार का भय उत्पन्न कर दिया था। इस कारण बौद्ध धर्म के प्रसार में वृद्धि होती चली गई। महाराज हर्षवर्धन ने हिंसा करने वालों के लिए कठोर दण्ड निश्चित कर दिये थे।

विदेशों में बौद्ध धर्म का प्रचार—

(१) महाराज अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार और प्रसार में महत्वपूर्ण काम किया। उनके समय मे सीरिया, मिश्र, मैसिडोनिया, साईरिन-Cyrene और इपरीस-Epirus में बौद्ध धर्म का प्रचार हो कर वहाँ के लोगों को भिक्षुओं द्वारा बौद्ध बनाया गया। कुछ भिक्षु कश्मीर, कन्धार और यूनान आदि देशों में भेज कर वहाँ के लोगों को बौद्ध धर्म की शिक्षा दी गई।

(२) अशोक के बेटे महेन्द्र और बेटी संघमित्रा ने २४२ ई० पू० लंका के लोगों को बौद्ध बनाया ।

(३) चीन वालों को २१७ ई० पू० और बर्मा वालों २०८ ई० पू० बौद्ध बनाया गया। चीन में जो इस बौद्ध धर्म चल रहा है, वह कन्फ्यूशियनिज्म-Confucianism और टाउइज्म-Taoism मतों के मिले जुले रूप में चल रहा है।

(४) कोरिया वाले ३७२ ई० में बौद्ध बने।

(५) जापानी ५५० ई० में बौद्ध बनाये गये।

(६) जावा वाले ६०० ई० में बौद्ध बने।

(७) श्याम वालों ने ६३८ ई० में, वाली और सुमात्रा आदि द्वीप वासियों ने भी उसी समय मे बौद्ध धर्म ग्रहण किया था। इसी समय में अफगानिस्तान, बुखारा, तुर्किस्तान, तिब्बत अर्थात् समस्त मध्य एशिया, कैस्पियन से लेकर चीन तक और साइबेरिया से लेकर हिमालय तक बौद्ध बन गये थे। सारे भारतवर्ष और दूसरे अनेक देशों में भिक्षु-भवन Monastries स्थापित हो रहे थे, जो बराबर धर्म प्रचार का कार्य कर रहे थे।

बौद्ध-धर्म का पतन

राजा हर्षवर्धन के पश्चात् इस धर्म का पतन होना आरम्भ हो गया था। हिन्दू-धर्म ने फिर उभारा ले लिया था। राजपूत राजाओं ने ब्राह्मणों के भड़काने से इस धर्म को हानि पहुँचानी आरम्भ करदी थी। बौद्ध लोग हिन्दुओं के वेदादि शास्त्रों और देवी-देवताओं का अपमान करते थे। इसी कारण ब्राह्मण लोग बौद्धों के प्रति विरोध प्रकट करने लगे थे। ८०० ई० में कुमारिलभट्ट और श्री शंकराचार्य ने इस धर्म का भारी विरोध किया तथा ईश्वर और जीव की भूली हुई सत्ता को सिद्ध करके वेदों की प्रधानता प्रतिष्ठित की। समुद्रगुप्त और विक्रमादित्य आदि राजाओं ने भी इस धर्म का खण्डन जोर के साथ कराया। इसके अतिरिक्त बौद्ध संघ में बहुत से दोष आ गये थे, भिक्षुओं ने धर्म-प्रचार कार्य छोड़ दिया था और वह भोगी तथा विलासी होते चले गये थे। उन्होंने बुद्ध महाराज को 'स्वयम्' अनादि और अनन्त-पुरुषोत्तम' मानकर उनकी भक्ति करने में ही मुक्ति का सार समझ लिया था। बौद्धों में धार्मिक सिद्धान्तों पर मतभेद होकर बहुधा लड़ाई झगड़े रहने लगे थे तथा वे कई एक सम्प्रदायों में विभाजित हो गये थे। उधर हिन्दुओं ने बुद्ध देव को अवतार मान लिया था, इस कारण भी बहुत से बौद्ध हिन्दू धर्म में चले आये। उधर मुसलमानी तलवार ने इस धर्म का इस देश और विदेशों में दिल खोलकर पतन किया। इस प्रकार गिरते २ यह धर्म सन् १२०० ई० तक इस देश से समाप्त हो गया।

बौद्ध धर्म के चार मूल सिद्धान्त

बुद्ध देव ने प्राचीन शास्त्रों के आधार पर अपने नवीन ढंग से यह चार मूल सिद्धान्त स्थापित किये—

(१) दुःख (Suffering) (२) दुःख का कारण (Cause) (३) दुःख दूर करने की आवश्यकता (४) दुःख दूर करने का मार्ग बौद्ध धर्म में इन्हें क्रमश: दुःख–Suffering, समूदाय–Cause, विरोध–Supression और मार्ग–Way कहते हैं। इन्हीं का दूसरा नाम आर्य-सत्या है।

मध्य मार्ग

बुद्ध देव ने आवागमन के चक्र से मुक्त होने के लिए मध्यमार्ग ग्रहण करने का उपदेश दिया और कहा कि आवागमन का प्रधान कारण संसारिक वस्तुओं में अति अनुराग ही है। यदि अनुराग न रहे तो मुक्ति प्राप्त हो सकती है। बुद्ध देव ने मध्यमार्ग का सिद्धात अपना कर यह उपदेश दिया कि मनुष्य को न तो शरीर को अधिक कष्ट देना चाहिए और न ही भोग-विलास मे लीन होना चाहिए। इस मध्यमार्ग का नाम अष्टांगक मार्ग है। इसके ८ सिद्धांत हैं—

(१) सम्यक् दृष्टि (२) सम्यक् सकल्प (३) सम्यक् वाक्य (४)-सम्यक् कर्म (५) सम्यक् आजीव (६) सम्यक् व्यायाम (७) सम्यक्-स्मृति और (८) सम्यक् समाधि। यह आठों मार्ग निर्वाण प्राप्ति के साधन बताये हैं।

जैन धर्म के सिद्धान्त

(१) परमात्मा और जीवात्मा की कोई सत्ता नहीं है।

(२) ईश्वरीय ज्ञान (आत्मि ज्ञान) कोई वस्तु नहीं है। मनुष्य अपने परिश्रम से अपना जितना चाहे सुधार करके उन्नति कर सकता है।

(३) संसार छोड़कर, जंगलों मे एकांत स्थान पर ध्यान लगाने और

और भले तथा परोपकार के कार्य करने से मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त मोक्ष-प्राप्ति की और कोई विधि नहीं है।

(४) इस नाम और रूप वाले शरीर को (आत्म को नहीं)। अपने कर्मानुसार बार बार जन्म लेना पड़ता है। बार बार जन्म लेना ही सबसे बड़ा दुःख है।

(५) तृष्णा-Desire और कामना-Attachment ही संसार मे सब दुखों की जड है।

(६) नाम या रूप वाले शरीर के नष्ट हो जाने पर कामना का जो अंश (बीज) शेष रह जाता है, उसी के कारण बार बार आवागमन के चक्र में स्वयं फसना पड़ता है।

(७) तृष्णा से छुटकारा पाने की केवल यही एक विधि है कि इन्द्रियों पर विजय पाकर, ध्यान लगाकर और वैराग्य की सहायता से उसको समाप्त करके तथा भिक्षु बनकर परोपकार के कार्य करने चाहियें।

(८) यह संसार नाशकारी और दुःख का भण्डार है।

(९) सिर मुड़ाने, जटा बढ़ाने, पशुओं की भेंट चढ़ाने, अग्नि तपाने, नंगा फिरने, वेदादि पढ़ने या देवी-देवताओं की पूजा-उपासना करने से निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता। निर्वाण-प्राप्ति में यह सब बातें बाधक हैं।

(१०) प्रत्येक प्राणी पर दया करना ही सबसे बड़ा धर्म है।

(११) स्वर्ग-नर्क, इन्द्र-यम और ब्रह्मा आदि की कोई सत्ता नहीं है।

(१२) ५ तत्व-Elements का जानना अत्यावश्यक है।

(१३) बुद्ध देव उपास्य हैं, जो लोकनाथ और जीवन-मुक्त हैं।

(१४) द्वादशायतन पूजा करना आवश्यक है। यह पूजा ही मोक्ष प्राप्त कराने वाली है। इसकी पूजा १२ स्थान बनाकर करनी चाहिये।

अन्य किसी की पूजा से कोई लाभ नहीं। वह १२ स्थान यह हैं- ५ ज्ञानेन्द्रियाँ (नाक, कान, खाल, आंख और जबान,)। ५ कर्मेन्द्रियां (जबान, हाथ, पाँच, पेशाब और टट्टी करने की इन्द्रियाँ), ११वां मन और १२वीं बुद्धि।

सदाचारी जीवन—Moral life यह बात हम पहले भी लिख आये हैं कि बुद्ध देव ने अपना कोई नया मत प्रचलित नहीं किया था। उन्होंने अपने मत के नवीन होने की कभी पुष्टि भी नहीं की। उन्होंने अपने नवीन ढंग मे जनसाधारण की भाषा में अपने विचारों का प्रचार किया। उन्होंने जीवन को उच्च बनाने के लिए साधारण बातों पर ध्यान दिया। आत्म-ज्ञान आदि गहरी और जटिल-Metaphysics बातों को उन्होंने नहीं छेड़ा। उनके प्रचार का आधार अधिकतर प्राचीन ग्रन्थों पर ही निर्भर रहा। अतः उनकी सदाचारी जीवन के विषय में कुछ ये बातें हैं—

(१) घृणा घृणा करने से दूर नहीं होती वरन् प्रेम और प्यार से दूर होती है।

(२) तंग-विचार मत बनो और न ही किसी से घृणा करो।

(३) किसी कार्य को करने में जल्दी मत करो, वरन् भली प्रकार सोच-विचार कर प्रत्येक कार्य करना चाहिए।

(४) बुराई करने वाले के साथ भलाई करो।

(५) क्रोध पर प्रेम से विजय पाओ।

(६) कन्जूस के साथ उदारता से वर्ताव करो।

(७) असत्य पर सत्य से विजय प्राप्त करो।

(८) बुरे विचारों से दुःख होता है और अच्छे विचारों से सुख की प्राप्ति होती है।

(९) इच्छा से दुःख होता है और इसी से भय उत्पन्न होता है।

(१०) जो इच्छा रहित है, वह दुःख और भय से दूर है।

(११) जो इच्छाओं में फंसा हुआ है, उसका मुक्त होना या शांति प्राप्त करना कठिन है।

(१२) इच्छाओं को त्यागना ही आनन्द है।

(१३) सब बुरे कार्यों से बचो और सदा भले तथा परोपकार के कामों को करते रहो।

(१४) अज्ञानी के पीछे न चलना और ज्ञानी-की सेवा करना उच्च कार्य हैं।

(१५) दुखों का वास्तविक कारण अविद्या है।

(१६) मान्य मनुष्य का सम्मान करना परम धर्म है।

(१७) हृदय में साधु जैसे विचार धारण करना शुद्ध कार्य है।

(१८) आत्मा को वश में रखना और प्रेमपूर्वक वचन बोलना परम धर्म है।

(१९) माता-पिता की सेवा करना परम धर्म है।

(२०) स्त्री और सन्तान को सुखी रखना और घर में शान्ति बनाये रखना परम धर्म है।

(२१) पाप-कर्म से घृणा करना परम धर्म है।

(२२) मादक वस्तुओं का त्याग करना उत्तम गुण है।

(२३) श्रद्धा,विनय, सन्तोष और धार्मिक बातों को सुनकर मनन करने से शान्ति मिलती है।

(२४) कष्ट सहन करना, ग़रीबी में प्रसन्न रहना, साधु-सन्तों की संङ्गति और सेवा करना, धर्म-चर्चा करना तथा सुनना सच्चा सुख है।

(२५) जो मनुष्य मीठी बातें करता हो तथा बाहर से साधु बना हुआ हो, किन्तु साधु जैसे कर्म न करता हो उसका साथ छोड़ देना

चाहिए।

(२६) पाप को कभी छोटा न समझो। पाप अपना फल दिये विना कभी नहीं रह सकता।

(२७) धर्म के नियमों को कदाचित् नहीं छोड़ना चाहिए। जो धर्म का एक भी नियम तोड़ता है, वह सब प्रकार के पाप कर सकता है।

(२८) सच बोलना, दूसरों को क्षमा करना और सुपात्र को दान देना लाभदायक है।

(२९) दूसरों का धनादि छीनना, अहिंसा करना, झूठ बोलना और दूसरों की स्त्रियों पर पाप-दृष्टि रखना महापाप है।

(३०) आपत्ति में धैर्य रखना चाहिए।

(३१) असफलता में दुःखी होना बुरा है।

(३२) झूठे दृष्टांत देने, झूठी कहानी पढ़ने तथा दूसरों को सुनाने से चरित्र बिगड़ता है।

(३३) जो बात प्रमाण से सिद्ध हो उसको मानना बुद्धिमत्ता है।

निर्वाण प्राप्त करने के साधन

बुद्ध देव ने निर्वाण प्राप्त करने के लिए घर-बार छोड़कर और जंगलों में एकान्त स्थानों पर जाकर ध्यान लगाना बड़ा आवश्यक बतलाया है। इसके पश्चात भिक्षु बनना और भिक्षु के गुण स्थिर करके उन पर चलने से निर्वाण प्राप्त होता है। निर्वाण के बाद फिर जन्म नहीं होता। निर्वाण प्राप्त हो जाने पर क्या होता है। इसके विषय मे बुद्ध देव ने जहाँ तक देखा गया है कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला।

भिक्षु बनने का संस्कार-(Baptism)

बौद्धों के संघ का सभासद बनने के लिए प्रत्येक को प्रथम सिर और

डाढ़ी के बाल मूंडकर तथा स्नान कर गेरुए कपड़े पहनने पड़ते थे। इसके पश्चात् वह भिक्षुओं के पैरों को छूता था, फिर पृथ्वी पर बैठकर अपने मुख से तीन बार यह मन्त्र कहता था, "मैं बुद्ध की शरण मे जाता हू, मैं धर्म की शरण में जाता हूँ; मै संघ की शरण मे जाता हूँ।"

संघ मे उसे लगातार १० वर्ष तक उम्मेद्वारी करनी पड़ती थी इसके पश्चात् उसकी परीक्षा ली जाकर उसको यदि उचित समझा जाता था तो सभासद् बनाकर भिक्षु बना दिया जाता था; वरना निकाल दिया जाता था।

भिक्षु या यति के गुण

बुद्ध देव ने भिक्षुओं को यह आदेश दिया कि तुम मेरी सब आज्ञा मानना; किसी पशु का वध न करना; सोना-चाँदी या दूसरी कोई अमूल्य वस्तु अपने पास न रखना, झूठ कभी न बोलना; चोरी कभी न करना; मादक वस्तुओं का प्रयोग न करना; असमय कभीं न खाना; नाच-गाने से बचे रहना, ऊँचे आसन पर न बैठना; सदैव शान्त चित्त रहना, सदा निष्काम कर्म करना; अपनी प्रशंसा से प्रसन्न न होना; सम्मान और अपमान तथा हानि और लाभ को समान समझना; नंगा न फिरना; गृहस्थ का उपभोग न करना; सुगन्धित वस्तुओं का प्रयोग न करना; अकेले कभी न रहना; लम्बे गेरूवे कपड़े पहनना, कमण्डल हाथ में रखना, हिरण या चीते की खाल बैठने के लिए अपने पास रखना; त्यागी तथा विरागी स्वभाव रखना, उच्च चरित्र बनाना, समस्त बुरे और पाप कर्मों से बचना; धर्म का सदैव प्रचार करना"।

उपासक और शील

जो गृहस्थी अपने मुख से तीन बार यह कहदे "बुद्ध शरणं गच्छामी, सघं शरणं गच्छामी, धर्म शरणं गच्छामी" अर्थात् 'मैं बुद्ध की शरण में जाता हूँ, मैं संघ की शरण में जाता हूँ और मैं धर्म की शरण में जाता हूँ,' वह उपासक और शील बन जाता है।

बौद्ध संघ

बुद्ध देव ने बौद्धों के लिये स्थान स्थान पर संघों की स्थापना

की थी। उनमें भिक्षुओं की शिक्षा और रहन-सहन का अच्छा प्रबन्ध था। सघ का सभासद प्रत्येक मनुष्य बिना किसी जाति-पाति या ऊँच-नीच विचार के बन सकता था। किन्तु कोढ़ी, फोड़े-फुन्सी, तथा तपेदिक वाला और मिरगी का रोगी, सरकारी कर्मचारी, भागा हुआ कैदी, कर्जदार, अंगहीन, अपाहिज और १५ वर्ष से कम आयु वाला मनुष्य सघ में सम्मिलित नहीं हो सकता था।

आरम्भ में बुद्ध देव ने लोगों से कहा—"आओ भिक्षु बनो, अच्छी शिक्षा प्राप्त करो, दु.खों की जड़ मिटाओ और पवित्र जीवन बनाओ"। बुद्ध देव के इस बुलावे पर बहुत से लोग संघ में सम्मिलित होते चले गये। किन्तु जब संघ की संख्या में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती चली गई, तो फिर कुछ नियम भी कठोर बना दिये थे। सघ का सब कार्य बहुमत पर आधारित था।

एडोक यां डागोबा

बुद्ध देव के सामने ही बौद्धों मे उनकी भक्ति और श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। उनके निर्वाण के पश्चात् बौद्धों ने उनके दाँत और हड्डी इत्यादि को इधर उधर लेजाकर तथा धरती में दबाकर उनके ऊपर खम्बे मीनार, मन्दिर और मकान आदि उनकी स्मृति में बनवा दिये थे। ऐसी स्मृतियों का नाम ही एडोक या डागोबा है। डागोबा चीन, बर्मा और लका आदि देशों में अब तक भी पाए जाते हैं।

बौद्ध-तीर्थ

बुद्ध देव की वसीयत (Will) के अनुसार यह चार स्थान बौद्धों के तीर्थ माने जाते हैं—(१) बुद्ध देव का जन्म-स्थान-कपिल वस्तु (२) उनके ज्ञान प्राप्त करने का स्थान गया बोधी वृक्ष (३) प्रथम प्रचार करने का स्थान उजपाला (४) निर्वाण प्राप्त करने का स्थान कौशी नगर।

इन स्थानों पर बौद्ध मन्दिर बने हुए हैं, जिनमें बुद्ध देव की मूर्तिया रक्खी हुई हैं। बौद्ध लोग बड़ी श्रद्धा-भक्ति के साथ देश-विदेश से इन स्थानों पर दर्शन के लिये आते हैं। वह वहाँ अपनी मनो-

कामनाओं की पूर्ति के लिये प्रार्थनाएँ करते हैं। उन स्थानों के अतिरिक्त वे राम ग्राम, सरावस्ती, वैशाली और पुरी आदि स्थानों को भी पवित्र मान कर उनकी यात्राएँ करते हैं। वैशाख की पूर्णिमा को उन तीर्थों पर मेले लगते हैं और बुद्ध की मूर्तियाँ बड़े समारोह के साथ निकाली जाती हैं।

भक्ति

जहाँ तक देखने में आया है, कुछ धर्मों और मजहबों में कुछ ऐसे कट्टर और अन्धविश्वासी मनुष्य उत्पन्न हो जाते हैं जो अपने धर्म या मजहब के मूल सिद्धान्तों को भूल कर अपने अवतार या कर्त्तार, रसूल या पैग़म्बर की भक्ति और आस्था पर अपना तकिया लगा कर कुछ ऐसी बातें बना लेते हैं जिनसे उनका कभी कोई सम्बन्ध ही न रहा हो तथा जिनको उन्होंने अपने मुख से कभी कहा भी न हो।

बुद्ध की प्रारम्भिक शिक्षा में जहाँ तक खोज की गई है, भक्ति-मार्ग का कोई चिन्ह नहीं पाया जाता वरन् यह देखने में आता है कि बुद्ध देव के अन्तिम जीवन काल में भक्ति-मार्ग के कुछ चिन्ह पैदा हो चले थे। वही चिन्ह फिर बढ़ते बढ़ते बुद्ध देव के निर्वाण से लेकर महाराज अशोक तक एक सिद्धान्त का रूप धारण कर चुके थे। बुद्ध देव के निर्वाण के पश्चात् उनके भक्तों ने उन्हें स्वयं भू—Self born, अनादि और अनन्त पुरुषोत्तम का पद देकर यह विश्वास जमा लिया था कि बुद्ध देव का निर्वाण पा लेना तो उनकी एक लीला है। वास्तविक बुद्ध तो अमर हैं। उनका कभी नाश नहीं होता। बाद के बौद्ध-ग्रन्थों में इस श्रद्धा को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर लिख दिया गया था और यहाँ तक उल्लेख कर दिया गया था कि बुद्ध महाराज समस्त संसार के पिता हैं, और समस्त प्राणी उनकी सन्तान हैं। इसलिये वह सबके लिये समान हैं। वह न किसी से प्रेम करते हैं और न किसी से वैर-भाव रखते हैं। जब कभी धर्म की हानि होकर दशा बिगड़ जाती है तब वह बुद्ध का रूप धारण करके धर्म की उन्नति करने के लिये उत्पन्न हो जाते हैं।

जिस समय बौद्ध धर्म में भक्ति मार्ग की लहर आई और बुद्ध देव के विषय में ऐसी श्रद्धा अपनाई गई, उस समय इस देश में ब्राह्मण

धर्म प्रचलित था और अवतार-वाद के विचार चल रहे थे। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्धों ने अपनी ऐसी श्रद्धा का सिद्धान्त ब्राह्मण धर्म से ही लिया है। उधर ब्राह्मण धर्म वालों ने बुद्ध महाराज की शक्ति से प्रभावित होकर उन्हें विष्णु के नवें अवतार का पद दे दिया था। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाये तो बुद्ध देव ने अपने धर्म प्रचार की नींव इन्हीं दो बातों, अर्थात् आत्मा और परमात्मा की सत्ता से इन्कार करते हुए (निरात्म-वाद) वैराग्य और अभ्यास के द्वारा मन को वश में करके उच्च जीवन बनाने तथा परोपकार के कार्य करने पर ही रक्खी थी। भक्ति-मार्ग इत्यादि के विचार बौद्धों में बहुत बाद में आए हैं।

फिर ज्यों ज्यों समय बीतता गया, बौद्धों ने भी अपने भक्ति मार्ग की वृद्धि करके अंत में अपनी यह श्रद्धा बना ली थी कि बुद्ध देव की भक्ति करने. बौद्ध मन्दिर बनवाने, बौद्ध ग्रन्थों की पूजा करने, डागोबा पर श्रद्धा के साथ जाकर सिर झुकाने और फूल-पत्र इत्यादि चढ़ाने से प्रत्येक मनुष्य की कामनाएँ पूर्ण हो सकती हैं। समस्त कष्ट दूर होकर निर्वाण प्राप्त हो सकता है। उसके पश्चात् फिर कुछ और श्रद्धा बढ़ी। अंत में यह विचारधारा स्थिर करली गई कि यदि कोई मनुष्य आयु भर बुरे कार्य करे, परन्तु मरते समय वह यदि बुद्ध की शरण में चला जाये तो उसको भी निर्वाण मिल सकता है। बौद्धों के हृदयों में यह बात भी घर कर गई थी कि भिक्षु बनकर और घर-बार छोड़ कर जंगलों मे जाना आवश्यक नहीं है, वरन् ग्रहस्थ में रह कर बुद्ध देव की भक्ति करने से भी निर्वाण प्राप्त हो सकता है। साधारणतया आज कल इसी विचार के बौद्ध पाए जाते हैं।

वर्ण--व्यवस्था

बुद्ध देव वर्ण-व्यवस्था को नहीं मानते थे। वह छोटे-बड़े और अमीर-ग़रीब को समान समझते थे। उनका विचार था कि निर्वाण-प्राप्ति में जाति या वर्ण किसी प्रकार की बाधा नहीं डाल सकता। जिस प्रकार समुद्र में पहुँच कर सब नदियाँ एक रँग-रूप हो जाती हैं, इसी प्रकार बौद्ध धर्म ग्रहण करने से भी सब जाति और वर्ण एक रूप हो जाते हैं।

कर्म फल और आवागमन

बुद्ध भगवान कर्म फल पर विश्वास रखते थे। उनका ऐसा सिद्धान्त था कि मनुष्य को कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है। कर्मानुसार ही मनुष्य को सुख और दु:ख मिलता है। दु:ख अर्थात् सुख आवागमन के चक्र से बचने के लिये प्रत्येक मनुष्य को पवित्रता, दानशीलता तथा आत्म-संयम-(Self control) पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

ईश्वर, जीव और प्रकृति

बुद्ध देव ने ईश्वर जीव और प्रकृति की सत्ता के विषय में न तो कुछ गहरा विचार किया और न ही उनपर कोई विशेष प्रकाश डाला। कुछ ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि बुद्ध देव जीव की शरीर से अलग सत्ता मानने लगे थे।

कुछ विशेष परिभाषाएँ

पूजनीय—सुन्दर रूप, कीमती कपड़े या आभूषण इत्यादि पहनने से किसी का मान नहीं होना चाहिए, वरन् जिसका हृदय साफ, पवित्र और विशाल हो, वही पूजनीय है।

सच्चा ब्राह्मण—वह है, जिसके पास न धन हो, न दौलत, वरन् साफ, पवित्र, उच्च चरित्र, गऊ का हितैषी, ज्ञानी और उच्च विचारों में प्रति-क्षण मग्न रहने वाला ही सच्चा ब्राह्मण कहलाता है।

गऊ—यह पशु औषधियों का भण्डार है, इसकी रक्षा अवश्य होनी चाहिए। बुद्ध देव ने कहा कि पुराने समय में केवल यह तीन बातें—इच्छा, भूख और मृत्यु ही दु:ख का कारण थीं। किन्तु अब पशुओं के मारे जान से अनेक प्रकार के नए नए दु:ख पैदा हो गए हैं।

धर्मात्मा—जीवन में हर प्रकार के दु:खों को सहन करके जिस-

का हृदय न घबराये, जो सुख-दुःख को समान समझे और जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर लिया है, वही धर्मात्मा है।

साधु—वह है जिसका सिद्धांत पर्वत की भाँति अटल हो और जो अपने कर्त्तव्य से कभी न गिरे।

अहिंसा—किसी प्राणी को न मारना और न ही किसी प्रकार का दु:ख या कष्ट देना अहिंसा कहलाती है।

ब्रह्मचर्य—काम, क्रोधऔर लोभ आदि को त्यागने का नाम ब्रह्मचर्य है।

अपरिग्रह—संसार के सब विषयों को त्यागने का नाम अपरिग्रह है।

अदत्तवस्तु—जो वस्तु छल कपट से प्राप्त की जाये वह अस्तय कहलाती है।

सत्य—दूसरों को लाभ पहुँचाना और प्रेम से सत्य बोलना सूनृत कहलाता है।

अरहन्त—वह कहलाता है जो मरने के पश्चात् फिर पैदा ही न हो।

अनागामी—उसे कहते हैं जो मरते ही निर्वाण प्राप्त करले।

सुकदागामी—जो मरने के पश्चात् एक बार फिर जन्म लेकर निर्वाण प्राप्त करले, वह सुकदागामी कहलाता है।

शोतापति—जो सात बार जन्म धारण करके निर्वाण प्राप्त करता है, वह शोतापति कहलाता है।

बौद्धों के सम्प्रदाय

बौद्ध सिद्धान्तों में भक्ति-मार्ग के विचार सम्मिलित हो जाने से बौद्धो के दो बड़े बड़े सम्प्रदाय बन गए थे—एक महायान—Greater Vehicle और दूसरा हीनयान—Lessor Vehicle.

महायान सम्प्रदाय—जिन लोगों ने भक्ति मार्ग को अपना कर बुद्ध देव की शिक्षा का रहस्य इसी में समझा, वे महायान पुकारे जाने लगे। उनको महायान इस कारण कहने लगे कि उनकी संख्या हीनयान की अपेक्षा बहुत अधिक हो गई थी। बौद्ध धर्म वाले श्री शंकराचार्य के शैव मत से प्रभावित होकर जादू और मन्त्र-तन्त्र में विश्वास करने लगे थे, वे इन बातों को इसलिये कर रहे थे, ताकि लोग उनके चमत्कारों को देख कर बौद्ध धर्म से प्रभावित रहें। बौद्ध योग, समाधि तथा डाकिनी, शाकिनी इत्यादि देवी-देवताओं की सिद्धि भी करने लगे थे। यह सब बातें बौद्धधर्म में घर करती जा रही थीं। इस सम्प्रदाय में वास्तविक सिद्धान्तों पर ज़ोर न दिया जाकर लोक भावना के मेल की ओर इतना अधिक ध्यान दिया जाना आरम्भ हो गया था कि निर्वाण के लिये सन्यास लेना आवश्यक न समझा जाता था। इस सम्प्रदाय के बढ़ने का कारण यह हुआ कि भक्ति के सुगम और सरल नियम गृहस्थ में रह कर पालन करने से वह लोग निर्वाण प्राप्त कर लेने के लिये इन विचारों में श्रद्धा रखने लगे थे। बुद्ध की वास्तविक कठिन शिक्षा की ओर बौद्धों का ध्यान कम होता जा रहा था। इस सम्प्रदाय वालों के परिश्रम से इस मत का देश विदेश में पर्याप्त प्रसार हुआ। बुद्ध देव की स्मृति में मंदिर और डागोबा आदि बनाए गये। उन्होंने अपने कुछ शास्त्र भी अलग बना लिये थे। जिनको पुण्डरीक कहते है।

जो महायान मन्त्रों के द्वारा सिद्धि और मन्त्र-तन्त्र आदि की क्रियाएं किया करते थे, वह सिद्ध कहलाने लगे। इन सिद्धों का केन्द्र दक्षिण में श्री पर्वत था। उन्होंने अपने ग्रन्थ भी अलग बना लिये थे। उनके एक प्रसिद्ध ग्रन्थ का नाम 'मन्जु श्री मूल कल्प' है। इसमें यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र तथा सिद्धि आदि की बातें लिखी हैं। भैरवी चक्र भी इनका विशेष सिद्धान्त बन गया था। दक्षिण में सातवीं शताब्दी तक सिद्धों

अर्थात् मन्त्रयानोंका अधिक जोर रहा।

यन्त्रयान में कुछ परिवर्तन हुआ तो ८०० ई० में वज्रयान सम्प्रदाय बन गया और वह तन्त्र विद्या को प्रधानता देने लगा। उसमें मद्य और मैथुन के विचार आ गये। वज्रयान ८०० ई० से ११७५ ई० तक चलता रहा किन्तु इसका भी पतन हो गया। इन दोनों उपसम्प्रदायों अर्थात् मन्त्रयान और तन्त्रयान में ८४ प्रसिद्ध सिद्ध हुए हैं। यह सिद्ध ईश्वरवादी भी हो गए थे। सिद्धों का समय ७९७ ई० से लेकर १२५७ ई० तक माना जाता है। इसके पश्चात् कुछ समय तक इनकी परम्परा चलती रही जो नाथ पंथ के नाम से पुकारी जाती रही। इसमें मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ अति प्रसिद्ध हुए हैं। कुछ साधु अब भी इस पंथ के पाए जाते हैं। नाथ पथ वालों ने मद्य और मैथुन का त्याग कर दिया था और वे सदाचार की ओर अधिक ध्यान देने लगे थे। उन्होंने प्राकृतिक नियमों के अनुसार जीवन बिताना अच्छा बताया तथा इच्छाओं को अनुचित रूप से मारना बुरा बताया। इन्होंने भी अपने बहुत से ग्रन्थ लिखे।

हीनयान सम्प्रदाय—जो बौद्ध बुद्ध की वास्तविक शिक्षा पर जमे रहे, वह हीनयान कहलाने लगे।

कुछ समय तक यह दोनों सम्प्रदाय बराबर २ चलते रहे, किन्तु इनमें खींचा-तानी भी बराबर चलती रही। इसके पश्चात् इन दोनों सम्प्रदायों में भी आपस में कुछ और मतभेद उत्पन्न हुए, जिनके कारण इनमें से प्रत्येक सम्प्रदाय के दो-दो उपसम्प्रदाय बन गये। वह उप-सम्प्रदाय ये हैं—(१) माध्यमिक (२) योगाचार (३) सौत्रान्तिक (४) वैभाषिक।

(१) माध्यमिक—यह कहते हैं कि संसार और उसकी प्रत्येक वस्तु शून्य है। जगत् में कुछ भी नहीं है। यह जगत् इसलिए मिथ्या है कि जो वस्तु जागते हुए दिखाई पड़ती है, वह सोते हुए दिखाई नहीं पड़ती और जो सोते हुए दिखाई पड़ती है, वह जाग जाने पर नहीं दीखती।

बौद्धों के इस विचार की भाँति शंकर महाराज ने भी इस जगत् को मिथ्या ही बताया था।

(२) योगाचार—ये कहते हैं कि बाहरी समस्त वस्तुएं झूठी और नष्ट होने वाली हैं। ज्ञानरूपी आत्मा ही सब कुछ है। यह ज्ञान भी दो प्रकार का है—एक वह जो जागृत अवस्था में उत्पन्न होता है और दूसरा वह ज्ञान जो सोने की दशा मे उत्पन्न होता है।

(३) सोत्रान्सक—यह लोग कहते हैं कि बाहरी वस्तुएं सब सत्य हैं और वे अनुमान (कयास) से सिद्ध होती हैं।

(४) वैभाषिक—इनका कहना है कि बाहरी वस्तुए प्रत्यक्ष हैं, इसलिए वे सब स्वयं सिद्ध हैं।

बौद्ध शास्त्र

बुद्ध देव के आरम्भ के प्रचार के लेख नहीं मिलते। उनके जीवन में तो बौद्धों का कोई शास्त्र नहीं लिखा गया, क्योंकि वह अपने उपदेश जबानी ही देते रहे। उनके मरने के पश्चात् राजगढ़ में उनके प्रसिद्ध चेलों की एक सभा या संगति हुई थी। उसमें उनकी शिक्षा को एकत्रित करने का निश्चय किया गया था। इसके पश्चात् जो बौद्ध-शास्त्र लिखे गये, वह त्रिपिताका (Three baskets) के नाम से पुकारे जाते हैं। बौद्ध शास्त्र प्राकृत या पाली भाषा में लिखे गये थे। यह भाषा संस्कृत भाषा से ही निकली हुई एक भाषा है। बौद्ध शास्त्रों को ३ भागों में बाँटा जाता है। वह तीन भाग ये हैं—

(१) सूत्र या सुत (२) नियम (३) अभिधर्म या अभिधम्मा।

(१) सूत्र या सुत—बुद्ध देव ने जो शिक्षा जनता को दी थी, वह इन शास्त्रो में लिखी है।

(२) नियम—बुद्ध देव ने जो शिक्षा या आदेश भिक्षुओं को दिये थे और संघ के चलाने के लिए जो नियम बताये गये थे, वह इन शास्त्रों में लिखे हैं।

(३) अभि धर्म या अभिधम्मा—यह फिलॉसफी के शास्त्र हैं, कहा जाता है कि यह बहुत कम लोगों की समझ में आते हैं।

बौद्ध शास्त्रों में से कुछ शास्त्रों के नाम यह हैं—

शीलसुत, मुनिसुत, सम्मपद, महावाग, महावंश और विवेक अंश आदि।

कुछ बौद्ध शास्त्रों मे वेद, वेदांग; व्याकरण, दर्शन उपनिषद, ब्राह्मण ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति और दूसरे प्राचीन शास्त्रों के हवाले ज्यों के त्यों या कुछ अदल बदल के साथ पाये जाते है।

बौद्ध सभायें या संगीत

जब बौद्ध धर्म में दिन-प्रतिदिन बहुत से सिद्धान्तों पर मतभेद होता चला गया, तो इस मतभेद के कारण बौद्ध संघ को हानि पहुँचने लगी। अतः बौद्धों ने अपने आपसी मत-भेद को मिटाने के लिए राजगढ़ वाली पहली संगति के लगभग १०० वर्ष पश्चात् वैशाली स्थान पर दूसरी सगति बुलाई। उसमें बहुत से बौद्ध विद्वान सम्मिलित हुए। आपसी मत-भेद को मिटाने पर विचार किया गया, किन्तु कोई अच्छा परिणाम न निकला, वरन् मतभेदों में अधिक वृद्धि होकर उनके दो उपरोक्त सम्प्रदाय बन गये। इसके पश्चात् और भी मतभेद उत्पन्न होते चले गये। अन्त में बौद्धों के १८ सम्प्रदाय और उपसम्प्रदाय बन गये। फिर इनमे और जोर के साथ खींची-तानी आरम्भ हो गई, जो काफी समय तक चलती रही।

महाराज अशोक ने उन मतभेदों को मिटाने के लिए पाटली पुत्र (पटना) स्थान पर तीसरी सगति २४३ ई० पू० में बुलाई।

इस संगति में समस्त बौद्ध शास्त्रों पर विचार किया गया और आपसी मत-भेदों को मिटाने का पूरा प्रयत्न किया गया। किन्तु इस बार भी कोई विशेष परिणाम न निकला।

सन् ४० ई० में महाराजा कनिष्क ने कश्मीर या पंजाब में एक चौथी सभा बुलाई, मगर इस सभा में भी कोई अन्तिम निर्णय न हो

सका। इसके पश्चात् भी कई छोटी बड़ी सभा या संगति होती रहीं, किन्तु उनमें से किसी में भी कोई संतोषजनक निर्णय न हो सका। अतः बौद्ध में जो मतभेद पैदा हो गये थे, वे आज भी उसी रूप में बराबर नजरों आ रहे हैं।

नास्तिक, जैन और बौद्धों में जो विचार समान हैं, वे ये हैं—

नास्तिक	जैन	बौद्ध
(१) ईश्वर की कोई सत्ता नहीं है।	(१) ईश्वर की कोई सत्ता नहीं है।	(१) ईश्वर की कोई सत्ता नहीं है।
(२) इस जगत का कोई कर्त्ता नहीं है।	(२) इस जगत का कोई कर्त्ता नहीं है।	(२) इस जगत का कोई कर्त्ता नहीं है।
(३) जो,जो तत्व के स्वाभाविक गुण हैं, उन उन से द्रव्य संयुक्त होकर संसार के सब पदार्थ बनते हैं।	(३) जो जो तत्व के स्वाभाविक गुण हैं, उन उन से द्रव्य संयुक्त हो कर संसार के सब पदार्थ बनते हैं।	(३) बौद्ध लोग भी लगभग ऐसा ही मानते हैं जैसा नास्तिक और जैन मानते हैं।
(४) यह संसार सदा से ऐसा ही चला आ रहा है और सदा ऐसा ही चलता रहेगा।	(४) जैन भी ऐसा ही मानते हैं।	(४) बौद्ध भी कुछ कुछ ऐसा ही मानते हैं।

नीचे कुछ वे सिद्धान्त लिखे गये हैं, जिनके विषय में इन तीनों में एक दूसरे से मत-भेद हैं—

नास्तिक	जैन	बौद्ध
(१) जीवात्मा की कोई अमर, नित्य और स्वतन्त्र सत्ता नहीं है।	(१) जीवात्मा की अमर, नित्य और स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध है। वह सब प्राणियों में समान है। उसका कभी नाश नहीं होता।	(१) जीवात्मा की कोई विशेष सत्ता नहीं है और जो कुछ है भी वह अनित्य है। निर्वाण प्राप्त हो जाने पर उसका नाश हो जाता है।
(२) जब तक मनुष्य जीवित रहे, तब तक हर प्रकार का आनन्द करना ही मनुष्य जीवन का ध्येय है। क्योंकि मरने के पश्चात् दुःख,-सुख भोगने वाली कोई चीज बाकी नहीं रहती।	(२) मनुष्य जीवन का उद्देश्य आनन्द भोगना ही नहीं है, वरन् मुक्ति प्राप्त करना है। मरने के पश्चात् सुख-दुख भोगने वाली जीवात्मा शेष रहती है।	(२) मनुष्य जीवन का उद्देश्य आनन्द करना ही नहीं है वरन् निर्वाण प्राप्त करना है। मरने के पश्चात् आवागमन के चक्र मे पड़कर शरीर को (जीवात्मा को नहीं) दुःख-सुख भोगना पड़ता है।
(३) मरने के बाद किसी मनुष्य को दु.ख-सुख देने वाली कोई शक्ति	(३) मरने के पश्चात् दु.ख-सुख देने वाले मनुष्य के अपने अच्छे या	(३) मनुष्य के अच्छे या बुरे कर्मों से ही बार बार अच्छी या बुरी

नहीं है।	बुरे कर्म हैं। कर्म ही जीवात्मा को सुख-दुःख में फाँसते हैं।	योनि में पड़ना पड़ता है। कर्मों के कारण ही शरीर को (आत्मा को नहीं) सुख-दुःख भोगना पड़ता है।
(४) मुक्ति कोई वस्तु नहीं है।	(४) मुक्ति ही उत्तम वस्तु है। उसकी प्राप्ति से ही सच्चा आनन्द प्राप्त होता है।	(४) मुक्ति या निर्वाण सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। उसके प्राप्त होने पर सब क्लेश मिट जाते हैं और आवागमन का चक्र छूट कर जीवात्मा का विनाश हो जाता है।
(५) आवागमन का चक्र सिद्ध नहीं होता।	(५) आवागमन का सिद्धान्त पूर्ण रूप से सिद्ध है। संसार में जो सुख-दुःख नजर आ रहा है, वह सब आवागमन को सिद्ध करता है।	(५) आवागमन पूर्ण रूप से सिद्ध है।
(६) द्रव्य ४ हैं।	(६) द्रव्य ६ हैं।	(६) द्रव्य ४ हैं।
(७) सब द्रव्य हमेशा रहने वाले हैं।	(७) कोई द्रव्य हमेशा रहने वाला नहीं	(७) कोई द्रव्य हमेशा रहने वाला नहीं

	है।	है।
(८) पशु-पक्षियों को मार कर उनका मांस खाने में कोई दोष नहीं है।	(८) किसी प्राणी को मारने से हिंसा होती है। हिंसा महापाप है। मांस का खाना बहुत बुरा है।	(८) किसी प्राणी को मारने से हिंसा होती है। हिंसा से सदा बचना चाहिए। मरे हुए पशु-पक्षियों के मांस खाने में कोई दोष नहीं है।
(९) सांसारिक सुखों को त्याग कर व्रत आदि का पालन करके कष्ट उठाना भूल है।	(९) सांसारिक सुखों को त्यागने और व्रत आदि का पालन करने से मनुष्य शुद्ध हो कर तथा मुक्ति प्राप्त करके सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है।	(९) न तो सांसारिक सुखों को त्यागने और न ही उन में लीन होना अच्छा है। वरन् बीच का रास्ता अपनाकर धर्म का पालन करना ही उत्तम है।
(१०) प्रमाण केवल एक है जो प्रत्यक्ष है।	(१०) प्रमाण एक नहीं, वरन् प्रत्यक्ष और अनुमान आदि कई हैं।	(१०) प्रमाण केवल दो हैं। एक प्रत्यक्ष और दूसरा अनुमान।

बुद्ध देव

नैपाल की तराई में शाक्य वंश क्षत्रियों का राज्य था। इस राज्य की राजधानी कपिलवस्तु* थी। वहां के राजा का नाम शुद्धोदन था। †५६६ ई० पू० में उनके यहां एक लड़का पैदा हुआ जिसका नाम सिद्धार्थ रक्खा गया। सिद्धार्थ की माता का नाम माया था। उसका देहान्त सिद्धार्थ के जन्म से एक सप्ताह पश्चात् हो गया था। सिद्धार्थ का पालन-पोषण उनकी विमाता गौतमी ने किया था, इसी कारण उन्हें गौतम भी कहने लगे थे।

गौतम अपने माता-पिता के इकलौते राजकुमार थे। उनका पालन-पोषण बड़े लाड-चाव से हुआ था। जब वह ८ वर्ष के हुए तो उनकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध कर दिया गया। वह लिखने-पढ़ने में तीव्र-बुद्धि थे। थोड़े ही समय में उन्होंने काफी शिक्षा प्राप्त कर ली। गौतम बचपन से ही एकान्त-प्रेमी थे और बहुधा कुछ न कुछ सोचते ही रहते थे। उनके पिता ने उनकी यह दशा देखकर उनका विवाह १६ वर्ष की आयु में गोपा या यशोदा नाम की राजकुमारी से कर दिया। जब वह २१ वर्ष के हुए तो उनके यहां एक लड़का उत्पन्न हो गया जिसका नाम राहुल रक्खा गया।

गौतम के समय में, जैसा कि हम पहले भी लिख आये हैं यह देश बहुत सी छोटी-बडी रियासतों में विभाजित था। राजाओं में बहुधा लडाई-झगड़े रहा करते थे। धर्म की दशा भी बहुत अधिक बिगड़ी हुई थी। शराब और मांस का घर २ में जोर था। बेशर्मी पूर्ण-रूप से बढी हुई थी। धोखेबाजी, मक्कारी और चालाकी से लोग अपना काम निकाल लेने को होशियारी समझा करते थे। कहा तक कहा जाये, देश भर में हर प्रकार की बुरी बातें प्रचलित हो रही थीं।

---

*कपिलवस्तु बनारस से लगभग १०० मील उत्तर-पूर्व मे रोहणी नदी के तट पर बसा हुआ था।

†सिद्धार्थ की जन्म-तिथि में मतभेद है। कोई इतिहासकार उनकी जन्म-तिथि ६२३, कोई ६२४, कोई ५६३, कोई ५६६, और कोई ५६८ ई० पूर्व बतलाता है।

गौतम ने इधर-उधर जाते हुए कई बार कुछ ऐसी बातें देखीं, जो उनके दिल में घर कर गईं। एक बार उन्होंने एक बहुत ही बूढ़े, अन्धे और दुर्बल मनुष्य को देखा उसकी कमर बुढ़ापे के कारण झुकी हुई थी। उसे देखकर उन्होंने कहा कि 'यह जवानी सदा रहने वाली वस्तु नहीं है'। दूसरी बार उन्होंने एक ऐसे रोगी को देखा जो रोग के कारण हड्डियों का एक पिंजर रह गया था। उसको दो मनुष्य हाथों से पकड़े हुए ले जा रहे थे। उसे देखकर गौतम ने अपने शरीर पर दृष्टि डाली और कुछ सोच कर कहने लगे 'कि एक दिन मेरा शरीर भी ऐसा ही हो सकता है', तीसरी बार उन्होंने एक मृत शरीर सड़क पर पड़े देखा। उसे देखकर उन्हें तुरन्त मृत्यु याद आई और विचार किया कि 'एक दिन मुझे भी मौत के मुंह मे जाना पड़ेगा'। उसी दिन उन्हें एक साधु मिल गया। साधु ने उन्हें यह उपदेश दिया 'यह संसार राजपाट, स्त्री और सन्तान सब बेकार हैं। ससार की कोई वस्तु स्थिर रहने वाली नहीं है। गृहस्थ-जीवन दु.ख का कारण है। इस जीवन से ऊपर एक और जीवन है जो सुख और शान्ति का जीवन है। उसी जीवन के लिए मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिये'।

साधु के इन विचारों को हृदय में लेकर गौतम घर वापस आये। उन्होंने अपने पिता और पत्नी से संसार छोड़कर जंगलों मे जाने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने गौतम को बहुत समझाया किन्तु उन पर उनकी बातों का कोई प्रभाव न हुआ। उसी रात को वह पलंग पर लेट कर गहरे विचारों में डूब गये। नींद भाग गई और बेचैनी से करवटें बदलते रहे। इसी दशा में उनके अन्दर यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह जीवन एक चिंगारी है, जो लकड़ी की रगड़ से पैदा होती है और पैदा होते ही बुझ जाती है।

उसी रात को घर के सब आदमियों के सो जाने पर वह पलंग से उठे, एक बार अपनी पत्नी और अपने बालक को सोते हुए बड़े ध्यान के साथ देखा और महल से चल दिये। वहाँ से चल कर वह घुड़साल में आए और एक घोड़ा तथा एक साइस को साथ लेकर राजधानी से निकल खड़े हुए। जिस समय गौतम ने महल छोड़ा उस समय वह २९ वर्ष के थे।

रातभर चलकर वह कौशी* नगर में आए। वहां उन्होंने अपने समस्त रेशमी वस्त्र और हीरे जवाहरात के आभूषण जो वह पहिने हुए थे, उतार कर साइस को दे दिए और उससे उसके पुराने वस्त्र लेकर पहन लिये। साइस को घोड़ा देकर वापस कर दिया और वह स्वयं दुःख का कारण और उसके मिटाने का उपाय ढूंढने के लिए आगे चल दिये। कुछ दिनों अनापिया में रहे। वहा से चलकर राजगृह† (जो आजकल राजगिर कहलाता है) मगध देश की राजधानी में आ गये। वहाँ कुछ दिन रहकर एक पंडित से कुछ शास्त्र पढ़े और दार्शनिक ऋचाओं को सोचने में लग गये। कुछ समय तक उस पंडित के पास ठहरे, किन्तु हृदय को शान्ति न हुई। वहा से वानप्रस्थी बनकर फिर राजगृह में आए और एक सन्यासी के चेले बन गये। ६ वर्ष तक घोर तपस्या की, भूख, प्यास, सर्दी और गर्मी का सहन किया, योगाभ्यास और ईश्वर प्रार्थना-उपासना की विधि सीखी। किन्तु यहां पर भी दिल को शान्ति न हुई। जब वह बहुत अधिक कमजोर हो गये तो आहार करना आरम्भ कर दिया। वहां से चलकर वह उर्विला‡ स्थान पर आ गये। वहां कुछ दिनों घोर तपस्या की और भूख-प्यास तथा सर्दी-गर्मी सहन की। किन्तु यहां भी सन्तुष्टी न हुई। अन्त में यहा से भी अकेले चल दिये।

इसी प्रकार घूमते-फिरते एक दिन वह निरञ्जना नदी के तट पर आए। कुछ देर वहा बैठ कर सोच-विचार मे डूबे रहे। इसके पश्चात् स्नान किया और 'गया' स्थान पर जाकर एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ कर गहरे सोच-विचार में पड गये। अन्त में सोचते-सोचते यह प्रण किया, "जब तक सच्चा ज्ञान प्राप्त न होगा और दुःख दूर करने का मार्ग ज्ञात न होगा तब तक मैं इस वृक्ष के नीचे से कदाचित् नहीं उठूंगा।" वहा वह सात दिन तक ध्यान मे मग्न रहे। किन्तु उनके हृदय मे भांति-भांति के विचार भी उत्पन्न होते रहे। अन्त मे उनके हृदय मे ज्ञान का प्रकाश हुआ और यह पता चला कि दुःख क्या है। दुःख का कारण क्या है, और दुःख दूर करने का मार्ग क्या है। अब

---

*कौशी नगर गोरखपुर से ५० मील पूर्व दक्षिण की ओर बसा हुआ था।

†राजगृह मगध देश, अर्थात् विहार की राजधानी था।

‡ उर्विला गया के निकट एक जगह थी।

उन्होंने यह निश्चय किया कि योगाभ्यास आदि बातें निर्वाण के मार्ग में रुकावटें हैं। इस प्रकार सत्य मार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती। तृष्णा (Desire), राग (Attachment) और द्वेष (Aversion) पर विजय पाने से ही दुःख दूर होकर शान्ति प्राप्त होती है। अब उनके हृदय में शान्ति हो गई और उन्होंने अपना नाम बुद्ध (Enlightened) अर्थात् शाक्य मुनि रख लिया। उनको वीर (Hero), जिन (Victor) और अरहन्त (Worthy) भी कहते हैं।

इस ज्ञान के प्राप्त हो जाने पर उनके हृदय में यह विचार आया कि "मेरी इन बातों को कोई नहीं समझेगा। इसलिए इन बातों का प्रचार करना बेकार ही रहेगा। अच्छा तो यह है कि मैं किसी एकान्त स्थान पर बैठकर अपना जीवन बिता दूँ।" किन्तु साथ ही यह विचार भी आ गया, "परिश्रम करने से सब कुछ हो सकता है। लोग अवश्य मेरे विचारों पर ध्यान देंगे, इसलिए मुझे अवश्य परिश्रम करना चाहिये"।

अपने विचारों का प्रचार करने के लिए वह जंगल से चल दिये। वह अपना सिर मुंडवा कर और एक मिट्टी का प्याला हाथ में लेकर सारनाथ में आ गये। वहाँ आकर उन्होंने अपना प्रचार इस प्रकार आरम्भ किया—"यह संसार बन्धन है। इससे छुटकारा पाकर ही आनन्द मिल सकता है। सच्चा विश्वास, सच्चा विचार, सच्चा चरित्र, सच्चा व्यवसाय, सच्चा ध्यान, सच्चा त्याग, सच्चा भाषण और सत्य मार्ग पर चलने से ही शान्ति प्राप्त हो सकती है तथा यही निर्वाण प्राप्ति का एक मध्यम मार्ग है"। बुद्ध देव ने लोगों से यह भी कहा "जिस धर्म में शराब का पीना, जीवधारियों का मारना, चोरी करना, झूठ बोलना, धोखे से अपना स्वार्थ पूरा करना और व्यभिचार करना बुरा न समझा जाता हो, ऐसे धर्म में रहकर जीवन को बेकार करना है। ऐसे धर्म को छोड़ देने से ही निर्वाण या मोक्ष मिल सकता है। बुद्ध महाराज ने लोगों को वेद और दूसरे प्राचीन शास्त्र पढ़ने से भी मना किया और यह कहा कि इन सब शास्त्रों में बहुत बुरी बातें भरी पड़ी हैं। पापी और चाण्डाल लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए ईश्वर को प्रसन्न करने और जीवात्मा को सुख पहुँचाने के नाम पर बना लिये हैं। यद्यपि ईश्वर और जीवात्मा की कोई सत्ता नहीं है।

बुद्ध देव की आसान और सरल युक्तियों तथा मनोहर उपदेशों का लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ने लगा। बहुत से लोग उनके धर्म में सम्मिलित होकर भिक्षु बनने लगे। सबसे पहले उन्होंने अपने ६० शिष्य बनाये और उनको धर्म प्रचार के लिए इधर-उधर भेज दिया।

ब्राह्मणों और वाममार्गियों ने बुद्ध देव का पूरा विरोध किया। उनके प्रचार के कार्य में बहुत सी बाधायें डालीं तथा उनको जान से मार देने के भी प्रयत्न किये। किन्तु कोई भी अपने इस विचार में सफल न हो सका। इसी प्रकार प्रचार करते हुए वह काशी में आ गये। काशी उस समय भी विद्या का केन्द्र और ब्राह्मण धर्म का गढ़ समझा जाता था। वहाँ उन्हें उनके वह पाँचों गुरु भाई मिल गये। उन्होंने भी बौद्ध-धर्म ग्रहण कर लिया। बुद्ध देव ने उन्हें भी भिक्षु बनाकर धर्म-प्रचार के लिए इधर-उधर भेज दिया।

मगध देश के राजा बिम्बसार ने बुद्ध देव को अपनी राजधानी-राजगढ़ में बुलवा कर उनके उपदेशों को सुना और मनन किया। अन्त में वह राजा अपनी पत्नी आदि के साथ बौद्ध धर्म में सम्मिलित हो गया। इस स्थान पर बुद्धदेव काफी समय तक ठहरे। वहां उन्होंने शिष्य बनाये। उन शिष्यों को धर्म प्रचार के लिए देशभर में भेज दिया। उन शिष्यों के परिश्रम से इस धर्म के प्रसार में शीघ्र ही काफी उन्नति हुई।

बुद्ध देव राजगढ़ से चलकर गंगा के उत्तर में कौशल राज्य की राजधानी सरावस्ती में आए। यहां अनाथ पिंड नामी एक धनवान ने उनके रहन-सहन के लिए एक विशाल भवन बनवा दिया। वह वहाँ ठहर कर अपना धर्म प्रचार करते रहे। उनके उपदेशों से प्रभावित होकर कौशल नरेश भी उनका अनुयायी बन गया।

घर छोड़ने के लगभग १२ वर्ष पश्चात् वह अपने पिता की राजधानी कपिलवस्तु में पधारे। वहाँ अपने पिता को उपदेश देकर बौद्ध-धर्म में सम्मिलित किया। उनके पिता ने अपने सारे राज्य में बौद्ध-धर्म का प्रचार कराया और थोड़े ही समय में समस्त राज्य बौद्ध बन गया।

इसी प्रकार बुद्ध देव ने उत्तरी भारत अवध और बिहार में

भ्रमण करते हुए धर्म का प्रचार किया और बौद्ध संघों की स्थापना की। बुद्धदेव ८ महीने तो इधर-उधर फिर कर धर्म प्रचार किया करते थे और बरसात के ४ महीने किसी मठ में ठहर कर धर्मोपदेश दिया करते थे। बुद्ध महाराज ने ४५ वर्ष तक अपने धर्म का कार्य किया। अन्त में वह कुशी नगर में आकर ठहर गये। यहां उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। कुछ दिनों रोगी रहकर एक दिन एक साल के वृक्ष के नीचे बैठकर ४८६ ई० पूर्व में ८० वर्ष की आयु हो जाने पर उन्होंने निर्वाण प्राप्त कर लिया। बुद्ध देव ने शरीर छोड़ने से पहले अपने चार प्रसिद्ध आनन्द इत्यादि शिष्यों को जबानी यह वसीयत की "मेरे जन्म-स्थान कपिलवस्तु, मेरे ज्ञान प्राप्त करने का स्थान, मेरे प्रथम प्रचार करने का स्थान उजपाला और सारनाथ तथा मेरे शरीर छोड़ने का स्थान कुशी नगर सदा पवित्र समझते रहना। इन स्थानों पर मेरी स्मृति में मन्दिर इत्यादि बनवा देना"। उनके निर्वाण के पश्चात् ऐसा ही किया गया। बड़े-बड़े विशाल मन्दिर बनवा कर उनमें बुद्ध देव की अनघड़ मूर्तियां रखी गईं। बुद्ध देव के शरीर छोड़ने के समय उनके ५०० शिष्य उनके चारों ओर खड़े थे। बुद्ध के मृत-शरीर को चन्दन की लकड़ियों और सुगन्धित पदार्थों से जलाया गया। उनकी हड्डियों को उनकी स्मृति में और भी बहुत से स्थानों पर ले जाया गया और वहाँ पर भी मन्दिर इत्यादि बनवाये गये।

बुद्ध देव प्रतिदिन सवेरे ५ बजे उठकर शौच आदि से निवृत होकर ध्यान लगा कर बैठ जाया करते थे। इसके पश्चात् वह गेरुवे कपड़े पहन कर और प्याला हाथ में लेकर भिक्षा मांगने के लिए अकेले या अपने चेलों के साथ आबादी में चले जाया करते थे। वह खाना मांग कर और उसी जगह खा कर धर्म प्रचार का काम आरम्भ कर देते थे। इसके पश्चात् वह अपने स्थान पर आकर कुछ देर विश्राम करके भिक्षुओं को उपदेश देने में लग जाया करते थे। रात को फिर थोड़ी देर ध्यान लगाया करते और ध्यान से निवृत होकर सो जाया करते थे।

बुद्ध देव अपने उपदेशों में बहुधा प्राचीन शास्त्रों ही के हवाले दिया करते थे।

ईसाई-मत

ईसाई-मत

ईसाई मत का दूसरा नाम नसरानी मत है। इस मत के प्रवर्त्तक यसू मसीह थे। अब सन् १९५४ ई० में यह मत १९५४ वर्ष पुराना हो गया है। यसू मसीह बनिस्राईल जाति में उत्पन्न हुए थे। वह ह० दाऊद की २८वीं पीढ़ी में गिने जाते हैं। उनके पिता का नाम युसुफ और माता का नाम मरियम था। उनके पिता बढ़ई का काम किया करते थे तथा उनके कई भाई और बहने भी थीं।

यसू के जन्म के समय अरब और उसके आस पास के देशों में यहूदियों का जोर था। वह ईश्वर को प्रसन्न करने, पापों की क्षमा चाहने, समस्त कामनाएं पूर्ण कराने, धन-दौलत और मान तथा सन्तान प्राप्त करने, शत्रुओं पर विजय पाने, उनको हानि पहुँचाने, दुःखों और क्लेशों को मिटा कर हर प्रकार का सुख प्राप्त करने के लिए पशु-पक्षियों को कष्ट दे देकर दहकती अग्नि में भून भून कर अपने मन्दिरो (हैकिलों) की वेदी पर भेंट चढ़ाया करते थे। काहानों (यहूदी पुजारी) का जनता पर पूर्ण प्रभाव छाया हुआ था। उनकी प्रत्येक बात ईश्वर की आज्ञा समझी जाती थी। उनके चरण छूना उत्तम समझा जाता था। उनके सामने कोई मुंह खोलने का साहस नहीं कर सकता था। यहूदियों के धार्मिक सस्कारो में कोई लँगड़ा, लूला, कुबडा, चौड़ी या चपटी नाक वाला, अन्धा, काना, कोढी, अंग हीन या अधिक अंग वाला सम्मि-लित नहीं हो सकता था। ऐसे सब लोग अपवित्र समझे जाते थे।

यहूदियों के अतिरिक्त उन देशों में कुछ पारसी भी रहते थे जो श्रद्धा के साथ अग्नि और सूर्य आदि की पूजा में मोक्ष मानते थे। रोमन और मिश्री लोग मूर्ति पूजक थे। वह श्रद्धा और प्रेम के साथ अपने देवताओं की मूर्तियों की पूजा और उपासना में ही सब प्रकार के सुख समझते थे। उनके देवताओं के नाम यह थे—जुपिटर (Jupitor) जूनु-(Juno), मरकरी (Marcury), विनस (Venus), मार्स (Mars), सैटर्न (Satarn), मिनर्वा (Minorva), एटिस (Attis), और ऐसिस-

(Asis), । वह अपने देवताओं का निवास स्थान ओलम्पस (Olumpas) पर्वत मानते थे। उन देवताओं में वे लोग भाँति भाँति की शक्तियाँ समझते थे। इसी कारण उनको हर प्रकार प्रसन्न रखने में सुख और अप्रसन्न रखने में दु:ख मिलने पर विश्वास रखते थे। उनका एक और देवता था, जो मिथरस (Mithras) या सूर्य भगवान कहलाता था। वह बहुत अधिक शक्तिशाली समझा जाता था। प्रति वर्ष २५ दिसम्बर को उसकी विशेष पूजा होती थी। इसके विषय में उनकी ऐसी श्रद्धा थी कि २५ दिसम्बर से ये देवता ऊपर चढना और अपनी शक्तियाँ प्रकट करना आरम्भ कर देता है। वे लोग ईश्वर विश्वासी भी थे। ईश्वर में वे समस्त अच्छे गुण और शक्तियाँ मानते थे। उनका ऐसा भी कहना था कि ईश्वर ने सृष्टि को चलाने के लिये उन देवताओं को भिन्न भिन्न शक्तियाँ दे रक्खी हैं। इसके अतिरिक्त गाय, बैल, बकरा और साँप आदि की पूजा का भी फिर रिवाज प्रचलित हो गया था। अधिकतर लोग झाड़, फूंक, ज्योतिष, रमल इत्यादि के विश्वासी थे। वह झाड़ फूंक आदि से हर प्रकार की बीमारी के दूर हो जाने पर विश्वास रखते थे। झाड़-फूंक करने वालों का बड़ा सम्मान होता था। जहाँ उन देशों में मूर्ति पूजा आदि बातें चल रही थीं, वहाँ कुछ लोग ऐसे भी रहते थे जो ईश्वर की सत्ता स्वीकार न करते हुए मूर्ति पूजा का भी विरोध करते थे। ऐसे लोग नास्तिक (Gnostic) कहलाते थे।

लिखा है कि जब यसू ३० वर्ष की आयु में इधर उधर घूम-फिर कर या पढ़-लिख कर अपने देश में वापस आये तो उनका कोमल हृदय उन पशु-पक्षियों की निरपराध हत्या, चारित्रिक पतन तथा बुरे रीति-रिवाजों को देख कर तिलमिला उठा। उन्होंने रोमन, मिश्री और यहूदियों के सभी सिद्धान्तों का सामान्यतः खंडन किया, मूर्ति-पूजा को बुरा बताया, पशुओं की निरपराध हत्या के प्रति लोगों में घृणा पैदा की, ईश्वर की सत्ता तथा उसे शक्तिशाली मानने पर जोर दिया। उन्होंने अपना प्रचार इन शब्दों के साथ आरम्भ किया, "मैं ईश्वर का बेटा हूँ। ईश्वर ने मुझे तुम लोगों को सीधे-सच्चे मार्ग पर लगाने के लिये भेजा है। मैं तौरेत (यहूदियों की धार्मिक पुस्तक) को मिटाने नहीं आया, वरन् उसकी आज्ञाओं को ठीक ठीक बतलाने और समझाने आया हूँ। तुम लोग मेरा श्रद्धा के साथ विश्वास करो और मुझे ईश्वर का भेजा हुआ बेटा स्वीकार

करो। मै उन सब को जो मुझ पर श्रद्धा से विश्वास करंगे और मुझे खुदा का इकलौता बेटा स्वीकार करेंगे तथा मेरे बताए हुए मार्ग पर चलेंगे, मोक्ष दिलाऊँगा। तुम लोग झूठे और बनावटी नबियों और पैगम्बरों से बचो और सदेव चौकन्ना रहो। वह तुम्हारे पास भेडों के भेष में आते हैं, किन्तु वास्तव में वह हिंसक भेड़िये हैं। मैं पशु-पक्षियों की हत्या पसंद नहीं करता, वरन् सब पर दया-दृष्टि चाहता हूँ। मै सबको आत्म संतोष-(Self control) की शिक्षा देता हूँ"।

यह बात स्पष्ट है कि यहूंदी मत और बौद्ध धर्म ईसाई मत से पुराने हैं। अतः यदि ईसाई मत को ध्यान से देखा जाये और उसकी यहूदी मत तथा बौद्ध धर्म से एक साथ तुलना की जाये तो ईसाई मत के संशोधित रूप में दिखाई पड़ेगा, जिस पर बौद्ध धर्म का खौल चढ़ा हुआ साफ नजर आएगा। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि यहूदियों के कर्म प्रधान नौर बौद्ध मत के सन्यास मार्ग को मिला कर तथा उसमें भक्ति मार्ग की चाशनी देकर ईसाई मत का प्रचार किया गया था।

जिस समय यसु ने यरूशलम से अपना प्रचार आरम्भ किया उस समय उस देश में रोम वालों का शक्तिशाली राज्य था। आरम्भ में तो रोमन यह न समझ सके कि ईसाई मत यहूदी मत से कोई भिन्न मत है, क्योंकि वह जानते थे कि ह० ईसा यहूदी हैं, उनके शिष्य यहूदी हैं और सेन्टपोल भी यहूदी है। किन्तु कुछ समय पश्चात् उन्होंने जब यह अच्छी तरह से जान लिया कि ईसाई यहूदियों के सिद्धान्तों का अब भी खंडन करते हैं तब उन्होंने समझा कि यह लोग अपना कोई नवीन मत प्रचलित करना चाहते हैं। इसी लिये रोमन उनपर विशेष दृष्टि रखने लगे।

यसू को अपने प्रचार के कार्य में कठिनाइयों और असुविधाओं का सामना करना पडा यहूदी लोग पग-पग पर उनके कार्यों मे रुकावटें उत्पन्न कर रहे थे। कुछ दिनों तक तो वह अपना प्रचार अकेले ही करते रहे, किन्तु फिर जल्दी ही कुछ लोग उनकी शिक्षा से प्रभावित होकर उनके साथ रहने लगे। यसू ने अपने प्रचार में कभी किसी सख्ती से काम नहीं लिया और न कभी किसी को लड़ाई झगड़ा या रक्तपात करने

के लिये उकसाया। वरन् बौद्ध भिक्षुओं की भाँति वह लोगों को समझा बुझा कर ही अपना अनुयायी बनाना चाहते थे।

यसू अपने प्रचार का काम केवल दो वर्ष ही करने पाए थे कि यहूदियों ने उन्हें काफिर कह कर पकड़ लिया और सूली पर चढ़ा कर मार डाला। उनके जीवन में उन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिली। थोड़े ही समय पश्चात् उनके शिष्यों ने ईसाई मत के प्रसार में काफी काम किया।

यसू के प्रचार से जो लोग प्रभावित होते रहे, वह उन्हें ईश्वर का इकलौता बेटा मान कर मोक्ष दाता समझते हुए श्रद्धा के साथ विश्वास करते रहे। यसू ने जिन सदाचार सम्बन्धी बातों का प्रचार किया, वह सब बातें सबसे पहले पारसी, यहूदी और बौद्ध कर चुके थे। यसू ने अपने शिष्यों को एक विशेष शिक्षा यह दी थी, "यदि तुम्हारे गाल पर कोई तमाचा मारे तो तुम दूसरा गाल भी उसके आगे करदो और यदि कोई नालिश करके तुम्हारा कुर्त्ता लेना चाहे तो तुम चोगा भी उसे ले लेने दो।" जहाँ तक देखा गया है, ईसाईयों ने आज तक कभी इस शिक्षा का अनुसरण नहीं किया। इसके विरुद्ध योरुप के इतिहास से ऐसा पता चलता है कि ईसाईयों ने एक लम्बे समय तक अपने मत के प्रसार तथा दूसरे देशों को हड़पने के लिये बहुत से रक्त-पात, अन्याय और अत्याचार किये। बहुत से निरपराधों को मौत के घाट उतारा। ईसाईयों के धार्मिक लड़ाई झगड़े यहूदियों और मुसलमानों के साथ तो बहुत से हुए ही, किन्तु उनमें आपसी तौर पर भी साम्प्रदायिक लड़ाई-झगड़े और रक्त-पात होते रहे।

ईसाई मत के प्रसार के आरम्भिक काल का कोई संतोषजनक इतिहास नहीं मिलता। जिसे पढ़कर यह निश्चय कर लिया जाये कि यसू के पश्चात ईसाई मत का प्रचार किस किस विधि और ढंग से किया गया था। उस समय का इतिहास न मिलने का सबसे बड़ा कारण यह प्रतीत होता है कि उस समय इतिहास लिख कर सुरक्षित रखने का रिवाज नहीं था। इस समय ईसाई मत के आरम्भिक काल के विषय में जो पुस्तकें मौजूद हैं वे बहुत समय पश्चात् इधर-उधर पूछ-ताछ कर लिखी गई थीं। यही कारण है कि उन पुस्तकों में बहुत सी बातें एक

दूसरे से भिन्न पाई जाती है।

यह बात तो सिद्ध है कि यसू ने अपना प्रचार जबानी किया था। उनके पश्चात् उनके शिष्यों ने भी अपना प्रचार जबानी ही किया था। यसू ने कोई धार्मिक पुस्तक नहीं छोडी थी। यह वर्तमान इन्जिलें-(Bible जो इस समय ईश्वरीय पुस्तक कही जाती है, वह यसू के मरने के बहुत समय बाद इधर उधर से पूछ-ताछ कर लिखीं गई थीं। यही कारण है कि इन चारों इन्जीलों में एक दूसरी से कुछ बातों में भिन्नता है। कुछ लोगों ने ऐसा भी लिखा है कि इन इन्जिलों में वह सब कुछ नहीं लिखा गया जिसका यसू ने प्रचार किया था। यसू के प्रचार की बहुत सी बातें केवल स्मृतिरूप में चली आ रही हैं। यह वर्त्तमान इन्जीलें दूसरी शताब्दि में लिखीं गई थी। इन इन्जीलों की जॉच-पड़ताल करने के लिये आज तक ६ सभाएं या कौंसिल्स हो चुकी हैं। उनमे इन्जीलो के ईश्वरीय या मनुष्य-कृत होने के विषय पर सोच विचार किया गया। जो जो इन्जील उन कमेटियों की सम्मति में मनुष्य-कृत समझीं गई उन्हें रद्द किया गया, या उसमें कुछ संशोधन किया गया। लूका St-Luke के आरम्भ की चार आयतों से स्पष्ट है कि यह इन्जील लोगों से पूछ-ताछ कर लिखी गई थी।

ईसाई मत के आरम्भ में तो यह दशा रही कि जो कुछ लोगो से कहा गया, वह उसको ऑख बंद करके मानते चले गये। आगे चल कर उनमें भिन्नता उत्पन्न हो गई और उनके भिन्न भिन्न विचार के अलग अलग ग्रुप या सम्प्रदाय (Church) बनते चले गए। प्रथम तो दो सम्प्रदाय बने। एक ग्रीक चर्च और दूसरा रोमन कैथोलिक चर्च। इस के पश्चात् और भी बहुत से छोटे-बड़े सम्प्रदाय बनते चले गये, जिनका वर्णन आगे चल कर किया गया है। इस समय ईसाईयों के बहुत से सम्प्रदाय है, जिनमे एक दूसरे से बहुत से सैद्धान्तिक मतभेद हैं। आरम्भ मे उनमें एक ऐसा सम्प्रदाय भी था जो यह कहता था कि ज्ञान मुक्ति का मार्ग है, अंध विश्वास नहीं। उस सम्प्रदाय का नाम नास्तिक (Gnostic) था। इस सम्प्रदाय का यह सिद्धान्त १५० A. D. तक स्थिर रहा। किन्तु इसके पश्चात् उसमें यह लहर उत्पन्न हुई कि ज्ञान प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है, वरन् मोक्ष प्राप्त करने के लिए केवल

विश्वास और श्रद्धा ही काफी है। इस लहर को सरल और सुगम समझ कर लोगों ने खूब अपनाया। इसका परिणाम यह निकला कि ज्ञान की समाप्ति होती चली गई और लोग अंध विश्वास में फंसते चले गये। इसी लहर से प्रभावित होकर ईसाई लोग ह० ईसा को ईश्वर का इकलौता बेटा और अन्तिम पैग़म्बर मानकर उस की पूजा और उपासना करने लगे। ऐसा करने में ही वह मोक्ष या निर्वाण का रहस्य समझने लगे। इसके पश्चात् ह० ईसा के साथ उनकी माता मरयम की भी पूजा-उपासना होने लगी। इस अंध-विश्वास से योरुप में अज्ञान (Darkage) फैलता चला गया। बहुधा लोग कट्टर और पक्षपाती बनते चले गये। ईसाई लोग अपने मत को संसार के सर्व मतों से अद्वितीय और मोक्ष दाता पुकारते हुए दूसरे धर्मों या मजहबों को घृणा की दृष्टि से देखने लगे। वास्तव में ईसाई मत की वह वास्तविक शिक्षा तो रोमन राज्य के समाप्त होने पर समाप्त हो गई थी और उसका स्थान इस वर्त्तमान शिक्षा ने ले लिया था। किन्तु इस पर भी वह वास्तविक शिक्षा ग्रीक और लैटिन चर्च में थोड़ी बहुत अवश्य शेष रह गई थी।

ह० ईसा के पश्चात् उनके शिष्यों ने प्रचार के काम को संभाला। उन्होंने इधर-उधर जाकर इस मत का खूब प्रचार किया। पादरी नियुक्त किये' जो उनके उत्तराधिकारी समझे जाने लगे। उन शिष्यों या रसूलों के पश्चात् पादरी-युग आरम्भ हुआ, उन्होंने यहूदी पुजारियों (काहानों) की देखा देखी ईसाईयों पर अपना खूब प्रभाव जमाया। ईसाई मत की वास्तविक शिक्षा को तोड़ मरोड़ कर लोगों के सामने उपस्थित किया। पादरियों का प्रभाव चौथी शताब्दि से लेकर १४वीं शताब्दि तक खूब रहा। इनके युग में योरुप के अन्दर ईसाई मत के प्रसार के लिए बहुत से लड़ाई-झगड़े और रक्त-पात हुए। योरुप का इतिहास इन घटनाओं से भरा पड़ा है। पादरियों का लोगों इतना प्रभाव छा गया था कि उनको प्रसन्न रखने, उनकी हर प्रकार सेवा करने और उनकी आज्ञा बिना संकोच मानने में ही मुक्ति का रहस्य समझा जाने लगा। पादरी लोग भी जो उनकी समझ में अच्छा या बुरा आया करते चले गये।

उन्होंने धनी लोगों से धन लेकर स्वर्ग में सुख और आनन्द

प्राप्त कराने के प्रमाण पत्र (Certificates) दिये। उनके सामने कोई किसी प्रकार का उनके विरुद्ध आक्षेप या घोषणा करने का साहस नहीं कर सकता था। यदि कोई करता तो उसका तुरन्त वध करा दिया जाता था।

पादरियों के इस अनुचित प्रभाव और उनके कार्यों को देखकर जर्मनी के एक व्यक्ति लूथर ने उनके विरुद्ध आवाज़ उठाई। सन् १५३० ई० में उसने अपने जैसी विचारधारा रखने वालों का एक अलग प्रोटैस्टैन्ट-(Protestant) नाम का सम्प्रदाय स्थापित कर दिया। इस सम्प्रदाय ने पादरियों के प्रभाव को समाप्त करने के लिये ज़ोर के साथ प्रचार किया। इसमें वह एक सीमा तक सफल हुए, किन्तु फिर भी वह उनके प्रभाव को पूर्ण रूप से समाप्त न कर सके। लूथर के पश्चात् और भी बहुत से ईसाइयों ने भिन्न-भिन्न नाम के सम्प्रदायों से उस प्रभाव को समाप्त करने की चेष्टाएं कीं। रोमन कैथोलिक चर्च पर अब तक भी पादरियों का वैसा ही प्रभाव चला आ रहा है। रोमन कैथोलिक और प्रोटैस्टैन्ट सम्प्रदायों में बहुत विरोध बढ़ा और उनमें बहुत से भयानक धार्मिक युद्ध हुए। इन दोनों सम्प्रदायों ने एक दूसरे पर वह अत्याचार किये, जिनको पढ़कर या सुनकर शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

ईसाई संसार के हर भाग में कम या अधिक आबाद हैं। किन्तु योरुप और अमेरिका में उनकी विशेष संख्या है। ईसाइयों की संख्या इस समय संसार में सबसे अधिक है। भारतवर्ष में इस समय उनकी संख्या लगभग ४५ लाख हैं। इसमें से आधी आबादी अकेले मद्रास प्रांत में है।

ईसाई मत का प्रसार

जहाँ तक देखा गया है ईसा से २०० वर्ष बाद तक तो इस मत के प्रसार में कोई लड़ाई-झगड़ा नहीं हुआ, किन्तु इसके पश्चात् जब ईसाईयों की संख्या और शक्ति अधिक हो गई, तो उन्होंने रोमन राज्य से लड़ाई-झगड़े करने आरम्भ कर दिये। बहुत सी भयायक लड़ाइयाँ हुईं और ४०० ई० तक समस्त रोमन राज्य को जीत कर ईसाई बना लिया गया। सन् ५०० ई० तक संसार के और भी बहुत से भागों मे ईसाई मत का प्रसार हो गया। महाराजा चार्ल्स ने इस मत के प्रसार में बहुत से लड़ाई-झगड़े किये। ईसाई मत के प्रसार के विषय में हमने कुछ अधिक आगे चलकर ईसाई सम्प्रदाय में भी प्रकाश डाला है।

भारत में ईसाई मत

सन् १४९७ ई० में पुर्तगाल वाले कालिकट के बन्दरगाह पर उतरे। सन् १५०२ ई० में उन्होंने कोचीन के राजा से मिलकर अरब के समुद्री बेड़े को नष्ट कर दिया। सन् १५१० ई० मे उन्होंने गोवा पर अधिकार कर लिया। सन् १६०० ई० में इंगलैंड की मलिका एलिजबेथ ने लन्दन के व्यापारियों की एक कम्पनी को पूर्वी देशों में व्यापार करने की आज्ञा देदी। सन् १६१२ ई० में अंग्रेजों ने मोसलीपट्टम और सूरत मे अपनी कोठियाँ बना कर व्यापार करना आरम्भ कर दिया। इसके पश्चात् बम्बई में भी वह कोठियाँ बना कर व्यापार करने लगे।

सन् १६०२ ई० में डचों ने एक कम्पनी बनाई। सन् १६२३ ई० में उन्होंने अपना व्यापार भारत के साथ आरम्भ कर दिया। भारत से पश्चिमी किनारे पर सूरत, पूर्वी किनारे पर मोसलीपट्टम और चिनसुरा में वे अपनी कोठियाँ बना कर व्यापार करने लगे। १७वीं शताब्दी में फ्रांस वालों ने पाडेचरी आदि पर अपना अधिकार कर लिया।

सन् १५४२ ई० में पुर्तगाल का एक पादरी अपने मत के प्रचार के लिये भारत मे आया। उस समय यहाँ के धर्म और कर्म की दशा बिगड़ी हुई थीं। अंध-विश्वास, गुरु-सिद्धि और करामात आदि मे लोग डूबे हुए थे।

उस पादरी ने यहाँ आकर हिन्दुओं की दशा को कुछ दिनों तक ध्यान पूर्वक जाँचा। जब उसने यह समझ लिया कि इनमें ईसाई मत का प्रचार आसानी से हो सकता है तो उसने हिन्दुस्तानी भाषा सीखी और फिर एक पाठशाला खोली। उस पाठशाला में बाइबिल का पढ़ना अनिवार्य कर दिया। सायंकाल को वह पादरी अपने मत के प्रचार के लिये जनता मे आने लगा। उसने अपने प्रचार का तरीका यह बनाया कि वह किसी ऊँचे स्थान पर खडा होकर प्रथम कोई अच्छा भजन गा कर लोगों को एकत्रित कर लेता और जब काफी संख्या मे लोग एकत्रित हो जाते तो फिर इंजील की कुछ सदाचारी बातों का प्रचार करने लगता। इसके बाद वह अपनी जेब से सूली (Cross) का चिन्ह निकाल कर प्रथम उसको स्वयं श्रद्धा से चूमता और फिर दूसरे लोगों को चूमने के लिये दे दिया करता। इसी प्रकार अपना प्रचार करते करते उसने बहुत से अपने अनुयायी बना लिये। गोवा के आस-पास के क्षेत्रों मे बहुत से लोग ईसाई बनते चले गये। उसके काम मे यदि कोई रुकावट पैदा करता तो उसको गोवा के हाकिम से सख्त दण्ड दिलवा दिया करता। इसी प्रकार लगभग १०० वर्ष तक पुर्तगाल के पादरी आ आकर अपने मत का प्रचार करके लोगों को ईसाई बनाते रहे। बहुत से लोग तो पादरियों की चिकनी-चुपडी और नर्म बातों में आकर, बहुत से लोग किसी दबाव या लालच में डूब कर और बहुत से अपने धार्मिक सिद्धान्तो को न जानने के कारण ईसाई मत ग्रहण करते चले गये।

पुर्तगाल के ज्यूइस्ट Juist सम्प्रदाय के पादरियों की इस सफलता को देख कर अंग्रेजों और दूसरे देशों के ईसाइयों के सम्प्रदायों के मुँह में भी पानी भर आया। उनके पादरी भी अपने अपने ईसाई सम्प्रदायों का प्रचार करने की इच्छा से इस देश में आने-जाने लगे। उन सब पादरियों ने भी बहुधा अपने प्रचार का ढग वही रक्खा जो पुर्तगाल के पादरी अपना चुके थे। उन्होंने भी यहाँ की भाषा सीखी, हिन्दुओं के कुछ शास्त्रों और प्रचलित रीति-रिवाजों से जानकारी प्राप्त की। यहां के अवतारो और ऋषि-मुनियो के जीवन-चरित्र याद किये। वह अपना भेष भी ब्राह्मणों और सन्यासियों जैसा रखने लगे। उनमे से बहुत सों ने तो अपने नाम भी हिन्दुओं जैसे रख लिये। उनके कुछ

नाम यह थे—तत्वोबोध, प्रेम स्वामी और वैराम मुनि इत्यादि। वह अपने माथे पर चन्दन के टीके लगाया करते और गले में रुद्राक्ष की माला पहना करते थे। वह लोगों के सामने श्रीराम, श्रीकृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु और महेश इत्यादि के विषय में अच्छे अच्छे भजन गा कर उन्हें आकर्षित करने लगे। सायंकाल को प्रतिदिन वह टोलियां बनाकर उपदेश देने लगे। उनके उपदेशों में भीड़ होने लगी। वह लोगों से बड़े प्रेम से मिलते, मीठा बोलते और अपने दूसरे नम्र व्यवहारों से उन्हें आकर्षित करने की अनेकानेक चेष्टाएं करने लगे।

भजन गाने के पश्चात् उनमें से एक पादरी खड़ा होकर अपना उपदेश आरम्भ कर देता। पहले तो वह हिन्दुओं के अवतारों और ऋषि-मुनियों की प्रशंसा के पुल बांधता और फिर उनके साथ यसू-मसीह को जोड कर उनकी प्रशंसा में जमीन और आसमान के कलावे मिलाने लगता। वह अधिकतर इस बात पर जोर दिया करता कि यसू-मसीह ईश्वर का इकलौता बेटा है। ईश्वर ने बादशाही का काम उनके सुपुर्द कर रक्खा है। वह लोगों को उनके पापों से छुड़ा कर मोक्ष दिलाने वाला है। उस पर ईमान लाए बिना किसी को मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। कहां तक कहा जाए इसी प्रकार कुछ समय तक उनके प्रचार करने का यह प्रभाव हुआ कि लोगों को उनकी बातें अच्छी लगने लगीं और वह उनके अनुयायी बनते चले गए। अब उन पादरियों का बड़ा आदर-सम्मान होने लगा। लोग उन्हें पालकियों, सजे हुए घोड़ों और रथों आदि में बिठा कर बड़ी सज-धज और बाजे-गाजे के साथ बाजारों और गली-कूचों में से जलूस के रूप में निकालने लगे।

उन पादरियों ने भीतरी तौर पर अपने अपने प्रचार और उपदेश के कार्यों को बाँट रक्खा था। उनमें से कुछ ऊंची जाति के लोगों में काम करते थे और कुछ नीची जाति वालों से ही सम्बन्ध रखते थे। नीची जाति के लोगों की ओर उनका विशेष ध्यान रहता था। बहुधा वह उनके घरों पर जाकर बड़ी चिकनी-चुपड़ी और प्रेम-भरी बातें किया करते थे। वेश्याओं से भी उन्होंने अपना जोड़-तोड़ कर रक्खा था। उनके द्वारा वे रईसों, अमीरों और तमाशबीनों को ईसाई मत ग्रहण कराने की चेष्टाए किया करते थे। उनके इस प्रकार के ढंगों से बहुत से

लोग ईसाई बनते चले गये।

अंग्रेज और फ्रांसिसी पादरियों ने अपने प्रचार के काम को खुले तौर पर जोर के साथ करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने स्कूल और कॉलेज खोले, उनमें भारतियो को मुफ्त शिक्षा दी जाने लगी। इंजील की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। बाधाएं डालने वालों को कड़े दण्ड मिलने लगे। इन पादरियों ने भी अपने हिन्दु नाम रख कर बहुत सी हिन्दु नाम से धार्मिक पुस्तके बनाई। वह उनको छपवा कर मुफ्त बांटने लगे। उन पुस्तकों मे से कुछ नाम यह है—मंगल समाचार, सुन्दर पुराणी कथा, धर्म का सार, गुरु ज्ञान, जैसी करनी-वैसी भरनी, गीता की पोथी, ईसा कलंग की मृत्यु, गुरु-परीक्षा और इबादत मुक्तावली इत्यादि। उन्होंने इन तरीकों से काफी लोगों को ईसाई बनाया। इसके पश्चात् जब अंग्रेजों का सारे देश पर अधिकार हो गया तो अंग्रेज और अमेरिकनों ने देश भर में स्कूल और कॉलेज खोले। मिशन का काम जोर के साथ जारी हुआ। प्रचार का विभाग अलग स्थापित कर दिया गया। मिशन के काम के लिये सरकार बहुत सा रुपया देने लगी। पादरियों ने अपने प्रचार का कार्य उन्हीं पुराने ढगों पर कायम रक्खा।

यह एक मानी हुई बात है कि जब कभी कोई नवीन जाति किसी अन्य जाति मे अपने विचार या सिद्धान्त प्रचलित करना चाहती है तो वह उस जाति की कुछ बाते मान लेती है, कुछ का अर्थ बदल देती है और कुछ उसमें अपने विचार या सिद्धान्त सम्मिलित कर देती है। ईसाइयों ने इस देश में आकर हिन्दू जाति के साथ भी ऐसा ही किया। पहले तो उन्होंने हिन्दुओं के साहित्य द्वारा अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये महान् प्रयत्न किये। इसके पश्चात् उन्होंने इस जाति के साहित्य का नाश करना अति आवश्यक समझा। इसी कारण उन्होंने यहाँ पर अपने बहुत से स्कूल और कॉलेज खोले और हिन्दुओं के साहित्य को नष्ट करने का पूरा प्रयत्न किया। वह यह जानते थे कि हिन्दुओं के समस्त जीवन की पूंजी उनके प्राचीन शास्त्र ही हैं। इसी लिये उन्होंने उन शास्त्रों के उलट-पुलट अर्थ किये और उनके द्वारा स्कूल और कालेजों में शिक्षा दी जाने लगी। इसका परिणाम

यह हुआ कि भारतीय विद्यार्थी अपने अमूल्य साहित्य को घृणा की दृष्टि से देखकर उससे दूर हटते चले गये। ईसाइयों ने भारतीय साहित्य को तो विगडा ही था, उन्होंने यहाँ के प्राचीन इतिहास को भी विगाड़ कर उसमें भाँति-भाँति की उलट-पुलट वातें भर दीं, ताकि विद्यार्थी उन वातों को पढ़ कर अपने पूर्वजो से उदासीन हो जाएं और उनके विचारों को पुराने-गले-सड़े और असभ्य समझने लगें। पादरियों का यह उद्देश्य पूर्ण हो गया। अत. वहुत से अंग्रेजी पढ़े-लिखे अपने पूर्वजों, अपनी सभ्यता और अपने गौरव को भुलाकर उदासीन होते चले गए।

सन् १७६१ ई० में रावर्ट-डी-नोवलि नामक पादरी ने एक पंडित को रुपया देकर पुराण और वाइविल के मिश्रित विचारों को लेकर संस्कृत में एक पुस्तक तैयार कराई। उस पुस्तक का नाम यजुर्वेद रक्खा गया। इस यजुर्वेद का वहुत जोर से प्रचार कराया गया। इसका फ्रेंच भाषा में भी अनुवाद हुआ। वहुत से पंडित आदि इस यजुर्वेद को पढ़कर ईसाई वन गये। किन्तु इसका भेद मैक्समूलर ने इन शब्दों के साथ खोल दिया—"In PlainEnglish the whole book is childishly derived.',अर्थात् यह समस्त पुस्तक वच्चों का खेल है।

जिस समय पादरी लोग भारत निवासियों को अनेकानेक हतकंडों द्वारा अपने मत में सम्मिलित करते जा रहे थे, उसी समय वंगाल मे राजा-राम-मोहन-राय ने ब्रह्म-समाज को स्थापित कर हिन्दुओं को वचाने का प्रयत्न किया। किन्तु उनके पश्चात् जव ब्रह्म-समाज केशवचन्द्र सैन के हाथ में आई तो उन्होंने ईसाइयों से प्रभावित होकर उसके सिद्धान्तों को ईसाई-सिद्धान्तों के साथ मिला कर ब्रह्म समाज को भी एक प्रकार से देशी ईसाई-समाज वना दिया।

उसी समय से स्वामी दयानन्द ने इस क्षेत्र मे अपना कार्य आरम्भ कर दिया। उन्होंने हिन्दुओं को उनकी प्राचीन विद्या, सभ्यता संस्कार और धर्मादि की ओर प्रेरित किया। स्वामी दयानन्द के प्रचार से पादरी लोग घवरा उठे। स्वामी दयानन्द को वश में करने के लिये अमेरिका में कुछ योजनाएं वनाई गई। अत: अमेरिका से कर्नल अल्कॉट और मैडम व्लेवेट्स्की भारत आए। वह स्वामी दयानन्द से मिले, उनको

अपना गुरु मान कर आर्य समाज मे घुस गये। किन्तु उनके रग-ढग और आचार-विचार को स्वामी जी ने भॉप लिया और उनको समाज से निकाल दिया गया। इसके पश्चात् उन दोनों ने लोगों को अपना अनुयायी बनाने और ईसाई मत में सम्मिलित करने के लिये थिओसोफिकल सोसाइटी की स्थापना करके अपना प्रचार आरम्भ कर दिया।

कुछ दिनों पश्चात् मैडम ब्लेवेटस्की चल बसी उनकी जगह आयरलैंड की एक लेडी एनीबीसेन्ट ने, जो भारत मे रहती थी, लेली। यह बड़ी चतुर, चालाक और पढ़ी-लिखी स्त्री थी। उसने भी अपनी उस सोसायटी के द्वारा ईसाई मत का प्रचार आरम्भ कर दिया। उसने पढ़े-लिखे युवकों मे अपने सिद्धान्तों को साइन्स के रंग में रग कर फैलाना शुरू कर दिया। उसने कुछ साधु-सन्तों के साथ अपना सम्बन्ध कायम करके भूत-प्रेत और मृतात्माओं को बुलाने के लिये ढोंग रचने-आरम्भ कर दिये उसने कई प्रकार के यन्त्र बनवाए, जिनके द्वारा भूत-प्रेत और मृतात्माओं का दर्शन कराने के लिये भॉति भॉति के जाल फैलाए। वह मिस्मेरेज़म और योगादि की क्रियाएं दिखलाकर बहुत से लोगों को मोह में डालने लगी। उसने अपने ईसाई मत के कुछ विचित्र सिद्धान्त बना कर सब सम्प्रदायो और भिन्न भिन्न जाति तथा धर्म के लोगों को एक ही स्थान मे मिलाकर ईसाई बनाने के प्रयत्न किये। उसने कहा कि संसार का शिक्षक आने वाला है। जो ईसा का ही रूप है। सब उसके सम्मान के लिये तैयार रहे। उसने यहभी कहा कि संसार में दो शक्तियॉ हैं। एक राजा और दूसरा शिक्षक। शासक शक्ति पहले मनु अर्थात् मनुष्य हुए। उसके साथ उसका भाई व्यास शिक्षक के रूप में आया। दोबारा वही शक्ति मिश्र में टॉथ नाम से, यूनान में हर्म्स नाम से उत्पन्न हुई। तीसरी बार वही ईरान में जरतुश्त के नाम से पैदा हुई। चौथी बार वही यूनान मे आरफ़स नाम से विख्यात हुई। पॉचवी बार वही शक्ति बुद्ध कहलाई। बुद्ध निर्वाण प्राप्त करते समय शिक्षक का काम अपने भाई यसू मसीह को दे गये। वही शक्ति फिर यसु के नाम से विख्यात हुई। बुद्ध बुद्धि का और ईसा प्रेम का देवता है। यही ईसा संसार का अंतिम शिक्षक है। इसकी शिक्षा पर सब को चलना चाहिए। एनीबीसेन्ट की इस चाल मे आकर बहुत से पढ़े-लिखे लोग उसके अनुयायी बनते चले गये। भूत-प्रेत और मृतात्माओं को बुलाने वाले यन्त्रों का भॉडा उनके उसी आर्टिस्ट ने फोड़

दिया जो उन यन्त्रों को बनाया करता था। इससे थियोसोफिकल सो-सायटी की सारी पोल खुल गई।

जब थियोसोफिकल सोसायटी का रंग बहुत फीका पड़ गया तो उसने अपना मत फैलाने के लिये शिक्षा का सहारा लिया। कई स्कूल और कॉलेज खोले गये। विद्यार्थियों का ब्रह्मचर्य पालन से मन हटाना आरम्भ कर दिया। यह इसलिये किया ताकि इस देश के निवासी न तो उच्च शिक्षा ही प्राप्त कर सकें और न ही तेज, बल, और प्राक्रम आदि गुण धारण कर सकें। एनिबीसेन्ट की यह चाल अधिक दिन तक न चल सकी। पोल खुल जाने पर विद्यार्थी स्कूल और कॉलिज छोड़ छोड़ कर अलग हो गये जब वह इस में भी कुछ अधिक सफल न हुई तो वह राज-नैतिक आन्दोलन में सम्मिलित हो गई और होम-रूल लीग बना कर आन्दोलन आरम्भ कर दिया। उसमें भी उन्हें असफलता का ही मुंह देखना पड़ा।

थियोसोफिकल सोसायटी अपने मिशन में पूर्ण रूप से तो सफल न हो सकी किन्तु वह भारत की प्राचीन सभ्यता और धर्म का विरोध करते हुए भीतरी तौर पर ईसाई मत का बराबर प्रचार करती रही। उस ने भारत के हजारों मनुष्यों के विचारों और विश्वासों को इतना लेचर, दुर्बल- और युक्तिहीन बना दिया कि उनके दिमाग़ों से वह प्रभाव अभी तक दूर नहीं हुआ।

इस समय कांग्रेस सरकार की नीति को देखकर योरूप और अमेरिका के पादरी लोग इस देश में लोगों को इसाई बनाने के लिए भाँति भाँति के प्रयत्न कर रहे हैं और वह उन में एक सीमा तब सफल भी होते जा रहे हैं।

ईसाई मत का मूल सिद्धान्त

ईसाई मत का मूल सिद्धान्त तसलीस—Trinity है। इस सिद्धान्त का मानना और इस पर विश्वास करना बहुधा प्रत्येक ईसाई का प्रथम कर्त्तव्य है।

तसलीस—**Trinity,** पिता, पुत्र और पवित्रात्मा (Holy-Ghost) के समूह को कहते हैं। इन तीनों को ईसाई ईश्वर मानते है, किन्तु उनको एक दूसरे से अलग समझते हैं, साथ ही ३ ईश्वरों के विश्वासी नहीं हैं।

ईसाई बाइबिल पर आरोप न लगने के भय से इस सिद्धान्त को मानते चले आ रहे हैं। वह इसके विषय मे भाँति २ की बातें बनाकर दूसरे लोगों को सन्तुष्ट करने की चेष्टा किया करते हैं। यूहन्ना की इंजील बाब प्रथम आयत ३२, ३३ में इन शब्दों के साथ पवित्र आत्मा के विषय मे वर्णन आया है—"और यूहन्ना ने यह गवाही दी कि मैने जीवात्मा को कबूतर की तरह आकाश से उतरते देखा है और वह उस पर ठहर गया। और मैं तो उसे पहचानता न था मगर जिसने मुझे पानी से बपतिसमा देने को भेजा; उसी ने मुझ से कहा कि जिस पर तू जीवात्मा को उतरते और ठहरते देखे वही पवित्रात्मा से बपतिसमा देने वाला है। अत मैने देखा और गवाही दी है कि यह ईश्वर का बेटा है"। मति की इन्जील बाब प्रथम आयत १८ मे ऐसा लिखा है—"अब यसूमसीह की उत्पत्ति इस तरह हुई कि जब उसकी मां मरियम की मंगनी यूसुफ के साथ हो गई तो उनके इकट्ठा होने से पहले वह पवित्रात्मा को कुदरत (शक्ति) से गर्भवती पाई गई।

यदि ध्यान से देखा जाये तो यह सिद्धान्त आरम्भ से ही वाद-विवाद का विषय रहता चला आया है। ईसाइयों के कुछ सम्प्रदाय इसको मानने से इन्कार भी करते हैं। इस सिद्धान्त का आज तक कोई संतोष-जनक निर्णय नहीं हो सका। इस सिद्धान्त के निर्णय के बारे में ईसाइयों की बहुत सी सभाएँ हो चुकी है, किन्तु किसी सभा में भी सर्व सम्मति से कोई निर्णय नहीं हुआ।

कुछ स्पष्ट वक्ता पादरियों ने तो इस सिद्धान्त के विषय में यहाँ तक लिख दिया है, 'जिस किसी ने इस सिद्धान्त को ज्यादा सोचा, उतना ही वह इसको कम समझा और जितना स्पष्ट रूप से कहना चाहा उतना ही वह संक्षिप्त रूप में कह सका'। कुछ पादरियों ने उसके विषय में स्वयं संशय करते हुए यहां तक माना है कि यह सिद्धान्त युहन्ना की इन्जील में पोलोस और युहन्ना ने बनावटी और फर्ज़ी सम्मिलित कर दिया था। किसी पुरानी इन्जील में इसका वर्णन नहीं पाया जाता। उनका ऐसा भी कहना है कि यसूमसीह ने तो केवल एक ही ईश्वर पर विश्वास करने की आज्ञा दी थी, किन्तु उनके पश्चात् पोलोस और युहन्ना ने जो अफलातून के सिद्धान्तों के समर्थक थे. ईसाई मत को खराब करने के कारण अफलातून की फिलासफी के तीन देवताओं अर्थात् आदि कारण-first cause, ईश्वर और योगास अर्थात बुद्धि और जीव के सिद्धान्त को ईसाई मत में तसलीस (Trinity) सिद्धान्त के नाम से सम्मिलित कर दिया था।

वह ईसाई जो इस सिद्धान्त पर अपना विश्वास रखते हैं, इसकी संक्षेप में इस प्रकार व्याख्या किया करते हैं—

पिता—ईश्वर, जो यसूमसीह का पिता है और जो समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी है।

पुत्र—यसूमसीह, जो ईश्वर का इकलौता पुत्र है और जिसको उसके बाप (ईश्वर) ने न्याय का कार्य सौंप रक्खा है। वह कुमारी मरियम के गर्भ में अपनी शक्ति से पैदा किया गया था। ईश्वर ने उसे अपनी आज्ञाओं की पूर्ति कराने के लिये आज्ञाएँ देकर संसार में भेजा था। अतः यसूमसीह को ईश्वर का इकलौता बेटा मानकर और उसकी बतलाई हुई आज्ञाओं पर चल कर ही मोक्ष मिल सकता है। मोक्ष प्राप्ति का और कोई अन्य उपाय नहीं है।

पवित्र आत्मा—रूह-उल्कुद्स (Holy Ghost)-वह शक्ति या पवित्र आत्मा जिसने आकाश से कबूतर की भाँति उतर कर यसू में प्रवेश किया था जिसकी शक्ति से यसू की माता कुमारी मरियम गर्भवती हुई।

इन्जील में लिखा है कि बनीआदम (मनुष्य) के सब पाप तथा नास्तिकपन की बातें, जो वह बकते हैं, क्षमा की जायेंगी। किन्तु जो कोई पवित्रात्मा के विषय में नास्तिकपन की बातें बकेगा, वह अनन्त काल तक क्षमा नहीं किया जायेगा और वह अनादि पाप का भागी होगा। (मरकस, बाब ३, आ० २८ से ३० तक)।

ईसाई मत के सिद्धान्त

ईश्वर की सत्ता और उसके गुण, कर्म तथा स्वभाव; जगत् की उत्पत्ति और प्रलय, सूर्य, चन्द्रमा, तारे और आकाश; मुर्दों का जीवित होना; हिसाब का दिन, सब मनुष्यों से उनके कर्मों का हिसाब लेकर स्वर्ग या नरक में सदैव के लिये भेज देना; स्वर्ग और नरक की सत्ता आकाश पर मानना; स्वर्ग मे उच्च सुख और नरक में कठिन दुःखों का भोगना; जीव और प्रकृति की उत्पत्ति, सृष्टि का ६ दिन में निर्माण होना, जीवों का अनन्त काल तक जीवित रहना; फरिश्ते, शैतान, भूत, प्रेत, चुडैल, भाग्य, मनुष्य की उत्पत्ति और आवागमन इत्यादि बातो के विषय में ईसाइयों का वही सिद्धान्त है जो यहूदियो का है। ह० ईसा ने अति गहरी और गम्भीर बातों पर बुद्ध देव की तरह अधिक प्रकाश नहीं डाला। उन्होंने जीवन को उच्च बनाने की ही अधिक शिक्षा दी थी।

ऊपर लिखे सिद्धान्तों के अतिरिक्त ईसाइयों के यहूदियों से भिन्न कुछ यह सिद्धान्त है—

(१) यसू ईश्वर का इकलौता पुत्र है। उसे ईश्वर ने अपना अन्तिम पैगम्बर बनाकर संसार मे भेजा था। उनके पश्चात् नबी का अधिकार जताने वाला, पैगम्बर या रसूल कहलाने वाला भूठा और बनावटी है।

(२) इन्जील (Bible) ईश्वरीय पुस्तक होने के कारण पवित्र है। उसके अतिरिक्त कोई दूसरी पुस्तक ईश्वरीय तथा पवित्र ग्रन्थ नहीं है। इन्जील की आज्ञाओं को ईश्वर की आज्ञाएँ मानकर उन पर चलने से ही मोक्ष मिल सकता है। इन्जील में ईश्वर की वह आज्ञाएं लिखी हैं जो ईश्वर ने अपने इकलौते बेटे यसू को

सिखला और समझा कर संसार में फैलाने को दी थीं और जिनका प्रचार यसू ने किया था।

(३) यसू मसीह को ईश्वर का इकलौता बेटा और अन्तिम पैगम्बर मानकर ईमान लाना (विश्वास करना) और उसके द्वारा पापों से छुटकारा पा जाना तथा सदैव के लिये स्वर्ग में जाकर हर प्रकार के आनन्द मिलने पर श्रद्धा रखते हैं। वह यह भी विश्वास करते हैं कि यसू ने संसार के पापों के बदले स्वयं सूली पर चढ़ कर अपने आपको बलिदान कर दिया था।

(४) पशु-पक्षियों का वध करना बुरा है। उन पर दया-दृष्टि रखने से ईश्वर की आज्ञा का पालन होता है।

(५) खतना कराना अच्छा नहीं है। यह ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध है। हृदय की पवित्रता और आत्मा का निखार ही वास्तविक खतना है।

(६) सब्त (Sabbath day)-शनिवार को काम-काज करना बुरा नहीं है क्योंकि ईश्वर भी प्रतिदिन कार्य करता है।

(७) यसू मसीह और उसके रसूलों ने बहुत से चमत्कार दिखाये थे।

ह० ईसा पर ईमान (विश्वास)

इन्जील में ह० ईसा को ईश्वर का इकलौता बेटा और अन्तिम पैगम्बर मानने तथा मोक्ष-दाता जानकर विश्वास करने पर बार बार जोर दिया गया है। इन्जील की इस विषय में कुछ यह आयतें हैं—

(१) क्योंकि ईश्वर ने संसार से ऐसा प्रेम रक्खा कि उसने अपना इकलौता बेटा अर्पण कर दिया। ताकि जो कोई उस पर ईमान लाए, वह मारा न जाये, वरन् सदैव अमर रहे। जो उस (यसू) पर ईमान लाता है, उस पर दण्ड की आज्ञा नहीं और जो उस पर ईमान नहीं लाता उस पर दण्ड की आज्ञा लागू हो चुकी है। (युहन्ना, बाब ३, आ० १६ से १६ तक)

(२) क्या तू विश्वास नहीं करता कि मैं बाप मे हूँ और बाप मुझ में है। (युहन्ना, बाब १४, आ० १० और ११)

(३) यसू ने कहा कि जिस प्रकार बाप मुर्दों को उठाता और जीवित करता है, उसी प्रकार बेटा (यसू) जिन्हे चाहता है, जीवित करता है। क्योंकि बाप किसी का न्याय भी नहीं करता, वरन् उसने न्याय का सारा काम बेटे को सौंप दिया है, ताकि सब लोग बेटे का आदर करें। जिस प्रकार बाप का सम्मान करते है उसी प्रकार जो बेटे का सम्मान नहीं करता, वह बाप का, जिसने उसे भेजा, सम्मान नहीं करता। (युहन्ना, बा० ५, आ० २१ से २३ तक)

(४) ईश्वर को किसी ने कभी नहीं देखा। इकलौता बेटा जो बाप की गोद मे है उसी ने उसे जाहिर किया। (युहन्ना, बा० १, आ० १८)

(५) यसू ने कहा कि सत्य मार्ग और जीवन मैं हूँ। कोई मेरे सहारे के बिना बाप के पास नहीं आता। (युहन्ना, बाब १४, आ० ६)

(६) मेरे बाप की ओर से सब कुछ मुझे सौंपा गया है और कोई बेटे को नहीं जानता, सिवाय बाप के। तथा कोई बाप नहीं जानता. सिवाय बेटे के और उसके जिस पर बेटा उसे प्रकट करना चाहे। (मती, बा० ११, आ० २७)

(७) जमीन पर किसी को अपना बाप न कहो। क्योंकि तुम्हारा बाप एक ही है जो आसमानी है। न ही तुम हादी (पथ-प्रदर्शक) कहलाओ, क्योंकि तुम्हारा हादी एक ही है। अर्थात् मसीह। (मती, बा० ३, आ० ९ व १०)

(८) यसु ने कहा कि दर्वाजा मैं हूँ। यदि मुझसे दाखिल हो तो मोक्ष प्राप्त करेगा तथा अन्दर-बाहर आया जाया करेगा। (युहन्ना, बा० १०, आ० ९)

(९) इसलिये मैने तुमसे यह कहा कि अपने पापों में मरोगे, यदि तुम ईमान न लाओगे। (युहन्ना, बा० ८, आ० २४)

(१०) यसू ने उनसे कहा—यदि ईश्वर तुम्हारा बाप होता तो तुम मुझसे प्रेम रखते क्योंकि मै ईश्वर में से निकला और आया हूँ, मै आपसे नहीं आया, वरन् उसी ने मुझे भेजा। (युहन्ना, बाब ८, आ० ४२)

(११) यदि तुम अपने मुँह से यसू का स्वयंभू (खुदावंद) होना स्वीकार करो तथा अपने हृदय से ईमान लाओ कि ईश्वर ने उसे मुर्दों में से जीवित किया, तो मोक्ष प्राप्त करोगे। क्योंकि सच्चे मनुष्यों के लिये ईमान लाना हृदय से होता है और मोक्ष के लिए स्वीकृति मुँह से की जाती है। (रूमियों का खत, बा० १०, आ० ९-१०)

(१२) यसू वह है जो मर गया, वरन् मुर्दों में से जी भी उठा। वह ईश्वर के दाहिनी ओर है और हमारी सिफारिश भी करता है। (रूमियों का खत, बा० ८, आ० ३४)

(१३) कौन झूठा है, सिवाय इसके जो यसू के मसीह होने से इन्कार करता है। मसीह का विरोधी वही है, जो बाप और बेटे का इन्कार करता है। (युहन्ना का प्रथम खत, बा० २, आ० २२-२३)

(१४) ईश्वर की आत्मा को तुम इस प्रकार पहचान सकते हो कि जो कोई आत्मा स्वीकार करे कि यसू-मसीह सशरीर होकर आया है, वह ईश्वर की ओर से है और जो कोई आत्मा यसू पर विश्वास न लाए, वह ईश्वर की ओर से नहीं, और वही मसीह की आत्मा का विरोधी है। (युहन्ना का प्रथम खत, बा० ४, आ० २ से ३ तक)

(१५) यसू ने कहा कि संसार का प्रकाश मैं हूँ। जो मेरे पीछे चलेगा, वह अन्धेरे में न चलेगा, वरन् जीवन का प्रकाश पाएगा। (युहन्ना, बा० ८, आ० १२)

(१६) जो मुझसे विरोध रखता है, वह मेरे बाप से भी विरोध रखता। (युहन्ना, बा० १५, आ० २३)

(१७) तुम्हारा हृदय न घबरा जाये, तुम ईश्वर पर ईमान रखते हो,

मुझ पर भी ईमान रक्खो। (युहन्ना, बा० १४, आ० १)

(१८) यसू ने उनसे कहा, तू तो मुझे देखकर ईमान लाया है। धन्य वह हैं जो बिना देखे ईमान लाएं। (युहन्ना, बा० २०, आ० २६)

(१६) यसू ने कहा, जो कोई मनुष्यों के सामने मेरी स्वीकृति करेगा, मैं भी अपने बाप के सामने, जो आकाश पर है, उसकी स्वीकृति करूंगा। किन्तु जो कोई मनुष्यों के सामने मेरी जगह अस्वीकृति करेगा, मैं भी अपने बाप के समाने,जो आकाश पर है उसकी स्वीकृति करूंगा। (मती बा० १०, आ० ३२ व ३३)

(२०) यसू ने कहा, जो मुझ पर ईमान नहीं लाएगा, वह पाप मे मरेगा। (युहन्ना, बा० ८, आ० २४)

(२१) जो यसु को प्रिय नहीं समझता, वह दुष्ट है।

(२२। यसु ईश्वर का रूप है। (करन्थियों का दूसरा ख़त, बा० ४, आ० ४)

(२३) यसू ने कहा, जो मेरी बात पर चलता है, वह अनन्त काल तक अमर रहेगा। जो ईश्वर से है, वह मेरी बातें सुनेगा और जो शैतान से है, वह मेरी बातों पर ध्यान न देगा। (युहन्ना, बा०८, आ० ४७-४८ और ५१ से ५३)

(२४) यसू ने कहा, ईश्वर कहता है कि जो तेरी सुनता है, वह मेरी सुनता है। जो तुझे नहीं मानता, वह मुझे भी नहीं मानता और जो मुझे नहीं मानता, वह मेरे भेजने वाले को नहीं मानता। (लूका, बा० १०, आ० १६)

(२५) यसू ने कहा, इब्नेआदम (यसु) को पृथ्वी पर पाप क्षमा करने का अधिकार है। (मती, बा० ६, आ० ६)

(२६) यसू ने कहा, कि जो कुछ तुम मेरे नाम से चाहोगे, मैं वही करूंगा। (युहना, बा० १४, आ० १३)

(२७) यसू ने कहा, कि जो कुछ बाप का है, वह सब मेरा है। (युहन्ना,

बा० १६, आ० १५)

(२८) ईश्वर का बेटा इसलिये ज्ञात हुआ था कि शैतान के कामो को मिटाए। जो कोई ईश्वर से पैदा हुआ है, वह पाप नहीं करता। क्योंकि उसका बीज उसमें बना रहता है। बल्कि वह पाप कर ही नहीं सकता, क्योंकि वह ईश्वर से पैदा हुआ है। (युहन्ना, बा० ३, आ० ६)

क्या यसू ईश्वर का इकलौता बेटा है?

इंजील मे जहाँ यसू को ईश्वर का इकलौता बेटा लिखा है, वहाँ उन्हे यूसुफ बढई का बेटा भी लिखा है।

इस विषय मे इजील की कुछ यह आयते हैं—

(१) फिलिप्स ने नितनएल से मिलकर कहा कि जिसका उल्लेख मूसा ने तौरेत मे और नबियों ने किया है, वह हमको मिल गया। वह यूसुफ का बेटा यसु नासरी है। (युहन्ना, बा०, १ आ० ४५)

(२) क्या यह बढ़ई का बेटा नहीं और इसकी माँ का नाम मरियम तथा इसके भाई याकूब और युसुफ और शमऊन और यहूदा नहीं? क्या इसकी सब बहनें हमारे यहाँ नहीं? फिर यह सब कुछ इसमें कहाँ से आया? (मती, बा० १३, आ० ५५)

(३) बस यहूदी उस (यसू) पर बड़बड़ाने लगे, इसलिये कि उसने कहा था कि जो रोटी आकाश से उतरी, वह मैं हूं; और उन्होंने कहा कि क्या यह यूसुफ का यसू नहीं, जिसके माता-पिता को हम जानते हैं। अब यह क्योंकर कहता है कि मै आकाश से उतरा हूँ। (युहन्ना, बा० ६, आ० ४१-४२)

(४) और वह उसे देखकर हैरान हुए और उसकी माँ ने उससे कहा, 'बेटा! तूने क्या हमसे ऐसा किया? देख तेरा बाप और मैं कूढ़ते हुए तुझे ढूंढ़ते थे। (लूका, बा० २, आ० ४८)

(५) जो (यसू) शरीर के अनुसार तो दाऊद की प्रणाली से उत्पन्न हुआ,

किन्तु जीवात्मा की पवित्रता के अनुसार मुर्दों में से जी उठने के कारण शक्ति के साथ ईश्वर का बेटा ठहरा। (रूमिय के नाम पोलिस का खत, बा० १, आ० ४)

(६) और यसू, जैसा कि समझा जाता था, यूसुफ का बेटा था। (लूका, बा० ३, आ० २३)

इंजील में बहुत सी ऐसी आयतें भी पाई जाती हैं, जिनमें यसू को इब्ने आदम (आदम का बेटा), इब्ने दाऊद, इब्ने इब्राहीम, इब्ने यूसुफ और इब्ने मरियम कहा गया है।

यूनानी इतिहास के पढ़ने से पता चलता है कि उस पुराने समय में यूनानियों में यह एक साधारण कहावत थी कि वह माननीय और पवित्र मनुष्यों को ईश्वर का बेटा कह कर पुकारा करते थे और जो ईश्वर को अधिक प्रेम करता था, वह ईश्वर को अपना पिता कहा करता था। उस समय में जितने भी माननीय और पवित्र मनुष्य उत्पन्न हुए, बहुधा वह सब ईश्वर के बेटे ही कहलाए। हर कुलीज़ पाइथगोरस और अफला-तून आदि ईश्वर के बेटे ही कहलाते थे। सिकन्दर भी बहुधा इब्ने-अल्लाह (ईश्वर का पुत्र) अर्थात (Son of Zeus) कहलाता था।

पुराने अहदनामे (Old T stament) में भी कुछ लोगों को ईश्वर का बेटा, इकलौता बेटा ईश्वर का प्यारा, नबी और मसीह कहा गया है। नमूने के तौर पर कुछ आयतें यह हैं—

(१) देखिये ! ईश्वर यों कहता है कि इसराईल मेरा पुत्र, बल्कि मेरा पलूठा है। (खरूज, बा० ४, आ० २२)

(२) और एक दिन ईश्वर के बेटे आये कि ईश्वर के सामने उपस्थित हों और उनके बीच शैतान भी आया। (अय्यूब, बा० १, आ० ६)

(३) मैंने तो कहा कि तुम सब ईश्वर के बेटे हो तो भी तुम आदमियों की तरह मरोगे। (जबूर, बा० ८२, आ० ६ और ७)

(४) नबी ईश्वर के बेटे हैं। (अय्यूब, बा० २७, आ० ७)

(५) फरिश्ते ईश्वर के बेटे हैं। (अय्यूब, बा० १०, आ० ६)

(६) आदम ईश्वर का बेटा है। (लूक़ा, बा ३, आ० ३८)

(७) सन्धि कराने वाले ईश्वर के बेटे हैं। (मत्ती, बा० ५, आ० ९)

(८) सब ईश्वर के बेटे हैं। (युहन्ना, बा० ११)

(९) दाऊद बादशाह मसही है, खुदा का बेटा है, खुदा उसका बाप है और वह पलठा है। (ज़बूर, बा० ८९, आयत २६-२७)

यसू का पिता यसू की छोटी आयु में ही मर गया था। उसकी माता मरियम के अतिरिक्त उसका कोई और सरपरस्त (Guardian) न था। इसलिये वह अपनी माता के नाम से ही पुकारे जाते थे। अब भी बहुत से लोग अपनी माता के ही नाम से पुकारे जाते हैं।

यहूदियों ने यसू को न तो ईश्वर का बेटा ही माना और न ही पैगम्बर स्वीकार किया। कुरान ने यसू को पैगम्बर तो माना, किन्तु ईश्वर का बेटा नहीं माना। यह भी लड़ाई-झगड़े का एक बहुत बड़ा कारण था।

क्या यसू समस्त संसार के लिये आया था ?

ईसाई लोग तो यही कहते हैं कि यसू समस्त संसार के लिये आए थे। किन्तु इन्जील की कुछ आयतों से ऐसा भी ज्ञात होता है कि वह केवल इसराइलियों के लिये ही आए थे। वह इन्जील की कुछ आयतें यह हैं—

(१) और देखो ! एक किनानी स्त्री उन सीमाओं से निकली और पुकार कर कहने लगी—ऐ खुदावन्द इब्नेदाऊद ! मुझ पर दया कर। एक दुरात्मा मेरी बेटी को बहुत सताती है। किन्तु उस (यसू) ने उसे कुछ उत्तर न दिया और उसके शिष्यों ने समीप आकर उस (यसू) से यह निवेदन किया कि उसे (स्त्री) विदा करदो। क्योंकि वह हमारे पीछे चिल्लाती है। उस (यसू) ने उत्तर में कहा कि मैं इस्राईल के घराने की खोई हुई भेड़ों के अतिरिक्त और किसी के

के पास नहीं भेजा गया। (मती, बा० १५, आ० २२ से २४ तक)

(२) जब यसू ने अपने उन १२ शिष्यों को प्रचार के लिये इधर उधर भेजा तो उन्हें यह आज्ञा दी थी—तुम अन्य जातियों की ओर न जाना और न सामरियों के किसी शहर में प्रवेश करना वरन् इस्राईल के घराने की खोई हुई भेड़ों के पास ही जाना। (मती, बा० १० आ० ५ व ६)

क्या मसीह पर ईमान लाकर मोक्ष प्राप्त हो सकता है?

जहाँ इन्जील में इस प्रकार का वर्णन पाया जाता है कि जो कोई मसीह पर ईमान लाएगा, वह अवश्य मोक्ष प्राप्त करेगा, वहाँ इन्जील में यह भी लिखा हुआ मिलता है—

(१) धोखा न खाओ, ईश्वर ठट्ठों में नहीं उड़ाया जाता, क्योंकि मनुष्य जो कुछ बोता है, वही काटेगा। (गलेतून, बा० ६, आ० ७)

(२) क्योंकि इब्ने आदम (यसू) अपने बाप के प्रकाश और तेज में अपने फरिश्तों के साथ आएगा, उस समय प्रत्येक को उनके कर्मानुसार बदला देगा। (मती, बा० १६, आ० २७)

(३) जो लोग निकम्मी बात कहेंगे, न्याय के दिन उसका उत्तर देंगे, क्योंकि तू अपनी बातों के कारण सत्यवादी ठहराया जायेगा और अपनी बातों के कारण दोषी ठहराया जायेगा। (मती. बा० १२, आ० २७)

(४) फिर उसने उनसे कहा, 'होशियार हो जाओ! क्या तुम सुनते हो, जिस नाप से तुम नापते हो, उसी से तुम्हारे लिये नापा जायेगा। (मती, बा० ७ आ० २)

(५) क्योंकि शुभ कार्य करने वाले को अधिकारियों से भय नहीं, वरन् अशुभ कार्य-कर्त्ता को है। बस यदि तू अधिकारियों से निर्भय होना चाहता है तो शुभ कार्य कर। उसकी ओर से तेरी प्रशंसा होगी। (रूमियों का ख़त, बा० १३ आ० ३)

(६) पित्तरस-Peter ने कहा, अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि ईश्वर किसी का पक्षपाती नहीं, वरन हर जाति में जो उससे डरता और सत्य-कार्य करता है वह उसको प्रिय है। (एमाल बा० १० आ० ३४, ३५)

क्या यसू ने चमत्कार दिखाए ?

इन्जील और ईसाइयों के दूसरे धार्मिक ग्रन्थों तथा इस्लामी पुस्तकों में ह० ईसा के भाँति-भाँति के चमत्कार दिखाने के विषय में बहुत कुछ लिखा हुआ मिलता है। ईसाई और मुसलमान तो ह० ईसा के चमत्कारों पर विश्वास करते हैं किन्तु यहूदी नहीं करते। ह० ईसा के चमत्कारों के विषय में कुछ ये बातें अधिक प्रचलित हैं—

पागलों में से दुरात्मा अर्थात् चुडैल, भूत और प्रेत निकालना; वस्त्र छूते ही हर प्रकार के रोगियों को स्वस्थ कर देना, मुर्दों को जीवित कर देना, अन्धों की आंखों में प्रकाश कर देना, लंगड़े, लूलों और कोढ़ियों को अच्छा कर देना; थोड़े से भोजन को बहुत से मनुष्यों को खिला कर तृप्त कर देना और प्रार्थनाओं से मनोकामनाएं इत्यादि पूर्ण कर देना।

जहाँ इन्जील में ह० ईसा के चमत्कारों का बार बार वर्णन आया है, वहाँ इन्जील में ह० ईसा ने चमत्कार दिखाने से स्पष्ट रूप से इन्कार भी किया है। अत इस विषय में इन्जील की कुछ ये आयतें हैं—

(१) इस पर कुछ फ़कीयहों और फरीसियों ने उत्तर में उससे कहा, ऐ गुरु ! हम तुझ से एक चिन्ह देखना चाहते हैं। उस (यसू) ने उत्तर देकर उन से कहा इस समय के बुरे और व्यभिचारी लोग चिन्ह मांगा करते हैं। किन्तु यूनाह नबी के चिन्ह के अतिरिक्त कोई और चिन्ह उनको न दिया जायेगा। (मति बा० १२, आयत ३८ से ४० तक)

(२) इस समय के बुरे और व्यभिचारी लोग चिन्ह मांगते हैं किन्तु यूनाह के चिन्ह के अतिरिक्त कोई और चिन्ह इनको न दिया जायेगा

और वह उनको छोड़े कर चला गया। (मति बा० १६ आ० ४)

(३) जब बड़ी भीड़ एकत्रित होती जाती थी, तो वह कहने लगा कि इस समय के लोग बुरे हैं। वह चिन्ह मागते हैं। किन्तु यूनाह के चिन्ह के अतिरिक्त उनको कोई और चिन्ह नहीं दिया जायगा (लूका बा० ११ आ० २६, ३०)

(४) फिर फ़रीसी निकल कर वाद-विवाद करने लगे और उसे आज-माने, के लिए उससे आकाशिय चिन्ह मांगा। उसने अपनी आत्मा मे आह खींच कहा कि इस समय के लोग क्यों चिन्ह मागते हैं? मैं तुम से सच कहता हूँ कि इस समय के लोगों को कोई चिन्ह नहीं दिया जायेगा और वह उनको छोड़कर फिर नाव मे बैठा और पार चला गया। (मरक़ुस बा० ८ आ० ११ से १३ तक)

सरसैय्यद ने अपनी तफसीरउलकुरान (कुरान के भाष्य) मे ह० ईसा के चमत्कारों से इन्कार करते हुए कुछ ऐसा लिखा है कि यहूदियों के यहाँ लंगड़े, लूले, कुबड़े, चौडी नाक वाले, अंगहीन या अधिक अंग वाले अपवित्र समझे जाते थे। उन्हे किसी धार्मिक संस्कार में सम्मिलित होने की आज्ञा न थी। ह० ईसा ने उनपर से वे प्रतिबन्ध हटाकर उन सब को धार्मिक संस्कारों मे सम्मिलित होने के समान अधिकार दे दिये थे। बस यह सब बातें उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके शिष्यों ने चमत्कारों के नाम से प्रचलित कर दी थीं। वरना इससे अधिक इसमें और कोई तत्व नहीं है।

ह० मूसा और ह० ईसा

ईसाई लोग ह० मूसा को पैगम्बर तो अवश्य मानते हैं, किन्तु ह० ईसा को मूसा से बहुत अधिक महत्व देते हैं। उनका कहना है कि ह० मूसा का ईश्वर के घर मे नौकर जैसा स्थात था और ह० ईसा का ईश्वर के घर में स्वामी के स्मान है। (इब्रानियों के नाम ख़त, बा०३, आ०१-५)

झूठा और सच्चा नबी

बाइबिल ने झूठे नबी और पैगम्बर की यह पहचान बतलाई है-

(१) यसू ने उत्तर में उनसे कहा कि सावधान ! कोई तुम्हें भ्रमित न करदे, क्योंकि बहुत से मेरे नाम से आएंगे और कहेंगे कि मैं मसीह हूँ तथा बहुत से लोगों को भ्रमित करेंगे। (मती, बा० २४, आ० ४-५)

(२) झूठे नबियों से सावधान रहो, जो तुम्हारे पास भेड़ों के भेष में आते हैं किन्तु गुप्त रूप से वह हिंसक भेड़िये हैं। उनके कामों से तुम उन्हें पहचान लोगे। (मती, बा० ७, आ० १४-१६)

(३) ऐ मित्रो ! हर एक आत्मा का विश्वास न करो, वरन् आत्माओं की शिक्षा लो कि वह ईश्वर की ओर से हैं या नहीं। क्योंकि बहुत से झूठे नबी संसार में निकल खड़े होंगे। ईश्वर की आत्मा को तुम इस प्रकार पहचान सकते हो कि जो कोई जीवात्मा यह माने कि यसू मसीह सशरीर होकर आया है और वह ईश्वर की ओर से है और जो कोई आत्मा यसू को न माने वह ईश्वर की ओर से नहीं है और यही मसीह की विरोधी आत्मा है, जिसकी खबर तुम सुन चुके हो कि वह आने वाला है, बल्कि इस संसार में उपस्थित है। (युहन्ना का प्रथम पत्र, बा० ४, आ० १-३)

(४) यसू ने कहा कि जो मसीह दुनिया में आने वाला था, वह मै हूं। मेरे नाम पर झूठे नबी खड़े होंगे। चिन्ह और विचित्र कार्य कर दिखायेंगे, क्योंकि वह बड़े लोगों को भ्रमित करेंगे लेकिन तुम उनसे सावधान रहना। (मरकुस, बा० १३, आ० २२-२३)

(५) किन्तु तुम रब्बी न कहलाओ, क्योंकि तुम्हारा गुरु एक ही है और तुम सब भाई हो। पृथ्वी पर किसी को अपना पिता न कहो, क्योंकि तुम्हारा पिता एक है, जो आकाश-वासी है। न ही तुम हादी (Leader) कहलाओ, क्योंकि तुम्हारा हादी एक ही है। अर्थात मसीह। (मती, बा० २३, आ० ८ १०)

ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार की आयतों के होते हुए ईसाई ह० मुहम्मद को झूठा नबी समझते हैं। उन पर विश्वास लाकर श्रद्धा करने के लिये तैयार नहीं होते और यही कारण है कि क़ुरान को भी वह

ईश्वरीय पुस्तक नहीं मानते।

ईमान लाना

बाइबिल में लिखा है कि यदि कोई अपने मुंह से यसू के स्वामी होने की स्वीकृति दे और हृदय से ईमान लाए कि ईश्वर ने उसे मुर्दों में से जीवित किया तो मोक्ष प्राप्त करेगा। क्योंकि सच्चाई के लिए ईमान लाना हृदय से होता है और मोक्ष के लिये स्वीकृति मुंह से की जाती है। अतः यह पवित्र पुस्तक यह कहती है कि जो कोई उस पर विश्वास करेगा, वह लज्जित न होगा। (रोमियों का पत्र, बा० १०, आ० ६-११)

और उस (यसू) ने उन (शिष्यों) से कहा कि तुम समस्त संसार में जाकर लोगों के सामने इंजील की घोषणा करो। जो ईमान लाए और बप्तिस्मा ले, वह मोक्ष पाए। जो ईमान न लाए, वह पापी ठहराया जाएगा। ईमान लाने वालों में यह चमत्कार होंगे—

वह मेरे नाम से दुरात्माओं को निकालेंगे, नई नई भाषा बोलेंगे, साँपों को उछालेंगे और यदि कोई घातक वस्तु खालें तो उन्हें कुछ हानि न होगी। वह रोगियों पर हाथ रक्खेंगे, तो अच्छे हो जायंगे। (मरकस, बा० १६, आ० १५-१८)

किन्तु ऐसा भी लिखा है कि यदि कोई कहे कि मैं ईमानदार हूं, किन्तु उसके अनुसार कार्य न करता हो तो उससे कोई लाभ नहीं। ईमान शुभ कार्यों के बिना व्यर्थ है। (याकूब, बा० २, आ० १४-२०)

बप्तिस्मा (Baptism—दीक्षा-संस्कार)

बप्तिस्मा के अर्थ दीक्षा या संस्कार के हैं। अतः स्नान के पश्चात् यसू के नाम पर ईमान लाने के लिये ईसाई मत में सम्मिलित होने का नाम बप्तिस्मा या दीक्षा-संस्कार है। ह० ईसा से पहले उन देशों में बौद्ध मत में सम्मिलित करने के लिये दीक्षा संस्कार प्रचलित था। रोम आदि देशों में भी यह रिवाज चालू था। ईसाई धर्म के आरम्भिक समय में बौद्ध भिक्षुओं की भाँति जो ईसाई बनाया जाता था, प्रथम उसे

उपदेश सुनने वालों में रक्खा जाया करता था। इसके पश्चात् बप्तिस्मा दिया जाता था। बप्तिस्मा लेकर वह चर्च (गिरजे) का सभासद बन जाता था। इन सभासदों में जो अपना पवित्र जीवन बनाता था वह यसू के सब भेदों में सम्मिलित होकर उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकता था।

बप्तिस्मा का यह तात्पर्य है कि पहले समस्त पाप धुल गये और यह सौगन्ध लेकर कहना पड़ता है कि मैं ईश्वर को प्रसन्न रक्खूंगा और सेवा करता रहूँगा। गिरजाओं में बप्तिस्मा के लिये एक अलग स्थान नियुक्त होता है।

पाप और महापाप

यसू की आज्ञा को न मानना पाप है और पवित्र आत्मा-Holy Ghost के विषय में अनुचित बातें करना महापाप है।

क्षमा और प्रायश्चित्त (तौबा)

बाइबिल में लिखा है कि यसू पर ईमान लाए बिना किसी का पापों से छुटकारा नहीं होगा और न ही कोई मोक्ष प्राप्त करने का भागी हो सकेगा। कहा जाता है कि पाप क्षमा करने का पूरा अधिकार ईश्वर ने अपने इकलौते बेटे यसू को दे रक्खा है। यसू को अधिकार है कि वह चाहे जिसके पाप क्षमा करे और चाहे जिसको न करे। ईसाई लोग ऐसा भी कहते हैं कि मनुष्यों के समस्त पाप और मिथ्या विश्वास तो क्षमा किया जा सकता है किन्तु जो मिथ्या विश्वास पवित्र-आत्मा—Holy Ghost के विषय में होगा, वह कदाचित्त न तो इस संसार में और न आने वाले ससार मे ही क्षमा हो सकेगा। (मती, बा० १२, आ० ३१-३२)

जो कोई पापों की क्षमा के लिये तौबा (प्रायश्चित) करके यसू मसीह के नाम पर बप्तिस्मा लेगा, तो वह पवित्र आत्मा में पुरस्कार पाएगा। क्योंकि ईश्वर ने सबके लिए ऐसा प्रण कर रक्खा है। (ऐमाल, बा० २, आ० ३८-३९)

कुफ्र.-(मिथ्या विश्वास) और काफ़िर

कुफ्र—ईश्वर, यसू, पवित्र-आत्मा और पवित्र-पुस्तक अर्थात् इन्जील पर हृदय मे विश्वास करना, यसू को ईश्वर का इकलौता बेटा जान कर मोक्ष-दाता होने पर विश्वास करना आवश्यक है। अतः यदि कोई इनमें से किसी एक बात को भी न माने, तो वह न मानना कुफ्र है।

काफिर—जो ऊपर लिखी बातों में से किसी एक को भी न माने, उसे काफिर कहते हैं।

ख़तना

जो खतना कराता है, उसे मसीह मे कोई लाभ नहीं पहुंचेगा। वह मसीह से भिन्न और उसकी करुणा से वंचित रहेगा। ख़तना वह नहीं है जो दिखावटी और शारीरिक है, वरन् वास्तविक ख़तना वही है जो हार्दिक और आत्मिक है। (रोमियों का ख़त, बा० २, आ० २८-२६)

प्रारब्ध (तक़दीर)

प्रारब्ध के विषय में जो यहूदियों का सिद्धान्त है, वही ईसाइयों ने स्थिर रक्खा। ईसाइयों के पश्चात् ह० मुहम्मद ने भी उसी सिद्धान्त का प्रचार किया। संक्षेप में वह सिद्धान्त यह है—

ईश्वर अपने अनुमान से जो समझता है, वह प्रत्येक को देता है। यदि ईश्वर किसी को लँगडा या लूला, अच्छा या बुरा, अमीर या गरीब, दुखी या सुखी इत्यादि उत्पन्न करता है, तो वह इसलिये करता है कि ऐसा करने से ईश्वर के कार्य उसमे ज्ञात हों। ईश्वर अपनी इच्छानुसार प्रत्येक को शरीर देता है। (यूहन्ना. बा० ६, आ० १ से ३)

इन्जील में ऐसा भी लिखा हुआ है कि ईश्वर ठट्ठों में नहीं उड़ाय

जाता, जैसा कोई बोएगा, वैसा ही काटेगा।

ओरिजिन—Origen नामक पादरी लिखता है कि ईसाइयत के आरम्भ में आवागमन का सिद्धान्त ईसाइयों में प्रचलित था। ह० ईसा ने आवागमन के सिद्धान्त का ही प्रचार किया था। ईसाइयों ने इस सिद्धान्त से ह० ईसा के पश्चात् इन्कार किया है। आगे चल कर ओरिजिन लिखता है कि मनुष्य अपने कर्मानुसार सुख-दुख पाता है और यदि कर्म फिलॉसफी न मानी जाये तो ईश्वर पर अन्याय का दोष आता है।

हराम (त्याज्य बातें)

मूर्तियों की पूजा-उपासना आदि, व्यभिचार, गला घोटे हुए पशुओं का मांस और लहू हराम (त्याज्य) है।

पशु-वध और मूर्ति पूजा

यसू ने कहा कि मैं पशु-वध पसंद नहीं करता, वरन् दया-दृष्टि पसंद करता हूँ। पशु वध कोई वस्तु नहीं है। जो पशु वध अन्य जातियाँ करती हैं, वह शैतान के लिये करती हैं, ईश्वर के लिये नहीं। इसलिये पशु-वध करके शैतान में साझीदार मत बनो, मूर्ति पूजा भी कोई वस्तु नहीं है।

यसू ने यहूदियों के बलिदानों (पशु-वध) का खंडन किया, इस लिये भी यहूदी उनसे अप्रसन्न हो गये।

प्रलय के चिन्ह

इन्जील में प्रलय के कुछ चिन्ह इस प्रकार लिखे हैं—

(१) यसू के शिष्यों ने उनसे पूछा कि तेरे आने और संसार के अन्त होने का चिन्ह क्या होगा? यसू ने उत्तर में उनसे कहा कि सावधान! कोई तुम्हें भ्रमित न करदे, क्योंकि बहुत से मेरे नाम से आएंगे और कहेंगे कि मैं मसीह हूं और बहुत से लोगों को भ्रमित करेंगे और तुम लड़ाइयों की अफवाह सुनोगे। सावधान! घबरा न जाना! क्योंकि इन बातों का होना आवश्यक है। किन्तु उस

समय अंत न होगा, क्यों कि जाति पर जाति और राज्य पर राज्य आक्रमण करेंगे और बहुत से स्थानों पर अकाल पड़ेंगे तथा भूचाल आएंगे, किन्तु यह बातें कष्टों का आरम्भ ही होगीं। उस समय लोग तुमको दुःख देने के लिये पकड़वाएंगे और तुम्हारी हत्या करेंगे तथा मेरे नाम के कारण सब जातियाँ तुम से वैर-भाव रक्खेंगी। उस समय बहुत से ठोकर खाएंगे और एक दूसरे को पकड़वाएंगे तथा वैर-भाव रक्खेंगे। बहुत से झूठे नबी उठ खड़े होंगे और वह दूसरों को साक्षी करेंगे तथा बेदीनी (अधर्म) बढ़ जायेगी। बहुत सों का प्रेम ठंडा पड़ जायेगा। किन्तु जो अन्त तक सहन करेगा, वह मोक्ष प्राप्त करेगा और बादशाही के शुभ सवाद की घोषणा समस्त संसार में होगी, ताकि सब जातियों के लिये साक्षी हो, तब अंत होगा। (मती, बा०, २४, आ० ३–१४)

(२) और तुरन्त उन दिनों की विपत्तियों के पश्चात् सूर्य अन्धकार में बदल जायेगा, चन्द्रमा अपना प्रकाश न देगा और तारे आकाश से गिरेंगे और आकाश की शक्तियां हिलाई जायेंगी और उस समय इब्नेआदम (यसू) का चिन्ह आकाश पर दिखाई देगा और उस समय पृथ्वी की सब शक्तिया छाती पीटेंगी और इब्ने-आदम (यसू) को बड़ी शक्ति और तेज के साथ आकाश के बादलों पर आते देखेंगी। (मती, बा० २४, आ० २६, ३०)

(३) अब इन्जील के वृक्ष से एक उदाहरण सीखो। ज्योंही उसकी डाली नर्म होती है और पत्ते निकलते हैं, तुम जान लेते हो कि गर्मी निकट है। इसी प्रकार जब तुम इन सब बातों को देखो तो जान लो कि वह निकट ही नहीं, वरन् दर्वाजे पर है। मैं तुमसे सच कहता हू कि जब तक यह सब बातें न हो लें, यह प्रणाली कदाचित् समाप्त न होगी। आकाश और पृथ्वी टल जायेंगे, किन्तु मेरी बातें कदाचित् न टलेंगी, किन्तु उस घड़ी और दिन के विषय में कोई नहीं जानता। न आसमान के फरिश्ते और न बेटा। किन्तु केवल बाप। (मती, बा० २४, आ० ३२, ३६)

(४) ईश्वर कहता है कि अन्तिम दिनों में ऐसा होगा कि मैं अपनी जीवात्मा

में से प्रत्येक मनुष्य पर डालूंगा और तुम्हारे बेटे और बेटियां नबी बनेंगी तथा तुम्हारे जवान रोया और बूढे सपने देखेंगे, वरन् मैं अपने बंदों और बंदियों पर भी उन दिनों में अपनी आत्मा में से डालूंगा और वह नबी बनेंगे और मैं ऊपर आसमान पर विचित्र कार्य और नीचे पृथ्वी पर चिन्ह अर्थात् रक्त और आग तथा धूएं का बादल दिखाऊँगा। पहले इससे कि यसू (खुदावंद) का वह महान् और प्रकाशवान् दिन आए और यों होगा कि जो कोई यसू (खुदावंद) का नाम लेगा, मोक्ष पाएगा (एमाल, बा० २७, आ० १७-२०)

मरने के पश्चात् जीवित होना और न्याय-दिवस

इंजील में मरने के पश्चात् जीवित होने और उनके साथ न्याय किये जाने के विषय में इस प्रकार की आयतें लिखी हैं—

(१) और उस समय इब्ने आदम (यसू) का चिन्ह आकाश पर दिखाई देगा और उस समय पृथ्वी की सब शक्तियाँ छाती पीटेंगी और इब्ने आदम को बड़ी शक्ति और तेज के साथ आकाश के बादलों पर आते देखेंगी और वह नरसिंहे की बड़ी आवाज के साथ फरिश्तों को भेजेगा और वह अपने प्रिय लोगों को चारों ओर से आकाश के इस किनारे से उस किनारे तक एकत्रित करेंगे। (मती, बा० २४, आ० ३०, ३१)

(२) लिखा है कि मुर्दों को जीवित करके न्याय के दिन यसू बड़ी शान-शौकत के साथ और बहुत से फरिश्तों को साथ लेकर जोसाफेट की घाटी (Vally of Josaphat) में उतरेगा। यह वह स्थान बताया जाता है जहाँ यसू की हत्या की गई थी।

(३) यसू ने उन (शिष्यों) से कहा कि मैं तुमसे सच कहता हूँ कि जब इब्ने-आदम (यसू) नई उत्पत्ति में अपने तेजयुक्त सिंहासन पर बैठेगा तो तुम भी जो मेरे पीछे हो लिये हो १२ सिंहासनों पर बैठ कर इस्राइल के १२ कबीलों का न्याय करोगे। और जिस किसी ने घरों, भाइयों, बहनों, माता-पिता बच्चों और खेतों को

मेरे नाम के कारण छोड़ दिया है, उसे सौ गुणा मिलेगा। और वह अमर जीवन पाएगा। (मत्ती, बा० १६, आ० २८-३०)

(४) इब्ने आदम (यसू) सर्वशक्तिमान् ईश्वरके दाहिनी ओर बैठेंगे। (मती० बा० २६, आ० ६४)

कस्सास-(बदला)

यहूदी और मुसलमान कस्सास के सिद्धान्त को मानते हैं किन्तु ह० ईसा ने इस सिद्धान्त का खंडन करते हुए-कहा है—

तुम सुन चुके हो कि कहा गया था कि आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत। किन्तु मैं तुमसे यह कहता हूं कि शरीर का मुकाबला न करना, वरन् जो कोई तेरे दाहिने गाल पर तमाचा मारे तो तू दूसरा भी उसकी ओर फेरदे और यदि कोई तुझ पर नालिश करके तेरा कुरता लेना चाहे तो तू चोग़ा भी उसे ले लेने दे और यदि कोई तुझे एक कोस बेगार में ले जाना चाहे तो तू उसके साथ दो कोस चला जा। जो कोई तुझसे माँगे उसे दे और जो तुझसे ऋण चाहे, उससे मुँह न मोड़। तुम सुन चुके हो कि कहा गया था कि अपने पड़ौसी से प्यार कर और अपने शत्रु से विरोध रख, किन्तु मैं तुमसे यह कहता हूं कि अपने शत्रु से प्रेम रक्खो और अपने को कष्ट देने वालों के लिये प्रार्थना करो। ताकि तुम अपने बाप की जो आकाश पर है बेटे कहलाओ। क्योंकि वह अपना सूर्य बुरों और भलों, दोनों पर चमकाता है और झूठों और सच्चों दोनों पर वर्षा करता है। यदि तुम अपने प्रेम रखने वालों से ही प्रेम रक्खो तो तुम्हारे लिए क्या फल (अजर) है।

ह० ईसा ने उन अपवित्र मनुष्यों को भी समान अधिकार दिये थे, जिनको यहूदियों ने उपासकों में सम्मिलित होने का अधिकार नहीं दिया था।

ह० ईसा ने शत्रु, सैनिक बंदियों, दास-दासियों, लूट के माल का विभाजन आदि के विषय में कोई अनुचित व्यवहार करने की आज्ञा नहीं दी।

दान

यसू ने कहा—

खबरदार ! अपने शुभ कार्य मनुष्यों के सामने दिखावे के लिये न करो। नहीं तो तुम्हारे बाप के पास जो आकाश पर है, तुम्हारे लिये कुछ फल नहीं है। बस, जब तू दान करे तो अपने आगे नरसिंहा मत बजवा, जैसा कि कपटी लोग उपासना गृहों और गली-कूचों में करते हैं, ताकि लोग उनकी बड़ाई करें। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि वह अपना फल पा चुके, वरन् जब तू दान करे तो जो तेरा दाहिना हाथ करता है उसे तेरा बॉया हाथ न जाने ताकि तेरा दान छिपा रहे। उस दशा में तेरा पिता जो छिप कर देखता है, तुझे बदला देगा। (मती, बा० ६, आ० १ से ४)

रोजा

और जब तुम रोजा रक्खो तो कपटियों की भॉति अपना मुंह उदास न बनाओ क्योंकि वह अपना मुँह इसलिये बिगाड़ते हैं ताकि लोग उनको रोजेदार जानें। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि वह अपना फल पा चुके। बल्कि जब तू रोजा रक्खे, तो अपने सिर में तेल डाल और मुंह धो ताकि मनुष्य नहीं वरन् तेरा पिता जो छिपे रूप मे है, तुझे रोजेदार जाने। उस दशा में तेरा बाप, जो छिपे रूप में देखता है, तुझे बदला देगा।

स्त्री का पद

इंजील में लिखा है—

पुरुष स्त्री से नहीं, वरन् स्त्री पुरुष से है और पुरुष स्त्री के लिये नहीं वरन् स्त्री पुरुष के लिये पैदा हुई है। (पोलिस का प्रथम खत, क्रन्थियों के नाम, बा० ११, आ० ८-९)

स्त्री का पद पुरुष से कम है। क्योंकि आदम पहले बनाया गया

था और हव्वा बाद में। स्त्रियाँ गिरजाघरों के एकत्रित समूह में चुप-चाप रहे, क्योंकि उन्हें बोलने की आज्ञा नहीं। (पोलिस का प्रथम पत्र, कन्थियों के नाम, बा० १४, आ० ३४)

विवाह, तलाक़ और पुनर्विवाह

इन्जील में लिखा है—

एक पुरुष को एक स्त्री और एक स्त्री को एक पुरुष से ही विवाह करना चाहिये। कुंवारों और विधवाओं के विषय में ऐसा भी लिखा है कि उनके लिये ऐसा रहना ही अच्छा है। किन्तु यदि संयम से न रह सकें तो विवाह करलें, क्योंकि विवाह करना मस्त होने से अच्छा है कुंवारा मनुष्य ईश्वर की चिन्ता में रहता है कि किस प्रकार ईश्वर को प्रसन्न करे और विवाहित मनुष्य संसार की चिन्ता में रहता है कि किस प्रकार अपनी स्त्री को प्रसन्न करे। इसी प्रकार कुंवारी स्त्री ईश्वर के चिन्तन में रहती है, ताकि उसका शरीर और आत्मा दोनों पवित्र हों, किन्तु विवाहित स्त्री संसार और अपने पति को प्रसन्न करने की चिन्ता में रहती है। किन्तु पुरुष के लिये अच्छा यही है कि स्त्री को न छूए, परन्तु व्यभिचार के भय के लिये प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नि और प्रत्येक स्त्री अपना पति रक्खे। स्त्री अपने शरीर की स्वामिनी नहीं है, किन्तु पति है, इसी प्रकार पति भी अपने शरीर का स्वामी नहीं है, वरन् स्त्री है।

यसू ने कहा कि यह भी कहा गया था कि जो कोई अपनी पत्नि को छोड़े, उसे तलाक नामा लिखदे, परन्तु मैं तुम से यह कहता हूं कि जो कोई अपनी पत्नि को व्यभिचार के अतिरिक्त किसी और दोष के कारण छोड़े, वह उससे व्यभिचार कराता है। जो कोई उस छोड़ी हुई से विवाह करे, वह व्यभिचार करता है। (मति, बा० ५, आ० ३१-३२, मती, बा० १६, आ० ६-१०) फरीसी (एक जाति) यसू की परीक्षा के लिये उसके पास आए और कहने लगे कि क्या प्रत्येक कारण से अपनी पत्नि को छोड़ देना उचित है? यसू ने उत्तर में कहा कि क्या तुमने नहीं पढ़ा कि जिसने उन्हे बनाया, उसने आरम्भ से ही उन्हें पुरुष और स्त्री बना कर कहा कि इस कारण से पुरुष बाप से और माँ से अलग होकर

स्त्री के साथ रहेगा और वह दो नहीं वरन् एक शरीर है। इसलिये जिसे ईश्वर ने जोड़ा है, उसे मनुष्य अलग न करे। उन्होंने उनसे फिर कहा कि फिर मूसा ने क्यों आज्ञा दी है कि तलाक नामा देकर छोड़ दी जाये। उन्होंने उनसे कहा कि मूसा ने तुम्हारी कठोरता के कारण तुम्हें अपनी स्त्रियों को छोड़ देने की आज्ञा दी थी, किन्तु आरम्भ से ऐसा न था। (मती, वा० १६, आ० ३-८)

यसू ने कहा—

जो कोई अपनी स्त्री को छोड़ दे और दूसरी से विवाह करे तो वह पहली के विरुद्ध व्यभिचार करता है। यदि स्त्री अपने पति को छोड़ दे और दूसरे से विवाह करे, तो वह भी व्यभिचार करती है। (मरकस, वा० १०, आ० ११-१२)

जब तक स्त्री का पति जीवित रहता है, वह उसी के आधीन है। यदि पति मर जाये और वह संयम (Control) न कर सके तो जिससे चाहे पुनर्विवाह करले।

पति के मर जाने पर वह धार्मिक प्रतिबन्धों से स्वतन्त्र है। ऐसी दशा में यदि वह दूसरे की हो जाये तो व्यभिचारिणी न कहलाएगी। ज्यादा अच्छा तो यही है कि वह वैसी ही रहे। जवान विधवाएं वासनाओं के आधीन हो जाती हैं, इसलिये वह विवाह करना चाहती हैं तो वह विवाह करलें। वास्तविक विधवा वही है जो ६० वर्ष से कम न हो और वह शुभ आचरण और शुभ कार्यों में प्रसिद्ध हो।

प्रार्थना और उपासना

यसू ने कहा—

और जब तुम प्रार्थना करो, तो कपटियों की भाँति न बनो। क्योंकि वह उपासना-गृहों और बाजारों के मोड़ों पर खड़े होकर प्रार्थना करना पसंद करते हैं, ताकि लोग उन्हे देखें। मैं तुमसे सच कहता हूँ कि वह अपना फल पा चुके, वरन् जब तू प्रार्थना करे तो तू अपनी कोठरी में जा और दर्वाजा बन्द करके अपने पिता से जो गुप्त रूप में

है, प्रार्थना कर। ऐसी दशा में तेरा पिता जो गुप्त रूप से देखता है, तुझे बदला देगा। प्रार्थना करते समय दूसरी जातियों के लोगों की भाँति बक बक न कर, क्योंकि वह समझते हैं कि हमारे बहुत बोलने के कारण हमारी सुनी जायेगी। बस उन जैसे मत बनो, क्योंकि तुम्हारा पिता तुम्हारे माँगने से पहले ही जानता है कि तुम किन-किन वस्तुओं के इच्छुक हो। बस तुम इस प्रकार प्रार्थना करो—

ऐ हमारे पिता! तू जो आकाश पर है, तेरा नाम पवित्र माना जाये, तेरा प्रभुत्व (बादशाही) आए। तेरी इच्छा जैसी आकाश पर पूर्ण होती है, पृथ्वी पर भी हो। हमारी प्रतिदिन की रोटी आज हमें दे और जिस प्रकार हमने अपने ऋणियों को क्षमा किया है तू भी अपने ऋण से हमें क्षमा कर और हमें परीक्षा में मत डाल, वरन् बुराई से बचा। क्योंकि प्रभुत्व (बादशाही) और शक्ति तथा सत्ता सदैव तेरे ही हैं आमीं (स्वीकार कर)। (मती, बा० ५, आ० ५—१३)

सदाचारी जीवन (Moral life)

(१) इन्जील ने सदाचारी जीवन के विषय में यह शिक्षा दी है— व्यभिचार, अपवित्रता, सम्भोग, मूर्तिपूजा, जादू, बैर-भाव, ईर्षा, द्वेष, क्रोध, नशा, नाच-रंग, अच्छी बातें नहीं है। ऐसी बातें करने वाले ईश्वर के प्रभुत्व के उत्तराधिकारी न होंगे।

(२) धन्य है वह जो हृदय से निर्धन है क्योंकि आकाश की बादशाही उन्हीं की है। धन्य है वह जो निराश है क्योंकि वह संतोष पाएँगे। धन्य है वह जो संतोषी है, क्योंकि वह पृथ्वी के उत्तराधिकारी होंगे। धन्य हैं वह जो सच्चाई के भूखे और प्यासे हैं, क्योंकि वह कुशल होंगे। धन्य हैं वह, जो करुणा हैं, क्योंकि उन पर करुणा की जायेगी। धन्य हैं वह, जो पवित्र हृदय है क्योंकि वह ईश्वर को देखेंगे। धन्य है वह, जो सन्धि कराते हैं, क्योंकि वह ईश्वर के पुत्र कहलाएँगे।

(३) तुम सुन चुके हो कि अगलों (पूर्वजों) से कहा गया था कि रक्त न बहाना और जो कोई रक्त बहाएगा, वह दंड का अधिकारी होगा। परन्तु मैं तुमसे कहता हूँ कि जो कोई अपने भाई पर क्रोध करेगा

वह दंड का अधिकारी होगा और जो कोई अपने भाई को पागल कहेगा, वह अधिक दंड का अधिकारी होगा। जो उसको मूर्ख कहेगा, वह नरक की अग्नि को प्राप्त होगा। बस यदि तू कुर्बानगाह (वेदी) पर अपनी भेंट चढ़ाता हो और वहाँ तुझे याद आए कि मेरे भाई को मुझसे कुछ शिकायत है तो तू वहीं वेदी के आगे अपनी भेंट छोड़दे और जाकर पहले अपने भाई से मिलाप कर, तब आ कर अपनी भेंट चढ़ा। (मती, बा० ५, आ० २१ से २४)

(४) तुम सुन चुके हो कि कहा गया था कि व्यभिचार न करना किन्तु मैं तुम से यह कहता हूँ कि जिस किसी ने बुरी इच्छा से किसी स्त्री पर दृष्टि डाली, वह अपने हृदय में उसके साथ व्यभिचार कर चुका। बस यदि तेरी दाहिनी आँख तुझे ठोकर खिलाए, तो तू उसे निकाल कर फेंकदे, क्योंकि तेरे लिए यही अच्छा है कि तेरे अंगों में से एक जाता रहे और तेरा सारा शरीर नरक में न डाला जाये। (मती०, बा० ५, आ० २७, से ३२ तक)

(५) किसी की कमियों को प्रकट मत करो। तुम्हारी भी कमियाँ प्रकट न की जाएं। क्योंकि जिस प्रकार तुम कमियाँ प्रकट करते हो उसी प्रकार तुम्हारी भी कमियाँ प्रकट की जायेगी, और जिस पैमाने से तुम नापते हो उसी से तुम्हारे लिये नापा जाएगा। तू क्यों अपने भाई की आँख के तिनके को देखता है और अपनी आँख के शहतीर पर ध्यान नहीं करता ? जब तेरी ही आँख में शहतीर है तो तू अपने भाई से क्योंकर कह सकता है कि ला मैं तेरी आँख में से तिनका निकाल दूं। ओ कपटी ! पहले अपनी आँख में से तो शहतीर निकाल, फिर अपने भाई की आँख में से तिनके को भलि भाँति देखकर निकाल सकेगा। (मती, बा० ७, आ० १-५)

(६) जो बातें मुंह से निकाली हैं, वह हृदय से निकलती हैं और वही मनुष्य को अपवित्र करती हैं। क्योंकि बुरे विचार, रक्त-पात, व्यभिचार, चोरी, झूठी गवाही, निन्दा आदि हृदय से ही निकलते हैं। यही बातें हैं जो मनुष्य को अपवित्र करती हैं। (मती, बा० १५, आ० १८-२०)

ऐसी या एसियन सम्प्रदाय (Essenese)

यह बात तो स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म की नींव ईसा से लगभग ६०० वर्ष पूर्व पड चुकी थी। इस बात से कोई भी जानकार मनुष्य इन्कार नहीं कर सकता कि सन् ई० से लगभग २५० वर्ष पूर्व बौद्ध-मत के भिक्षु अपना धर्म प्रचार करने के लिये पश्चिमी देशों, अर्थात् मिश्र, ईरान, तुर्किस्तान, काबुल, कधार और यूनान आदि देशों में आने जाने लगे थे। उन भिक्षुओं की शिक्षा और रहन-सहन से प्रभावित होकर उन देशों के यहूदी लोगों मे एक सन्यासी सम्प्रदाय का निर्माण हो गया था, जो ऐसी या एसियन कहलाता था। ह० ईसा के जन्म के समय यह सम्प्रदाय फिलिस्तीन, सीरिया और मिश्र आदि देशों में विशेष रूप से मौजूद था। इस सम्प्रदाय वाले वास्तव में यहूदी-मत के ही मानने वाले थे। परन्तु वह बौद्ध धर्म की शिक्षा अपनाकर और यहूदियों की हिंसात्मक बलियों और दूसरे इसी प्रकार के रीति-रिवाजों से घृणा करके अपना अधिक समय एकान्त में बैठकर ईश्वर के ज्ञान-ध्यान तथा पूजा-उपासना में लगाया करते थे। यह लोग ब्रह्मचर्य के पालन पर अधिक जोर देते थे, शराब और मांस का प्रयोग बुरा समझते थे, सौगन्ध खाने से बचते थे और सदाचारी बातों पर चलने के लिये अधिक ध्यान देते थे। वह खेती-बाड़ी करने और शान्ति पूर्वक रहने में ही आनन्द समझते थे।

इस सम्प्रदाय में सम्मिलित होने के लिये प्रथम भिक्षुओं के नियमानुसार तीन वर्ष तक उम्मीदवारी करनी पड़ती थी। इसके पश्चात् यदि उचित समझा जाता था तो सम्मिलित कर लिया जाता था, वरना निकाल दिया जाता था। इन लोगों के कई एक मठ थे। उनमें से सबसे बडा मठ मुरदार समुद्र (अरब और फिलिस्तीन के मध्य स्थित) के पश्चिमी किनारे पर नेगदी स्थान पर था। इन मठों में रह कर वह लोग अपना सादा जीवन अधिक सन्तोप के साथ विताया करते थे।

बाइबिल, इतिहास या किसी दूसरे प्रामाणिक ग्रन्थ में ह० ईसा की १२ वर्ष से लेकर ३० वर्ष की आयु तक की जीवन-घटनाओं का विवरण नहीं पाया जाता। ईसा ने भी अपने उस समय के रहन-सहन

का कोई संकेत नहीं किया और न ही यह बतलाया कि वह इस लम्बे समय तक कहाँ रहे और क्या करते रहे। अतः इन दशाओं में ऐसा अनुमान होता है कि वह या तो किसी जगह बाहर शिक्षा पाते रहे या दूसरे देश-देशान्तरों में घूमते रहे। किन्तु ह० ईसा की शिक्षा, रहन-सहन और प्रचार के ढगों से यह विश्वास अवश्य होता है कि वह उसी एसियन सम्प्रदाय वालों के मठों में रह कर शिक्षा पाते रहे और साथ ही बौद्ध भिक्षुओं से भी मिलते-जुलते रहे। ह० ईसा की अधिकांश शिक्षा बौद्धों की शिक्षा से मिलने-जुलने का यही कारण प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त नैपाल के एक बौद्ध ग्रन्थ में ऐसा लिखा हुआ भी पाया जाता है कि ह० ईसा भारतवर्ष भी आए थे और यहां पर उन्होंने बौद्ध धर्म की शिक्षा प्राप्त की थी। वह नैपाली ग्रन्थ एक यात्री निकोल्सनोटोवस ने प्राप्त करके उसका १८६४ ई० में फ्रान्सिसी भाषा में भाष्य कराकर छपवा भी दिया था।

धार्मिक-पुस्तकें

ईसाई मत के धार्मिक शास्त्रों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक वह भाग जो श्रुति (इल्हामी) कहलाता है, दूसरा वह जो अश्रुत कहलाते हैं। जो पुस्तकें ईश्वरीय कहलाती हैं, वह इन्जील, बाइबिल और पवित्र पुस्तकों के नामों से विख्यात हैं। इस समय जो इन्जिलें ईश्वरीय मानी जाती हैं, वह गिनती में चार हैं। इन इन्जिलों में यसू मसीह के वह उपदेश लिखे हुए मिलते हैं, जिनका उन्होंने प्रचार किया था।

बहुधा ऐसा भी कहा जाता है कि इन्जिलों में पूर्ण रूप से वह सब कुछ नहीं लिखा गया; जिसकी यसू ने शिक्षा दी थी। यसू की शिक्षा की बहुत सी बातें उसी समय से स्मृति रूप में चली आ रही हैं। इन्जिलों को ईश्वरीय पुस्तक केवल इस कारण कहा जाता है कि उनमें यसू के उपदेश लिखे हैं। यसू ने यह कहा था कि मैं केवल उन्हीं बातों का प्रचार करता हूं, जो मैंने अपने बाप से सुनी थीं या उन बातों को कहता हूँ, जो मेरे बाप ने मुझे सिखलाईं थीं। केवल यही कारण है कि इन्जिलें ईश्वरीय पुस्तकें कहलाती हैं। इसके अतिरिक्त इन्जील को

ईश्वरीय पुस्तक कहने का और कोई विशेष कारण नहीं जान पड़ता। यह चारों इन्जिलें जो इस समय प्रचलित है, यह हैं—

(१) मती की इन्जील–St. Mathew–इसमें २८ अध्याय हैं।

(२) मरकस की इन्जील–St. Mark–इसमें १६ अध्याय हैं।

(३) लूका की इन्जील–St. Luke–इसमें २४ अध्याय हैं।

(४) युहन्ना की इन्जील–St. John–इसमें २१ अध्याय हैं।

आरम्भ में यह सब इन्जीलें इब्रानी भाषा में लिखी गई थीं। उनका फिर यूनानी भाषा में भाष्य हुआ। इसके पश्चात् अंग्रेजी आदि भाषाओं में भाष्य किया गया। इब्रानी और यूनानी भाषाओं वाली इन्जिलें तो इस समय मौजूद नहीं हैं। इन चारों इन्जिलों में अलग अलग ढंग से अधिकतर एक ही तरह की बातें लिखी गई हैं, किन्तु उनमें एक दूसरी से कुछ बातों में मतभेद भी पाया जाता है।

इन इन्जिलों में सबसे पुरानी इन्जील मरकस St. Mark की है। इसके पश्चात् लूका St. Luke की इन्जील लिखी गई। इसके पश्चात् मती की St. Mathew की इन्जील और सबके पश्चात् युहन्ना St. John की इन्जील लिखी गई थी।

चारों इन्जिलों का संक्षिप्त विषय यह है—

यसू की उत्पत्ति और १२ वर्ष की आयु तक की घटनाएँ। ३० वर्ष की आयु में अपने देश वापस आकर प्रचार करने, शिष्य बना कर इधर-उधर प्रचार के लिये भेजने, यसू का चमत्कार दिखलाने, पशु-पक्षियों की हत्या न करने, खतना न कराने, यसू को ईश्वर का इकलौता बेटा मनवाने और उनके साथ प्रेम रखने, सदाचारी बातों का वर्णन किए जाने, यसू के बंदी बनने, फाँसी पाने, कब्र में दबाने, मरने के पश्चात् जीवित हो जाने, शिष्यों से मिल कर बातचीत करने और फिर आकाश पर चढ़ कर ईश्वर के दाहिनी ओर बैठ जाने के विषय में उल्लेख पाए जाते है।

ऐसा प्रमाण भी मिलता है कि कुल इन्जिलें दूसरी शताब्दि में

लिखी गई थीं। उससे पहले कोई इन्जील लिखित रूप में नहीं थी। पहले तो ईसाई लोग यसू की शिक्षा को जबानी ही याद रखते थे और जबानी ही प्रचार किया करते थे। दूसरी शताब्दि में सबसे पहले लोगों से पूछताछ कर इन्जिलों को पुस्तक का रूप दिया गया था। अत. लूका की इन्जील में स्पष्ट रूप से यह लिखा है, "मैंने उचित समझा कि सब बातों का क्रम आरम्भ से ठीक ठीक पूछ करके उनको तेरे लिये क्रम से लिखूं"। (लूका, बा० १, आ० १-३) एक स्थान पर ऐसा भी लिखा है, "यदि हमारा झूठ ईश्वर के सच्चे गुणों को ज्ञात करता है, तो हम क्या कहें ? क्या यह कि ईश्वर अन्यायी है, जो विपत्तियाँ लाता ? (मैं यह बात मनुष्य की तरह कहता हूँ) कदाचित् नहीं, वरना ईश्वर क्योंकर संसार का न्याय करेगा ? यदि मेरे झूठ के कारण ईश्वर की सच्चाई से उसके तेज के वास्ते अधिक प्रकट हुई तो फिर क्यों पापी की तरह मुझ पर आज्ञा दी जाती है और हम क्यों बुराई न करें ताकि भलाई उत्पन्न हो, ? (पोलिस का खत रूमियों के नाम, बा० ३, आ० ५-७)

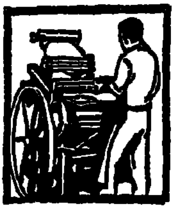
एक समय ऐसा भी आ चुका है कि जब १४ इन्जिलें ईश्वरीय पुस्तकें मानी जाती थीं। उन इन्जिलों में एक दूसरी से बहुत सी सैद्धान्तिक बातों में भिन्नता थी। वह इन्जिलें संदेह की दृष्टि से देखी जाती थीं। अतः उन इन्जिलों की जाँच और खोज करने के विषय में कई बार सभाएँ हुई, जिनमें उन सब इन्जिलों की वास्तविकता पर विचार किया गया। अंतिम सभा के निर्णय के पश्चात् यह वर्तमान चार इन्जिलें प्रामाणिक मानी गईं, और शेष सब रद्द कर दी गई थीं। जैरूम-Jerome ने पुराने अहदनामे और नये अहदनामे का लैटिन भाष्य किया था। यह भाष्य ही कैथोलिक सम्प्रदाय की बाइबिल कहलाता है। जैरूम के भाष्य को वल्गेट-Vulgate कहते हैं।

इन्जिलों के अतिरिक्त कुछ दूसरी अश्रुत पुस्तकें भी इस समय मौजूद हैं। वह बाइ[illegible] में सम्मिलित तो नहीं हैं किन्तु बाइबिल का पद अवश्य रखती हैं। उन पुस्तकों में ईसाई मत के आरम्भ के समय पर प्रकाश डाला गया है। क्लिमेन्ट-Clement ने भी बहुत से लेख लिखे थे वह लेख देखने योग्य हैं।

इन्जिलों की जाँच सभाएँ

इन्जिलों के श्रुत या अश्रुत, वास्तविक या अवास्तविक होने के विषय में कभी कभी ईसाइयो की बहुत सी जॉच सभाएं होती रहीं। उनमें से ६ सभाएं अधिक प्रसद्धि हैं। उन सभाओं में समस्त इन्जिलों की जो उस समय प्रचलित थी खोज की। उनकी सम्मित में जो जो इन्जील अश्रुत या नक़ली समझी गई उन को रद्द किया गया और अतिम सभा के निर्णय के अनुसार यह वर्तमान चार इन्जिलें ही प्रमाणिक मानी गई। इन्जिलों के अतिरिक्त तौरेत और जबूर में भी सूक्ष्म अध्ययन के पश्चात् काँट-छाँट की गई।

प्रथम सभा ३२५ ई० में नाइस शहर में हुई, दूसरी ३६४ ई० में टोडिसा सभा के नाम से बुलाई गई। तीसरी ३६७ ई० में कॉर्थेज सभा के नाम से बैठी। इस तीसरी सभा में बड़े बड़े पादरी और विद्वान सम्मिलित हुए। पिछली कुल सभाओं के निर्णय को फिर से जॉचा गया। इसके पश्चात् और भी कई सभाएँ अर्थात तिरलो. फ्लौरेन्स, तिरन्थ और बैसिल नामों से भिन्न भिन्न समय मे होती रहीं। इन सबके पश्चात् १५३० ई० में प्रोटैस्टैन्ट सम्प्रदाय वालों ने एक कमेटी बुलाई। उसमें तस्लीस के सिद्धान्त पर विशेषकर कई दिन तक बड़े जोर का वाद-विवाद चलता रहा, किन्तु कोई अन्तिम निर्णय न हो सका। उसके पश्चात् १८७० ई० में वैटिकन-Vatican में एक सभा हुई। इसमें भी कोई अन्तिम निर्णय न हुआ। कई एक सभाएं ईसाइयों के भिन्न भिन्न सम्प्रदायों को मिलाने के लिए भी होती रहीं। उनमे से स्टॉकहोल्म में सन् १९२० और सन् १९२५ ई० की सभाएँ अधिक प्रसिद्ध हैं। किन्तु यह सब सभाएँ किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुच सकीं और न ही समस्त ईसाई सम्प्रदायों को एक प्लेट फार्म पर ला सकीं।



ईसाई मत और बौद्ध मत की तुलना

यह बात हम पीछे कई बार कि ईसाई मत यहूदी मत का संशोधित रूप है, जिस पर बौद्ध धर्म का खोल चढ़ा हुआ स्पष्ट प्रतीत होता है। अतः पाठकों के निर्णय के लिये नीचे ईसाई मत और बौद्ध धर्म के कुछ सिद्धान्तों और रीति-रिवाजों की तुलना की गई है—

बौद्ध मत	ईसाई मत
(१) बौद्ध ग्रन्थ धम्मापद आदि में बहुत सी सदाचार सम्बन्धी बातें लिखी हैं।	(१) इन्जील में भी वह सब तो नहीं, किन्तु उनमें से बहुत सी वही सदाचार सम्बन्धी बातें पाई जाती हैं।
(२) बुद्ध देव ने अपने धर्म का आधार इन तीन बातों अर्थात् बुद्ध, धर्म और संघ पर रक्खा था।	(२) ईसाई मत ने भी अधिकतर इन तीन बातों अर्थात् पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा (तस्लीस-Trinity) के मानने पर जोर दिया।
(३) बुद्ध देव ने जाति-पांति आदि का विचार न करते हुए सबको गले लगाने का आदेश दिया।	(३) यसू ने भी इसी प्रकार लँगड़े लूले, कोढ़ी, अंगहीन और अधिक अंग वालों को धार्मिक संस्कारों में सम्मिलित होने की आज्ञा दी।
(४) बुद्ध देव ने अपनी शरण में आए हुए चोरों, डकैतों और दूसरे सभी प्रकार के दुष्टों को निर्वाण प्राप्त करा देने का आदेश दिया।	(४) यसू ने भी अपनी शरण में आए हुए चोरों, डकैतों और दूसरे सभी प्रकार के दुष्टों को यह निश्चय कराया, 'जो मुझ पर ईमान लाकर मेरा

भक्त बन जायेगा, मैं उसे अमर जीवन प्रदान करूंगा और उसकी सिफारिश अपने बाप से करूंगा'।

(५) बुद्ध देव ने जनता को यह शिक्षा दी कि ग्रहस्थ में रह कर ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है, वरन् घर-बार छोड़कर और संसार से मुंह मोड़ कर तथा भिक्षु बन कर ही निर्वाण प्राप्त हो सकता है।

(५) यसू ने भी इसी प्रकार लोगों को यह शिक्षा देकर कहा कि जिसको अमर जीवन प्राप्त करने की अभिलाषा हो, वह घर-बार छोड़कर और बीवी तथा बाल-बच्चे त्याग कर मेरा भक्त बन जाए।

(६) बुद्ध देव ने बहुत से भिक्षु तैयार करके इधर-उधर धर्म प्रचार के लिये भेजे।

(६) यसू ने भी उसी तरह अपने शिष्यों को इधर-उधर प्रचार के लिये जाने का आदेश दिया।

(७) बुद्ध देव ने अपने भिक्षुओं को सादा जीवन बिताने और एक विशेष प्रकार का चोगा पहनने तथा अपने पास बहुमूल्य सामान अर्थात् सोना-चांदी न रखने का आदेश दिया।

(७) यसू ने भी अपने शिष्यों को ठीक इसी प्रकार की शिक्षाएं देकर ऐसा ही लम्बा चोगा पहनने का आदेश दिया।

(८) बुद्ध देव ने सब प्राणियों पर दया करने और उनके साथ अहिंसा का व्यवहार करने की शिक्षा दी।

(८) यसू ने भी स्पष्ट शब्दों में यही उपदेश दिया कि मैं पशु-पक्षियों का वध नहीं चाहता, वरन् उन पर दया-दृष्टि रखना उत्तम समझता

हूँ।

(९) बुद्ध देव ने जब अपने धर्म प्रचार का निश्चय किया तो वह स्वप्न में सर्प से डर कर मोह जाल में फँसने लगे थे। उस मोह जाल से निकलने के लिये उन्होंने ४९ दिन का व्रत किया।

(९) जब यसू ने अपने मत के प्रचार करने का निश्चय किया तो उन्हें शैतान ने भ्रम मे डालने की चेष्टा की। तब उन्होंने उसके जाल से निकलने के लिये ४० दिन का उपवास रक्खा।

(१०) बुद्ध देव अपने धर्म मे सम्मिलित करने के लिये प्रथम स्नान कराकर दीक्षा-संस्कार (बप्तिस्मा) कराया करते थे।

(१०) यसू ने भी अपने मत में सम्मिलित करने के लिए बिल्कुल यही ढंग कायम रक्खा।

(११) भिक्षु बनने और संघ में सम्मिलित होने के लिये प्रत्येक पुरुष को प्रथम दस वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। इसके पश्चात् यदि उचित समझा जाता था तो संघ का सभासद बना लिया जाता था, नहीं तो निकाल दिया जाता था।

(११) ईसाई मत के प्रारम्भिक काल में ऐसा होता था कि जो ईसाई बनना चाहता था, प्रथम उसे सुनने वालों मे रक्खा जाता था इसके बाद परीक्षा लेकर उसे दीक्षा संस्कार अर्थात् बप्तिस्मा दिया जाता था। तब वह चर्च का सभासद हो जाता था। सभासदों के भी पद होते थे। एक साधारण सभासद और दूसरे विशेष सभासद। विशेष सभासद वह कहलाते थे जो पवित्र जीवन बिता कर उच्च कोटि की शिक्षा पाने के भागी बन जाते थे।

(१२) बौद्ध भिक्षु स्वास्तिक का चिन्ह पवित्र समझ कर हर समय अपने पास रखते हैं।

(१२) पादरी लोग सूली का चिन्ह यसू की स्मृति मे पवित्र समझ कर हर समय अपने पास रखते हैं।

(१३) बुद्ध देव के निर्वाण के पश्चात् उनके शिष्यों ने बुद्ध देव की मूर्ति की पूजा और उनकी भक्ति को धर्म का अंग समझ कर प्रचार किया और अपना एक अलग महायान पंथ बना लिया था।

(१३ इसी प्रकार ह० ईसा की मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयाइयों ने ह० ईसा और उनकी माता मरियम की पूजा और भक्ति को सम्मिलित करके अपना एक अलग रोमन कैथोलिक चर्च बना लिया था।

(१४) बौद्धों में अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा–Celibacy, सन्तों की यादगार—Relics, माला जपने—Rosary, घंटा बजाने और धूप आदि जलाने की प्रथाएं प्रचलित थीं।

(१४) कैथोलिक चर्च में भी यह प्रथाएं ज्यूँ की त्यूँ मौजूद हैं।

ईसाई सम्प्रदाय

ईसाई सम्प्रदायों का वर्णन करने से पहले हम उन देशों में ईसाई मत के प्रसार के विषय में कुछ अधिक प्रकाश डालना चाहते हैं—

रोमन लोग अपने महाराजा और महारानी को एक शक्तिशाली देवता मानकर उनकी पूजा किया करते थे। जब कुछ ईसाई रोमन राज्य में अधिक हो गये, तो उन्होंने उनकी और दूसरे देवताओं की पूजा करने तथा उनके सामने सिर झुकाने से इन्कार किया। उन्होंने सेना में भर्ती होकर लड़ने को बुरा कहा। वे कहते थे कि हमारे स्वामी यसु मसीह ने शत्रु के साथ लड़ने की जगह प्रेम और प्यार का व्यवहार करने को कहा है। इसलिये हम सेना में भर्ती होकर लड़ना अच्छा नहीं समझते।

रोमन लोग उनसे अप्रसन्न हो गये और उन्हें भाँति-भाँति के कष्ट देने लगे। महाराजा ने उनपर बहुत से प्रतिबन्ध लगा दिये। प्रतिबन्ध तोड़ने वाले को फाँसी का दंड दिया जाने लगा। बहुत से ईसाई मारे गये, बहुत से ईसाई मत छोड़ कर अपने पहले मतों में आ गये, केवल थोड़े बहुत शेप रह गये।

कुछ समय पश्चात् रोम के महाराजा डायूक्लेटियन-Dioclatian के समय में ईसाई मत ने फिर कुछ उभारा लिया। महाराजा ने उनको फिर दंड देने आरम्भ कर दिये। उनके गिर्जाघर तोड़े गये, उन की धर्म-पुस्तके जला दी गई, उन्हें जीवित ही अग्नि पर जलाया गया, उन्हें हिंसक पशुओं के आगे डाला गया। इस प्रकार के कष्टों के कारण उस समय ईसाई लोग नाम मात्र ही रह गये थे।

जब महाराजा डायूक्लेटियन बूढ़ा हो गया तो उसने सोचा कि मेरे पश्चात् रोमन राज्य का प्रबन्ध करने वाला कोई पुरुष दिखाई नहीं देता। अतएव उसने रोमन राज्य को कई भागों मे बाँट कर प्रत्येक भाग का अलग अलग राजा बना दिया। इंगलैंड वाले भाग का कॉन्सटेन्टाइन-Constantine को, इटली वाले भाग का मैक्सटेन्टाइन—Maxentine को और फ्रांस वाले भाग का गॉल Gaul को राजा

वना दिया। कुछ समय पश्चात् राजा मर गया। उसके मरते ही उन तीनों राजाओं में वैर-भाव उत्पन्न हो गया। वैर-भाव उत्पन्न होकर वे एक दूसरे के राज्य को हड़प करने के लिये तैयार हो गए। सन् ३१२ ई० में कॉन्सटेन्टाइन ने रोम पर आक्रमण कर दिया। मैक्सटेन्टाइन ने डट कर मुकाबला किया, किन्तु हार गया। यह युद्ध मिलवियन ब्रिज—Milvian Bridge के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार कॉन्सटेन्टाइन दूसरे राजाओं से भी लड़ा और उनका राज्य छीन लिया। इस प्रकार वह समस्त रोमन राज्य का महाराजा वन गया। लिखा है कि इसके हृदय में प्रथम कुछ ईसाई मत के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी, इसके पश्चात् उसकी यह श्रद्धा दिनों दिन वढती ही चली गई। अंत मे उसने वप्तिस्मा ले लिया और ईसाई वन गया। उसके ईसाई वनते ही समस्त ईसाइयों के समस्त कष्ट दूर हो गये। ईसाई मत ने अब खूब उभारा लिया। चारो ओर ईसाई मत का प्रचार और प्रसार कराया गया। जनता पर ईसाई मत ग्रहण करने के लिये अधिक जोर दिया गया। अत. थोड़े ही समय में समस्त रोमन राज्य ईसाई वन गया। रविवार—Sunday के दिन छुट्टि होने लगी। पादरियों का आदर सम्मान होने लगा। स्थान-स्थान पर गिरजाघर वनने लगे। रोम को छोड़ कर कुस्तनतुनिया को राजधानी वनाया गया। वहाँ एक वहुत ही विशाल गिरजाघर तैयार कराया गया। कुस्तुनतुनिया का पहले वाईजेन्टियम—Bygantium नाम था। राजधानी वन जाने पर उसी महाराजा के नाम पर कॉन्सटे-न्टिनोपल—Constantinopal रक्खा गया। जव तुर्कों ने कुस्तुनतुनिया को ईसाइयों से छीन लिया तो इसका नाम वदल कर अस्तम्बोल रख दिया गया था। इसको नया रोम भी कहते हैं। महाराजा कॉन्सटेन्टाइन को ईसाई लोग मोक्ष दाता भी कहते हैं।

नास्तिक—Gnostic—जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है कि ईसाई मत के आरम्भिक काल में रोमन राज्य मे कुछ ऐसे लोग भी रहते थे जो ईश्वर की सत्ता से इन्कार करते हुए मूर्तिपूजा से घृणा करते थे। जव महाराजा कान्सटेन्टाइन के समय में वह लोग भी ईसाई वना लिये गये तो ईसाई हो जाने पर भी उनके वही पुराने विचार रहे। उनका संक्षेप मे यह सिद्धान्त था—

'ईश्वर कोई वस्तु नहीं है और न ही वह किसी प्रमाण से सिद्ध

होता है। यह संसार स्वयं बन गया है। इसके बनाने और बिगाड़ने वाला कोई नहीं है। मूर्ति पूजा अच्छी बात नहीं है। खोज पर खोज करने से ज्ञान की उन्नति होती है। अच्छा चरित्र बनाने से हृदय में शान्ति उत्पन्न होती है। उनका यह भी कहना था कि ह० ईसा न पैदा हुए, न सूली पर चढ़ा कर मारे गए और न ही मुर्दों में से जीवित हो कर ऊपर आकाश में चढ़े। इस प्रकार की सब बातें मन-घड़न्त हैं। यदि यह मान भी लिया जाए कि ह० ईसा पैदा हुए, सूली पर चढ़ा कर मारे गए और फिर जीवित होकर आकाश पर चढ़ गये तो उस दशा में उन को एक साधारण मनुष्य से कुछ बढ़ा हुआ कह सकते हैं। यह नहीं कि वह ईश्वर थे या ईश्वर के बेटे थे। इसके अतिरिक्त यदि ईश्वर की सत्ता मान भी ली जाए तो तीन ईश्वर कदाचित् नहीं हो सकते। अर्थात एक ईश्वर, दूसरे ईश्वर का बेटा यसू मसीह और तीसरे पवित्र शक्ति।

यह लोग हर बात को दार्शनिक ढंग से सोचने-समझने पर जोर दिया करते थे। उनका यह कहना था कि जो बात विद्या और ज्ञान से सिद्ध न हो, उसको कदाचित् न मानना चाहिये। वह लोग ज्योतिष, जादू, जन्त्र और तन्त्र पर भी विश्वास करते थे। उन लोगों में कुछ लोग वैरागी और सन्यासी बन कर भिक्षुओं जैसा जीवन बिताने में शान्ति समझते थे। वह शरीर को अधिक कष्ट देकर तपस्या करने में मुक्ति का रहस्य मानते थे। ऐसे लोग स्त्रियों से अलग रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन किया करते थे। इन नास्तिक ईसाइयों ने ईसाई मत के विषय में बहुत सी पुस्तकें लिखी थी जिनको ऐपोक्राइफा—Apocrypha कहते हैं। उनमें ईसायत के आरम्भिक सिद्धान्त पाए जाते हैं। वह सिद्धान्त वर्तमान इन्जील और दूसरी ईसाई मत की पुस्तकों से बहुत सी बातों में भिन्न हैं। क्योंकि कैथोलिक चर्च वाले उन पुस्तकों को प्रमाणिक नहीं मानते।

उन नास्तिक ईसाइयों के समय में जो दूसरे आस्तिक ईसाई थे। वह कैथोलिक Catholic कहलाते थे। उन आस्तिक और नास्तिक ईसाइयों के आपस में बहुत से शास्त्रार्थ हुए। उनमें अधिकतर भेद-भाव तसलीस–Trinity के सिद्धान्त पर था। उन शास्त्रार्थों में इस प्रकार के प्रश्न किए जाते थे–ईसा का ईश्वर से क्या सम्बन्ध है?

पवित्र शक्ति—Holy Ghost क्या वस्तु है और उसका हमसे क्या सम्बन्ध है? ईस्टर का त्यौहार मनाने पर भी उनमें मत-भेद था। कुछ ईसाइ इस त्यौहार को किसी ऋतु में और कुछ दूसरी ऋतु मे मनाया करते थे। इन मत-भेदों के बढ़ जाने से उनमें प्राय. लड़ाई-झगड़े, रक्त-पात और संघर्ष आदि होते रहते थे।

महाराजा कॉन्सटेन्टाइन ने ईसाइयों के इन झगड़ों को सुलझाने के लिये ३२५ ई० में कुस्तुनतुनिया के निकट नाइस–Nicea स्थान पर एक सभा बुलाई थी। उस सभा ने यह निर्णय दिया था कि ईस्टर का त्यौहार पूर्णमासी के पश्चात् पहले रविवार के दिन वसंत ऋतु मे मेष की संक्रान्ति को मनाना चाहिये। तस्लीस के सिद्धान्त के विषय मे यह तय किया था—

ईश्वर वह है जो सबका स्वामी और धारण करने वाला है। यसू उसका इकलौता बेटा है जो सबके लिये पैदा हुआ और सबके लिये मरा तथा जो फिर जीवित होकर आकाश पर चढ़ गया। वह अपने बाप की दाहिनी ओर जा बैठा। वह प्रलय के पश्चात् निर्णय के दिन–Day of Judgement पृथ्वी पर उतरेगा और सबको कर्मानुसार फल देगा। पवित्र शक्ति वह है जो मनुष्य को ईश्वर की तरह शुभ-कार्य करना सिखाती है।

सभा के इस निर्णय पर सभी बड़े-बड़े पादरियों ने हस्ताक्षर कर दिये। किन्तु एक बूढ़े पादरी ऐरियस–Arius ने इस फैसले को मानने से इन्कार कर दिया। उसके इंकार करने पर और भी बहुत से ईसाइयों ने इकार कर दिया। इस सभा में भी कोई अन्तिम निर्णय न हो सका। फिर लड़ाई-झगड़े और संघर्ष होने लगे। अन्त में महाराजा ने यह कानून जारी किया कि जो कोई तस्लीस के सिद्धान्त को मानने से इंकार करेगा, वह जान से मारा जायेगा। इस कानून के लागू हो जाने पर बहुत से ईसाई तस्लीस के सिद्धान्त की सचाई से इकार करने से फॉसी पर लटकाए गये और फिर आगे चलकर युनिटेरियन–Unitarian सम्प्रदाय वाले खूब सताए गए।

ग्रीक और लैटिन चर्च

रोमन लोगों के साथ दूसरी जातियों के लड़ाई-झगड़े रहने के

कारण रोमन राज्य दो भागों में विभाजित हो गया था। एक पूर्वी भाग और दूसरा पश्चिमी भाग। पूर्वी भाग में मिश्री भाषा और पश्चिमी भाग में लैटिन भाषा बोली जाती थी।

पूर्वी भाग की राजधानी कुस्तुनतुनिया थी। इस भाग में मिश्रियों के अतिरिक्त आरमेनियन, सीरियन और अथोपियन भी रहते थे। उनकी भाषाएं अलग अलग थीं। वह न तो मिश्रियों की भाषा को और न ही उनके चर्च को पसन्द करते थे। इस पूर्वी भाग में मिश्रियों ने जो अपना अलग चर्च बनाया, उसका नाम ग्रीक चर्च रक्खा। ग्रीक चर्च वालों को ऑर्थोडोक्स Orthodox भी कहते हैं। उनका कहना था कि ईसा की सच्ची और अच्छी शिक्षा केवल यही चर्च देता है।

पश्चिमी भाग वालों ने पूर्वी भाग वालों की देखा-देखी लैटिन नाम का चर्च स्थापित कर लिया था। इस चर्च वालों को रोमन कैथोलिक कहते हैं। आगे चल कर ग्रीक चर्च और लैटिन चर्च में भी भीतरी तौर पर कुछ मतभेद उत्पन्न हो गए। उन दोनों के भी अलग अलग कई चर्च बन गए थे। रोमन कैथोलिक के इंगलिश या एंगलो कैथोलिक इत्यादि और लैटिन चर्च के ग्रीक ऑर्थोडोक्स और रशियन ऑर्थोडोक्स प्रतिष्ठित हो गए थे। यह सब चर्च आज तक चले आ रहे हैं।

उन रोमन कैथोलिक और ऑर्थोडोक्स में कुछ मतभेद उत्पन्न हो गए थे। कैथोलिक पादरी बिना दाढ़ी के होते थे और वह शादी नहीं कराया करते थे। आर्थोडोक्स वाले पादरी लम्बी दाढ़ी रखते थे और वह शादी भी कर सकते थे। कैथोलिक वाले यह मानते थे कि जो ईसाई नहीं है उसको पवित्र शक्ति Holy Ghost उतर कर उपदेश नहीं करती। ईसाई पर जो पवित्र शक्ति आती है, वह ईश्वर के इकलौते बेटे यसूमसीह से आती है। ऑर्थोडोक्स कहते थे कि प्रत्येक मनुष्य पर ईश्वरीय शक्ति आती है और वह ईश्वर की ओर से आती है, यसूमसीह की ओर से नहीं। इसके अतिरिक्त उनमें तस्लीस के सिद्धान्त पर भी मतभेद था। इन मतभेदों के कारण उनमे बहुधा लड़ाई-झगड़े, रक्तपात और संघर्ष रहता था।

ग्रीक चर्च ने रूस और बल्गारिया इत्यादि देशों मे अपने चर्च

का प्रचार किया। लिखा है कि रूस के महाराजा विलाडी मीर प्रथम Valadimir I के राजदरबार में प्रथम मुसलमानों ने जाकर अपनी धार्मिक विशेषताएं प्रकट कीं और स्वर्ग के सुख-ऐश्वर्य की ओर ध्यान दिलाया। किन्तु महाराजा ने यह कह कर मुसलमान बनने से इन्कार कर दिया कि जब मैं इस संसार में शराब पीना अच्छा नहीं समझता तब फिर स्वर्ग में जाकर शराब पीना कैसे पसन्द कर सकूंगा। इसके पश्चात् यहूदियों ने उसे यहूदी मत ग्रहण करने को कहा, किन्तु उन्हें भी यह कह कर इन्कार कर दिया कि संसार में तुम्हारा अपना कोई देश नहीं है। इसलिये मैं यहूदी नहीं बनूंगा। इन सबके पश्चात् ग्रीक चर्च वालों ने महाराजा को अपने सिद्धान्त समझाए। महाराजा की समझ में वह सिद्धान्त आ गये और वह ईसाई बन कर ग्रीक चर्च में सम्मिलित हो गया। महाराजा ने ईसाई बन कर सारे देश में ईसाई मत के फैलाने का ज़ोर के साथ काम आरम्भ कर दिया। ६८८ ई० तक समस्त रूस ईसाई बना लिया गया। कुछ समय पश्चात् रूस ने ग्रीक चर्च से अलग होकर अपना अलग चर्च रशियन चर्च के नाम से स्थापित कर लिया और ज़ार-Czar स्वयं रशियन आर्थोडोक्स चर्च का नेता बन गया। समस्त रूस देश में बड़े-बड़े विशाल गिरजाघर बनाए गए। उन गिरजाओं में-अथाह धन इकट्ठा होता चला गया। उस धन को पादरी लोग राग-रंग में उड़ाने लगे। २०वीं शताब्दि में जब बाल्शेविक ने राजकार्य सम्भाला तो समस्त गिरजाओं का धन लूटा गया, पादरियों का वध किया गया। इस प्रकार रूस से ईसाई मत को समाप्त किया गया।

ग्रीक चर्च वालों ने रोमन राज्य के पूर्वी भाग में फैल कर बहुत से गिरजाघर बनाए। उन्होंने इस भाग से सीरियन ईसाइयों को निकाल कर बाहर कर दिया। वहां से सीरियन परशिया में चले आए। परशिया मे आकर उन्होंने लोगों को ईसाई बनाया। सन् १६१४ ई० के विश्व-युद्ध में उन सीरियन लोगों को परशिया से निकाल दिया गया, तब वह अमेरिका में जाकर बस गए।

पूर्वी भाग के राजा जसटीनिअन-Justinian ने एक यह कानून बना दिया था कि जो तस्लीस के सिद्धान्त और बप्तिस्मा संस्कार में विश्वास नहीं करेगा, वह जान से मारा जायेगा। अतः इस कानून

के आधीन बहुत से ईसाई मौत के घाट उतारे गए। रशियन चर्च वालों की इस समय भी काफी संख्या है।

सातवीं शताब्दि में इस्लाम का प्रचार और प्रसार आरम्भ हुआ। मुसलमान तलवार और क़ुरान हाथ में लेकर लोगों को मुसलमान बनाने पर तैयार हो गए। उन्होंने लोगों से यह कहना आरम्भ किया कि ईश्वर और उसके अन्तिम पैगम्बर ह० मुहम्मद तथा क़ुरान पर विश्वास करके मुसलमान बन जाओ, वरना जजिया (एक प्रकार का कर) अदा करो। यदि इन दोनों बातों में से कोई बात स्वीकार नहीं करोगे तो जान से मारे जाओगे।

रोमन राज्य में इस्लाम ने शीघ्र ही अपने पैर जमा लिये। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि आरमीनियन, सीरियन और अथोपियन जाति के लोगों को मिश्रियों ने बहुत अधिक तंग कर रक्खा था। वह मुसलमानों को जजिया देकर उनकी सुरक्षा में रहने पर तैयार हो गए। वह मुसलमानों की हर प्रकार से सहायता करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि मुसलमानों ने फिलिस्तीन, मिश्र, उत्तरी अफ्रीका, स्पेन और पुर्तगाल जीत लिये और वहां इस्लाम का डंका बजने लगा। मुसलमान फ्रांस की सीमा तक भी पहुंच गए, किन्तु ईसाइयों ने एकत्रित होकर उन्हें वहीं रोक दिया और फिर वह आगे न बढ़ सके। मुसलमानों ने रोमन राज्य को छिन्न-भिन्न करना आरम्भ कर दिया। ईसाइयों के गिरजाओं को तोड़ा जाने लगा। गिरजाओं में जो ह० ईसा उनकी माता मरियम, सेन्ट पॉल, सेन्ट जैरूम, सेन्ट ओगस्टीन इत्यादि महापुरुषों की मूर्तियां रक्खी थीं, उन्हें तोड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया। बहुत से गिरजाओं की मस्जिदें बना दी गई।

सन् १४५३ ई० में तुर्कों ने समस्त पूर्वी रोमन राज्य को जीत लिया। वहां पर दिल खोल कर इस्लाम का हर विधि से प्रचार किया गया। कुस्तुनतुनिया का प्रसिद्ध गिरजा फिर मस्जिद में बदल दिया गया। इस समय वह गिरजा अजायब घर के रूप मे बरता जा रहा है। ईसाइयों और मुसलमानों में बहुत से धार्मिक युद्ध हुए। जीतों हुओं ने हारे हुओं से अपने मत के सिद्धान्त मनवाए। इन युद्धों में असंख्य मनुष्य मारे गए। भाँति-भाँति के अत्याचार किए गये। इन सब घटनाओं से इतिहास भरा पड़ा है।

पश्चिमी रोमन राज्य पर हब्शियों, मूर्तिपूजकों-Pagan और ईसाइयों ने आक्रमण पर आक्रमण करके इस राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया था। उन्होंने अपने अलग अलग राज्य स्थापित कर लिये थे। गोत्स Goths और फ्रैंक्स-Franks ने फ्रांस में गोत्स और लम्बार्ड-Lambard ने इटली मे एंगिल्स-Angles और सेक्सन्स-Saxons ने इंगलैंड मे अपने अपने राज्य बना लिये थे।

रोम के पोप ईसाई भिक्षुओं, पादरियों और मिश्नरियो ने समस्त योरुप को ईसाई बनाने का बीड़ा उठाया। चुनाचे आयरलैंड को सेन्ट पेट्रिक St. Patrick ने ईसाई बनाया और फिर स्कॉटलैंड में आकर ईसाई बनाने का काम आरम्भ किया। स्कॉटलैड के पश्चात् इंगलैड के लोगों को ईसाई मत के लोगों में सम्मिलित किया गया। नवीं शताब्दि में इंगलैंड के राजा एल्फ्रेड-Alfred के समय में पुराने अहदनामे और नये अहदनामे का अंग्रेज़ी भाषा मे अनुवाद कराया गया। आर्च बिशप ऑफ कन्टर बरी-Arch Bishop of Conterbury नियुक्त किया गया। सेन्ट मोर्टिन-St. Martin ने फ्रॉस को ईसाई बनाया। जर्मनी को ईसाई बनाने में विनिफ्रेड Winifred का विशेष हाथ था। इन सब देशों में ईसाई मत से पहले मूर्तिपूजक लोग रहते थे। जहॉ ईसाई बनाने मे मिश्नरियों ने प्रचार के द्वारा काम किया, वहॉ ईसाई राजाओं ने भी लोगों को ज़बरदस्ती ईसाई बनाने में योग दिया। कहॉ तक कहा जाए नवीं शताब्दि से लेकर १२वीं शताब्दि तक नार्वे, पोलैंड, हालैंड, डेन्मार्क इत्यादि सभी योरुपियन देश ईसाई मत ग्रहण कर चुके थे। ईसाई मत के प्रचार से बहुत से युद्ध हुए, बहुत से लोगों का वध किया गया और बहुत ही अत्याचार किए गए। इतिहास इन सब घटनाओं का साक्षी है।

फ्रांस के महाराजा पीपिन-Pippin ने रोम के पोप की समस्त ईसाइयों पर प्रधानता स्थापित की। पोप को राज्य करने का अधिकार भी दिया गया। अतः इटली में रोम के पोपों का ७५४ ई० से १८७० ई० तक पूर्ण राज्य स्थापित रहा। समस्त योरुपियन राजा पोप के हाथों खेल रहे थे। पोप की आज्ञा के विरुद्ध कोई कान तक न हिला सकता था। समस्त गिरजाओं के पादरी भी पोप के आधीन समझे जाते थे। पादरियो को राजकार्यों मे बाधा डालने का पूरा अधिकार था। कोई

राजा पादरी की इच्छा के विरुद्ध विवाह तक भी नहीं कर सकता था।

गिरजाओं में बहुत धन-दौलत एकत्रित हो गई थी। भूमि कर और दूसरे कर भी जनता से पादरी ही वसूल कराते थे। राजाओं के लिये राज-कार्य चलाना बड़ा कठिन हो रहा था। अत. उन राजाओं ने पादरियों से वह सब अधिकार स्वयं सम्भालने चाहे। इसमें राजाओं और पोप तथा पादरियों में संघर्ष उत्पन्न हो गया। पादरी कहते थे कि हम पोप के आधीन हैं। राजा का हम पर कोई अधिकार नहीं है। पोप ने जर्मन पादरियों के नाम यह आज्ञा प्रसारित करदी थी कि जर्मन पादरी जो विवाहित हैं, वह अपनी स्त्री और बच्चों को छोड़ दें। इस पर जर्मनी का राजा और वहाँ के सब पादरी पोप के विरुद्ध हो गए।

जर्मनी के महाराजा हेनरी चतुर्थ-Henry IV का पोप गिरि-गोरी सप्तम-Greygory VII के साथ युद्ध हुआ। महाराजा की हार हुई और वह जनवरी सन् १०७७ ई० में पोप से क्षमा चाहने के लिए स्वयं इटली पहुंचा। वह तीन दिन तक पोप के दरबार में खड़ा रहा, पोप ने उसे क्षमा कर दिया। किन्तु इसके कुछ समय पश्चात् उस महाराजा ने पोप पर पुन. आक्रमण कर दिया। पोप हार गया। उसके स्थान पर दूसरा पोप महाराजा ने स्वय नियुक्त किया उस नए पोप और महाराजा में यह तय हुआ कि भविष्य में समस्त पादरी अविवाहित रहेंगे। पादरी लोग महाराजा और पोप दोनों के आज्ञाकारी होंगे। अत. उसी समय से कैथोलिक पादरी अविवाहित चले आ रहे हैं।

कैथिड्रल-चर्च और कैनन लॉ— Cathedral Caurch and Cannon Law. सेन्टपाल ने एक बार यह कहा था कि ईसाइयों को चाहिये कि वह अपने अभियोग सरकारी न्यायालयों में न ले जाएं, वरन् उन अभियोगों को पादरी स्वयं ही निमटाएं। सेन्ट-पाल की इस आज्ञानुसार ईसाइयों ने अपने अभियोगों का निर्णय करने के लिये अलग गिर्जाघर बनवाये थे, जिन्हें कैथिड्रल चर्च कहते हैं। कैथिड्रा-Cathdra वह कुर्सी कहलाती थी, जिस पर बैठ कर पादरी अभियोगों का निर्णय किया करता था। उस कुर्सी पर एक कबूतर की मूर्ति बनी हुई हुआ करती थी, जिसके अर्थ यह समझे जाते थे कि

पवित्र शक्ति-Holy Ghost न्याय करते हुए पादरी की सहायता करती है। अभियोगों का निर्णय करने के लिये पादरियों ने कुछ विधान भी बनाया था जिसे कैनन ला कहते हैं।

जर्मनी के राजा हेनरी चतुर्थ और उसके नियुक्त किये हुए पोप में यह भी तय हुआ था कि पादरी लोग ईसाइयों के कुल अभियोगों का निर्णय नहीं किया करेंगे, वरन् उन्हे विधवाओं, अनाथों और विवाह सम्बन्धि अभियोगों पर निर्णय देने का अधिकार होगा। शेष सभी अभियोग सरकारी न्यायालय में तय हुआ करेंगे। यदि कोई पादरी कोई अपराध करेगा, तो उसे सरकारी न्यायालय से साधारण मनुष्य की भाँति दंड मिल सकेगा।

कुछ समय तक इस सन्धि के अनुसार कार्य होता रहा। तेरहवीं शताब्दि में पोप इन्नोसेन्ट तृतीय Innocent III ने उस सन्धि को तोड दिया। उसने अपने को सेन्ट पीटर का उत्तराधिकारी कहते हुए लोगों पर अपना पूर्ण प्रभाव स्थापित कर लिया। अब लोग फिर पोप के शब्दों को अटल समझने लगे। किसी मनुष्य को राजा बना देना या राज्य से वंचित कर देना पोप के हाथ में था। योरुप के समस्त राजा प्रति वर्ष पोप के पास एक गहरी रकम उपहार (भेट) के रूप मे भेजा करते थे।

उस पोप ने योरुप के समस्त राजाओं के नाम यह आज्ञा जारी की थी कि सब राजा मिलकर मुसलमानों के साथ युद्ध करने के लिये तैयार हो जायें। उन्हें योरुप के प्रत्येक भाग से निकाल बाहर करें। फिलिस्तीन की पवित्र भूमि, जहाँ यसू मसीह पैदा हुए तथा मारे गये, उन शत्रुओ से खाली कराले। मुसलमानों ने जिन ईसाइयों को मुसलमान बना लिया है, उन्हे फिर ईसाई बना लिया जाये। जो गिरजाघर मुसलमान स्तबल के रूप में बरत रहे हैं या जो मस्जिदो में बदल दिये गए हैं, वह सब उनसे खाली कराए जाए। इस आज्ञा के जारी होते ही योरुप के समस्त राजा वैर-भाव त्याग कर एक हो गए। सन् १०९९ ई० में योरूशलम मुसलमानों से वापिस लिया गया। मुसलमानों का रक्त बड़ी निर्दयता से बहाया गया। बहुत से लोगों को ईसाई बनाया गया। इसके कुछ समय पश्चात् तुर्कों ने आक्रमण करके फिलिस्तीन को फिर ईसाइयों से छीन लिया। इन युद्धो में एक ने दूसरे के साथ

जो अत्याचार किये उनसे इतिहास भरा पड़ा है। यहाँपर उनके दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

रोमन कैथौलिक—Roman Catholic—जाँच करने से ऐसा पता चलता है कि हम ईसा की वास्तविक शिक्षा इस वर्तमान ईसाई मत की शिक्षा से बहुत सी बातों मे भिन्न थी। सन् १५० ई० के लगभग ईसाई लोग ज्ञान मार्ग को छोड कर यह कहने लगे थे कि ज्ञान प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वरन् श्रद्धा और विश्वास ही प्रर्याप्त है। उनकी रुचि भक्ति मार्ग की ओर अधिक होती जा रही थी। इसका परिणाम यह हुआ कि पादरियों का प्रभाव बढ़ता चला गया। ईसाई लोग पादरियों के शब्दो को अटल समझने लगे। ज्ञान की समाप्ति होती चली गई और लोग अन्धविश्वास में फंसते चले गए। इसी प्रकार होते होते मूर्ति-पूजा का रिवाज प्रचलित हो गया। सबसे पहले ईसा की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा शुरू की गई। चौथी शताब्दि में उनकी माता मरियम की मूर्ति बना कर उसकी पूजा आरम्भ करदी गई। इसके पश्चात् सेन्ट पाल, सेन्ट पीटर और सेन्ट जेम्स इत्यादि की प्रतिमाएं बना कर गिरजाघरों मे रखदी गई। ईसाइयों में यह विश्वास होता चला गया कि इन महापुरुषों की पूजा से हर प्रकार का सुख प्राप्त होता है और समस्त क्लेश दूर हो जाते हैं। यह महापुरुष सबकी मनोकामनाएं पूर्ण करते हैं। इन महापुरुषों मे भाँति भाँति के चमत्कार दिखाने की शक्ति पर विश्वास किया गया। यह बात याद रहे कि ह० ईसा और उसके शिष्यों का आरम्भ का कोई चित्र न था। इस समय जितने चित्र या प्रतिमाएँ उपस्थित है, वह उनके मरने के बहुत समय पश्चात् अनुमान से बनाई गई थीं।

सबसे पहला गिरजा सन् २५२ ई० में दूरा-Dura शहर मे यहूदियों के हैकिल (मन्दिर) के ही आकार-प्रकार पर बनाया था। यह गिरजाघर इस कारण बनाया था ताकि सन्त-Saint लोग वहाँ एकत्रित होकर धर्म सम्बन्धी बातों पर विचार किया करे। किन्तु जब आगे चल कर मूर्ति-पूजा का रिवाज प्रचलित होता चला गया तो गिरजाघर भी काफी संख्या मे बनते चले गये और वह सब मूर्तियों से भर दिए गए। प्रति दिन प्रातः और सायंकाल ईसाई लोग गिरजाओं में जाने लगे।

रविवार के दिन को अधिक महत्व दिया जाने लगा। इस दिन के विषय में उनकी यह श्रद्धा होगई कि उस दिन ह० ईसा मुर्दों में से जीवित हो कर अपने शिष्यों से मिले थे और उनके साथ खाना खाया था।

रोम का पोप सेन्टपटिर का उत्तराधिकारी माना जाने यगा। पोप के विषय में उनकी ऐसी श्रद्धा हो गई कि वह किसी के भी पाप क्षमा कर सकता है। पोप ईसाइयों के पापों को क्षमा करके और उन्हें स्वर्ग के प्रमाण पत्र दे देकर उनसे मोटी रकमें प्राप्त करने लगे। पापों के क्षमा करने की यह विधि निश्चित की गई कि जो व्यक्ति अपने पाप क्षमा कराकर स्वर्ग में जाना चाहे तो प्रथम उसे स्वयं अपने पापों पर पश्चाताप करना चाहिए। इसके पश्चात टाट के कपड़े पहन कर और माथे पर राख मलकर गिरजा घर में सभा के सामने अपने पापों का पश्चाताप करना चाहिए। इस संस्कार को कन्फैशन एन्ड पीनैन्स—Confession and Penance कहते हैं। इसके पश्चात् सभा में जाने की आवश्यकता को बंद करके केवल पादरी के पास जाकर स्वीकृति और पश्चाताप कर लेना ही पर्याप्त समझा जाने लगा।

दूसरी शताब्दी से तेहरवीं शताब्दी तक कैथौलिक सम्प्रदाय की विचार-धारा का काफी जोर चलता रहा। सारे योरुप में अज्ञानता छा गई। इस समय में ज्ञान की कोई विशेष वृद्धि न हुई और लोग अन्ध-विश्वासी बनते चले गये। इस समय को इतिहास में अन्ध युग-Darkage कहते हैं।

कैथौलिक सम्प्रदाय वाले और सिद्धान्तों के अतिरिक्त नीचे लिखी हुई बातों को भी विशेष रुप से मानते हैं—

ईश्वर के सामने यसू मसीह हमारी सिफारिश करेगा और यदि वह अप्रसन्न होगा तो उसकी माता मरियम अपने इकलौते बेटे यसू से हमारी सिफारिश करायेगी, क्योंकि मरियम को सब अमीर-गरीब और अच्छे बुरे प्यारे हैं।

इस सात संस्कारों-Sacraments का मानना अति आवश्यक है-

(१) बप्तिस्मा लेना—यह आयु में केवल एक बार होता है।

(२) ईमान का पक्का करना—यह गिरजाओं में सम्मिलित होने मे होता है। बच्चे के माथे पर पादरी अपने अंगूठे से सूली का चिन्ह बनाता है। यह भी आयु में एक बार होता है।

(३) पादरी के सामने पापों की स्वीकृति करके भविष्य में पाप न करने का वचन देना। पापों की क्षमा आयु में चाहे जितनी बार हो सकती है।

(४) चोरी इत्यादि का माल यदि खर्च न हुआ हो तो वापस करना, अच्छे और दया के कार्य करना तथा पवित्र स्थानों की यात्रा करना।

(५) पादरी बनने का संस्कार-Ordination भी आयु में एक ही बार होता है।

(६) विवाह संस्कार-यदि दोनों में से कोई मर जाए तो पुन विवाह हो सकता है।

(७) मरते समय अन्तिम मालिश करना-Extreme unction is an anointing given to the dying.

ब्रह्म भोज या लार्डस सपर-Lord's Supper अर्थात् मैस Mass-

यसू ने, जिस रात को वह पकड़े गये और ईश्वर का धन्यवाद करके रोटी ली और उसे तोडकर कहा, यह मेरा शरीर है, जो तुम्हारे लिये है। मेरी स्मृति के लिये यही किया करो। इसी प्रकार उसने खाने के बाद प्याला भी लिया और कहा कि यह प्याला मेरे रक्त में नया प्रण है। जब कभी पिओ, मेरी स्मृति के लिये यही किया करो। क्योंकि जब कभी तुम यह रोटी खाते और इस प्याले में से पीते हो तो खुदावंद (यसू) की मृत्यु को प्रकट करते हो। (पोलिस का क्रन्थियों के नाम प्रथम खत, बा० ११, आ० २५-२६) यह मैस या ब्रह्म भोज का संस्कार कैथौलिक चर्च वाले इसी घटना की स्मृति में मनाते हैं। यह संस्कार धन्यवाद करने के लिये किया जाता है।

प्रथम लैटिन भाषा में कुछ स्तुति और प्रार्थना की जाती है,

इसके पश्चात् धन्यवाद किया जाता है। फिर रोटी के टुकड़े खाने और शराब के पीने का संस्कार किया जाता है। ईसाई मत के आरम्भ काल में कैथौलिक गिरजाघर में इकट्ठे होकर पेट भर खाना खाया करते थे, किन्तु जब यह देखा गया कि खाना बहुत अधिक खर्च होता है तो रोटी का टुकड़ा और कुछ शराब पी जाने लगी।

कैथौलिक सम्प्रदाय वाले इन पाँच बातों के मानने पर अधिक जोर देते हैं—

(१) ईश्वर को धन्यवाद दो। (२) कबूतर की मूर्ति के सामने हाथ जोड़ कर पवित्र शक्ति माँगो। (३) अपने कर्मों पर ध्यान दो। (४) अपने पापों का यसू की मूर्ति और सूली के चिन्ह (Cross) के सामने हाथ जोड कर पश्चाताप करो। (५) कुछ न कुछ कार्य अवश्य करते रहो।

इस सम्प्रदाय वाले कहते हैं कि ईश्वर एक बार बोलता है, फिर छिप जाता है और वह पोप को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर देता है, ताकि वह उनकी आज्ञाओं का प्रचार करे। पोप उस समय तक ईश्वर की आज्ञाओं की पूर्ति नहीं कर सकता, जब तक राज्य में उसका हाथ न हो। पोप भूल न करने वाला और पूर्ण विश्वसनीय है।

रोमन कैथौलिक गिरजाओं मे स्तुति और प्रार्थना बाजे के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल और सायकाल होती है। रोमन कैथौलिक चर्च ने बहुत से संत भी उत्पन्न किये। सन्त थॉमस St. Thomas, ने अपनी पुस्तक इमिटेशन. आफ क्राइस्ट–Imitation of christ में लिखा है कि ईश्वर प्राप्ती की विधि यह है कि मनुष्य सांसारिक सुख और चैन छोड़ कर अपने आप को पहचाने तथा अपनी सत्ता को भूलकर उसकी खोज में लग जाये, तो वह उस को अवश्य मिल जायेगा।

कैथौलिक चर्च वालो की संख्या इस समय भी दूसरे सब ईसाई सम्प्रदायों की अपेक्षा बहुत अधिक है। इस संम्प्रदाय वाले वाद-विवाद

से कतराते है और पोप की सम्मति को ही अधिक महत्व देते हैं।

क्रैथरी सम्प्रदाय–Cathori–कुछ ईसाई, मुसलमानों और ईसाइयों के युद्धों से तंग और निराश होकर रण भूमि से वापस आकर दक्षिणी फ्रांस में रहने लगे थे। उन्होंने अपनी यह विचार-धारा बना ली थी–यह संसार बहुत बुरा है, शरीर नाशवान है युद्धो में कभी सम्मिलित न होना चाहिये और न कभी किसी पशु-पक्षी की हत्या ही करनी चाहिए। शरीर बुराइयों से भरा हुआ है, इसलिये उसकी कोई मूर्ति नहीं बनानी चाहिये। विवाह कराना भी अच्छा नहीं है। सूली (Cross) का चिन्ह कोई पवित्र चिन्ह नहीं है। जो मनुष्य निर्दोष और पवित्र बनना चाहे, उसे चाहिये कि अपने शरीर को जितना शीघ्र हो सके समाप्त करदे। क्योंकि जितने अधिक दिन तक वह जीवित रहेगा उतना ही पापी बनेगा। इस सिद्धान्त को अपना कर उनमें से बहुत सों ने आत्मघात कर लिया। वह यह भी कहते थे कि कैथौलिक चर्च चोर और बदमाशों का एक अड्डा है, पोप नका उनेता है, पोप पितरस–Peter का उत्तराधिकारी नहीं है, वरन् कॉन्सटेन्टाइन राजा का अनुयायी है।

थोड़े ही समय मे उनकी संख्या बढ़ती चली गई। पोप ने उन्हे अपने चर्च में सम्मिलित करने का पूरा प्रयत्न किया, मगर वह तैयार न हुए। उत्तरी फ्रांस के कैथौलिक उनको नष्ट करने पर तैयार होगए, उन्हे भाँति भाँति के कष्ट दिये गए, बहुत से जीवित अग्नि में जला दिये गये, बहुत सों का वध कर दिया गया और बहुत से जबरदस्ती कैथौलिक चर्च में सम्मिलित किये गये। पोप ने उन्हें विधर्मी कहकर उनके साथ कठोर व्यवहार करने की आज्ञा प्रसारित कर दी। सरकार ने उनके लिये कठोर नियम बनाए और उनपर हर प्रकार के प्रतिबन्ध लगा दिये गये। पोप ने उनकी जाँच-पड़ताल के लिये कुछ देख-भाल करने वाले Inquisitors नियुक्त किये और कैथौलिक सिद्धान्तों पर न चलने वालों को जीवित आग में जलाये जाने या वध किये जाने के नियम बनाए गए। प्रत्येक पाठशाला में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य करदी गई। लोगों पर कैथौलिक चर्च के सिद्धान्तों पर चलने के लिये जोर दिया गया। उन देख-भाल करने वालों की रिपोर्ट पर भाँति-भाँति से लोग तंग किये गये, तंग ही नहीं वरन् मौत के घाट तक उतारे गये। अब फिर ईश्वर

यसू मसीह और पवित्र शक्ति-Holy Ghost की घर घर में चर्चा होने लगी। बहुत से लोग संत-Saint और मिशनरी बनकर ईसाई मत का प्रचार करने लगे।

फ्रान्सिस्केन सिस्टर क्लेरा–Franciscan Sister Clara- पोप इन्नोसैन्ट तृतीय के समय में इटली के एक व्यक्ति फ्रान्सिस—Francis ने गिरजाघरों में धन-दौलत एकत्रित करने और उसको पोप तथा पादरियों के राग-रंग में खर्च करने के विरुद्ध आवाज़ उठा कर कहा कि गिरजाओं का धन-दौलत दुखियों, निर्धनों और अनाथों की सहायता पर खर्च किया जाना चाहिए। फ्रान्सिस स्वयं भी अपने पास एक दिन के खाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं रखता था। थोड़े ही समय में बहुत से लोग इसके अनुयायी बनते चले गये।

लिखा है कि पोप इन्नोसैन्ट तृतीय और फ्रान्सिस के पश्चात् ईसाई मत का कुछ पतन होना आरम्भ हो गया था। गिरजाओं में बहुत सी बुरी बातें आ गई थीं। लोगों के आचार-विचार बिगड़ते जा रहे थे। धर्म-अधर्म का कुछ विशेष ध्यान नहीं रहा था। इस प्रकार की बातों के उत्पन्न हो जाने से गिरजाघरो को बहुत हानियाँ पहुंच रही थीं। सुधार के कुछ प्रयत्न भी किये गये किन्तु वह सब निष्फल ही रहे।

कुछ समय पश्चात् इंगलैड और फ्रांस के राजाओं का पोप के साथ झगड़ा हो गया। उन्होंने वार्षिक उपहार(भेंट) की रकमें भेजनी बद करदीं। फ्रास के राजा ने पोप जोह्न–John को रोम से हटा कर अपने अधीन ऐविग नॉन Avignon कस्बे में पहुंचा दिया। सन् १३०५ से १३७७ ई० तक पोप को उसी स्थान पर रक्खा गया। यहाँ रहकर भी पोप लोगों से खूब रकमें ऐंठने लगा। फ्रान्सिस केन सम्प्रदाय वाले पोप के अत्यन्त विरुद्ध हो गए। उधर इटली के राजा ने गिरजाओं की सम्पति पर अधिकार कर लिया। पोप ने उनके विरुद्ध लड़ने के लिये सेना एकत्रित की। डट कर युद्ध हुआ, पोप सफल हुआ और फिर रोम में पहुँच कर ठाठ के साथ रहने लगा। अब पोप का पहले से भी अधिक सम्मान होने लगा। उसके शब्द फिर अटल समझे जाने लगे। जिन लोगों ने पोप के विरुद्ध आवाज़ उठाई या कुछ सुधार करने का प्रयत्न किया,

उन्हें तुरन्त विधर्मी कह कर आग में जलवा दिया गया। अन्त में कुछ लोगों ने साहस करके एक अलग सम्प्रदाय बनाया उसका नाम ह्यूमैनिस्ट्स रक्खा।

ह्यूमैनिस्ट्स—**Humanists**—इस सम्प्रदाय वालों ने अपना कार्य इस प्रकार आरम्भ किया कि उन्होंने ईसाई धर्मात्माओं की शिक्षा को पुस्तक के रूप में छपवा कर लोगों में मुफ्त बाँटा। इन्जील का हर भाषा में अनुवाद कराया गया। यह सब कुछ इसलिये किया गया ताकि लोग ईसाई मत के वास्तविक सिद्धान्तों को भलि भाँति जान जायें। हॉलैंड के एक व्यक्ति इरेज़मस-Erasmus ने इसमें बड़ी लग्न से कार्य किया। उसने जादू, मंत्र-तन्त्र का खण्डन किया। पादरियों के ठाठ-बाट और रहन-सहन के विरुद्ध आवाज़ उठाई। इसी के साथ जर्मनी में एक अलग सम्प्रदाय फ्रेन्ड्स ऑफ गॉड-Friends of God के नाम से बन गया। इन लोगों ने अपना कोई गिरजा नहीं बनाया। लोगों में यसू के प्रेम और उसकी शिक्षा को बढ़ाने के लिये कार्य करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने बुरी बातों को छोड़ने और चरित्र को ऊंचा उठाने पर अधिक ज़ोर दिया। इसी प्रकार के विचारों को लेकर हॉलैंड में एक अलग सम्प्रदाय दी ब्रदरन ऑफ दी कॉमन लाइफ-The Brothern of the Common life के नाम से बन गया।

प्रोटेस्टेन्ट—**Protestant**—जर्मन निवासी मार्टिन लूथर-Martin Luther ने जब यह देखा कि जनता पर पोप और पादरियों का अत्यन्त प्रभाव छाया हुआ है, उनकी आज्ञा को भंग करने का कोई साहस नहीं कर सकता, लोग अज्ञान और अन्ध-विश्वास मे डूबे जा रहे हैं और पादरी लोग राग-रंग में फंस कर धर्म-शिक्षा से वंचित होते जा रहे हैं तो उसने जर्मन निवासियो का ध्यान इन बातों की ओर दिलाया कि पादरी लोग हमारे देश से रुपया एकत्रित करके जो पोप के पास इटली में भेज रहे हैं इससे हमारा देश दुर्बल होता जा रहा है। अतः सन् १५१७ ई० में लूथर ने अपना प्रचार इस प्रकार आरम्भ किया। ईश्वर एक है, जो सबका पिता है, वह सर्व शक्तिमान् है, वही समस्त ससार का बनाने और बिगाड़ने वाला है, स्वर्ग और नरक उसने मनुष्यों के सुख और दु:ख के लिये बनाए है। ईश्वर ने यह ससार

मनुष्य के भोग के लिये उत्पन्न किया है। जो मनुष्य अभिमान और लोभ के वशीभूत होकर ईश्वरीय आज्ञाओं को तोड़ता है, वह कष्ट उठाता है। मनुष्य को ईश्वर पर विश्वास रखना चाहिये और उसी पर अपना प्रेम और आशा कायम करनी चाहिये। ईश्वर का विशेष प्रेम हमारे स्वामी यसू मसीह के साथ है। ईश्वर यसू मसीह के द्वारा मनुष्य के प्रत्येक पाप को चाहे वह बड़ा पाप ही क्यों न हो क्षमा कर देता है। पोप सेन्ट पीटर का उत्तराधिकारी बनकर लोगों को धोका दे रहा है और रकमें ऐंठ रहा है। उसकी शिक्षा बाइबिल के बिल्कुल विरुद्ध है।

लूथर ने अपने ६५ प्रश्न बना कर उन्हें छपवाये और लोगो में बंटवाए। उसने पोप और पादरियों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। उन प्रश्नों में कुछ प्रश्न ये थे—पोप सेन्ट पीटर का उत्तराधिकारी नहीं है। उसने लोगों को लूटने का ढोंग बना रक्खा है। किसी पोप या सेन्ट में यह शक्ति कदाचित् नहीं है कि वह पाप शोधन स्थान Purgatory या ब्रह्मलोक से किसी मनुष्य को वैकुण्ठ में भेजने की सिफारिश करके दुःखों से छुड़ा सके। बाइबिल में ब्रह्म-भोज Lord's supper की आज्ञा तो मौजूद है किन्तु उसमें मैस—Mass संस्कार का कोई वर्णन नहीं है, इसलिए मौत संस्कार व्यर्थ है। संस्कार सात नहीं हैं, केवल दो हैं। एक बप्तिस्मा संस्कार और दूसरा ब्रह्म भोज संस्कार। संसार छोड़ कर जंगलों मे रहने की कोई आवश्यकता नहीं। इसकी आवश्यकता पहले थी। अब इसलिये नहीं रही क्योंकि समस्त योरुप ईसाई बन चुका है। इन्जील की शिक्षा के विरुद्ध जो बातें प्रचलित हैं उन्हें तुरन्त छोड़ देना चाहिये। पादरियों को विवाह करके गृहस्थी बन जाना चाहिये। ईश्वर प्रार्थना लैटिन भाषा में करना आवश्यक नहीं है, वरन् प्रत्येक भाषा में हो सकती है। लूथर के साथ कैथौलिक चर्च वालों के कई बार शास्त्रार्थ हुए जिनमें बहुधा लूथर सफल रहा।

पोप की आज्ञा से सन् १५२१ ई० मे महाराजा चार्ल्स ने लूथर को पकड़ कर कारागार मे डाल दिया। लूथर कारागार से जर्मनी के राजकुमार फ्रेड्रीक की सहायता से निकल तथा भेष बदल कर जर्मनी के एक दुर्ग मे रहने लगा। वहां रहकर उसने पुराने और नये अहदनामों का जर्मनी भाषा में भाष्य किया।

जब लूथर दुर्ग में छिपा हुआ था तो उसके अनुयाइयों ने उसके

विचारों का जर्मनी में ज़ोर के साथ प्रचार आरम्भ कर दिया। विद्यार्थी पादरियों को ईंट और पत्थर से मारने लगे। बहुत से उपद्रव हुए। इसी बीच लूथर भी दुर्ग से बाहर निकल आया। पोप और पादरियों के प्रभाव को समाप्त किया गया। जर्मनी में लूथरियन चर्च की स्थापना की गई, मैस सरकार–Mass service समाप्त किया गया और पादरी विवाह करके गृहस्थी बनने लगे। कहां तक कहा जाये सन् १५२६ ई० तक जर्मनी में कैथौलिक चर्च के विचारों का खंडन करके प्रोटैस्टैन्ट चर्च स्थापित हो गया।

जर्मन लोगों ने जर्मनी से बाहर पहुँच कर डेनमार्क, नार्वे, स्वेडन और इंग्लैंड में प्रोटैस्टैन्ट चर्च स्थापित किये। इटली, स्पेन और फ्रांस में कैथौलिक चर्च पहले की भाँति ही कायम रहा।

रिफॉर्म्ड चर्च—Reformed Church, स्वीट्ज़रलैंड के कुछ लोगों ने प्रोटैस्टैन्ट की देखादेखी अपने गिरजाघरों में भी सुधार करने की चेष्टा की। इस आवाज़ को उठाने वाला एक व्यक्ति ज्वीन्गली Zwingli था। उसने कैथौलिक सम्प्रदाय का खंडन किया और साथ ही लूथर के विचारों से भी कुछ मत-भेद प्रकट किया। उसने कहा कि लूथर भी इन्जील की शिक्षा का पूर्णरूप से समर्थक न था। उसने यह भी कहा कि केवल इन्जील की शिक्षा ही मानने योग्य है। गिरजाघरों में मति की इन्जील पूरी पढनी और समझनी चाहिये। इरेज़मस–Erasmus ने ग्रीक भाषा से जो इन्जील का अनुवाद किया था, केवल वह ही प्रामाणिक है। उसने यह भी कहा कि लूथर का यह विचार ठीक नहीं है कि हमें इन्जील के आधार पर ही चलना चाहिये और जिस बात को इन्जील ने करने से मना नहीं किया, उसे कर सकते हैं। किन्तु मैं कहता हूं कि जिस बात के करने की इन्जील ने आज्ञा नहीं दी है, वह बात हमें नहीं करनी चाहिये। ज्वींगली ने गिरजाघरों से समस्त मूर्तियाँ और सूली के निशान–(Cross) हटवा दिये। गिरजाघरों मे बाजा बजाना बन्द कर दिया गया। लूथर गिरजाघरों में मूर्तियां और सूली के निशान रक्खे जाने का समर्थक था। वह गिरजाघरों में बाजे बजाने को भी बुरा नहीं समझता था। लूथर ने मैस-सस्कार को समाप्त कर दिया था। किन्तु ब्रह्म-भोज-संस्कार–Lord's supper को उसने स्थिर रक्खा था। ज्वींगली ने ब्रह्म-भोज-संस्कार को भी समाप्त किया और

कहा कि इस संस्कार में कोई तत्त्व नहीं है। जुरिच Zurich शहर मे कैथौलिक चर्च वालो के साथ एक शास्त्रार्थ हुआ। सभा ने ज्वींगली के पक्ष में अपना निर्णय दिया। इससे ज्वींगली की धाक जम गई और उसकी विचार-धारा का प्रसार होना आरम्भ हो गया।

कुछ समय पश्चात् रिफॉर्म्ड चर्च की भी तीन शाखाएँ बन गई। स्वीट्जरलैंड मे तो वह रिफार्म्ड चर्च ही कहलाता रहा, किन्तु हालैंड, इंगलैंड और अमेरिका आदि देशो में जो उसकी दूसरी शाखा फैली, वह बैप्टिस्ट चर्च Baptist Church के नाम से पुकारी जाने लगी। तीसरी शाखा जौह्न कालविन ने स्थापित की। उसका प्रचार फ्रांस, हालैंड, स्काटलैंड, इंगलैंड और अमेरिका इत्यादि देशों मे करके अपने अलग गिरजाघर स्थापित किये। उन्हे प्रैसबाइटेरियन–Presbytarian कहते हैं।

बैप्तिस्ट चर्च–Baptist Church—आयरलैंड में कैथौलिक और प्रोटैस्टैन्ट वालों में बहुत से उपद्रव और रक्तपात, हुए। बहुत से मनुष्य मारे गये। जिनमें ज्वींगली भी मारा गया। अधिकांश लोगों ने इन धार्मिक लड़ाई-झगड़ों को बहुत बुरा, भला कहा। उन्होंने यह भी कहा कि बाईबिल में ऐसा कहीं नहीं लिखा कि बच्चों को ही बप्तिस्मा दिया जाये वरन् यह लिखा है कि समस्त संसार में जाकर समस्त मनुष्यों को बप्तिस्मा दो। बच्चों को बप्तिस्मा देने के कोई अर्थ नहीं हैं। दूसरी बात उन्होंने यह कही कि गिरजा को राज्य से बिलकुल अलग रक्खा जाये। क्योंकि राज्य के कर्मचारी सभी मतों के मानने वाले होते हैं, इसलिए गिरजा और राज्य का अलग अलग होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त राज्य को बहुधा युद्ध भी करने पड जाते हैं, किन्तु गिरजा कहता है कि शत्रु से भी प्रेमपूर्वक व्यवहार करो तो फिर राज्य और गिरजा एक कैसे हो सकते हैं ?

बैप्टिस्ट चर्च वालो की विचार-धारा से कैथौलिक और प्रोटैस्टैन्ट सम्प्रदाय वाले उनके विरुद्ध हो गये। उनपर बहुत अत्याचार किये गये, उन्हे पानी में डुबाया गया, उन्हे जीवित आग में जलाया गया और उनमें से जो कुछ बचे बचाये रह गये थे, वह कुछ तो अमेरिका चले

गये और कुछ नीदरलैंड, हालैंड, और स्पेन में जा बसे। यह सम्प्रदाय इस समय भी मौजूद हैं। यह सौगन्ध खाने को बहुत बुरा समझता हैं

प्रेसबाइटेरियन-Presbytarian-ग्रीक भाषा में इसके अर्थ अनुभवी के हैं। इस सम्प्रदाय यह का नाम इस कारण पड़ा कि उनके गिरजाओं का प्रबन्ध अनुभवी लोग करते हैं। कैथौलिक और प्रोटैस्टैन्ट वालों की भाँति उनके गिरजाओं में पादरी नहीं होते। वरन् अनुभवी लोगों की एक सभा ही समस्त प्रबन्ध करती है। इस सम्प्रदाय वालों को कालविनिस्ट-Calvinist भी कहते हैं। यह लोग पुराने अहदनामे Old Testament के अधिक विश्वासी होते हैं, वह ह० इब्राहीम का अधिक सम्मान करते हैं अपने मत और कार्य पर किसी को वाद-विवाद नहीं करने देते; और जो उनकी विचार-धारा को नहीं मानता उसे अपने पास नहीं रहने देते। जिनेवा उनका विशेष केन्द्र है। यह स्थान उनके लिए अति पवित्र है। उनके गिरजाओं मे प्रतिदिन प्रार्थना होती है। इस सम्प्रदाय की विचार-धारा ज्वींगली की विचार-धारा से मिलती-जुलती है।

कैथौलिक सम्प्रदाय वालों से इनके बहुत से लड़ाई-झगड़े हुए जिनमें बहुत से रक्तपात हुए। एक ने दूसरे पर दिल खोल कर वह अत्याचार किये, जिन्हें पढ़कर शरीर रोमान्चित हो जाता है। स्कॉटलैंड के व्यक्ति जौहन नॉक्स-John Knox ने इंगलैंड और स्कॉटलैंड को मिलाकर कालविनिस्ट प्रोटैस्टैन्ट बना दिया था।

चर्च ऑफ इंगलैंड-Church of England, इंगलैंड के राजा हैनरी अष्टम-Henary VIII ने चर्च आफ इंगलैंड को चर्च आफ रोम से बिलकुल अलग कर लिया और वह स्वयं उसका नेता बन गया। धार्मिक बातों को तय करने के अधिकार आर्च बिशप ऑफ कैन्टरबरी को दे दिये गये। अमेरिका मे यह चर्च एपिस कोपल चर्च-Episcopal Church, के नाम से विख्यात है।

हैनरी ने गिरजाओं की समस्त धन-दौलत और सम्पत्ति पर अधिकार करके उसे सरकारी घोषित कर दिया। समस्त मठों को बंद करा दिया गया। वास्तव में यह चर्च रोम के चर्च से विचार-धारा में कुछ अधिक भिन्न नहीं है। इंगलैंड के कुछ लोगों ने हैनरी के नेता बनने

का विरोध किया और कहा कि राजा या पार्लियामेन्ट को गिरजा के विषय में कानून बनाने का कोई अधिकार नहीं है। हैनरी ने विरोधियों का चुन २ कर वध करा दिया। उन विरोधियों में एक व्यक्ति सर थामस मूर-Sir Thomas More, भी था। उसने यह कहा कि यदि पार्लियामेंट यह तय कर देती है कि ईश्वर ईश्वर नहीं है तो क्या पार्लियामेंट का यह कानून मान लिया जायेगा ? हैनरी ने उसे भी पकड़ कर टावर आफ लन्दन में डाल दिया।

राजा हैनरी ने अपनी रानी को तलाक देकर अलग करके अपना दूसरा विवाह कर लिया था। दूसरी स्त्री से उसके यहाँ मलका एलिज़बेथ उत्पन्न हुई। फिर राजा ने अपना तीसरा विवाह किया, जिससे एडवर्ड षष्टम् उत्पन्न हुआ। हैनरी की मृत्यु हो जाने पर एडवर्ड राजा बना। वह नाबालिग था। उसकी ओर से उसका चचा राजकार्य किया करता था जो प्रोटैस्टैन्ट चर्च का अनुयायी था। उसने राज्य भर मे अपनी विचार-धारा का खूब प्रचार कराया। जब एडवर्ड षष्टम् १५ वर्ष की आयु मे स्वर्गवासी होगया तो उसकी जगह उसकी सौतीली बहन मैरी रानी बनी। वह कैथौलिक विचार-धारा की मानने वाली थी। उसने राज्य भर में यह आज्ञा जारी की कि प्रत्येक मनुष्य को कैथौलिक विचार-धारा पर चलना पड़ेगा। इस आज्ञा के जारी होते ही प्रोटैस्टैन्ट सम्प्रदाय वालों पर भाँति भाँति के अत्याचार होने आरम्भ हो गये।

रानी मैरी केवल ५ वर्ष राज्य करके मर गई। उसके मरने पर एलिजबेथ रानी बना दी गई। वह प्रोटैस्टैन्ट विचार-धारा की मानने वाली थी। उसने इस विचार-धारा को अपने राज्य में फैलाने का पूरा प्रयत्न किया। प्रायः समस्त इंगलैंड प्रोटैस्टैन्ट बन गया।

प्रोटैस्टैन्ट वालों की देखा देखी कैथौलिक सम्प्रदाय वालों ने भी अपने चर्च में कुछ सुधार करने के लिए जोर दिया। अत' उनकी ये तीन शाखाएँ बन गई—दी कैपुचिन—The Capuchin. दी जैसूट-The Jesuit और डाटर आफ दी चैरीटी—Daughter of the charity.

कैपूचिन-The Capuchin, यह सादा रहना, सादा खाना, निर्धनों, अनाथों और रोगियों की सहायता और सेवा करने को उत्तम

समझते हैं। इनका कैथॉलिक वालों से कुछ बातों में और भी मत-भेद हैं।

दी जेसूट–The Jesuit, कैथोलिक चर्च के सिद्धान्तों को मानते हुए और इन बातों को भी मानते हैं कि अधिक उलझन की बातों पर वाद-विवाद नहीं करना चाहिए। यह लोग ईसाई मत को फैलाने के लिए अथक कोशिश करते हैं। इन्होंने कैथॉलिक और प्रोटैस्टैन्ट वालों को मिलाने के काफी प्रयत्न किये, किन्तु सफल न हो सके। भारतवर्ष में ईसाई मत का प्रचार सबसे पहले इन्होंने ही आकर किया था।

डॉटर आफ दी चैरीटी–Daughter of the Charity. इस सम्प्रदाय वाले विनसैन्ट. डी. पाल–Vincant-de-Paul, की शिक्षा के समर्थक हैं। उन्होंने रोगियों की सेवा और सहायता को सबसे उत्तम बतलाया और नव युवतियों को भिक्षु बनने के बजाय नर्स बनकर सेवा करने का आदेश दिया। यह नवयुवतियाँ सादा जीवन बिताना उत्तम समझती हैं।

इस सम्प्रदाय वालों ने कहा कि जब तक राज्य चर्च के आधीन रहेगा, उस समय तक राज्य में कोई उन्नति नहीं हो सकती। अतः सन्-१८७८ ई० में इटली के सब लोगों को मिलाकर एक नेशन बना दिया गया। पोप से राज के कुल अधिकार वापस ले लिये गये। इस पर पोप अप्रसन्न हुआ, राजा के विरुद्ध राज विद्रोह खड़ा हो गया, अधिक समय तक पोप और राजा में खींची तानी चलती रही और सन् १६२६ ई० में यह तय हुआ कि पोप को एक शहर और कुछ क्षेत्र अलग दे दिया जाये। अतः पोप को विटिकन (Vitican) शहर और कुछ क्षेत्र पूर्णाधिकारी के साथ अलग दे दिया गया। आजकल बारवाँ पोप पीअस–Pope Pius XII, अपने पूर्णाधिकार के साथ वहाँ रहता है। उसका अलग रेडियो स्टेशन और अलग ही डाक के टिकट इत्यादि हैं।

कैथॉलिक चर्च में सुधार हो जाने से भी प्रोटैस्टैन्ट सम्प्रदाय वाले सन्तुष्ट न हुए। उनमें वैर-भाव और घृणा बढ़ती ही चली गई। इधर पोप ने इंगलैंड की रानी एलिजबेथ को चर्च से अलग किये जाने की

आज्ञा जारी कर दी और यह आदेश दिया कि एलिजबेथ को महारानी स्वीकार न किया जाये। उसको जान से मारने के लिए षड्यन्त्र रचे गये। उसकी जगह मलका मैरी को सिंहासन पर बिठाने का प्रबन्ध कर लिया गया। किन्तु प्रोटैस्टैन्ट वालों को उसका पता चल गया और उन्होंने मैरी का सिर उडा दिया।

एलिजबेथ के मर जाने पर उसका बेटा जेम्स राजा बना। उसे भी कैथौलिक वालों ने मार देने के प्रयत्न किये, किन्तु उसका कुछ न बिगाड़ सके। चर्च ऑफ इंग्लैंड में कुछ सुधार करने की लहर उत्पन्न हुई। जिन लोगों ने सुधार करने की चेष्टा की, उन्होंने अपना एक अलग सम्प्रदाय प्योरिटन्स Puritans के नाम से अलग बना लिया।

प्योरिटन्स—Puritans—इस सम्प्रदाय वालों ने पार्लियामेंट से गिरजाओं में सुधार किये जाने का विधान पास कराने के लिये जोर के साथ आवाज उठाई। महाराजा जेम्स से भी इसके विषय में कहा गया किन्तु जेम्स ने भी उनकी एक न सुनी। इसी बीच में जेम्स के चार्ल्स ने फ्रांस की राजकुमारी जो कैथौलिक थी, विवाह कर लिया। इसका प्योरिटन्स ने विरोध किया। जेम्स ने उन्हें फाँसी पर लटकवाया और जीवित आग में जलवाया। जेम्स के पश्चात् चार्ल्स राजा बना, उसके विरुद्ध राज-विद्रोह खडा हो गया और चार्ल्स जान से मार डाला गया। प्योरिटन्स का जोर बढ़ता चला गया, गिरजाओं की मूर्तियां तोड़ दी गई और प्रार्थना की पोथियां जला दी गई। आयरलैंड के कैथौलिक सम्प्रदाय वालों को बहुत तग किया गया।

इस सम्प्रदाय वाले गिरजाघरों में प्रतिदिन जाना पसन्द नहीं करते। वे कहते हैं कि इससे काम में बाधा पड़ती है। वे सप्ताह में एक दिन अर्थात् रविवार को ही गिरजे में जाना उचित समझते हैं। वे सिब्त–Sabbath day को नहीं मानते और गिरजाओं में भाँति-भाँति की स्तुति करना अच्छा नहीं समझते।

क्वैकर्स या फ्रैन्ड्स—Quakers or Friends, जिन दिनों प्योरिटन सम्प्रदाय की नींव पड़ी, उन्हीं दिनों जॉर्ज फॉक्स–George Fox ने अपना एक अलग सम्प्रदाय क्वैकर्स या फ्रैन्ड्स के

नाम से बना दिया था। प्योरिटन्स की भांति वह भी गिरजाघरों में सुधार के समर्थक थे। उन्होंने कहा कि कैथौलिक सम्प्रदाय वालों ने मजहब में जो संस्कार प्रथाएं अपने आप जोड़ दी हैं, उन्हें बन्द किया जाये। प्योरिटन्स से बढ़ कर उन्होंने यह भी कहा कि जिस प्रकार की प्रार्थनाएं गिरजाओं में की जाती हैं, वे सब निष्फल हैं। ब्रह्म भोज-Lord's Supper कोई वस्तु नहीं है, बप्तिस्मा कोई आवश्यक संस्कार नहीं है; सेंट पॉल ने स्त्रियों को गिरजाघरों में बोलने की आज्ञा न देने में भूल की है, महीनों और दिनों के नाम मूर्तिपूजकों ने अपने देवताओं के नाम पर रख लिये थे, इसलिये उनको छोड़ कर पहला महीना दूसरा महीना और पहला दिन-दूसरा दिन इत्यादि पुकारा जाये, स्वर्ग-नर्क, भूत-प्रेत, चमत्कार, जिन-शैतान, फरिश्ते, जादू, मन्त्र-तन्त्र आदि सब व्यर्थ और बुद्धि से परे की वस्तुएं हैं। जो थोड़ी भी बुद्धि को प्रयोग में लाता है, वह इनके स्तित्व पर कभी विश्वास नहीं कर सकता। इनके विषय में पुस्तकों में जितनी कहानियां लिखी हैं, वह सब मनघड़ंत और बनावटी हैं बुद्धिहीन लोग ही ऐसी बातों पर विश्वास करते है, बुद्धिमान नहीं किया करते। तस्लीस का सिद्धान्त-Trinity प्रमाण से सिद्ध नहीं होता इसलिये मानने योग्य नहीं है।

इस प्रकार की बातों से ही मजहब खराब होकर लड़ाई-झगड़े उत्पन्न होकर रक्त-पात होते हैं। साइन्स और तर्क पर इनमें से कोई बात खरी नहीं उतरती। ईश्वर के नियम अटल हैं, वह अपना नियम किसी के लिये नहीं बदला करता। ईश्वर किसी पीर-फकीर, रसूल नबी और पैगम्बर तथा अवतार-कर्त्तार आदि के लिये अपना नियम नहीं तोड़ा करता। जो चमत्कार सिद्धि या करामात उनके साथ लोगों ने जोड़ रक्खे हैं, वह केवल उनका सम्मान बढ़ाने के लिये बनावटी बना लिए हैं। वरना उनमें कोई वास्तविक तत्त्व नहीं है। मिस्टर गिब्बन-Gibbon ने लिखा है कि समस्त चमत्कार, सिद्धि और करामात झूठ और बनावटी हैं, इनमें कोई तथ्य नहीं है और न ही कोई इन्हें सिद्ध ही कर सकता है। जाहिल और गवार उन पर विश्वास कर लेते हैं। बुद्धिमान ऐसी बातों को अपने मस्तिष्क में स्थान नहीं दिया करते। उसने यह भी लिखा है कि यदि ये चमत्कार सिद्धि और करामात वास्तव में कुछ तथ्य रखते हैं तो ये आजकल क्यों नहीं दिखाए जा सकते? जिन

पुस्तकों में इनके विषय में जितनी कहानियां तथा दंत कथाएं भरी पड़ी हैं, वह सब पुस्तकें पुरानी हैं, उन पर किसी दशा मे भी विश्वास नहीं किया जा सकता। भाँति-भाँति के चमत्कारों की कहानियां केवल किसी के स्तित्व को ऊंचा बढ़ाने के लिये अन्धविश्वासी लोग बनावटी बना लिया करते थे। क्वैकर्स ने दास-दासियाँ बनाने का भी खण्डन किया। शराब पीने को बहुत बुरा बतलाया। Quakers have no altar, no pulpit and no minister अर्थात क्वैकर्स के यहां न कोई वेदी होती है, न धर्म-गद्दी होती है और न ही कोई पादरी आदि होता है।

१८वीं शताब्दि में योरुप और अमेरिका मे धार्मिक बातो पर वाद-विवाद करने की स्वतन्त्रता आरम्भ हुई। कुछ लोगो ने प्योरिटनस और क्वैकर्स से भी बढ़ कर इन बातो पर विचार करना आरम्भ किया कि कौन सा धर्म किन किन बातों मे सच्चा और अच्छा है और कौन-सा मत मनुष्य को सुख-प्राप्ति की शिक्षा देता है। कुछ लोगो ने यह कहा कि ससार मे कोई भी धर्म या मत सच्चा या अच्छा नहीं है, वरन् वह सिद्धान्त ही सच्चे और अच्छे है जो सब धर्मो में समान मिलते हैं। धर्म की केवल वही बाते मानने योग्य हैं जो उचित, सरल और सुबोध हैं। उन्होंने यह भी कहा कि पहले समय मे जो मजहब के नाम पर लडाई-झगड़े और रक्त-पात हुए हैं, वह सब लोगों से जबरदस्ती अपने मजहब के सिद्धान्त मनवाने पर हुए है। ईसाई मत मे भी बहुत से कठिन और जटिल ऐसे प्रश्न हैं, जो समझ में आने वाले नहीं हैं। ईसाई मत तो केवल इतना है,—ईश्वर एक है जो तमाम ब्रह्मांड का रचयिता और संहारक तथा सर्व शक्तिमान है। उसके अतिरिक्त और कोई ईश्वर नहीं है। ईश्वर ने इस दुनिया में यसू मसीह को अपना बेटा बना कर लोगों को सीधे सच्चे रास्ते पर लगाने के लिये भेजा था। ह० ईसा अपना काम करके चले गए। बस इससे अधिक ईसाई मत में और कोई बात मानने योग्य नहीं है। अतः ईसाई मत इतना ही है।

उन लोगों ने यह भी कहा कि मनुष्य को चाहिये कि वह एक

दूसरे के साथ प्रेम का व्यवहार करें। इसके अतिरिक्त और सब बातें व्यर्थ हैं। इस विचार-धारा वाले लोगों में से मिस्टर टाम-पेन-Mr. Tom Paine, मिस्टर गिब्बन-Gibbon से बहुत अधिक बढ़-चढ़ कर कुछ और लोगों ने यहाँ तक लिख दिया है कि यदि शैतान वास्तव में यसूह-मसीह को पर्वत की चोटी पर ले गया था, कि जहाँ से संसार के समस्त राज्य दिखाई पड़ते थे तो उस समय यसू मसीह ने अमेरिका का पता क्यों नहीं लगा लिया था ? उन्हीं विचार-धारा वालों में से कुछ ने यह भी लिखा है कि इन्जिलों में बहुत सी बातों में मत-भेद पाया जाता है। अतएव संशय होता है कि ईसा कभी उत्पन्न भी हुआ था या नहीं ? यसू के जीवन की कुछ घटनाएँ कहानी जैसी दिखाई पड़ती हैं, जिनमें सच्चाई बहुत कम ज्ञात होती है। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह बहुत सोच समझ कर किसी बात को माने। अंधाधुंध चलने से कष्ट होता है। इस विचार-धारा वाले प्योरिटन्स और क्वैकस की विचार-धारा के ही मानने वाले है, इसलिये वह उन्हीं में गिने जाते हैं।

प्योरिटनस और क्वैकस की विचार-धारा का योरुप और अमेरिका में प्रर्याप्त प्रचार हुआ तो सन् १७५० से १८५० ई० तक इंगलैंड में तीन और विचार-धाराओं ने जन्म ले लिया। उनमें एक मैथोडिज्म—Mathodism, दूसरी एँगलो कैथौलिसिज्म-Anglo Catholicism और तीसरी सालवेशन आरमी-Salvation Army के नाम से प्रसिद्ध हैं।

मैथोडिस्ट—Mathodist, इस विचार-धारा को सब से पहले आक्सफोर्ड के एक विद्यार्थी जौहन वैज़ले-John Wesley ने आरम्भ की थी। उसने कहा कि मनुष्य मज़हब का अनुयायी होकर ही सुख और शान्ति प्राप्त कर सकता है। जीवन को उच्च बनाने और ईश्वर का अनुभव करने का केवल मजहब ही एक साधन है। दूसरा और कोई नहीं। मनुष्य-मात्र से प्रेम का व्यवहार करने से प्रत्येक मनुष्य से प्रेम करने के योग्य हो सकता है। अभिमान को नम्रता मे, लालसा (Passion) को सुशीलता में, घृणा, ईर्षा, अशुभ चिन्ता (बुराई) को निष्कपट (पवित्र हृदय) में बदल कर मनुष्य को ऊँचा उठना चाहिए।

मजहब की सारहीन बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिये

वैजले ने लन्दन में अपना अलग एक गिरजा बनवाया उसमे प्रत्येक मनुष्य को अपने विचार प्रकट करने का अधिकार दिया गया। वह गिरजा किसी विशेष पुजारी या पादरी के आधीन नहीं रक्खा गया। उसमें निर्धनों के सुधार और दीन-दुखियों की सेवा तथा सहायता का प्रचार किया। शराब पीने और सौगन्ध खाने से लोगों को मना किया। उच्च चरित्र बनाने पर जोर दिया। उसने कहा कि प्योरिटन्स और क्वैकर्स ने ईसाई मत को खराब कर दिया है और वह मजहब की बहुत सी आवश्यक बातों से भी इन्कार कर बैठे हैं। वास्तव में पुराना ईसाई मत ईश्वर के विषय में पूरा विवरण देता है, इसलिए ईसाई मत वह ही रहना चाहिए जो पुराने समय में था। इस विचार धारा के भी बहुत से अनुयायी बने। उन्होंने अधिकतर अपना प्रचार इंगलैंड, स्काटलैंड, आयरलैंड और वेल्ज़ में किया था। इस समय उन के गिरजा सभी देशों में पाये जाते हैं।

एंग्लो कैथौलिक—Anglo Catholic, वैजले के पश्चात् आक्सफोर्ड के एक दूसरे विद्यार्थी जोहन हैनरी न्यूमैन John Henry Newman ने कैथौलिक चर्च से अलग होकर एंग्लो कैथौलिक चर्च की नींव रक्खी थी। रोमन कैथौलिक चर्च और चर्च आफ इंगलैंड से यह चर्च कुछ सिद्धान्तों में भिन्न है। वरना यह सब एक ही सिद्धान्त मानते हैं। इस चर्च के पादरी अलग होते हैं।

सालवेशन आर्मी—Salvation Army, वैजले के लगभग १०० साल बाद उसकी विचार-धारा को उभारने और फैलाने के लिए मैथोडिस्ट नाम छोड़कर एक व्यक्ति विलियम बूथ—William Booth ने सालवेशन आर्मी की स्थापना की थी। उसने अपना प्रचार इस प्रकार आरम्भ किया—ईश्वर एक है, वैजले उसका पैग़म्बर है। वैजले ने जो कुछ कहा है उसपर सबको चल कर सुख और शान्ति प्राप्त करनी चाहिए।

विलियम बूथ ने पादरी या पुजारी इत्यादि कुछ नहीं रक्खे,

वरन् सेना की भाँति पद नियत किये। किसी को सिपाही, किसी को सारजैन्ट, किसी को कप्तान और किसी को मैजर बना कर वह स्वयं जनरल बन गया। उसने लाल रंग का एक झंडा बनाया, यह लाल रंग यसू के रक्त का चिन्ह माना गया। उसके चारों किनारे नीले रंग के बनाये गये, यह नीला रंग पवित्रता का चिन्ह माना गया। बीच का कुछ भाग पीले रंग का रक्खा गया, जिससे ईश्वर की शक्ति ज्ञात होनी बतलाई गई उन्होंने एक बैंड बाजा रक्खा जिसको बजाते हुए बाजारों और गली-कूचों में अपने मत का प्रचार करते हैं। इनके अनुयायी भी काफी हैं।

लिखा है कि जब कोलम्बस ने अमेरिका का पता लगा लिया तो वह उसके किनारे पर उतरा। उसने स्पेन के झण्डे और सूली-Cross के चिन्ह को ऊँचा किया। वहाँ के राजा को यह कहलवा भेजा कि हम लोग स्वर्ग से आये हैं। आप सब हमारे बतलाए हुए मार्ग पर चलें अर्थात् ईसाई बन जायें। आप को स्वर्ग में सब प्रकार के सुखों का आनन्द मिलेगा। आप लोग ईश्वर की शक्ति का अनुभव करें जो सबसे उच्च शक्ति है। आप लोग ईश्वर के इकलौते बेटे यसू पर ईमान लाएं। यसू मनुष्यों के छुटकारे के लिए पैदा हुआ था और उन्हीं के लिए सूली पर चढ़ कर मर गया। वह जीवित हो कर आकाश पर चढ़ गया और अपने पिता अर्थात् ईश्वर के दाहिनी ओर जा बैठा। वह निर्णय के दिन पृथ्वी पर आयेगा और अपने अनुयाइयों को स्वर्ग में भेजेगा, जहाँ सब प्रकार का सुख और शान्ति मिलेगी। कोलम्बस ने यह भी कहलवाया कि यदि आप सब लोग ईसाई बन गये तो आपके व्यापार में उन्नति होगी और धनवान् बन जाओगे। कोलम्बस की बातें अमेरिका के राजा की समझ में आगईं और वह ईसाई हो गया।

फिर १६वीं शताब्दी से सभी ईसाई-सम्प्रदाय वाले वहाँ अपने-अपने प्रचार के लिए जा जाकर लोगों को ईसाई बनाने लगे। ईसाई बनाने में उन्होंने बहुधा सख्ती से भी काम लिया और बहुत से लोगों को दास भी बनाया।

मैक्सिको-Maxico. और दक्षिणी केलिफोर्निया में फ्रांसिसकैन Franciscan सम्प्रदाय वालों ने; वर्जीनिया-Virginia में एपिस-

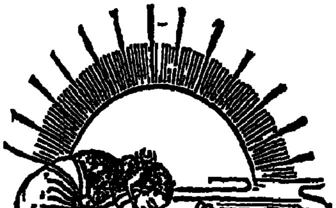
कोपल–Epis-Copal सम्प्रदाय वालों ने, डिलेवरा–Delawara में प्रोटैस्टैन्ट–Protestant सम्प्रदाय वालों ने, मैरीलैंड–Marry Land मे कैथौलिक–Catholic सम्प्रदाय वालों ने; पिनसिलवेनिया–Pennsylvania मे क्वैकर्स–Quakers ने; जरसी और न्यूयार्क–Jersey and Newyork में प्रैसबाइटेरियन सम्प्रदाय वालों ने; रोड आईलैंड—Rhode Island मे वैप्टिस्ट्स—Baptists सम्प्रदाय वालों ने, कॉननैक्टीकट—Connecticut मे प्यौरिटियन्स—Puritans सम्प्रदाय वालों ने अपने अपने सम्प्रदाय का प्रचार करके गिरजाघर बनाये।

अमेरिका में सबसे पहला गिरजा सन् १६१० ई० में बनाया गया। उसमें सभी ईसाई सम्प्रदाय वाले आने जाने लगे। उनमें बहुधा लड़ाई-झगडे और मार-पीट होने लगी। उन झगड़ों को निपटाने के लिए एक विधान विर्जिनिया बिल आफ राइट्स–Virginia Bill of Rights के नाम से बनाया गया। उसमें यह तय किया गया कि प्रत्येक मनुष्य को अधिकार है कि वह जिस सम्प्रदाय को चाहे माने और जिस प्रकार चाहे ईश्वर-भक्ति करे। किसी पर कोई अत्याचार न कर सकेगा।

सन् १७८७ ई० में अमेरिका की तमाम रियासतों को मिला कर यूनाइटड स्टेटस–United States नाम रक्खा गया और यह तह हुआ की सरकार मजहब के विषय मे किसी पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगायेगी। १६वीं शताब्दी में गिरजा और राज्य अलग अलग कर किये गये। गिरजा और राज्य अलग अलग होने के यह अर्थ नहीं है कि राज्य का गिरजा से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। राज्य मे सरकारी पादरी रक्खे गये। विधान सभा में भी पादरी सभासद बनाये गये। धार्मिक स्थानों और गिरजाघरों को कर से वरी रक्खा गया। धार्मिक स्थानों पर यह लिखा गया 'हम ईश्वर पर विश्वास करते हैं–In God we trust.'

यूनिटेरिन्यस–Unitarians, इनका कहना है कि ईश्वर एक है तीन नहीं है। तसलीस का सिद्धान्त–Trinity मानने योग्य नहीं है।

यसू ईश्वर नहीं था वरन् ईश्वर जैसा था। हमें यसू जैसा गुण अपना-कर कार्य करना चाहिए। प्रेम, सेवा और शान्ति के गुण जो यसू में थे, वे ही हमें भी अपनाने चाहिये। संसार में अमन और शान्ति स्थापित रखनी चाहिये। इस सम्प्रदाय के भी बहुत से अनुयायी हैं। पिछले दोनों युद्धों में शान्ति स्थापित कराने के लिये इस सम्प्रदाय वालों ने पर्याप्त परिश्रम किया था।



ह० ईसा

ह० ईसा बनिस्राइल जाति में ह० इब्राहीम की ४२वीं और ह० दाऊद की २८वीं पीढ़ी में गिने जाते हैं। उनके दादा का नाम याकूब-Jacob, पिता का नाम यूसुफ-Joseph और माता का नाम मरियम-Mary था। उनके पिता बढ़ई का काम किया करते थे और वह यहूदी-मत के मानने वाले थे। ह० ईसा के ४ भाई और कई बहनें थीं।

ह० ईसा को मुसलमान भी अपना पैगम्बर मानते हैं। उनका जीवन-चरित्र ईसाई और मुसलमान दोनों की ही पुस्तकों में लिखा है। किन्तु तुलना करने से उनमें एक दूसरी से बहुत सी बातों में मतभेद है। अतः हमने ह० ईसा के जीवन-चरित्र को ईसाइयों की पुस्तकों से लेकर ही लिखा है। ईसाइयों की पुस्तकों के अनुसार ह० ईसा के जीवन की घटनाएं संक्षेप में इस प्रकार पाई जाती हैं—

लिखा है कि मरियम की मंगनी यूसुफ के साथ हो रही थी, किन्तु उन दोनों के इकट्ठा होने से पूर्व ही वह पवित्र शक्ति-Holy Ghost की शक्ति से गर्भवती हो गई। एक रात को जब्राईल फरिश्ते ने आकर मरियम से कहा, 'तुम डरो नहीं, तुम्हारे पेट में एक लड़का है। तुम उसका नाम यसू रखना, वह ईश्वर का बेटा कहलाएगा'।

जब यूसुफ को मरियम के गर्भवती होने का पता चला तो उसने मरियम की पवित्रता पर सन्देह किया और मंगनी छोड़ देने का निश्चय किया। एक रात को वही फरिश्ता यूसुफ को सपने में दिखाई दिया। उसने यूसुफ को कहा कि तुम मरियम के साथ विवाह करके उसे अपने घर लाने से मत डरो, क्योंकि जो कुछ उसके पेट में है, वह पवित्र शक्ति की शक्ति से है। उससे एक पुत्र होगा और तू उसका नाम यसू रखना। वह लोगों को उनके पापों से छुटकारा दिलाएगा।

यूसुफ फरिश्ते की बात मानकर मरियम को अपने घर ले आया। वहाँ आकर मरियम से एक पुत्र पैदा हुआ और उसका नाम यसू रक्खा गया। यसू की उत्पत्ति यहूदिया राज्य के शहर बैतुलहम- Bethlehem में एक अस्तबल में हुई थी।

लिखा है कि कुछ गडरिये के लड़के बाहर जंगल में अपनी भेड़ों की रखवाली कर रहे थे। उनके पास एक फरिश्ता आया और बोला कि तुम जाकर देखो और खुशी मनाओ कि यसू जो ईश्वर का इकलौता बेटा है, संसार में उत्पन्न हो गया है। वह गडरिये के लड़के उस अस्तबल में गये और उन्होंने यसू को देखकर खुशिया मनाई। यसू की उत्पत्ति के ८वें दिन उनकी खतना कराई गई और फरिश्ते के कहने के अनुसार यसू-Jesus नाम रक्खा गया।

जिस समय यसू उत्पन्न हुए, उस समय हैरोडेस (Herod) राज्य करता था उसे ज्योतिषियों ने यह बता रक्खा था कि इस्राईल जाति में एक लड़का पैदा होगा जो तुम्हारा राज्य छीन कर स्वयं राजा बन बैठेगा। उस राजा ने ज्योतिषियों की बात पर विश्वास करके अपने राज्य में यह आज्ञा जारी कर रक्खी थी कि बनिस्राईल जाति में जो बच्चा २ वर्ष तक की आयु का हो, उसका वध कर दिया जाय। इस आज्ञा के अनुसार बनिस्राईल जाति के बहुत से बच्चे मारे गये।

यसू के वध को बचाने के लिए ईश्वर ने एक फरिश्ते के द्वारा यूसुफ़ को सपने में यह बात समझाई कि तुम इस बच्चे और इसकी माता को लेकर तुरन्त मिश्र देश चले जाओ और जब तक दोबारा तुम्हें सूचित न किया जाये, वहीं रहते रहना। यूसुफ़ यसू और उसकी माता को लेकर मिश्र की ओर चला गया।

जब राजा हैरोडेस मर गया तो उसी फरिश्ते ने फिर यूसुफ़ को सपने में कहा कि राजा मर गया है अब तू निःसन्देह अपनी स्त्री और बच्चे को लेकर अपने देश में चला जा। जब यूसुफ़ अपने देश की ओर जा रहा था तो रास्ते में फिर उसी फरिश्ते ने यह आदेश दिया कि गलेल-Galilee के क्षेत्र में नासरत-Nazareth शहर में जाकर रहने लगो। यूसुफ़ उसी शहर में आकर रहने लगा। उसी स्थान पर यसू का पालन-पोषण हुआ। इसी कारण यसू को नासरी भी कहते हैं।

लिखा है कि यसू ने बचपन में बहुत से चमत्कार दिखाये। जब वह बच्चों के साथ खेला करते थे तो बहुधा मिट्टी के जानवर और परिन्दे बनाया करते थे जो यसू के कहने से चला-फिरा और उड़ा करते थे।

जब यसू १२ वर्ष के हुए तो उनके माता-पिता उन्हें यरुशलम–Jerusalem के मन्दिर में ले गये जहाँ से वह एक रात को छिपकर कहीं चले गये। यसू की १२ वर्ष की आयु से लेकर ३० वर्ष की आयु तक की जीवन घटनाओं का ईसाइयो की पुस्तकों मे कोई उल्लेख नहीं मिलता।

जब यसू ३० वर्ष के हुए तो वह नासरत शहर में वापस आये। एक व्यक्ति यूहन्ना –John अपनी शरण में आये हुए लोगो को बप्तिस्मा दिया करता था। अतः यसू ने भी उससे बप्तिस्मा लिया। लिखा है कि जब बप्तिस्मा लेकर यसू पानी से निकल कर दरिया के किनारे पर आये तो उसी समय आकाश खुल गया और ईश्वर की आत्मा कबूतर की भाँति यसू पर आ गई और तुरन्त आकाश से यह आवाज़ आई कि यह मेरा प्यारा पुत्र है, जिससे मै बहुत प्रसन्न हूँ।

लिखा है कि इसके पश्चात् वह पवित्र शक्ति यसू को जगल में ले गई ताकि शैतान से परीक्षा कराली जाये। जंगल मे यसू ने ४० दिन का व्रत रक्खा। वहाँ शैतान यसू के पास आया और बोला कि यदि तू वास्तव में ईश्वर का पुत्र है तो इन पत्थरों की रोटियाँ बनादे। इस पर यसू ने उत्तर दिया कि मनुष्य केवल रोटी से ही जीवित नहीं रहेगा वरन् उस हर बात से जो ईश्वर के मुँह से निकलती है। तब शैतान यसू को हैकिल (यहूदियों का मन्दिर) के किनारे पर खड़ा करके बोला कि यदि तू वास्तव में ईश्वर का बेटा है तो अपने को नीचे गिरादे, क्योंकि ईश्वर अपने फरिश्तों के द्वारा तुझे स्वय अपने हाथों में थाम लेगा। इस पर यसू ने कहा कि तू अपने ईश्वर की परीक्षा मत कर। इसके पश्चात वह शैतान यसू को एक बहुत ऊंची पर्वत-शिखर पर ले गया और संसार के समस्त राज्य दिखलाकर बोला कि यदि तू मुझे प्रणाम करे तो मैं तुझे यह सब राज्य दे दूंगा। इस पर यसू ने उत्तर दिया कि ईश्वर के अतिरिक्त किसी और को प्रणाम नहीं करना चाहिये। कहा जाता है कि यह सुनकर शैतान वहां से भाग गया।

एक दिन यसु को मालूम हुआ कि महाराजा ने युहन्ना को कारागार मे डाल दिया है तो वह भी डरे और नासरत प्रदेश छोड़कर कुफरेनहूम के प्रदेश में चले गये। वहां उन्होंने एक झील के किनारे पर दो मछयारों को मछलियां पकड़ते देखा, जिनके नाम युहन्ना (John)

और इन्द्रियास (Andrew) थे। यसू ने उनको बुलाकर अपने साथ ले लिया और फिर आगे चलकर उन्हें दो और मछयारे मिले। वह दोनों भी यसू के साथ हो लिये। यसू उनके साथ गलेल (Galılee) के प्रदेश में घूमने-फिरने लगे। वह यहूदियों के मन्दिरों मे जा जा कर यह प्रचार करते रहे, "ईश्वर की बादशाही निकट आ गई है"। कहा जाता है कि यसू ने बहुत से रोगियों, अन्धों और कोढ़ियों को छूते ही अच्छा कर दिया, बहुत से लोगों मे से दुर-आत्माएं निकालीं। थोडे ही दिनों मे उनके इन चमत्कारों की सीरिया के क्षेत्र में ख्याति हो गई और उनके साथ लोगों की एक बडी भीड़ रहने लगी। एक दिन यसू उस भीड़ को लेकर एक पहाड़ पर पहुँचे। वहां लोगों को कुछ सदाचार पर उपदेश दिया और अपने को ईश्वर का इकलौता बेटा मानने पर ज़ोर दिया। पहाड़ से उतर कर फिर वह अपने प्रचार का कार्य करने लगे। इसी प्रकार थोडे ही दिनों मे उनके शिष्यो की संख्या ७२ हो गई। एक दिन वह अपने शिष्यों को लेकर फिर पहाड़ पर गए और उनमे से अधिक बुद्धिमान् और समझदार १२ शिष्यों को छांटकर रसूलों की पदवी दी। लिखा है कि ह० ईसा ने उन १२ रसूलों मे भी चमत्कार दिखाने, दुरात्माएं निकालने और बीमारों को अच्छा करने की शक्ति देकर उन्हे इधर-उधर प्रचार के लिये भेज दिया।

इसी प्रकार प्रचार करते हुए वह यरूशलम में आगए। वहाँ यहूदियों के मन्दिर के सामने पशु-पक्षि बेचने वालों की भीड़ रहा करती थी। यसू ने उन्हे बाहर धकेल कर कहा कि "बाप के घर को व्यापार का घर न बनाओ। इस पर यहूदी अप्रसन्न हुए। यहूदियों का यसू पर यह सामान्य आक्षेप था कि वह लोगों को भड़काकर विधर्मी करता फिरता है। अतः उन्होंने यसू को पकड़वा कर अधिकारी के सामने उपस्थित करने का निश्चय कर लिया। उन्होंने यसू के ही एक शिष्य यहूदाह स्करयूती (Judas Iscrıat) को तीस रुपए देकर यसू को पकड़वा देने पर राजी कर लिया। अब वह शिष्य यसू को पकड़वा देने का अवसर ढूँढ़ने लगा।

एक दिन यसु अपने शिष्यों के साथ खाना खाते हुए अति दुखी हुए और यहाँ तक बेचैन और बेहोश हुए कि मृत्यु निकट दिखाई देने लगी। जब कुछ देर पश्चात् होश आई तो अपने शिष्यों से कहने लगे

कि मेरा समय निकट आने लगा है। इब्नेआदम (यसू) पापियों को सौंपा जाने वाला है। उठो यहाँ से किसी दूसरी जगह चले। जब यसू यह बातें कह ही रहे थे तो इतने ही में वह शिष्य कुछ लोगों के साथ वहाँ आ पहुंचा। उसने उन लोगों को यसू की यह पहचान बता रक्खी थी कि जिसका मैं चुम्बन लूँगा, तुम लोग उसी को यसू समझ कर पकड़ लेना। अतः शिष्य ने आकर रब्बीसलाम कहा और बोसा लिया। उन लोगों ने तुरन्त ही यसू को पकड़ लिया। यसू के सारे शिष्य उन्हें अकेला छोड़ कर भाग गये।

पारसी, यहूदी और रोमन लोग सभी यसू से अप्रसन्न थे। क्योंकि वह उन सभी के सिद्धान्तों का खण्डन करते थे। अत' यसू को पकड़ कर सरदार काइफास (Caiphas) के सामने लाए और उस से कहा कि यह रोमन राज्य के विरुद्ध विद्रोह फैलाकर स्वयं सम्राट बनना चाहता है। उस सरदार ने यसू से पूछा, "बोलो ! क्या तुम वास्तव में ईश्वर के बेटे हो' ? यसू ने उत्तर दिया, "तुम मुझे उस सर्वशक्तिमान ईश्वर के दाहिनी ओर बैठे हुए और आकाश पर चढते हुए स्वयं देख लोगे। यसू की इस बात पर वह सरदार और सब लोग अत्यन्त क्रोधित हुए और कहने लगे कि यह वध किए जाने के योग्य है। कुछ लोग यसू से दुर्व्यवहार करने लगे, कुछ लोगों ने उनके मुँह पर थूका, कुछ ने तमाचे मार कर पूछा कि "ऐ ईश्वर के बेटे ! अपने नबी-पन से बतला कि तुम्हें किसने मारा है"। यसू शान्ति से खडे रहे, किन्तु लोग उनसे हँसी ठट्ठा करते रहे। उनका शिष्य पितरस (Peter) दूर खड़ा हुआ यह सब बातें देख रहा था। एक व्यक्ति ने सरदार से कहा कि वह जो खड़ा है, इसका साथी है; उसे भी पकड़ लिया जाये। इसपर पितरस को भी पकडवा कर पूछा गया कि 'क्या तू भी इसका साथी है' ? पितरस ने सौगन्ध खाकर कहा कि 'मैं तो इसको जानता भी नहीं कि यह कौन है। इसपर पितरस को छोड़ दिया गया।

अगले दिन प्रातःकाल नगर के मान्य पुरुषों की एक सभा बुला कर पूछा गया कि वह यसू के लिये क्या डंड निश्चय करते हो। सभा ने एक मत होकर कहा कि यह फाँसी दिये जाने के योग्य है। इसके पश्चात् यसू को बाँध कर पिलातिस (Pilate) गवर्नर के पास ले गए। उस

गवर्नर ने यसू से पूछा "क्या तू यहूदियों का वास्तव में ही सम्राट है"? यसु ने उत्तर दिया, "मेरा राज्य यह संसार नहीं है"। गवर्नर यसू को निर्दोष समझ कर छोड़ना चाहता था कि लोगों ने गवर्नर को फिर भड़का दिया।

गवर्नर ने यसू को हैरौडेस (Herod) सम्राट के पास भेज दिया। सम्राट ने यसु से कुछ प्रश्न पूछे मगर उन्होंने किसी बात का कोई उत्तर न दिया। सम्राट ने उन्हे बुद्धिहीन और पागल समझ कर गवर्नर के पास वापस कर दिया। गवर्नर यसू को छोड़ना चाहता था, किन्तु लोगों ने उनपर दबाव डाला और गवर्नर ने उन्हे फाँसी दिए जाने की आज्ञा दे दी।

फाँसी दिये जाने से पहले यसू को कोड़े लगवाए गये, उन्हे एक पीले रंग का चोगा पहनाया गया, उनके सिर पर काँटों का ताज रक्खा गया और हाथ में एक सरकंडा दे दिया गया। यसू का यह स्वरूप देख कर लोग उनसे हँसी-ठट्ठा करने लगे, सिर पर सरकंडे मारने और मुँह पर थूकने लगे। लोग घुटने टेक टेक कर हसते हुए यह कहने लगे, "यहूदियों के सम्राट! प्रणाम"। जब यह सब कुछ हो चुका तो उन्हें फाँसी के तख्ते पर ले जाया गया।

फाँसी के तख्ते पर लोगों ने यसू के साथ बहुत कुछ हंसी ठट्ठा करते हुए कहा "देखो यह लोगों को पापों से बचाने और मोक्ष दिलाने के लिये आया था, किन्तु अपने को यह सूली से भी न बचा सका"। सूली के निकट यसू की माता मरियम अपनी आँखों से यह सब कुछ देखती रही, किन्तु भय के कारण एक शब्द भी मुँह से न निकाल सकी। यसू को सूली से बाँधकर उनके हाथ पाँव में कीलें ठोकदी गईं। मरने से पहले यसू ने एक जोर की चीख मारी और कहा, "हे ईश्वर! तू ने मुझको क्यों छोड़ दिया है"। यसू का शव तीन चार घंटे तक सूली पर लटका रहा। यहूदियों ने उसके कपडे उतारे और उनको गोली डालकर बाँट लिया। यसू के मृतक शरीर पर यहूदियों का सम्राट लिख कर लगा दिया गया और जाने आने वाले सभी उस शव को देख कर यसू को बुरा भला कहने लगे।

लिखा है कि यसू के शव को पर्वत की एक गुफा में रख दिया गया तीसरे दिन एक फरिश्ता उस कब्र में आया। उसने यसू के मृतक शरीर को हाथ लगाया तो वह जी उठे और कब्र से बाहर निकल कर गुलेल प्रदेश की ओर चल दिये। *यह भी कहा जाता है कि वह बहुत से लोगों को दिखाई पड़े और कई बार अपने शिष्यों के साथ उन्होंने खाना* खाया। यसू ने अपने शिष्यों के अविश्वास पर बहुत बुरा-भला कह कर शर्मिन्दा किया। यसू ने अपने शिष्यों को इधर-उधर जाकर प्रचार करने का आदेश दिया। उनके शिष्यों में से पितरस ने दूसरे शिष्यों को एकत्रित किया और उनसे यसू के जीवित हो जाने और आकाश पर चढ़ जाने का प्रचार करने को कहा। इसपर दूसरे शिष्यों ने ऐसा ही कहकर सब जगह प्रचार करना आरम्भ कर दिया।

यसू के पश्चात उनके बारह शिष्यों ने ईसाई मत का खूब प्रचार किया। यसू ने कोई विवाह नहीं कराया था। इसलिये उनके कोई सन्तान न थी।

नोट - सर सय्यद ने अपनी तफ़सीर उल-क़ुरान जिल्द दूसरी के पृष्ट ४० से ४७ तक यह लिखा है कि वास्तव में ह० ईसा मरे नहीं थे। वरन् वह मूर्छित होगये थे और ऐसा ज्ञात होता था कि वह वास्तव में मर गये हैं। अधिकारी ने ह० के मृतक शरीर को दबाने की आज्ञा दे दी और एक व्यक्ति ने ह० को जीवित समझ कर एक पर्वत की गुफा में रखकर एक पत्थर उस गुफा के मुँह पर रख दिया था। रात को पत्थर हटा ..र उन्हें निकाल लिया था। इसके पश्चात् ह० जीवित रहे किन्तु उन्होंने फिर अपने रहन-सहन का किसी को कोई पता नहीं दिया। कभी-कभी वह अपने शिष्यों को मिलकर उपदेश देते रहे। मृत्यु के पश्चात् उनके मृतक शरीर को किसी अज्ञात स्थान पर दबा दिया गया और यही कारण है कि उनकी कब्र का आज तक किसी को कोई पता नहीं है और यह बात कि ह० मरने के पश्चात् आकाश पर चढ़ गये थे उनके शिष्यों ने ह० को कब्र से निकाल कर उड़ा दी थी वास्तव में इसमें कोई सच्चाई नहीं है।

इसलाम-मत

इसलाम

बहुधा देखने में आता है कि जो व्यक्ति जिस जाति, धर्म या सम्प्रदाय में उत्पन्न हो जाता है वह केवल उसी जाति, धर्म या सम्प्रदाय के प्रचलित सिद्धान्तों का ही, चाहे वे अच्छे हों या बुरे, कट्टर समर्थक बन जाता है। वह अपने उन सिद्धान्तों की इस प्रकार अंधविश्वासमय प्रसंशा करता है मानो स्वर्ग का ठेका उसी के हाथों आया है और वीरता का मुकुट उसी के सिर बँधा है। किन्तु ऐसा कभी नहीं होता कि कोई अपने धार्मिक सिद्धान्तो की कमियों को देखकर उनका विरोध करता हो। यदि कभी कोई अपने धार्मिक सिद्धान्तों को संदेह की दृष्टि से देखने भी लगता है तो वह उसकी वास्तविकता को जानने का उद्योग नहीं करता, वरन् भाँति भाँति के उदाहरण गढ़-मढ़ कर या किसी से सुन सुनाकर संतोष कर लिया करता है और फिर उसी घेरे में तेली के बैल की तरह घूमने लगता है। यह दशा अनपढ़ और असभ्य लोगों की ही नहीं है, वरन् इसमें अच्छे अच्छे सुशिक्षित, समझदार और सभ्य भी सम्मिलित हैं। यदि मनुष्य भेद-भाव का चश्मा उतार कर हृदय से अपने धर्म या सम्प्रदाय की कमियों को अनुभव करते हुए उनको दूर करने की चेष्टा करे तो संसार से बहुत सी बुराईयाँ, कुप्रथाएं और अंधविश्वास की समाप्ती बहुत कुछ अंशों में दूर हो जानी सम्भव हो कर सुख और शान्ति उत्पन्न हो सकती है। किन्तु ऐसा कोई नहीं करता। यही कारण है कि प्रति दिन नये नये लड़ाई-झगड़े, संघर्ष और रक्तपात होते रहते हैं, जिनमें अनेक निर्दोष मनुष्यों की गर्दनें कटती रहती हैं।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या इन समस्त धार्मिक और साम्प्रदायिक पुस्तकों की शिक्षा एक है या उनमें कुछ भिन्नता पाई जाती है?

यदि आप उन समस्त ईश्वरीय कहलाने वाली पुस्तकों की ध्यान पूर्वक तुलना करें तो आपको उनमें एक दूसरी से बहुत से मत-भेद दिखाई पड़ेंगे। उन मत-भेदों को देखकर हृदय में बरबस ही यह विचार

उत्पन्न होगा कि इन पुस्तकों मे से किसको ईश्वरीय पुस्तक माना जाये और किसको मनुष्य कृत कहा जाये तथा इसकी वास्तविकता का निर्णय कैसे कियाजाये। किन्तु एक गंभीर विचारक और बुद्धिमान मनुष्य के हृदय में यह विचार अवश्य उत्पन्न होगा कि सृष्टि की उत्पति के आरम्भ मे जब ईश्वर ने इस रग-विरंगे विश्व को रचा था और इसमें मनुष्य तथा पशु-पक्षि इत्यादि बनाए थे तो इस संसार को समझने और इसे प्रयोग में लाने के लिये भी ईश्वर ने कोई न कोई विधान या उपदेश अवश्य दिया होगा। जिस प्रकार संसार और उसकी बारीकियों को जॉचने तथा समझने के लिये उपदेश या विधान की योजना अवश्य हुई होगी, इसी प्रकार मनुष्य की भलाई और सुख-सुविधा के लिये भी कोई न कोई विधान या उपदेश अवश्य दिया गया होगा। क्योंकि बिना ईश्वरीय ज्ञान या उपदेश के केवल मानव बुद्धि और कल्पना से कोई काम कभी सरलता से सम्भव नहीं हो सकता। संसार और उसकी बारीकयों को जानने और समझने तथा परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और उसके दिव्य प्रकाश को देखने और पहचानने के लिए कोई न कोई ईश्वरीय दर्पण होना आवश्यक है। ईश्वर के विधान या ज्ञान को ईश्वर के दर्पण से ही देखकर संतोष-लाभ हो सकता है, अन्यथा नहीं। मानव बुद्धि के लिये यह कदाचित सम्भव नहीं कि वह इस विचित्र ब्रह्मांड के गहन से गहन तथा जटिल से जटिल रहस्यों को जान सके या क्रमशः उन्नति करते करते उसकी पूर्ण रूप से व्याख्या कर सके। वास्तव में बात यह है कि जिसने यह संसार बनाया है, आरम्भ में वही बतला सकता है कि इसकी वास्तिवक गहनता तथा बारीकी क्या है। मनुष्य किस मार्ग पर चलकर सुख और शान्ति पा सकता है तथा किस मार्ग पर चलकर दु:ख और कष्ट उठा सकता है। जब यह बात सरलता से समझ में आ जाती है कि सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने मनुष्य जाति को अवश्य कुछ न कुछ ज्ञान या उपदेश दिया होगा तो फिर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वह ईश्वरीय ज्ञान या उपदेश कौनसा है और इस समय उस ईश्वरीय ज्ञान की क्या पहचान है तथा उस पहचान की वास्तविकता का निर्णय कैसे किया जाये? याद रहे कि परमेश्वर का विधान, आज्ञा या उपदेश बुद्धि और अनुभव के विरुद्ध नहीं हुआ करता और न ही उसे कोई तर्क या युक्ति काट ही सकती है। अतः उन समस्त ईश्वरीय पुस्तक या सतशास्त्र कहलाने वाले ग्रन्थों की परस्पर

ध्यान पूर्वक तुलना की जाये तथा दर्शन की कसौटी पर कस कर उनकी परीक्षा कर ली जाये। इस भाँति इनमें से जो पुस्तक या शास्त्र उस कसौटी पर पूरा उतर जाये, बस उसी को ईश्वरीय ज्ञान, विधान या ईश्वरीय उपदेश मान लिया जाये किन्तु एक बात अवश्य याद रक्खी जाये कि इस विचार पर बिल्कुल ध्यान न दिया जाये कि अमुक पुस्तक में ईश्वरीय पुस्तक होने का अधिकार जताया गया है, इसलिये वह अवश्य ईश्वरीय पुस्तक है। इस प्रकार का अधिकार तो उन समस्त ईश्वरीय कहलाने वाले ग्रन्थों में पाया जाता है। जब यह अधिकार उन सब में पाया जाता है तो फिर यह सब ईश्वरीय पुस्तक माननी पड़ेंगी, किन्तु उन सबमें परस्पर मतभेद होने के कारण वह सब ईश्वरीय पुस्तक हो नहीं सकतीं क्योंकि सर्वज्ञ और अन्तर्यामी परमेश्वर से इस प्रकार की भिन्नताओं की आशा नहीं की जा सकती। इसलिये यही मानना पड़ेगा कि ईश्वरीय ज्ञान या उपदेश केवल एक ही होता है और उसमें कोई भिन्नता नहीं होती। वह मनुष्योत्पत्ति के साथ संसार के आरम्भ में मनुष्य को दिया जाता है और प्रलय तक ज्यों का त्यों स्थिर रहता है। उसमें कोई बुद्धिमान से बुद्धिमान मनुष्य किसी प्रकार की कोई काँट-छाँट तो रही दूर की बात, एक मात्रा तक भी घटा बढ़ा नहीं सकता। मनुष्य के घटाने बढ़ाने का प्रश्न तो दूर रहा, स्वयं परमेश्वर भी अपने विधान में कभी कोई काँट-छाँट या संशोधन इत्यादि नहीं किया करता। क्योंकि ऐसा करने की उसे कभी कोई आवश्यकता नहीं पड़ा करती। ईश्वर का वह विधान प्रत्येक युग के लिये अटल और प्रभावकारी होता है। चूँकि ईश्वर पूर्ण है, इसलिये उसका विधान भी पूर्ण है। अतः पाठकों को चाहिए कि इस रीति से परखने पर जो पुस्तक कसौटी पर पूरी उतर जाए, उसे अवश्य ईश्वरीय पुस्तक मानकर उसके अनुसार जीवन-यापन करें। जो पुस्तक इस विधि से कसौटी पर खरी न उतरे उसे पक्षपात छोड़कर स्पष्ट रूप से ईश्वरीय पुस्तक मानने से इन्कार करदें। ऐसा करने से ही संसार में समस्त लड़ाई-झगड़े रक्त पात और संघर्षों की समाप्ति हो सकती है अन्यथा नहीं।

साम्प्रदायिक मतभेदों के कारण संसार में एक युग से हलचल चली आ रही है। मजहबी दीवानों ने अपने अपने मत की आड़ लेकर दूसरी जातियों और सम्प्रदायों पर जो जो अत्याचार किए तथा उन पर

विपत्तियाँ और विनाश के जो जो अंगारे बरसाए, उन घटनाओं को पढ़ कर शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। उन अत्याचारों को देख कर ही तो बहुत से महान् व्यक्तियों ने अपने अपने समय में मनुष्य जाति में एकता, प्रेम और सहयोग बढ़ाने के लिये अपने अपने ढंग से प्रचार किया। उन महान् पुरुषों में से कुछ ये हैं—

शेख सादी, फरीदुद्दीन अत्तार, जलालुद्दीन, बाबा फरीद, अल्लाहुलहक, शेख इस्माइल बुखारी, गुरु नानक, कबीर साहब, धन्ना जाट, सैना नाई, रैदास चमार, सम्राट् अकबर। किन्तु इन सबके प्रयत्नों का भी कोई विशेष परिणाम न निकला। वरन् एक उलटा यह प्रभाव हुआ कि मनुष्य जाति में एकता, प्रेम और सहयोग उत्पन्न होने के स्थान पर मज़हबी संसार में कुछ और सम्प्रदायों की वृद्धि होकर मतभेद बढ़ते चले गए। वर्तमान काल में महात्मा गांधी और कुछ दूसरे नेताओं ने इस देश में एकता, प्रेम और सहयोग उत्पन्न करने का पूरा उद्योग किया, किन्तु उनके प्रयत्नों का भी कोई विशेष सुन्दर परिणाम न निकल सका। वरन् दिन प्रतिदिन और अधिक बुरी दशा होती चली गई। सन् १६४७ ई० में उन मज़हबी दीवानों ने लाखों निरपराधियों को मौत के घाट उतारा, हज़ारों स्त्रियों के सतित्व का अपहरण किया तथा अनेक परिवार घर से बेघर कर दिये।

अतः संसार में शान्ति स्थापित करने का केवल एक ही उपाय है और वह यह कि मनुष्य भेद-भाव, अनुचित पक्षपात और मज़हबी जोश तथा अन्धविश्वास को त्याग कर अत्यन्त ईमानदारी और न्याय से ईश्वर के विधान और रहस्यों को बुद्धि और अनुभव से जाँचे। इसके पश्चात् जो परिणाम निकले तथा उस परिणाम की पुष्टि स्वयं अपना विवेक करदे तो उसी को ईश्वरीय विधान समझ कर उसी पर मनुष्य स्वयं चले तथा दूसरे भूले-भटकों को प्रेम-पूर्वक चलाने का प्रयत्न करे। ऐसा करने से ही संसार में सुख और शान्ति की सम्भावनाएँ हो सकती हैं तथा इसके विरुद्ध आचरण करने से मनुष्य अन्धविश्वासों के वशीभूत होकर शान्ति के मार्ग में सदैव ही बाधक बना रहेगा।

शब्द 'इसलाम' शब्द 'मुस्लिम' से बनता है। इसके अर्थ

सहयोग, एकता, शान्ति और ईश्वरीय विधान पर चलने के हैं। अतः शब्द मुसलमान के अर्थ सहयोग व एकता करने, शान्त जीवन यापन करने और ईश्वरीय विधान पर चलने वाले के हैं। यह मत लगभग १४०० वर्ष पुराना सिद्ध होता है। यह मत एक प्रकार से यहूदी मत का संशोधित रूप कहा जा सकता है जो कुछ सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण यहूदी मत के समीप होते हुए भी अलग नजर आता है। फिर भी ईसाई मत से अधिक सैद्धान्तिक मत-भेद होने के कारण यह मत यहूदी मत की अपेक्षा ईसाई मत से दूर है। मुसलमान विद्वान् अपने मत के विषय में कुछ इस प्रकार कहते हैं—

(१) इसलाम मत सृष्टि की उत्पत्ति के साथ साथ प्रचलित हुआ था। पहले सब नबी, पैगम्बर और रसूल इसी इसलाममत के मानने और प्रचार करने वाले थे। कुरान से पहले जितनी भी छोटी या बड़ी पुस्तकें ईश्वर ने उन नबियों, पैगम्बरों या रसूलों को दी थीं, वह सब कुरान की शिक्षा के ही अनुकूल थीं। उन पहली ईश्वरीय पुस्तकों में स्वार्थी लोगों ने कुछ अदल-बदल और कमी-बेशी करके इसलाम मत को खराब कर दिया था। इसलाम मत के खराब होने का एक यह भी कारण बतलाया जाता है कि पहली जातियाँ उस ईश्वरीय ज्ञान को सुरक्षित न रख सकीं। वह भाषाएं भी जिन जिन में वह ईश्वरीय ज्ञान दिया जाता रहा था, निर्जीव हो गई थीं। वह पहली जातियाँ अपनी अज्ञानता और ना समझी के कारण उस ईश्वरीय ज्ञान से वंचित होकर बुरे माग पर चल कर बुरी बातों मे फँसती चली गईं। फिर एक समय वह आया कि पैगम्बरों और रसूलों का ससार मे आना ही बंद हो गया, जो उस ईश्वरीय ज्ञान को फिर से पुनर्जीवित करके लोगों को सच्चे मार्ग पर ले चलते। उन स्वार्थी और बुद्धिहीन लोगों ने उस ईश्वरीय वाणी के भाष्य भी ऐसे दोष पूर्ण उलट-पुलट किये कि उनमें झूठ-सच का निर्णय करना कठिन हो गया। जब यह ईश्वरीय वाणी ऐसी खिचड़ी बन गई तो उसको ईश्वरीय वाणी कहना उचित न रहा। अत. जब ऐसा हो गया तब ईश्वर ने लग भग १४०० वर्ष हुए अपनी सब पहली पुस्तकों को रद्दी करके थोड़ा थोड़ा २३ वर्ष में आवश्यकतानुसार ह० मुहम्मद के द्वारा संसार में फैलाने के लिये कुरान को उतारा था। इस प्रकार ईश्वर ने इसलाम मत को पूर्ण कर दिया था। कुरान के

हुए अब उन पहली ईश्वरीय पुस्तकों और सत-शास्त्रों की आवश्यकता नहीं रही। ईश्वर ने कुरान के साथ एक और विशेषता यह कायम की, कि इसकी सुरक्षा का प्रण भी स्वयं किया था और मुहम्मद साहब के पश्चात् किसी दूसरे नबी, रसूल और पैगम्बर को संसार मे न भेजने तथा अपनी वाणी किसी को न देने का भी वचन दिया था। अतः क़ुरान के पश्चात् प्रलय तक ईश्वर अपनी कोई पुस्तक संसार में किसी को न देगा और न ही किसी को पैग़म्बर, नबी या रसूल ही बना कर भेजेगा। यदि कोई मनुष्य अपने को ईश्वर का नबी, पैगम्बर या रसूल होने का अधिकारी जताएगा तो वह सर्वथा झूठा माना जायेगा।

(२) कुरान की शिक्षा अति उत्तम है। समस्त मुसलमान एक ही जाति है। उनमें कोई सम्प्रदाय नहीं है। यदि उनमें कुछ मतभेद दिखाई पड़ते भी है तो वह मतभेद दूसरी छोटी-छोटी बातों में है, मूलसिद्धान्तों में कोई मतभेद नहीं है। प्रत्येक मुसलमान इसलाम के मूल सिद्धान्तों को अवश्य मानता है और वह सब कुरान की आयतों के एक ही अर्थ करते हैं।

(३) कुरान के आने से पहले साधारण रूप मे समस्त संसार में और विशेष रूप से अरब देश में नास्तिकता फैल रही थी। समस्त मनुष्य ईश्वर और उसके गुणों से अन्जान थे, उनके चरित्र बिगड़ गए थे, मूर्ति-पूजा का पूरा जोर था, अरबी लोग चोर, डाकू और बदमाश थे, उनमें मार-पीट, रक्तपात और निर्दयता कूट कूट कर भरी थी। सूर्य, चन्द्रमा, सितारे, अग्नि और क़ब्रों की पूजा और उपासना के अतिरिक्त और भी भाँति भाँति की पूजा और उपासना प्रचलित थी, मक्का नगर के काबे के मन्दिर में ३६० मूर्त्तियां रक्खी थीं, जिनकी पूजा और उपासना होती थी, मांस खाने, शराब पीने, जूवा खेलने और व्यभिचार करने का ख़ूब जोर था, विमाता से विवाह, स्त्रियों की अदला बदली, हलाला और मुत्आ का सामान्य प्रचलन था। बाप की स्त्री पुत्र को उत्तराधिकार में मिला करती थी, विवाह करने पर कोई प्रतिबन्ध न था और माँ बहन तक से भी विवाह कर लिये जाते थे। अब, ईश्वर ने उन समस्त बुरी बातों को मिटा कर उन्हें सीधे सच्चे मार्ग पर लगाने के लिये और मनुष्य मात्र मे प्रेम और एकता बढ़ा कर सुख और शान्ति

स्थापित करने के लिये मुहम्मद साहब को पैगम्बर बना कर संसार में भेजा था।

(४) कुरान में समस्त विद्याओं का वर्णन है। कुरान ने ईश्वर की पूजा और उपासना के साथ साथ जीवन को पवित्र बनाने पर भी जोर दिया है। संसार की समस्त प्राचीन से प्राचीन और पवित्र से पवित्र पुस्तकों में कुरान ही एक ऐसी पुस्तक है, जिसमें बारीक बातों और जटिल सिद्धान्तों को समझाने के लिये पूर्ण आदेश दिए गये हैं।

(५) कुरान में जो पहले नबियों, रसूलों और पैगम्बरों की कथाओं का वर्णन किया गया है, वह इस कारण किया गया है कि लोगों के दिलों से उनकी कथाएँ निकल गई थीं और उनकी याद फीकी पड़ गई थी। उनकी याद को ताजा करने के कारण वह सब कथाएं लिखी गई हैं।

(६) ईश्वर ने कुरान को इसलिये उतारा था कि ह० मुहम्मद कुरान की आज्ञानुसार बनिस्राइल जाति अर्थात् यहूदी, दाऊदी और ईसाई इत्यादि को जिनमें एक पुराने समय से धार्मिक मतभेदों के कारण शत्रुता चली आ रही थी और वह एक दूसरे से संघर्ष कर रहे थे, उन सब मतभेदों और शत्रुता को मिटा कर तथा उन्हें भाई भाई बना कर एक सम्मिलित प्लेटफॉर्म पर लाकर बिठा दें।

मुसलमान विद्वानों द्वारा कही गई उपरोक्त बातों के सम्बन्ध में हमने पाठकों के विचार और विशेष मनन के लिये इसी पुस्तक में आगे चल कर 'कुरान के शीर्षक' (Heading) में संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालने का यत्न किया है। पाठकों को उन्हे पढ़कर सरलता से यह पता चल जायेगा कि मुसलमान विद्वानों का कुरान के विषय में ऐसा कहना किस सीमा तक सत्य है और कहां तक मिथ्या।

खोज करने से ऐसा पता चलता है कि इसलाम मत के प्रचलित होने से पहले अरब और उसके आस-पास के देशों में पारसी, यहूदी ईसाई और मूर्त्ति-पूजक लोग रहते थे। पारसी, यहूदी और ईसाई तो ईश्वर-विश्वासी थे ही, किन्तु मूर्त्ति-पूजक भी ईश्वर की सत्ता के पूर्ण

रूप से समर्थक थे। वह मूर्त्ति-पूजा को ईश्वर-प्राप्ति का एक साधन समझे हुए थे।

लिखा है कि जब ह० मुहम्मद जवान हो गये तो उन्होंने अरब की एक धनी विधवा स्त्री श्री मति ख़दीचा के यहां नौकरी करली। वह बहुधा व्यापार के कारण दूसरे आस-पास के देशों में आने-जाने लगे। दूसरे देशों में आ-जा कर जब उन्होंने वहां के कुछ अच्छे रीति-रिवाज और धार्मिक विचार देखे तो उनके हृदय में भी अपनी अरबी जाति के बुरे और हानिकारक रीति-रिवाजों को दूर करने का विचार उत्पन्न हुआ। अतः ४० वर्ष की आयु में उन्होंने अपने को ईश्वर का पैग़म्बर कह कर कुछ सदाचार की बातों का प्रचार करना आरम्भ किया। उन्होंने लोगों को यह कहा कि ईश्वर एक है, उसी की पूजा और उपासना करनी उचित है। प्रत्येक मनुष्य से उसके कर्मों का हिसाब लिया जायेगा, इसलिये अच्छे कर्म करने से आनन्द प्राप्त होगा और बुरे कार्य करने से दु:ख और क्लेश भोगना पड़ेगा। मुहम्मद साहब की इन बातों से लोगों में कोई अधिक द्वेष उत्पन्न नहीं हुआ, क्योंकि अरबी लोग पहले से ही इन बातों को जानते थे। इन बातों के प्रचार से उन्हें मुसलमान बनाने में भी कोई विशेष सफलता प्राप्त न हुई। इसके पश्चात उन्होंने गुप्त रूप से मूर्त्ति-पूजकों और उनकी मूर्त्तियों को बुरा-भला कह कर खंडन करना आरम्भ कर दिया। इस गुप्त प्रचार से एक लम्बे समय में ह० मुहम्मद के समझाने-बुझाने पर तीस या चालीस व्यक्ति मुसलमान बने। अब गुप्त प्रचार छोड़ कर वह खुल्लमखुल्ला मूर्त्ति-खंडन करने लगे। इससे मूर्त्ति-पूजक उनसे अप्रसन्न हो गए और उन्हें भाँति भाँति से कष्ट देने लगे।

मूर्ति पूजकों के विरोध के कारण मुसलमानों का अरब देश में रहना कठिन हो गया। यह दशा देख कर ह० मुहम्मद ने कुछ मुसलमानों को सन् ६१६ ई० में एबिसीनिया भेज दिया। किन्तु वह स्वयं अरब देश में ही रहे। जब अरब के लोग उनका अधिक विरोध करने लगे तो उन्होंने यह कहना आरम्भ कर दिया—दीन में जबरदस्ती नहीं, तुम्हारे लिये तुम्हारा दीन और मेरे लिये मेरा दीन, हमारे ऐमाल हमारे लिये और तुम्हारे ऐमाल तुम्हारे लिये। हम में और तुम में कुछ

झगड़ा नहीं। हम तुम्हारी मूर्त्तियों को जिनको तुम ईश्वर के स्थान पर पुकारते हो, बुरा नहीं कहते। ह० मुहम्मद की इस प्रकार की बातों से वहाँ के लोग प्रसन्न हो गए और उनमें से कुछ लोग उनकी शिक्षा की ओर भी चल पड़े।

दस वर्ष तक बराबर प्रचार करने के पश्चात मक्का शहर में मुसलमानों की संख्या १५० के लगभग हो गई। जैसे जैसे मुसलमानों की संख्या में कुछ वृद्धि होती जाती थी, तैसे तैसे क़ुरान की आज्ञाएँ भी कुछ कड़ी होती जाती थीं।

क़ुरान की कड़ी आज्ञाओं के अनुसार प्रचार को देख कर मक्के के लोग फिर मुहम्मद साहब को तंग करने लगे और अन्त में उन्हें यहाँ तक तंग किया गया कि उनका मक्के में रहना दुर्लभ हो गया। इस विरोध को देखकर ह० मुहम्मद ने कुछ मुसलमानों को मक्के से ६० मील की दूरी पर तायफ़ शहर में भेज दिया। किन्तु वह फिर भी मक्के में ही रहे। मक्के में जब उनके प्रचार से वहाँ के लोग बहुत अप्रसन्न हो गए तो वह उन्हें जान से मारने पर तैयार हो गए। ह० मुहम्मद ने जब यह अच्छी तरह देख लिया कि अब मक्के में रहना खतरे से खाली नहीं है तो वह भी अपने साथ कुछ मुसलमानों को लेकर जून ६२२ ई० के पहले सप्ताह में एक रात को चुपके से मक्का छोड़कर मदीने चले गये। इसी तिथी से मुसलमानों की सन् हिजरी आरम्भ होती है।

मदीने पहुंच कर ह० मुहम्मद ने नम्रता और शान्ति का व्यवहार करते हुए लोगों को अपनी शिक्षा से प्रभावित करना आरम्भ कर दिया। कुछ लोग उनके इस व्यवहार और शिक्षा से प्रभावित होकर मुसलमान बनने लगे। मदीने में यहूदियों का अधिक ज़ोर था, इसलिये मुहम्मद साहब ने उन्हें अपनाने के लिये प्रयत्न करने आरम्भ कर दिये। इसी प्रकार होते होते उनका यहूदियों के साथ इस प्रकार समझौता हो गया कि वह अपने धर्म पर और मुसलमान अपने धर्म पर स्थिर रहेंगे तथा उनमें से कोई भी एक दूसरे के मत को बुरा-भला न कहेगा।

उस समय यरुशलम ही यहूदियों, ईसाइयों और अरबियों का क़िबला (पवित्र स्थान) माना जाता था। किन्तु मदीने में जब मुसलमानों

की संख्या में कुछ वृद्धि होती चली गई तो कुरान की आज्ञाएं भी कुछ सख्त आने लगीं। ह० मुहम्मद ने यरुशलम को क़िबला मानने से इन्कार करते हुए काबे के मन्दिर को क़िबला माने जाने का प्रचार आरम्भ कर दिया। यहूदियों तथा ईसाइयों के सिद्धान्तों का खंडन होने लगा। यहूदियों से सन्धि टूट गई और सम्बन्ध बिगड़ते चले गए। उधर मक्का और मदीने के बीच भी तनाव बढ़ता चला गया। अब कुरान की आज्ञाएं भी और अधिक कड़ी आने लगीं। यहूदियों और मुसलमानों में प्रति दिन की खींचा तानी से युद्ध होने अनिवार्य हो गए। उधर कुरान में जहाद (Holy war) की आज्ञाएं आने लगीं। कुरान ने प्रत्येक मुसलमान का जहाद में सम्मिलित होना पहला कर्त्तव्य बतलाया और जहाद में सम्मिलित होने वाले मुसलमान को गाजी (वीर) का नाम दिया गया। लूट के माल को हलाल (उचित) करार दिया गया। स्वर्ग में हूर (अप्सराएँ) और गिलमान (लडके) शराब और कबाब तथा दूसरे हर प्रकार के राग रंग मिलने पर बार बार जोर दिया गया। बहुत से लोग इन आज्ञाओं के आने पर मुसलमान होते चले गए।

१३ जनवरी सन् ६२४ ई० को बिदर का पहला युद्ध आरम्भ हुआ। घमासान युद्ध हुआ, जिसमें विजय मुसलमानों के हाथ रही। उनके हाथ खूब लूट का माल आया। उनके हौसले बढ़ गये। उधर कुरान की आयतें भी कुछ और सख्त आनी आरम्भ हो गईं। दो वर्ष के अन्दर बहुत से यहूदी मारे गए, बहुत से मुसलमान बनाए गए और बहुत से देश से निकाल दिये गए। इस प्रकार मूर्ति-पूजकों, यहूदियों, दाउदियों और ईसाइयों से मुसलमानों के उस समय २७ तो बडे युद्ध हुए और उनके अतिरिक्त कुछ और भी छोटी बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। इन सब की संख्या ८१ थी। इन लड़ाइयों में कई बार ह० मुहम्मद स्वयं सम्मिलित हुए, कई बार जख्मी हुए और जान के लोल पड़े, कई एक में मुसलमानों को हानियाँ उठानी पड़ी और कई एक में खूब लूट का माल और स्त्रियाँ हाथ आईं, बहुत से लोग दास बना कर बेचे गये और बहुत सी स्त्रियों को घरों में डाला गया और बहुतों को दासियाँ बनाकर बेचा गया। अंत में सं० ६३० ई० में ह० मुहम्मद ने मक्का जीत लिया, काबे के मन्दिर की मूर्तियां को तोड़ा गया और समस्त मक्का शहर के लोगों को मुसलमान बना लिया गया। मक्का जीत लेने पर अब अरब देश में

ह० मुहम्मद का कोई शत्रु न रहा। अत. ह० मुहम्मद ने खिलाफ़त की नींव डाली और वह स्वयं खलीफा (Leader) बनकर राजकार्य बड़ी सादगी और सरलता से चलाने लगे।

ह० मुहम्मद ने बहुत से बुरे रीति-रिवाजों को समाप्त करके अरबी लोगों का एक सीमा तक सुधार किया किन्तु फिर भी उनका पूर्ण रूप से सुधार न हो सका। आज भी उनके स्वभाव और जीवन में वही पहले जैसे बुरे आचारण बहुत कुछ अंशों में पाए जाते हैं।

ह० मुहम्मद की मृत्यु तक तो अरब के लोग मुसलमान बने रहे, किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् बहुत कुछ लोग इसलाम छोड़ बैठे। ऐसे लोगों को पूर्ण रूप से कुचल दिया गया। इधर ह० मुहम्मद की मृत्यु पर इसलाम दो भागों में बँट गया—इमामत (Leader ship) और खिलाफ़त का झगड़ा खड़ा हो गया। एक दल में ह० अबुबक्र, ह० उमर, ह० उस्मान और ह० मुहम्मद की पत्नि अर्थात् ह० अबुबक्र की पुत्री श्री मति आयशा सम्मिलित हो गई। दूसरे दल के नेता ह० अली बन गए। पहले दल वाले ह० अबुबक्र, को खलीफा बनाना चाहते थे और दूसरा दल ह० अली को ह० अबुबक्र वाला दल अधिक शक्तिशाली था, इसलिए काफी लड़ाई-झगड़ों के पश्चात् पहले ह० अबुबक्र, फिर ह० उमर और फिर ह० उस्मान खलीफा बनते रहे। ह० अली उन सबके पश्चात् खलीफा बने। ह० अली और उनके पुत्रों के साथ भी पहले दल के लोगों का काफी संघर्ष रहा, जिनमें एक ने दूसरे पर दिल खोल कर अत्याचार किये। पहले दल वाले सुन्नी और दूसरे दल वाले शीया कहलाते हैं। शीया लोग ह० अबुबक्र, ह० उमर और ह० उस्मान को अनाधिकारी (Trespasser) कहते हैं और उनको अनादर सूचक नामों से पुकारते हैं। जबकि पहले दल वाले उन तीनों महानुभावों को सम्मान सूचक नामों से याद करते हुए उन्हें खिलाफत के सच्चे अधिकारी समझते हैं। इन दोनों दलों में बहुत सी भयानक लड़ाइया होती रहीं और आज भी वह एक दूसरे को घृणा, ईर्षा और निरादर की दृष्टि से देखते है।

ह० मुहम्मद के पश्चात् ऊपर लिखे गए चारों खलीफाओं ने अपने अपने समय में इसलाम के प्रचार में महत्त्वपूर्ण योग दिया। इस्लामी राज्य का बहुत विकास किया गया। श्याम, ईरान, ईराक और मिश्र

आदि देशों को मुसलमान बनाकर इस्लामी राज्य में सम्मिलित किया गया। कहां तक कहा जाये, इस्लाम के आरम्भिक ६०० वर्षों में इस्लाम के प्रचार और इस्लामी राज्य के विकास के लिये मुसलमानों ने बहुत से लड़ाई-झगड़े, रक्तपात और संघर्ष किये। अफ्रीका, आस्ट्रिया और पुर्तगाल को भी जीतकर इस्लामी राज्य में सम्मिलित किया गया, मगर आस्ट्रिया, स्पेन और पुर्तगाल इस्लामी राज्य में कुछ अधिक समय तक न रह सके। वह देश वहाँ के ईसाइयों ने मुसलमानों से खाली करा लिये और इस्लाम को भी निकाल बाहर कर दिया।

संसार में मुसलमान इस समय थोड़े-बहुत हर देश में पाए जाते हैं। उनकी संख्या लग भग ८४ करोड़ कही जाती है।

क़ुरान की कुछ महत्त्वपूर्ण आयतें

क़ुरान मे कुछ नरम, कुछ कड़ी और कुछ लड़ाई, लूट खसोटे और जहाद सम्बन्धी आयतें मौजूद हैं। उनमें से यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण आयते पाठकों के तुलनात्मक मनन के लिये दी गई हैं—

नरम आयतें—

(१) मौमिनों! एक जाति दूसरी जाति से ठट्ठा न करे। सम्भव है वह उनसे उत्तम हों और परस्पर एक दूसरे पर ऐब न लगाओ, न ही एक दूसरे को अनादार सूचक शब्दों से पुकारो। (सु० ४६, आ० १०)

(२) दीन मे जबर्दस्ती नहीं—(सु० २, आ० २५५)

(३) तू कह, ऐ काफिरो! जिसे तुम पूजते हो, उसे मैं नहीं पूजता हूं। और जिसे मैं पूजता हूँ उसे तुम पूजने वाले नहीं। और न मैं पूजने वाला हूँ, जिसे तुमने पूजा। और न तुम पूजने वाले हो, जिसे मैं पूजता हूँ। तुम्हारे लिये तुम्हारा दीन और मेरे लिये मेरा दीन। (सु० १०६, आ० १-६)

(४) अल्लाह हमारा और तुम्हारा रब है। हमारे ऐमाल हमारे लिये और तुम्हारे ऐमाल तुम्हारे लिये हैं। हममे और तुममें कुछ झगड़ा नहीं। अल्लाह हम सबको जमा करेगा और उसी की तरफ फिर जाना है (सु० ४२, आ० १४)

(५) और अगर वह तुझे झुठलाएँ, तू कह, मेरा अमल मेरे लिये और तुम्हारा अमल तुम्हारे लिये। तुम मेरे अमल से बेजार हो, मैं तुम्हारे ऐमाल से बेजार हूँ। (सु० १०, आ० ४०)

(६) और अगर तेरा रब चाहता तो सब लोग जो जमीन में हैं इकट्ठे ईमान ले आते। बस क्या तू आदमियों पर जब्र करता है कि वह मोमिन हो जायं? और किसी से हो नहीं सकता कि बगैर इज्न (इजाजत) खुदा के ईमान लाए। और वह उन पर नापाकी

डालता है, जो नहीं समझते। (सु० १०, आ० ६८-६६)

(७) और तुम मुसलमानों! उनके माबूदों (देव प्रतिमाओं) को जिनको वह खुदा के सिवा पुकारते हैं, बुरा न कहो। (सु० ६, आ० १०७)

(८) बेशक जो लोग मुनकिर (नास्तिक) हुए, उनके लिए बराबर है कि तू उनको डराए या न डराए। वह न मानेंगे। खुदा ने मोहर कर दी है—उनके दिलों पर और उनके कानों पर। और उनकी आंखों पर पर्दा पड़ा है और उनके लिये बड़ा अज़ाब है। (सु० २, आ० ५-६)

(९) मोमिनो! अल्लाह के लिके इन्साफ़ के साथ गवाही देने को खड़े हो जाया करो और किसी कौम की अदावत तुम्हें इस बात पर तैयार न करे कि इन्साफ़ न करो, इन्साफ़ करो। (सु० ५, आ० ७)

(१०) जो शख्स बुरा काम करेगा, उसका वबाल उसी पर होगा और कोई किसी का बोझ नहीं उठाएगा (सु० ६, आ० १६३)

(११) सो जिनके तोल भारी होंगे, वही नजात पाएंगे और जिनके तोल हल्के होंगे सो वही हैं जिन्होंने अपनी जानें खिसारे (घाटे) में डालीं। (सु० ७, आ० ७-८)

पहली आयतों की कुछ विरोधी आयतें—

(१) तुफ़ (लानत) है तुम पर और अल्लाह के सिवाय तुम्हारे माबूदों (देव प्रतिमाओं) पर (सु० २१, आ० ६६)

(२) बस अल्लाह की लानत है काफ़िरों पर। (सु० २, आ० ८८)

(३) जो लोग काफिर हुए और काफ़िर ही मर गए, उन पर अल्लाह की और फरिश्तों की और सब आदमियों की लानत है। वह हमेशा लानत में ही रहेंगे। (सु० २, आ० १६०-१६१)

(४) मोमिनो! अहले किताब में से जो लोग तुम्हारे दीन का ठट्ठा और खेल बनाते हैं, उनको और काफ़िरों को अपना मित्र न बनाओ। (सु० ५, आ० ५६)

(५) मोमिनो! तुम यहूद (यहूदी) और ईसाई को दोस्त न बनाओ। वह सब आपस में एक दूसरे के दोस्त हैं और तुम में से जो कोई उनका दोस्त बनेगा तो निःसन्देह वह उन्हीं में से होगा। बेशक अल्लाह ज़ालिम क़ौम को हिदायत नहीं करता। (सु० ५, आ० ५०)

(६) बेशक वह काफ़िर हैं जो मरियम के बेटे मसीह को अल्लाह कहते हैं। (सु० ५, आ० १६)

(७) और जो इस्लाम के सिवाय किसी और दीन को चाहेगा, वह उससे हरगिज़ कबूल नहीं किया जायेगा और वह आख़रत में नुक़सान पाने वालों में से होगा। (सु० ३, आ० ८४)

(८) जो कोई रसूल की मुख़ाल्फ़त करेगा और मुसलमानों की राह के सिवाय किसी और राह पर चलेगा वह हमेशा के लिये नरक में डाला जायेगा। (सु० ४, आ० ११५)

(९) चाहिये कि मुसलमान मुसलमानों के सिवाय काफ़िरों को दोस्त न बनाएँ और जो (मुसलमान) ऐसा करेगा, तो उसे ख़ुदा से कोई सम्बन्ध नहीं। (सु० ३, आ० २७)

(१०) फिर अगर वह (काफ़िर) कबूल न करें तो उन्हें पकड़ो और क़त्ल करो। जहाँ कहीं पाओ और उनमे से किसी को रफीक़ (मित्र) और मददगार न बनाओ। (सु० ४, आ० ८८)

(११) जहाँ कहीं पाओ उनको क़त्ल करो और वहां से उनको निकालो जहां से उन्होंने तुमको निकाला है (मक्के से) और दीन से बिचलाना क़त्ल से भी ज़्यादा सख़्त है। (सु० २, आ० १६०)

जहाद—Holy War—के विषय में कुछ यह आयतें हैं—

(१) मुसलमानों हल्के और बोझल निकल पड़ो और अपनी जान और माल से अल्लाह की राह में जहाद करो। यह तुम्हारे हक़ में बेहतर है अगर समझते हो। (सु० ६, आ० ४०)

(२) मोमिनो ! अपने नजदीक के काफ़िरों से लड़ने को जाओ और जरूरी है कि वह तुममें सख्ती देखें। (सु० ६, आ० १२२)

(३) ऐ नबी ! तू मुसलमानों को लड़ाई पर उभार। (सु० ८, आ० ६४)

(४) सो ऐ मुहम्मद तू खुदा की राह में लड़ाई कर। तू जिम्मेदार नहीं और तू ईमानदारों (मुसलमानों) को लड़ाई पर उभार। (सु० ४, आ० ८३)

(५) अहले किताब में से जो लोग अल्लाह और आख़िरी दिन पर ईमान नहीं लाते और अल्लाह और उसके रसूल की हराम की हुई चीजों को हराम नहीं जानते और दीनेहक़ (इस्लाम) क़बूल नहीं करते, तुम मुसलमानों ऐसों से मुक़ाबला करो। यहाँ तक कि वह अपने हाथों से जजिया (एक तरह का कर) दें और जलील (तुच्छ) होकर रहें। (सु० ६, आ० २८)

(६) फिर जब हुरमत के महीने गुजर जायं तो काफिरों को जहाँ पाओ, क़त्ल करो और पकड़ो और घेरो और हर घात की जगह में उनके लिये बैठो। फिर अगर वह तोबा करें और नमाज पढ़ें और जकात (खैरात) दें तो उनकी राह छोड़ दो, वह जहाँ चाहें फिरें। अल्लाह बक्शने वाला महरबान है। (सु० ६. आ० ४)

(७) ऐ नबी ! काफ़िरों से लड़ाई कर और उन पर सख्ती दिखला और उनका ठिकाना जहन्नुम है जो बुरी जगह है। (सु० ८, आ० ७२)

लूट सम्बन्धी आयतें—

(१) तू कह लूट का माल अल्लाह का और रसूल का है। (सु० ८, आ० १)

(२) और जान लो कि जो लूट का माल लाओ, उसका पाँचवाँ भाग अल्लाह और रसूल और उसके सम्बन्धियों, अनाथों और मोहताजों और मुसाफिरों के लिये है। (सु० ८, आ० ४०)

(३) जो लूट का माल तुम लाए हो, हलाल, पाक है। तुम खाओ

और अल्लाह से डरो। अल्लाह बख्शने वाला महरबान है।
(सु० ८, आ० ६८)

(४) शौहर वाली औरतों का निकाह में लाना भी हराम है। मगर जो तुम्हारे कब्जे में आ जायें, उनसे निकाह कर सकते हो। (सु० ४, आ० २३)

जन्नत (स्वर्ग) में हूर, गिल्मान (लड़के) शराब और दूसरे राग-रंग मिलने के विषय में जो कुरान में आयतें आई हैं, उनका उल्लेख आगे चल कर 'जन्नत' शीर्षक में किया गया है।

इस्लाम का प्रचार और प्रसार

आपने पिछले पृष्ठों में लिखी हुई कुछ कुरानी आयतों को पढ़कर निश्चय कर ही लिया होगा कि ईश्वर ने कुरान में आवश्यकतानुसार पहले नर्म, फिर गर्म और फिर जहाद (Holy war) और लूट-मार के माल को बाँटने तथा लोगों को मुसलमान बनाने के सम्बन्ध में क्या-क्या आज्ञाएँ दी हैं। ईश्वर ने मुसलमानों का पहला कर्त्तव्य जहाद में सम्मिलित होकर ख़ुदा के दीन (इस्लाम-मत) को फैलाने का किस प्रकार आदेश दिया है। ईश्वर ने मुसलमानों को जन्नत में हूर, गिल्मान, और भाँति-भाँति की शराब-कबाब मिलने और राग-रग मनाने के सम्बन्ध में क्या-क्या वचन दिए हैं।

मुसलमान विद्वानों की ओर से बहुधा यह कहा जाता है कि संसार में इस्लाम का प्रचार और प्रसार शान्तिमय ढँगो से हुआ। कभी किसी सख्ती या जबरदस्ती से काम नहीं लिया गया, वरन् लोगों को इस्लाम मत के सिद्धान्त समझा कर जाँचने और तोलने के अवसर दिये गये। उसके पश्चात् जिसकी समझ में वे सिद्धान्त आ गए, फिर वह प्रसन्नता पूर्वक मुसलमान बन गया। किन्तु इतिहासकार मुसलमान विद्वानों के इस मत से सहमत नहीं है। उनका कथन है कि इस्लाम का प्रचार और प्रसार जहाँ कुछ शान्तिमय ढंगों से हुआ है, वहाँ इस्लाम की तलवार ने भी इसके प्रसार में एक विशेष योग दिया है। यह एक

ऐतिहासिक प्रश्न है। इसका निश्चय तो इसलामी इतिहास पढ़ने से ही हो जाता है।

ह० मुहम्मद ने पहले तो समझा-बुझा कर ही कुछ लोगों को मुसलमान बनाया था, किन्तु जब उनकी संख्या बढती चली गई तो फिर दूसरे लोगों से लडाई-झगड़े की नौबत आ गई। उन लड़ाई-झगड़ों में बहुत से लोग मुसलमान बनाए गए। जैसा कि हम पहले भी लिख आए हैं कि ह० मुहम्मद के समय में छोटी-बड़ी ८१ लड़ाइयॉ हुईं और वह सब इसलाम मत के प्रसार के लिए ही हुईं थीं। उनमें काफी लोग मुसलमान बनाए गए। ६३० ई० में मक्के शहर को जीता गया और समस्त शहर के लोगों को मुसलमान बनाया गया।

ह० मुहम्मद के पश्चात् दूसरे खलीफाओं ने इसलाम मत के प्रसार और प्रचार में काफी योग दिया। इसलाम का अन्य मत-मतान्तरो के अनुयाइयों को बहुधा यह सन्देश भेजा जाता था'—'हजरत मुहम्मद, खुदा के पैगम्बर और खुदा की किताब कुरान पर ईमान लाओ या जजिया (कर) अदा करो और या इसलामी तलवार का मुकाबला करो।" चुनाचे मुसलमानों को इसलाम मत फैलाने और इसलामी राज्य को बढ़ाने के सिवाय इसलाम के प्रारम्भिक समय में कोई और विशेष काम न था। इसलाम के प्रसार का संक्षिप्त रूप से इस प्रकार वर्णन मिलता है—

(१) ६३४ ई० में दमिश्क (Damascus) जीता गया।

(२) ६३६ ई० मे फारस और सीरिया पर अधिकार किया गया।

(३) ६३७ ई० मे यरूशलम को विजय किया गया।

(४) ६३८ ई० मे मिश्र और अफ्रीका पर आक्रमण किया गया और फिर अलेक्जेन्ड्रिया लिया गया।

(५) ६४७ ई० में उत्तरी अफ्रीका पर आक्रमण किया गया।

(६) ६४८ ई० मे साइप्रस (Cypras) पर अधिकार किया गया।

(७) ६६८ ई० में कुस्तुनतुनिया को घेरा गया।

(८) ७०० ई० के लगभग तुर्किस्तान, बुख़ारा और समरकंद पर अधिकार जमाया गया।

(९) ७१२ ई० में भारतवर्ष पर प्रथम बार आक्रमण किया गया।

(१०) ७१६ ई० में स्पेन पर प्रभुत्व स्थापित किया गया।

(११) ८२३ ई० में क्रीट Crete को हस्तगत किया गया।

(१२) ८४६ ई० में रोम में सत्ता स्थापित की गई।

(१३) ८७८ ई० में सिसली Sicily पर अधिकार जमाया गया।

(१४) १४०० ई० में थ्रेस-Tharace बलगारिया आदि को पराजित किया गया।

(१५) १५वीं शताब्दी में योरुप के कई अन्य देशों को भी जीता गया।

ह० मुहम्मद ने अपने जीवन में ही चीन में इसलाम का प्रचार करने के लिये कुछ मुसलमानों को भेज दिया था। उन्होंने ६३० ई० में वहां जाकर एक मस्जिद बनाई और कुछ लोगों को मुसलमान बनाया। इसके पश्चात् कुछ तुर्क अरबी और मंगोल चीन के उत्तरी और पश्चिमी भाग में व्यापार के सम्बन्ध में जाकर बस गए। उन्हीं दिनों चीन में राजा के विरुद्ध विद्रोह खड़ा हो गया। उस विद्रोह को दबाने के लिये अरब के ख़लीफ़ा ने ४ हज़ार सैनिक राजा की सहायता के लिये भेजे। इसके बदले में राजा ने चीन में मुसलमानों को हर प्रकार की सुविधाएँ देनी आरम्भ करदीं। कुछ दिनों के पश्चात् चीन में मुसलमानों की सख्या १ लाख २० हज़ार हो गई। अब उन्होंने वहां के ईसाइयों और दूसरे चीन निवासियों को मारना काटना आरम्भ कर दिया। वहां के राजा ने एक मुसलमान स्त्री से विवाह कर लिया और अब वह मुसलमानों पर विशेष अनुग्रह रखने लगा। चीन में मुसलमानों की वृद्धि होती चली गई। देश में मस्जिदें बननी आरम्भ हो गई। फिर वहाँ का एक राजा मुसलमान बन गया। उसके कारण मुसलमानों की संख्या बढ़ती ही चली गई।

इधर बुखारा को मुसलमानों ने जीत कर इसलाम का केन्द्र बना लिया। यहाँ से अफ़गानिस्तान, चीन काश्मीर और भारतवर्ष में इसलाम फैलाया गया। यदि पाठकों को इसलाम के प्रचार और प्रसार के विषय मे कुछ अधिक जानने की इच्छा हो तथा यह जानना चाहें कि लोगों को मुसलमान कैसे बनाया गया और उनके साथ क्या व्यवहार किया गया तो उन्हें चाहिये कि वह इन पुस्तकों का अध्ययन अवश्य करे—

तारीख अख़ियार, तारीख अबिउलफ़िदा, सीरतुल रसूल, तारीख उल अनबिया, फ़तुह उलश्याम, रोजतुल सफ़ा, सनद उल त्वारीख़, तारीख़ फरिश्ता और फतह उल मिस्र।

यदि भारतवर्ष में इसलाम के प्रसार के विषय में कुछ अधिक जानने की इच्छा हो तो इन पुस्तकों का अध्ययन करे—

तारीखे हिन्द (प्रो० ज़काउल्ला), आयने तारीख नुमा (१८८१ ई०), तारीखे हिन्दुस्तान (१८८१ ई०), तारीख फरिश्ता (मुहम्मद कासिम फरिश्ता), तारीखे बुलन्द शहर, इतिहास तमर्नासिक तीन भाग, तारीख राजस्थान, तारीखे हिन्द कलकत्ता, वाकयात हिन्द, तारीखे कश्मीर और भूगोल हिन्द के अतिरिक्त कुछ योरुपियन इतिहासकारों के इतिहास भी पढ़ने योग्य हैं। उनमें से कुछ यह हैं—

सर विलियमम्योर (Sir William Muir) डा० स्प्रिंगर-(Dr. Sprenger), डा० व्हीलर (Dr. Wheeler), डा० एडवर्ड केन-डा० स्मिथ, Dr. Smith इत्यादि।

भारतवर्ष में इसलाम का प्रसार

भारतवर्ष में जहाँ इसलाम के प्रसार में इसलामी तलवार ने योग दिया है, वहाँ पीरी-मुरीदी (गुरू-शिष्य) के हतकंडों और हिन्दुओं की आपसी फूट, वैर-विरोध, द्वेष, अन्धविश्वास, लालच और भूलों से भी इस देश में इसलाम को फैलने का काफ़ी अवसर मिला है। अतः नमूने के तौर पर कुछ यह घटनाएँ भी प्रस्तुत की जाती हैं—

(१) कहमबात के किनारे पर दो व्यक्ति जिनमें से एक का नाम अब्दुल्ला और दूसरे का नाम अहमद था, उतर कर उसी क्षेत्र में रहने लगे। उन्होंने अपने को पीर प्रसिद्ध किया और अपनी करामात, सिद्धि तथा चमत्कारों का चर्चा करना आरम्भ कर दिया। बहुत से हिन्दू बोहरे उनके शिष्य बन कर उनका आदर सम्मान करने लगे। फिर उन दोनों ने धीरे-धीरे उन अपने शिष्यों को मुसलमान बना लिया। वह मुसलमान आजकल इस्माइलिया कहलाते हैं।

(२) अब्दुल्ला और अहमद के राग-रंग और आदर-सम्मान को देख कर कुछ दूसरे मिस्र इत्यादि देशों के मुसलमानों के मुँह में भी पानी भर आया। चुनांचे वह लोग वहाँ से आकर गुजरात, मालवा और राजपुताने आदि क्षेत्रों में बस गए, उन्होंने भी अपने को पीर और औलिया प्रसिद्ध किया और इसलाम के प्रचार का कार्य अब्दुल्ला और अहमद के ढँगों पर करने लगे। उनके भी बहुत से हिन्दू व्यापारी पहले शिष्य बने फिर मुसलमान हो गए। वह बोहरे कहलाते हैं।

(३) जब हलाकु खाँ ने नज्जारियों (शीया मुसलमानो का एक सम्प्रदाय) का ईरान में वध करना आरम्भ कर दिया तो वह लोग वहाँ से भाग कर भारतवर्ष में चले आए। उनमे एक व्यक्ति सदरूदीन था। उसने सिन्ध में अपने को पीर प्रसिद्ध कर दिया। अतः उसने अपना प्रचार इस प्रकार आरम्भ किया—कि हिन्दुओं को कृष्ण जी के जिस अवतार की प्रतीक्षा है, वह बहुत दिन हुए अरब में अली के नाम से प्रकट हो चुका है और मैं उसका प्रनिनिधि हूँ। ह० अली के आदर-सम्मोन मे बहुत कुछ प्रचार किया गया और उनकी वंशावली श्री कृष्ण से मिला कर हिन्दुओं के हृदयों में बिठा दी गई। पहले उसने गुजरात से लेकर बम्बई तक के बहुत से हिन्दुओं को अपना शिष्य बनाया और फिर धीरे-धीरे उन्हें मुसलमान बना लिया।

(४) सर आगा खाँ के पूर्वज इस्न अली शाह उसी नज्जारिया सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। वह भी उसी समय में ईरान से भाग कर कधार होते हुए सिन्ध में आकर रहने लगे थे। अतः उन्होंने भी अब्दुल्ला, अहमद और पीर सदरूदीन के ढंगों पर हिन्दुओं को मुसलमान बनाया, जो अब खोजे या आगाखानी कहलाते हैं।

(५) हस्न अली शाह के पोतों में एक सय्यद इमामुद्दीन सानी (द्वितीय) हुए है, वह अहमदाबाद में जाकर बस गए। उन्होंने भी अपने दादा के ढगों पर हिन्दुओं को मुसलमान बनाया और अपना नाम पीर ईमाम शाह प्रसिद्ध कर दिया। उन्होंने हिन्दुओं को यह शिक्षा देनी आरम्भ करदी कि ईश्वर को एक मानो, उसके रसूल ह० मुहम्मद पर ईमान लाओ। अली को कृष्ण का अवतार और मुझे उसका प्रतिनिधि समझो। उनके शिष्य समूह इस समय 'गुप्ती सम्प्रदाय' कहलाता है।

(६) एक पीर शमशुद्दीन तिवरेजी थे जो इस्माइलिया सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते थे। वह रावलपिंडी मे जाकर बस गए। उन्होंने वहाँ के गरीब और छोटी जाति के हिन्दुओं को शिष्य बना कर मुसलमान बनाया और उन मुसलमानों का नाम 'शमशी सम्प्रदाय' रक्खा।

इन पीरों-फ़कीरों और औलियाओं के अतिरिक्त पीर झन्डे वाला और पीर पघारा सिन्ध में, पीर वारिस अली शाह बारह बकी मे, मख्दूम हुसैन बख्श रावलपिंडी में; शाह तालिब हुसैन फरुखाबाद मे; सैयद गौस अली शाह पानीपत में; मौलवी नुरुद्दीन ऐटा में हुए हैं। और भी भारतवर्ष में बहुत से मुसलमान पीर-फकीर और औलिया हुए। तेरहवीं शताब्दी में मुस्लिम देशों से सूफी लोग भारतवर्ष में आने लगे। इन सब पीरों-फकीरों और सूफियों न अपने-अपने ढंगो से बहुत से हिन्दुओ को मुसलमान बनाया।

हिन्दुओं की पारस्परिक फूट, वैर-भाव, द्वेष, अन्धविश्वास, लालच और भूलों के यों तो बहुत से उदाहरण हैं, किन्तु इनमें से कुछ नमूने के तौर पर नीचे लिखे गए हैं—

(१) खलीफा वलीद की खिलाफ़त के समय हजाज इब्ने यूसुफ कोफ़े (Babeylonia) का गवर्नर था। उससे अप्रसन्न होकर वहाँ की एक जाति 'अल्लाफ़ी' के कुछ लोग भारतवर्ष में सिन्ध के राजा दाहर की शरण मे आकर बस गए। उस समय तक भारतवर्ष में कोई मुसलमान न था। सन् ७१२ ई० में हजाज ने मु० कासिम को सेनापति बना कर सिन्ध पर आक्रमण करने के लिये भेजा। राजा दाहर ने उस अल्लाफी जाति के सरदार मुहम्मद वारिस को शत्रु का सामना करने

की आज्ञा दी। किन्तु उस सरदार ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इस पर राजा दाहर ने उस सरदार से कहा कि हमने तुम्हें अपनी शरण मे लेकर अपने राज्य मे वसाया, तुम्हें सेना में भरती करके ऊँचे पद दिये और तुम्हारे लिये वह सब कुछ किया जो हम कर सकते थे। इस पर सरदार ने उत्तर दिया कि यह सब ठीक है। आपने हमारे लिये सब कुछ किया है, किन्तु वह जो आक्रमण करने आ रहा है, मुसलमान है। आप ही बताइये कि मै उसका सामना कैसे कर सकता हू? आप जानते ही है कि इसलाम मत मुसलमान को मुसलमान के साथ लड़ने की आज्ञा नहीं देता। यह सुन कर राजा चुप हो गया और स्वयं सामना करने के लिये पहुचा। जब युद्ध आरम्भ हो गया तो राजा दाहर की सेना के अल्लाफी जाति के सैनिक 'अल्लाहो अकबर' कह कर मु० कासिम की सेना में जा मिले और राजा पर आक्रमण कर दिया। राजा दाहर हार गया। देविल शहर (जहाँ अब करॉची है) पर मुसलमानों का क़ब्जा हो गया। कई दिन तक लूट, खसोट और मार-पीट होती रही। देविल शहर के कई प्रसिद्ध मन्दिर तोड़े गए। इस जीत से मुसलमानो की भारतवर्ष मे नींव पड़ गई और उनका प्रसार आरम्भ हो गया।

(२) काली कट के राजा जमूरिन ने कुछ अरबी मुसलमान मल्लाहों को अपने राज्य में बसा कर उन्हें हर प्रकार की सुविधाएं दे दी थीं। उन मुसलमान मल्लाहों की सन्तान इस समय मोपला कहलाती है। इन मोपलाओं ने हिन्दुओं के साथ जो अत्याचार किये, वह तो सभी लोग जानते हैं।

(३) दक्षिण के एक राजा चीरामल-पीरुमल को एक रात स्वप्न मे यह दिखाई दिया कि चॉद के दो टुकड़े हो गए हैं। उसने पंडितो से स्वप्न का रहस्य पूछा, किन्तु पंडित राजा को सन्तुष्ट न कर सके। एक मुसलमान राजा से मिला और उसने स्वप्न का रहस्य यह बतलाया—मुहम्मद साहब ने चॉद के दो टुकड़े कर दिये थे, वही दोनों टुकड़े आपको दिखाई दिये हैं। ह० मुहम्मद आप पर विशेष रूप से दयालु हैं। अत, आप तुरन्त उनकी शरण में मक्का जाओ, वरना आपका राज्य नष्ट हो जायेगा। वह राजा इस बात पर विश्वास करके मक्का चला गया। वह वहां जाकर मुसलमान हो गया। वहॉ से उसने

अपने राज्य में कुछ मुसलमानों को भेजा। उन्होंने यहां आकर बहुत से लोग मुसलमान बनाए।

(४) कश्मीर मे जब कोई मुसलमान न था तो तुर्किस्तान के एक सरदार सिकन्दर ने कश्मीर जीत लिया। वह सरदार नास्तिक था। उसने यह घोषणा करा रक्खी थी कि जो कोई मुझे अपने धर्म या मत के सिद्धान्त समझा कर सन्तुष्ट कर देगा, मैं उसी धर्म या मत को मानने लगूंगा। कश्मीरी पंडितों ने उसे मलेच्छ कह कर अपने धर्म के सिद्धान्त समझाने से इन्कार कर दिया। एक मुसलमान फ़कीर बुलबुल शाह उस सरदार के पास पहुंचा और उसे इसलाम के सिद्धान्त समझाए। वह सरदार मुसलमान हो गया। मुसलमान होते ही उसने कश्मीरी हिन्दुओं को मुसलमान बनाने की आज्ञा जारी करदी। जो हिन्दु मुसलमान बनने से इन्कार करता, उसका या तो वध कर दिया जाता या उसे भाँति-भाँति से तंग किया जाता। इसके अतिरिक्त उसने हिन्दुओं पर और भी बहुत से प्रतिबन्ध लगा दिये थे।

(५) ६६७ ई० मे जयपाल पंजाब का एक शक्तिशाली राजा था। उसके समय में अफ़ग़ान भारतवर्ष पर आक्रमण किया करते थे। राजा ने उन आक्रमणों को रोकने के लिये शेख हमीद को पेशावर से खंबर तक का क्षेत्र देकर सीमा का अधिकारी और नवाब बना दिया था। एक बार राजा ने अफगानिस्तान पर आक्रमण किया। शेख़ हमीद विद्रोही होकर अफ़गानों से जा मिला। दोनों ओर से मुसलमानों ने राजा पर हल्ला बोल कर भीषण रक्तपात आरम्भ कर दिया। राजा और उसकी सेना नष्ट हो गई। इससे पंजाब में मुसलमानों का ज़ोर बढ़ना आरम्भ हो गया।

(६) १३वीं शताब्दी में बख्त्यार खिल्जी ने बिहार पर आक्रमण किया। वह नालन्दा महाविद्यालय को नष्ट करता हुआ आगे बढ़ा। एक हिन्दु राजा ने उसका सामना किया। बख्त्यार के पास सेना बहुत कम थी इसलिये उसने राजा की सेना में यह अफ़वाह फैलवादी कि बख्त्यार ने कुवों मे गौ-मांस डलवा दिया है। इसके साथ ही कुछ पंडितों को लालच देकर यह भी कहलवा दिया कि जिस किसी ने उन कुंवों का पानी पिया है, वह भ्रष्ट हो गया है। वह हिन्दु नहीं रह

सकता। राजा के सैनिक निराश हो गए, उनमें से कुछ ने आत्मघात कर लिया और शेष मुसलमान होकर बख्त्यार की सेना में जा मिले। हिन्दुओं का वध बड़ी निर्दयता से किया गया।

इसलाम के मूल सिद्धान्त

इसलाम के यह पाँच मूल सिद्धान्त हैं—

(१) कल्मए तौहीद (ईश्वर वचन)

(२) नमाज़ (प्रार्थना-उपासना)

(३) ज़कात (दान-पुन्य)

(४) रोज़ा (व्रत)

(५) हज (मक्के की यात्रा)

कुछ मुसलमान जहाद, पशुओं के बलिदान (क़ुरबानी) और ख़तना को भी इसमें सम्मिलित करते हैं।

(१) कल्मए तौहीद— "ला इलाहा इल्लिल्हा मुहम्मद रसूलल्लाह"। इसका अर्थ यह है कि अल्लाह के अतिरिक्त और कोई उपासना के योग्य नहीं है और ह० मुहम्मद उसके रसूल हैं। 'ला इलाहा इल्लिल्हा' के साथ ह० मुहम्मद को सम्मिलित करना आवश्यक है। जो ऐसा नहीं करता, वही काफ़िर है।

(२) नमाज—इसलाम से पहले ईरान का एक सम्प्रदाय मैनिकियन-Manichian दिन में पाँच बार ईश्वर की पूजा-उपासना किया करता था। ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि इसलाम ने दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़ने के समय को उन्हीं की देखा-देखी अपनाया है। नमाज से पहले मुंह-हाथ धोने के ढंग और नमाज़ में सिजदा करने की विधि भी उन्हीं से ली गई है।

नमाज़ पढ़ते समय काबे की ओर मुंह करना आवश्यक है। शिया, सुन्नियों और वहाबियों इत्यादि मे नमाज़ की विधि और समय इत्यादि बातों मे कुछ भिन्नताएं हैं।

इसलाम से पहले उन देशों के लोग अपना समस्त धार्मिक कर्म-काण्ड काबे की ओर मुंह करके ही सम्पादित किया करते थे। हिजरत से पहले ह० मुहम्मद जब तक मक्के में रहे, उस समय तक तो कुरान की यह आयत चलती रही—'पूरब और पश्चिम अल्लाह की है। बस जिधर तुम मुंह करो, वहां ईश्वर ही व्याप्त है। निःसन्देह ईश्वर सुनने वाला है और सब कुछ जानने वाला है। (सु० २, आ० ११४)

किन्तु जब ह० मुहम्मद मक्के से हिजरत करके मदीने चले गए तो काबे का वही गौरव स्थिर रखने के लिये ऊपर लिखी आयत के विरुद्ध कुरान की यह आयत उतर आई—'बस फेर ले अपना मुंह मस्जिदे हराम (काबा) की ओर और जहां तुम हो, अपने मुंह उसकी तरफ़ फेरो, और अहले किताब जानते हैं कि यह (अर्थात काबे की ओर मुंह फेरना) ठीक है उनके ईश्वर की ओर से और ईश्वर उनके कार्यों से अपरिचित नहीं। (सु० २, आ० १४४)

(३) जकात—(दान-पुन्य)—इसलाम से पहले यहूदियों और दूसरे सम्प्रदायों में जकात देने का रिवाज प्रचलित था। अतः कुरान ने भी यह रिवाज प्रचलित रक्खा। किन्तु कुरान ने यह नहीं बतलाया कि किस प्रकार के सामान या कोष से किस भांति दान दिया जाये और इसका हिसाब कैसे लगाया जाये। कुरान ने जकात के बारे में इस प्रकार कहा है—

जकात का माल केवल निर्धनों और मोहताजो के लिये है और उनके लिये है जो उन पर कर्मचारी हैं और उनके लिये है जिनके हृदयों को इसलाम की ओर झुकाना है। और गर्दनों को छुड़ाने और कर्जदारों और अल्लाह के रास्ते में और मुसाफिरों के लिये है। खुदा की ओर से फर्ज हुआ है। (सु० ६, आ० ५६)

(४) रोजा—इसलाम से पहले यहूदियो और ईसाइयों में भी रोज़े

रखने का रिवाज प्रचलित था। मैनीकियन सम्प्रदाय वाले साल में तीस दिन के रोजे रक्खा करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि इसलाम में भी रोजे रखने की श्रद्धा इन्हीं लोगों की विचारधारा से आई है। हदीसों और दूसरी इसलामी पुस्तकों मे रोजे रखने का बड़ा पुन्य लिखा है। कुरान की एक आयत यह है—

'रोजे की रात में अपनी स्त्रियों से सम्भोग करना तुम्हारे लिये उचित किया गया। स्त्रियां तुम्हारी पोशाक हैं और तुम उनकी पोशाक हो। ईश्वर को तुम्हारी चोरी ज्ञात हो गई है। सो उसने तुम्हें क्षमा किया और तुमसे दरगुजर (उपेक्षा) की। सो अब स्त्रियों से सम्भोग करो। (सु० २, आ० १८६)

हज—इस्लाम के प्रचलित होने से पहले अरब और आस पास के लोग काबे के मन्दिर के बड़े श्रद्धालु थे। वह लोग अपने घर पर भी जो धार्मिक कार्य सम्पन्न करते थे तो अपना मुंह मक्के के मन्दिर की ओर करके ही किया करते थे। उस समय काबे के मन्दिर में ३६० प्रतिमाएं रक्खी थीं। लोग एक निश्चित ऋतु में काबे के मन्दिर में दर्शन करने के लिये आया करते थे। उस समय दल बना बना कर प्रथम वह मन्दिर के सामने खड़े होते थे और फिर मन्दिर के चारों ओर उछल कूद कर ईश्वर के गुणों का वर्णन किया करते थे। मन्दिर की इस प्रकार उछल कूद कर परिक्रमा करने और ईश्वर के गुणों का वर्णन करने की यह विधि पुराने समय से चली-आ रही थी।

जब मुहम्मद साहब ने मक्का जीत लिया तो उन्होंने काबे के मन्दिर की समस्त प्रतिमाओं को तोड़ दिया, किन्तु हजरे असवद (Black stone काला पत्थर) को पहले की भांति ही सुरक्षित रक्खा। ह० मुहम्मद ने निश्चित ऋतु पर काबे के मन्दिर मे आकर दर्शन करने की प्रथा को भी उसी प्रकार जीवित रक्खा। उस निश्चित ऋतु में काबे के मन्दिर में आकर दर्शन करने का नाम ही हज है।

ह० मुहम्मद ने काबे के मन्दिर में आने वालों के लिये नमाज

पढ़ने और ईश्वर की पूजा उपासना करने की आज्ञा दी। अन्तर केवल यह किया गया कि उछल-उछल और कूद-कूद कर ईश्वर के गुणों का वर्णन करने के स्थान पर शान्ति के साथ नमाज़ पढ़ने और सिजदा करने (माथा टेकने) का आदेश दिया। उन्होंने तवाफ़ (परिक्रमा) करने की विधि को भी पहले की भांति ही कायम रक्खा। अतः कुरान में भी आया है कि कावे के चारो ओर परिक्रमा करना नमाज़ जैसा ही महत्त्व रखता है और उनकी नमाज़ कावे के मन्दिर मे केवल सीटी और तालियां बजाना था। (सु० ८, आ० ३४)

कावे के मन्दिर को मस्जिदे हराम या बैते-अल्लाह (अल्लाह का घर) भी कहते हैं। खोज करने से ऐसा पता चलता है कि लगभग चार हज़ार वर्ष हुए ह० इब्राहीम ने इस मन्दिर को बनवाया था। उस समय केवल चारों ओर की दीवार ही बनी थीं, छत का कोई मकान नहीं बना था। यहूदियों के धार्मिक कर्मकान्ड अधिकतर इसी मन्दिर में होते थे। इसके पश्चात् जब मूर्त्ति पूजा का रिवाज प्रचलित हो गया तो मकान बनाकर उसमें प्रतिमाए रखदी गई थीं। कावे का मन्दिर कई बार टूट फूट चुका है। एक बार ह० मुहम्मद के बचपन के समय बना था, फिर यज़ीद के समय उसे जला दिया गया था। उसके पश्चात् हजाज बिन यूसुफ ने इसे बनवाया था। इस समय वही इमारत चली आ रही है। इसके चारों ओर जो मकान बने हुए हैं उन्हे हरम कहते हैं। वह दूसरे लोगों ने भिन्न भिन्न समय में बनवाए थे। कुरान में कावे के मन्दिर और हज के विषय में जो आयते आई हैं उनमें से कुछ यह हैं। सबसे पहला घर जो आदमियों के लिये नियत किया गया वही है जो मक्के में हैं। वह फलदायक (बरकत वाला) और सारे संसार के लिये हिदायत है। उसमे खुले निशान हैं अर्थात् इब्राहीम के खड़े होने का स्थान और जो उसमें प्रवेश करता है शान्ति पाता है। और अल्ला के लिये उस का हज उस व्यक्ति पर आवश्यक है जो उस तक आसानी से आ जाये और जिसने न माना तो खुदा जहान के लोगों से परदा है। (सु० ३, आ० ६५-६६)

अल्लाह के लिये हज और अमराह पूरा करो। फिर यदि तुम रोके जाओ तो यथा शक्ति कुर्बानी भेज दो। और अपना सिर न

मुंडवाओ जब तक कुर्बानी अपनी जगह न पहुंचे। फिर जो कोई तुम में से बीमार हो या उसके सिर में कुछ दुःख हो तो चाहिये कि वह फ़िदिया दे फिर जिसको कुर्बानी प्राप्त न हो, वह हज के दिनों में तीन रोजे रक्खे और सात रोजे उस समय रक्खे जब तुम अपने घरों को लौटो। यह पूरे दस दिन हो गए। यह आज्ञा उसके लिये है जिसके घर वाले मस्जिदे हराम के पास न हों और खुदा से डरते रहो और समझो कि ईश्वर सख्त अजाब (दुःख) देने वाला है। (सु० २, आ० १९५)

चाहिये कि इस घर (काबे के मन्दिर) के ईश्वर की उपासना करें जिसने उन्हें धूप में खाना दिया और डर में उन्हें शान्ति दी (सु० १०६, आ० २-४)

हज का कर्म-कान्ड—मक्के में चारों ओर से आने वालों के लिये मक्के से कुछ दूर चारों ओर कुछ स्थान नियत हैं। उन्हें मेकात कहते हैं। हज करने वाले जब उन स्थानों पर पहुंचते हैं तो वहां एहराम बांधते हैं। एहराम बांधने का अर्थ यह है कि शुभ और पवित्र कार्य किये जायें। समस्त कपड़े उतार कर एक तहमद बांध लिया जाता है और बिना सिला कपड़ा ओढ़ या पहन लिया जाता है, किन्तु सिर को खुला रक्खा जाता है। इस्लाम से पहले लोग नंगे होकर काबे के मन्दिर के दर्शन किया करते थे। कुरान ने केवल यह दो कपड़े पहनने की आज्ञा दी। सिर नगा पहले भी रखते थे और अब भी रक्खा जाता है। अहराम नहा-धो कर या वजु करने के पश्चात् बांधा जाता है। अहराम बाधने के पश्चात् नियत या ध्यान लगा कर कुरान की कोई आयत बार बार पढ़ना आरम्भ कर दिया जाता है।

तवाफे कदूम—(चरण-परिक्रमा) एहराम बांध कर हाजी लोग काबे के मन्दिर की ओर चल पड़ते हैं। जब काबे का मन्दिर दिखाई पड़ने लगता है तो 'अल्लाह हो अकबर' कहना आरम्भ कर देते हैं। इसी प्रकार कहते हुए मन्दिर में प्रविष्ट हो जाते हैं। हजरे असवद के सामने खड़े होकर यदि आसानी से हो तो बोसा देते हैं वरना उसकी ओर ध्यान करके हाथ से ही बोसा लेने के लिये इशारा कर लेते हैं। इसके पश्चात् काबे के मन्दिर के चारों ओर सात बार कोई कुरान की आयत पढ़ते हुए तवाफ या परिक्रमा करते हैं। इस सात बार काबे के

चारों ओर घूमने का नाम ही तवफे कदूम है। पहले मूर्त्ति पूजक लोग भी सात बार ही परिक्रमा किया करते थे। काबे के मन्दिर में उत्तर की ओर एक पत्थर लगा हुआ है। उस पर इमाम खड़ा होकर हाजियों को नमाज पढ़ाता है। कहते हैं कि इस पत्थर पर खडे होकर ह० इब्राहीम ने काबे का मन्दिर बनवाया था। इसी कारण इसका इतना सम्मान किया जाता है।

सफा और मरवा—मक्के के समीप सफा और मरवा नाम की दो पहाड़ियां एक दूसरी से कुछ दूरी पर हैं। इन पहाड़ियों पर पहले दो पीतल की प्रतिमाएं रक्खी हुई थीं। लोग वहां पहुँच कर उनकी पूजा किया करते थे। इस्लाम ने वह मूर्त्तियां तो हटा दीं, किन्तु उन दोनों पहाड़ियों का वही महत्त्व रक्खा। काबे के मन्दिर में नमाज पढ़ने के पश्चात हाजी लोग उन पहाडियों पर जाते हैं और उनकी सात बार परिक्रमा करते हैं। प्रथम सफा की पहाड़ी पर चढ़ कर काबे की ओर मुंह करके कुछ प्रार्थना इत्यादि पढ़ते हैं। वहां उन दोनों पहाड़ियों के बीच में दो चिन्ह बने हुए हैं उन दोनों चिन्हों के बीच में हाजी लोग दौड़ लगाते हैं। इसके पश्चात् मरवा की पहाड़ी पर वही दुआ पढ़ते हुए चढ़ जाते हैं। इस प्रकार सफा और मरवा के बीच सात बार दौड़ लगाई जाती है। क़ुरान मे इसका वर्णन इस प्रकार आया है—निसन्देह सफ़ा और मरवा खुदा के चिन्हों में से हैं, तो जो कोई काबे के मन्दिर का हज करें तो उसको उन दोनों की परिक्रमा करना कोई पाप नहीं (सु० २, आ० १५७)

मना—काबे के मन्दिर से उत्तर-पूर्व की ओर चार कोस की दूरी पर एक स्थान है, जिसे मना कहते हैं। हाजी लोग इस स्थान पर पहुंच कर सुबह की नमाज वहां पढ़ कर काबे से आठ कोस की दूरी पर अरफ़ात के मैदान में जाते हैं, वहां सन्ध्या तक रहते हैं। वहां इमाम ऊंटनी पर चढ़ कर कुछ ईश्वर गुण-गाण करने का उपदेश देता है।

मुज़दलफा—काबे से उत्तर-पूर्व की ओर यह भी एक मैदान और पहाड़ है। अरफात के मैदान से चल कर हाजी लोग इस स्थान

पर आकर रात को रहते हैं।

कंकड़ियां मारना—मुज़दलफ़ा स्थान से चल कर 'मना' स्थान पर फिर आते हैं। उस स्थान पर तीन सतून चिन्ह के रूप में बने हैं। हाजी लोग 'अल्लाहहो अकबर' कह कर उन सतूनों पर सात बार ककड़ियाँ मारते हैं। इसके विषय में यह कहा जाता है कि यह कंकड़ियाँ शैतान पर मारी जाती हैं। इसके पश्चात् पशुओं की भेंट (कुरबानी) करके एहराम खोल दिया जाता है। पशुओं की भेंट के पश्चात् 'मना' स्थान से चल कर फिर काबे के मन्दिर में आकर पहले की भांति सात वार परिक्रमण किया जाता है। इसके पश्चात् फिर 'मना' स्थान पर वापस जाकर हज का कर्म-कांड समाप्त कर देते हैं।

कुछ इसलामी सम्प्रदायों मे हज के कर्म-काण्ड इत्यादि में मतभेद पाया जाता है। हज का कर्म-काण्ड समाप्त होने के पश्चात् कुछ लोग काबे के मन्दिर से लिपट कर गिड़गिड़ाने लगते हैं, कुछ उसकी चौकट को पकड़ कर दिल मैला करने लगते हैं, कुछ काबे के मन्दिर के कुंये के पानी को जिसको आबे जमजम कहते हैं, भरने में लग जाते हैं और उसको पवित्र समझ कर अपने घर लाते हैं, कुछ हजरे असवद के स्नान के पानी को पवित्र समझ कर माथे तथा आंखों पर लगाते हैं, कुछ काबे से मदीने, मदीने से कर्बला और आगे नजफ इत्यादि स्थानों पर पुन्य के विचार से चले जाते हैं।

हजरे असवद—(Black stone-काला पत्थर) यह काले रंग का एक पत्थर है जो काबे के मन्दिर के उत्तरी पूर्वी कोने में दीवार में लगा हुआ है। इस पत्थर के प्रति मुसलमानों के हृदय में बड़ी श्रद्धा है। हदीस इत्यादि पुस्तकों में इस पत्थर के विषय में बहुत ही अधिक लिखा हुआ है। एक स्थान पर ऐसा लिखा है कि आदम जब स्वर्ग से निकाले गए तो वह इसको अपने साथ लाए थे। कहा जाता है कि इस पत्थर का रंग काला लोगों के पापों के कारण हो गया है। क्योंकि इसको छूने और बोसा देने से पाप समाप्त हो जाते हैं। इसके स्नान का पानी बहुत पवित्र माना जाता है। आदि आदि।

जहाद—(Holy War) इसलाम मत मे जहाद या धार्मिक

युद्ध भी एक मूल-सिद्धान्त माना जाता है। कुरान ने जहाद को एक बहुत बडी इबादत कहा है और प्रत्येक मुसलमान का जहाद में सम्मिलित होना पहला कर्त्तव्य बतलाया है। क़ुरान और हदीसों में जहाद का बार-बार वर्णन आया है और मुसलमानों को जहाद में सम्मिलित होने के लिये बार-बार उकसाया गया है।

ईश्वर के रास्ते मे उसके रसूल (ह० मुहम्मद) के शत्रुओं से लडने; इसलाम-मत की वृद्धि और रक्षा करने; काफ़िरों और इसलाम के शत्रुओं से युद्ध करने का नाम जहाद है।

जहाद के विषय में कुरान में जो आयतें आई हैं, उनमें से हम कुछ पीछे लिख आए हैं।

क़ुरबानी—(पशु-भेंट)—कुरबानी का रिवाज अरब देश में एक बहुत पुराने ज़माने से चला आ रहा था कुरबानी करना तो यहूदियों का सबसे बड़ा सिद्धान्त है। जब तक यहूदियों का जोर रहा उन देशों में खूब कुरबानी प्रचलित रही। कुरबानी के विषय में हम यहूदी-मत में पीछे लिख आये हैं। जब उन देशों में मूर्त्ति-पूजा का रिवाज हो गया तब भी मूर्त्ति-पूजक लोग देवी-देवताओं के नाम पर पशु-पक्षियों की कुरबानियाँ करते थे। इसलाम से पहले काबे का मन्दिर कुरबानी इत्यादि का केन्द्र था।

ह० मुहम्मद ने भी कुरबानी के रीति-रिवाज और सिद्धान्त को पहले की भाँति कायम रक्खा, किन्तु अन्तर यह किया गया कि देवी-देवताओं के नाम लेकर उन्हें वध करने के बजाय ईश्वर का नाम लेकर वध करने का आदेश दिया गया और साथ ही यह कहा गया कि जो व्यक्ति देवी-देवताओं का नाम लेकर वध करेगा वह गोश्त हराम होगा। कुरान में कुरबानी के विषय में कुछ यह आयतें आई है—और हमने हर उम्मत के लिये कुरबानी की विधि नियत की है ताकि वह पशु-पक्षियों पर जो उसने उन्हे दिये है वध करते समय ईश्वर का नाम याद करें, सो तुम्हारा उपास्य एक ही ईश्वर है। कुरबानी के ऊंट हमने तुम्हारे लिए ईश्वर के निशान नियत किये हैं। उनमें तुम्हारे लिए ख़ैर है सो जब वह कतार बाँध कर खड़े हों उन पर ईश्वर का नाम

पढ़ो। फिर जब वह अपनी करवटों पर गिर पड़े तो उनमें से खाओ और सन्तोप से बैठने वाले और मांगने वाले फकीरों को खिलाओ। (सु० २२, आ० ३३-३५)

खतना—लड़कों की उत्पत्ति से आठवें दिन खतना कराना यहूदियों का एक मूल सिद्धान्त है। ह० ईसा ने इस सिद्धान्त को रद्द करते हुए यह कहा था कि दिल को साफ रखना ही वास्तविक खतना है। इस्लाम ने फिर से इस सिद्धान्त को महत्त्व प्रदान किया। अत प्रत्येक मुसलमान का खतना कराना आवश्यक है। किन्तु यह याद रहे कि कुरान मे खतना कराने या न कराने का कोई वर्णन नहीं है। कुछ पुस्तकों में लड़कियों की खतना कराने का भी वर्णन मिलता है और इस खतने का नाम सुन्नते सारा लिखा है। ईरान के पहाड़ी प्रदेश में इसका कुछ रिवाज बताया जाता है।

ईस्लाम मत के विशेष सिद्धान्त

प्रत्येक मुसलमान को इन सात बातों पर ईमान लाकर ज्यों का त्यों विश्वास करना आवश्यक है—

(१) ईश्वर (२) उसके फरिश्ते (३) उसकी पुस्तके (४) उसके रसूल (५) कयामत (प्रलय) (६) मरने के पश्चात् मुर्दों का जीवित होना (७) प्रत्येक मनुष्य का अच्छा या बुरा भाग्य ईश्वर की ओर से है।

(१)—ईश्वर

ईश्वर की सत्ता और उसके गुणों के विषय मे जो वर्णन यहूदियों की 'तौरेत' और ईसाइयों की 'इन्जील' में है, वैसा ही कुरान में है। अतः ईश्वर के विपय में कुरान की कुछ यह आयतें हैं—

तू कह, वह ईश्वर एक है। ईश्वर निराधार है। न उसने किसी को जना और न वह किसी से जना और उसके जोड़ का कोई नहीं। (सु० ११२, आ० १-४)

अल्लाह वह है, जिसने तुम्हें एक व्यक्ति (आदम) से पैदा किया। (सु० ६, आ० ६७)

अल्लाह वह है, जिसने तुम्हे मिट्टी से बनाया। (सु० ६, आ० १)

जहां कुरान में ईश्वर को सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, दयालु, कृपालु, अजर, अमर और निर्भय आदि गुणों से युक्त माना है, वहां कुरान में कुछ ऐसी आयतें भी पाई जाती हैं जिनसे वह अल्पज्ञ (महदूद) और स्वरूपवान तथा साकार सिद्ध होता है। अतः उनमें से कुछ आयतें यह हैं—

(१) ईश्वर वही है, जिसने आसमान और ज़मीन छः दिन में बनाए, फिर आकाश पर जा ठहरा (क़रार पकड़ा) सु० ७, आ०५३)

(२) ईश्वर वही है जिसने तुम्हारे लिये ज़मीन की सब वस्तुओं को पैदा किया फिर वह आसमान की तरफ़ चढ़ गया (सु० २, आ० २८)

(३) और उस दिन तुम्हारे (हिसाब के दिन-Day of Judgement) आठ फरिश्ते तेरे रब का तख्त अपने सिर पर उठाए हुए होंगे। उस दिन तुम पेश किये जाओगे। कोई भेद तुम्हारा छिपा न रह जायेगा (सु० ६६, आ० १६-१७)

(४) और सारी ज़मीन कयामत के दिन उसकी मुट्ठी में होगी। और सब आसमान उसके दाहिने हाथ में लिपटे हुए होंगे। (सु० ३६, आ० ६६)

(५) जिस दिन पिंडली खोली जायेगी और सिजदे की तरफ बुलाए जायेंगे तो सिजदा नकर सकेंगे। (सु० ६८, आ० ४१-४२)

(६) वह रहमान है और आकाश पर स्थित है। (सु २०, आ० ४)

तौहीद— (एकात्मिक सत्ताधारी) कुरान ने ईश्वर की सत्ता,

गुण, कर्म और स्वभाव में किसी दूसरे को सम्मिलित करने से बार-बार मना किया है। अतः कुरान में ईश्वर को 'वहदुल्ला शरीक' अर्थात् जिसका कोई शरीक न हो, बतलाया है।

जहाँ कुरान ने ईश्वर के साथ किसी को भागीदार मानने से मना किया है, वहां कुरान में कुछ ऐसी आयतें भी मौजूद हैं जिनमें ईश्वर के साथ ह० मुहम्मद पर भी ईमान लाना अति आवश्यक बतलाया है। अतः यह कहा जाता है कि जो व्यक्ति ईश्वर पर तो पूरा विश्वास रखता हो किन्तु ह० मुहम्मद को रसूल मान कर ईमान न लाता हो, ऐसा व्यक्ति मोमिन (सच्चा मुसलमान) नहीं हो सकता। मोमिन वही है, जो ईश्वर और उसके रसूल (ह० मुहम्मद) पर ईमान लाए और फिर कोई सन्देह न करे। इस विषय में कुछ कुरानी आयतें यह हैं—

(१) और जब ईश्वर और उसका रसूल कोई बात नियत करदे तो किसी ईमानदार मर्द और ईमानदार औरत के लायक नहीं कि उनको अपने काम का कुछ अधिकार रहे और जिसने ईश्वर और उसके रसूल की आज्ञा भंग की, वह स्पष्ट रूप से भ्रमित (गुमराह) हुआ। (सु० ३३, आ० ३५)

(२) मोमिनो! अल्लाह और उसके रसूल की आज्ञा मानों और उससे मुँह न मोड़ो! (सु० ८, आ० १६)

(३) और जो खुदा और उसके रसूल पर ईमान न लाए तो हमने उन काफिरों के लिये दोजख बना कर तैयार कर रक्खी है। (सु० ४८, आ० १२)

(४) बेशक जो लोग तुमसे (रसूल से) बैत (अनुयाई होना) करते है, वह ईश्वर से ही बैत करते हैं, उनके हाथों पर ईश्वर का हाथ है। (सु० ४८, आ० ६)

(५) मोमिनो! अल्लाह और रसूल की आज्ञा मानो और अपने आचार (ऐमाल) भ्रष्ट (जाय) न करो। (सु० ४७, आ० ३२)

(६) तुम अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाओ और उसकी

सहायता करो और उसका आदर-सम्मान करो। और प्रातःकाल तथा सायंकाल उसकी पाकी (पवित्रता) बोलो। (सु० ४६, आ० ८)

(७) जिसने रसूल की आज्ञा मानी उसने खुदा की आज्ञा मानी (सु० ४, आ० ७६)

(८) मोमिनो! अल्लाह और उसके रसूल से आगे न बढ़ो। (सु० ४६, आ० १)

(९) अल्लाह और रसूल की ताबेदारी करो। (सु० २४, आ० ५३)

(१०) ईमान वालों की बात तो यह है कि जब वह ईश्वर और उसके रसूल की तरफ इसलिये बुलाए जाएं कि वह उनके दरम्यान फैसला करे तो कहे कि हमने सुना और हुक्म माना और ऐसे ही लोग मोक्ष पाएंगे। (सु० २४, आ० ५०)

(२) फरिश्ते

शब्द फरिश्ता इब्रानी (Hebrew) भाषा का है। सबसे पहले फरिश्तों के नामों और कामों का वर्णन पारसियों की धार्मिक पुस्तकों में आया था। पारसियो से बढ़-चढ़ कर यहूदियों और ईसाइयों की पुस्तकों में और इन सबसे बढ़ कर क़ुरान ने फ़रिश्तों का वर्णन किया है।

फरिश्तों के विषय में मुसलमानों का ऐसा विश्वास है कि उन्हे ईश्वर ने नूर (प्रकाश) से उत्पन्न किया था। वह न तो पुरुष हैं और न ही स्त्री। उनकी संख्या भी ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। वह अधिकतर ईश्वर की पूजा-उपासना मे ही लगे रहते हैं। ईश्वर ने पृथ्वी और आकाश का प्रबन्ध उन्हीं को सौंप रक्खा है। उन फरिश्तों मे से यह ४ फरिश्ते ईश्वर को अधिक प्रिय है। इन चारों के नाम और कार्य संक्षेप में इस प्रकार हैं—

(१) जब्राईल—यह फरिश्ता पैग़म्बरो और रसूलों के पास ईश्वर की आज्ञाएँ लाने पर नियुक्त है। ईश्वर की आज्ञा भंग करने

वालों को भी यही फरिश्ता कष्ट देता है। पैगम्बरों और रसूलों को युद्धों में यही फरिश्ता सहायता पहुचाता रहा है।

(२) मैकाईल—इस फरिश्ते की ड्यूटी वर्षा का प्रबन्ध करने और समस्त प्राणियों को भोजन और जीविका प्रदान करने की है। इस फ़रिश्ते के आधीन कुछ और भी फरिश्ते बताए जाते हैं। उनमें से कुछ समुद्रों और कुछ नदी-नालों की देख-भाल पर लगे रहते हैं।

(३) इसराफील— इस फरिश्ते का कार्य केवल इतना है कि प्रलय से कुछ देर पूर्व यह रणसिंहा फूंकेगा। उसकी आवाज़ से संसार की हर वस्तु टूट-फूट कर प्रलय हो जायेगी। इसके पश्चात् फिर वह दूसरी बार रणसिंहा फूंकेगा तो उसकी आवाज़ से प्रत्येक वस्तु पहले की भाँति ही मौजूद हो जायेगी। समस्त मुर्दे कब्रों से जीवित होकर बाहर निकल आयेंगे।

(४) इज़राइल—यह फरिश्ता ईश्वर ने जीवधारियों के प्राण निकालने के लिये लगाया हुआ है। इस फरिश्ते के आधीन भी बहुत से फरिश्ते बताये जाते हैं। कुछ भले आदमियों की और कुछ बुरे और दुष्ट मनुष्यो की जान निकालने पर नियुक्त है।

उपरोक्त फरिश्तों के अतिरिक्त कुछ और प्रसिद्ध फरिश्ते भी हैं—

करामन-कातबीन—यह दोनों फरिश्ते हर समय मनुष्य साथ रहते हैं। उनमे से एक अच्छा काम और दूसरा बुरे काम लिखता रहता है।

मुनकिर-नकीर—यह दोनों फरिश्ते मनुष्य के मर जाने और कब्र में दबाए जाने के पश्चात् कब्र में जाकर मुर्दे से कुछ प्रश्न पूछने पर नियुक्त है।

इन फरिश्तों के अतिरिक्त कुछ और फरिश्ते ऐसे कहे जाते हैं जो ससार में चक्कर लगाने और जासूसी करने तथा छिप कर देख भाल करने पर लगे हुए हैं। वह फरिश्ते मनुष्यों के अच्छे और बुरे

कामो के नोट लिख लेते हैं। हिसाब के दिन वह ईश्वर के सामने साक्षी देने के लिये नियुक्त हैं। कुछ फरिश्ते बहिश्त (स्वर्ग) के प्रबन्ध पर, कुछ दोजख (नरक) की देख-भाल पर, कुछ ईश्वर का तख्त उठाने पर और कुछ फरिश्ते केवल ईश्वर की पूजा और उपासना पर लगे हैं। (देखो तालीमुल इतसलाम भाग ३, पृष्ठ ६–८)

कुछ अन्य इस्लामी पुस्तकों में ऐसा लिखा हुआ भी मिलता है कि वह फरिश्ते जो संसारिक कार्यों पर नियुक्त हैं, उनकी ड्यूटी प्रातःकाल और सायकाल बदलती रहती है। प्रात.काल की नमाज के समय रात वाले फरिश्ते आकाश पर चले जाते हैं और दिन में काम करने वाले आकाश से आकर अपनी ड्यूटी संभाल लेते हैं और सन्ध्या के समय दिन में काम करने वाले चले जाते है और रात में काम करने वाले फिर आकाश से आ जाते हैं।

यों तो कुरान में फरिश्तो के विषय मे बहुत सी आयतें हैं किन्तु हमने केवल अनुमान करने के लिये कुछेक आयतं लिखी हैं—

(१) जब तेरे ईश्वर ने फरिश्तों को आज्ञा दी (कि तुम सहायता को चलो) मै भी तुम्हारे साथ हूँ, तुम मुसलमानों को मजबूत करो। मै काफिरों के हृदय में डर उत्पन्न करूंगा। बस तुम गर्दनो पर तलवारें मारो और उनके पोर पोर काट डालो। (सु० ८, आ० ११)

(२) वही (ईश्वर) अपनी आज्ञा से फरिश्तों को वही (वाणी) देकर अपने बंदों (अनुचरों) में से जिसकी ओर चाहता है भेजता है। (सु० १६, आ० १)

(३) जब फरओन जल में डूबा, मैंने जब्राईल को घोड़े पर सवार देखा। फिर मैंने उस जब्राईल के चरण चिन्हों में से एक मुट्ठी धूल उठाई, वह मैने बछड़े के पेट मे डाल दी। इसलिये बछड़ा गाय की बोली बोलने लगा। (सु० २०, आ० ६५)

(४) इसे (कुरान को) रुहउल अमीन (जब्राईल) ने उतारा है। (सु० २६, आ० १६२)

(५) तू कह, कि मौत का फरिश्ता जो तुझ पर नियुक्त है, तुम्हे

मारेगा, फिर तुम अपने रब की ओर फिर जाओगे। (सु० ३२, आ० १०)

(६) जबकि दो लेने वाले दाहिने, बाएं लेते रहते है। अर्थात् मनुष्य जो वचन मुख से निकालता है, वह फरिश्ते उसको लिखते जाते हैं। सम्भव नहीं कि मनुष्य कोई वचन मुख से निकाले और उसके पास एक निरीक्षक (निगह बान) तैयार न हो। (सु० ५०, आ० १६-१७)

(७) और वही अपने बंदों (अनुचरों) पर छाया हुआ है। और तुम पर निरीक्षक (निगह बान) फरिश्ते भेजता है। यहां तक कि जब तुममें से किसी की मौत आती है तो हमारे भेजे हुए फरिश्ते उसे अधिकार में ले लेते हैं और वहभूल नहीं करते (सु० ६, आ० ७)

(८) बन्दे के लिये उसके आगे और पीछे चौकीदार (फरिश्ते) नियुक्त हैं जो ईश्वर की आज्ञा से उसकी रक्षा करते हैं (सु० १३, आ० १०)

(९) और जो फरिश्ते काफिरों की जान निकालते है तो उनकी कमरों और मुंहों पर (आग के हथौड़े) मारते हैं और कहते हैं कि जलने का कष्ट चखो। (सु० ८, आ० ४९)

(१०) और फरिश्ते उनको लेने आयेंगे (सु० २१, आ० १०२)

(११) और आकाशों में बहुत फरिश्ते हैं। (सु० ५३, आ० २५)

(१२) उस आग (नरक की आग) पर तुन्द खू, (निर्दय), ज़ोरावर (बलिष्ट) फरिश्ते नियुक्त हैं ईश्वर उन्हें जो आज्ञा देता है, उसे वह भंग नहीं करते और वह जो आज्ञा पाते है, वही करते हैं। (सु० ६६, आ० ५)

(१३) निसन्देह प्रातः के समय कुरान सुनने के लिये फरिश्ते आते हैं। (सु० २१, आ० ७७)

(१४) (शबे कद्र) में फरिश्ते और रूह अपने ईश्वर की आज्ञा से उतरते हैं (सु० ९७, आ० ३)

(१५) हिसाब के दिन (Day of Judgement) रूह (Soul) और फरिश्ते कतार बांध कर खड़े होंगे। (सु० ७८, आ० ३७)

(१६) उसी ने फरिश्तों को रसूल (संदेश-वाहक) बनाया, जिनके दो-दो, तीन-तीन और चार चार पर हैं (सु० ३५, आ० १)

(१७) और फरिश्ते उसके किनारों पर होंगे और उस दिन (हिसाब के दिन) ८ फरिश्ते तेरे ईश्वर का तख्त अपने ऊपर उठाए हुए होंगे (सु० ६९, आ० १६)

(१८) और तू देखेगा कि आकाश के चारों ओर फरिश्ते घेरा बांधे खड़े हैं। अपने ईश्वर की प्रशसा के साथ उसकी पवित्रता वर्णन करते हैं। (सु० ३९, आ० ७४ और सु० ४०, आ० ६)

जिन—सरल भाषा में इसके अर्थ हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ट और भयानक के हैं। 'जिन' शब्द सबसे पहले पारसियों की पुस्तकों में इन्हीं अर्थों के साथ प्रयोग हुआ है। पारसी लोग जिन घातक बीमारियों, व्यधियों और दूसरी इसी प्रकार की दुर्घटनाओं के कारण को नहीं जानते थे, उनको वह, 'जिन' की ओर से आया हुआ मान लिया करते थे। पारसियों के उपरान्त मूर्त्तिपूजकों, यहूदियो और ईसाइयों ने भी इन्हीं अर्थों और विश्वास के साथ 'जिन' के अस्तित्व को मान लिया था। इसके पश्चात् 'जिन' का स्वरूप भी भयानक, हृष्ट-पुष्ट और भिन्न भिन्न प्रकार का बना दिया गया। फिर उसकी पूजा और उपासना होने लगी, ताकि वह प्रसन्न रह कर आराम पहुंचाता रहे और अप्रसन्न होकर कोई कष्ट या दुःख न दे।

ह० मुहम्मद के समय में 'जिन' के विषय मे लोग उपरोक्त विश्वास रखते थे। अत. इस्लाम ने भी 'जिन' को उन्हीं विचारों और भावनाओं के साथ कायम रक्खा। कुरान में 'जिनों' के विषय में काफी आयतें हैं किन्तु यहां पर केवल दो आयतें दे देना ही यथेष्ट समझा गया है।

और जिनों को आग के अंगारों (शोलों) से पैदा किया। (सु० ५५ आ० १४)

सूद खोर मनुष्य प्रलय के दिन इस प्रकार उठेंगे जैसे वह उठता है जिसे 'जिन, ने लिपट कर सनकी (खब्ती) बना दिया हो। (सु० २, आ० २७४)

शैतान—जहां तक खोज की गई है सबसे पहले पारसियों ने भ्रान्त विचारों से बुराई और भ्रान्ति फैलाने वाली शक्ति या विचारों का नाम ओहरमन या अंग्र मान्यू (खलिकेश्वर) रक्खा था। मूर्त्तिपूजकों की भीं यही विचार-धारा रही। इसके पश्चात् यहूदियों ने कुछ हेर-फेर के साथ शैतान के अस्तित्व को कायम कर लिया। यहूदियों से वही विचार ईसाइयो ने अपना लिया। फिर वही विचार इस्लाम में भी आ गया।

कुरान मे शैतान के विषय मे बड़ा लम्बा चौड़ा वर्णन आया है। किन्तु स्थानाभाव के कारण शैतान के विषय में पूर्ण रूप से नहीं लिखा जा सकता। चूंकि शैतान के विषय में इस्लाम की भी लगभग वही विचार-धारा है जो यहूदियों की है। इसलिये शैतान के विषय में आप इसी पुस्तक में यहूदी मत को पढ़ कर निश्चय करले।

(३) ईश्वर की पुस्तकें

जिन पुस्तकों पर ईश्वर ने ईमान लाने की आज्ञा दी है, उनकी संख्या, उनके नाम या हवाले जहां तक हमने कुरान को देखा है, नज़र नहीं पड़े। कुरान में ऐसा तो अवश्य आया है—

मोमिनों! तुम ईश्वर और उसके रसूल पर और उस किताब पर जो ईश्वर ने अपने रसूल पर उतारी है, और उस किताब पर जो इससे पहले उसने उतारीं थी ईमान लाओ और जो कोई ईश्वर का और उसके फरिश्तों, किताबों और रसूलों का और आखिरी दिन का इन्कार करने वाला हुआ, वह भ्रान्ति में बहुत दूर जा पड़ा। (सु० ४, आ० १३५)

मुसलमान विद्वानों का कहना है कि ईश्वर ने अपनी बड़ी और

छोटी पुस्तके उतारी थीं। बडी पुस्तकों को पवित्र या आसमानी पुस्तकें कहते हैं और छोटी पुस्तकों को सहीफे कहते हैं। कुरान में जहाँ तक देखा गया है यहूदियों की तौरेत, दाऊदियों की जबूर और ईसाइयों की इन्जील का ही बार बार वर्णन आया है। अन्य किसी पुस्तक का कोई नाम या हवाला दिखाई नहीं पडता। न यह पता चलता है कि दूसरे देशों में किस किस पैगम्बर, नबी या रसूल को कौन-कौन सी पुस्तक किस-किस समय दी गई थी। कुरान मे जिन नबियों, रसूलों और पैगम्बरों का वर्णन आया है, वह सब बनिस्राईल जाति में ही उत्पन्न हुए थे और उनको जो पुस्तकें दिये जाने का वर्णन मिलता है उनका ही केवल वर्णन विशेष रूप से किया गया है। मुसलमान विद्वानों का ऐसा भी विश्वास है कि सृष्टि की आदि से लेकर अन्तिम नबी ह० मुहम्मद तक सिवाय बनिस्राईल जाति के संसार की किसी और जाति में कोई सच्चा नबी, पैगम्बर या रसूल नहीं भेजा गया। और न ही किसी के पास कोई ईश्वरीय पुस्तक भेजी गई।

अतः यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कुरान मे जिन पुस्तकों पर ईमान लाने की आज्ञा दी गई है, वह सब पुस्तकें बनिस्राईल जाति के पैगम्बरों पर ही भेजी गई थीं। हमारे इस विचार की पुष्टि कुरान की इस आयत से भली भांति हो जाती है—

तू कह हम ईश्वर पर ईमान लाये और उसपर जो हम पर उतरा (नाजिल हुआ) है और जो इब्राहीम और इसमाइल, इसहाक और याकूब और उसकी सन्तान पर उतरा (नाजिल हुआ) था और जो मूसा और ईसा और सब नबियों को उनके ईश्वर से मिला था। हम उनमे से किसी को अलग नहीं करते और उसके आज्ञाकारी हैं। (सु० ३, आ० ८३)

इस आयत में जितने नबियों के नाम आये हैं, वह सब अरब देश की बनिस्राइल जाति में ही उत्पन्न हुए थे।

चुनाचे ईश्वरीय पुस्तकों पर ईमान लाने का अर्थ केवल इतना ही प्रतीत होता है कि जो पुस्तके बनिस्राइल जाति के नबियों पर उतारी

गई थीं। दूसरे देश की किसी अन्य पुस्तक पर ईमान लाने का कोई वर्णन क़ुरान में नहीं है।

(४) ईश्वर के रसूल

क़ुरान में ऐसी आयतें तो अवश्य आई हैं कि कोई जाति ऐसी नहीं कि जिसमें ईश्वर की तरफ़ से कोई डराने वाला न आया हो। हर जाति के लिए कोई न कोई मार्ग दिखाने वाला अवश्य भेजा गया है। क़ुरान में ह० मुहम्मद से पहले समस्त रसूलों, पैग़म्बरों और नबियों की संख्या का कोई उल्लेख नहीं है। न ही इसका कोई वर्णन है कि किस जाति के पास, किस देश में, किस समय, कौन नबी, रसूल या पैग़म्बर आया था। क़ुरान में केवल आदम, हव्वा, ह० इब्राहीम, ह० इद्रीस, ह० नूह, ह० इसमाइल, ह० लूत, ह० याकूब, ह० अय्यूब, ह० मूसा, ह० शमोयल, ह० दाऊद, ह० सुलेमान, ह० ज़िकरिया, ह० यायाह, ह० ईसा और मरियम इत्यादि के नामों और कामों का ही बार बार वर्णन आया है। अरब की बनिस्राइल जाति के अतिरिक्त वहां की और दूसरी कुछ जातियों के नाम और काम का भी वर्णन किया गया है। क़ुरान में जो यह वर्णन आया है कि कोई जाति ऐसी नहीं, जिसमें ईश्वर की ओर से कोई मार्ग दर्शक न भेजा गया हो। इससे बनिस्राइल जाति के अतिरिक्त अरब की दूसरी जातियों की ओर ही इशारा पाया जाता है। अन्य देशों की जातियों की ओर कोई इशारा नहीं पाया जाता। क़ुरान से यह पता कदाचित नहीं चलता कि भारतवर्ष अफ़ग़ानिस्तान, रूस, चीन, जापान, अफ्रीका, अमरीका आस्ट्रेलिया और योरुप के किसी देश में किस जाति के पास कौन सा नबी, रसूल या पैग़म्बर आया था और उसका नाम तथा काम क्या था। मुसलमान लोग केवल उन्हीं व्यक्तियों को पैग़म्बर, रसूल और नबी मानते हैं जिनका उल्लेख क़ुरान या हदीस में पाया जाता है। हदीस और क़ुरान में केवल उन्हीं पैग़म्बरों, रसूलों और नबियों का वर्णन आया है जो बनिस्राइल जाति में उत्पन्न हुए थे। अतः रसूलों पर ईमान लाने का अर्थ यही है कि उन रसूलों पर ईमान लाया जाये, जिनका वर्णन क़ुरान और हदीस में है।

किन्तु ह० मुहम्मद के समय में ह० मुसीलमा ने नबी होने

का अधिकार जतलाया था और 'फ़ारूक़' नाम की पुस्तक लिखी थी, जो बहुत उच्च कोटि की पुस्तक बतलाई जाती है। ह० मुसीलमा के भी बहुत से लोग अनुयाई बने थे।

ह० मुहम्मद के समय में एक स्त्री ने भी नबी होने का अधिकार जतलाया था। उसने भी कुछ उच्च कोटि की पुस्तकें लिखी थीं। इन दोनों महानुभावों को मुसलमानों ने मार दिया था।

ख़ुरासान के एक व्यक्ति मुकन्ना-Mokanna ने ७७० ई० में ईश्वर होने का दावा दिया था और कहा था मेरे अतिरिक्त और कोई ईश्वर नहीं है। जो मुझ पर विश्वास लायेगा वह अवश्य जन्नत में जायेगा। खुरासान, बुखारा और समरकन्द आदि में बहुत से लोग इसलाम छोड़ कर उसके अनुयाई बने। मुसलमानों ने उससे लड़ाई लड़ी। ७८१ ई० में मुकन्ना ने आत्मघात कर लिया। उसके अनुयाई सन् १२०० ई० तक रहे।

शीराज़ के एक व्यक्ति अलीमुहम्मद ने नबी होने का अधिकार जतलाया। उसके भी बहुत से अनुयाई बने। सन् १८५० ई० में उसका वध कर दिया गया। उसके १३ वर्ष पश्चात् उसके एक शिष्य बाहबउल्ला ने यह घोषणा की कि 'मुझमें ईश्वर का प्रकाश है और मुझे ईश्वर का साक्षात् दर्शन होता है'। उसको भी देश से निकाल दिया गया। सन् १८९२ ई० में वह मर गया। उसका स्थान उसके बेटे अब्बास ने लिया। उसने कहा कि ईश्वर-वाणी समाप्त नहीं होती है। क़ुरान ईश्वर की प्रथम वाणी है। अब्बास को कुछ व्यापारी सन् १८९२ ई० में चीकागो-Chicago में ले गये। फिर वह अमरीका में रहने लगा। ईरान में उसके भी बहुत से अनुयाई हैं जो बाबी (Gate) कहलाते हैं।

सन् १८८९ ई० में कादियान (पंजाब) के एक व्यक्ति मिरज़ा-ग़ुलाम अहमद ने नबी होने का अधिकार जतलाया। उसके बहुत से अनुयाई बने। पाकिस्तान में पिछले साल उसके अनुयाइयों को दूसरे मुसलमानों ने दिल खोलकर मारा पीटा। उसके अनुयाई अहमदिया कहलाते हैं। मिरज़ा ग़ुलाम अहमद का स्थान बशीरुद्दीन ने लिया जो अपने को ख़लीफ़ा कहता है।

नबी, रसूल और पैगम्बर—मुसलमान विद्वान नबी और रसूल में थोड़ा सा अन्तर यह बतलाते हैं कि नबी तो प्रत्येक पैगम्बर को कहते हैं, चाहे उसे नया विधान (शरय्यत) और पुस्तक दी गई हो या न दी गई हो, वरन् वह पहले विधान और पुस्तक को मानता हो। रसूल उस पैगम्बर को कहते हैं जिसको नया विधान और नई किताब दी गई हो। पैग़म्बर वह व्यक्ति कहलाता है जिसे ईश्वर ने संसार में अपनी आज्ञायें फैलाने और राज्य करने के लिए भेजा हो। पैग़म्बर का चुनाव ईश्वर स्वयं करता है। उसमें चमत्कार, सिध्दी, और करामात दिखाने की शक्ति होती है। उसमें साधारण मनुष्यों से अधिक गुण होते हैं। उसमें कोइ कमी नहीं होती, वह पूर्ण होता है। उसमें ईश्वर चमत्कार इत्यादि दिखलाने की शक्ति इस कारण देता है, ताकि लोग उसके चमत्कार इत्यादि को देखकर उसे पैग़म्बर स्वीकार कर लें।

पैग़म्बर के चुनाव के विषय में सबसे पहले पारसियों की धार्मिक पुस्तकों मे वर्णन आया है। उसके पश्चात् तौरेत, इन्जील और कुरान में उसका उल्लेख किया गया है।

ह० मुहम्मद कब और कैसे पैगम्बर बनें—कुरान में ह० मुहम्मद को ईश्वर का रसूल, नबी और पैग़म्बर बार बार कहा गया है। किन्तु उनके पैग़म्बर बनाए जाने के विषय मे मुसलमानों की कुछ दूसरी पुस्तकों में बहुत कुछ लिखा हुआ मिलता है।

एक स्थान पर लिखा है—जब ह० मौहम्मद की आयु ४० वर्ष कीं हुई तो वह एक दिन हिरा पर्वत की गुफा के बाहर खड़े थे। उस समय ऊपर से एक धमाका सुनाई दिया और ऐसा ज्ञात हुआ कि आकाश से एक चमकदार तख्त नीचे उतर रहा है। जब वह तख्त हजरत के निकट आया तो देखा कि उस पर एक व्यक्ति जिसका चमकदार स्वरूप था और जिसके सिर पर चमकदार मुकुट रखा हुआ था। तथा जो हरे रंग के कपड़े पहने हुए उस पर बैठ हुआ था। उस व्यक्ति ने तख्त से उतर कर हजरत मुहम्मद को गले लगाया और कहा—"आप ईश्वर के रसूल हैं"।

दूसरे स्थान पर ऐसा लिखा है कि एक दिन जब्राईल और मैकाईल फरिश्ते हिरा पर्वत की गुफा पर आए। उन्होंने वहाँ ह० मुहम्मद को पकड़ कर लिटाया और उनका सीना (छाती) चीरा। उसे ज़मज़म के पानी से धोकर साफ़ किया, उसमें से कोई चीज निकाली और उनकी कमर पर नबी होने की मौहर लगा दी, तथा सीना ठीक करके चले गये।

तीसरे स्थान पर ऐसा वर्णन मिलता है कि जब ह० मुहम्मद को हिरा पहाड़ की गुफा मे प्रथम बार जब्राईल फरिश्ता दिखलाई पड़ा तो वह बहुत डरे। तुरन्त घर पर आए और अपनी पत्नी ख़दीजा से बोले कि मुझे कम्बल उढ़ाओ। उनकी पत्नी ने उनका ढारस बंधाया, किन्तु डर फिर भी दूर न हुआ। इस पर फिर वही फरिश्ता वहाँ आया और कहा—"ऐ कम्बल ओढ़ने वाले! खड़ा हो और लोगो को डरा"।

चौथे स्थान पर ऐसा उल्लेख मिलता है कि हिरा पर्वत पर जब्राईल फरिश्ते ने आकर ह० मुहम्मद से कहा—"पढ़, अपने ईश्वर के नाम पर"। ह० मुहम्मद ने कहा—"मैं पढ़ा हुआ नहीं हूं"। उस फरिश्ते ने उन्हे यहा तक दबाया कि उन्हे बहुत दु.ख अनुभव हुआ। जब्राईल ने फिर कहा—"पढ़"। इस प्रकार तीन बार कहा। उस समय ह० मुहम्मद ने पढ़ा।

ह० मुहम्मद पर ईमान या विश्वास— मुसलमानों की ह० मुहम्मद के विषय में ऐसी श्रद्धा है कि ह० आदम से लेकर ह० मुहम्मद तक बहुत से नबी, रसूल और पैग़म्बर आये। किन्तु ह० मुहम्मद अन्तिम नबी, रसूल और पैग़म्बर हैं। उनके पश्चात् संसार में कोई नबी, रसूल या पैग़म्बर नहीं आयेगा। अब उनके पश्चात् जो कोई व्यक्ति पैगम्बर होने का अधिकार जताएगा, वह झूठा और बनावटी समझा जायेगा। अतः कुरान में आया है—

(१) मुहम्मद तुम्हारे मर्दों मे से किसी का बाप नहीं है, किन्तु ईश्वर का रसूल और सब नबियों पर मौहर है। (सु० ३३, आ० ३६)

(२) और वह कहते हैं कि अपने ईश्वर से हमारे लिये कोई चिन्ह (निशानी) क्यों नहीं लाता। क्या उनके पास वह

प्रमाण नहीं आया जो पहली पुस्तकों में है। (अर्थात क्या यह चिन्ह काफी नहीं कि अन्तिम नबी के विषय में पहली पुस्तकों में भविष्य-वाणी (पेशीन गोई) पाई जाती है)। (सु० २०, आ० १३२)

मुसलमान लोगों का ऐसा भी विश्वास है कि ह० मुहम्मद ईश्वर को छोड़ कर समस्त रसूलों, नबियों और पैगम्बरों तथा मनुष्यों से उत्तम हैं। ईश्वर ने उन्हे शबे मेराज में आकाश पर भेंट के लिये बुलाया था। आकाश पर उन्हे स्वर्ग और नर्क की सैर कराई गई थी। वह हिसाब के दिन ईश्वर की आज्ञा से अपनी उम्मत (अनुयाई) की सिफारिश करेंगे और ईश्वर उनकी सिफारिश या शफाअत स्वीकार करेगा। ह० मुहम्मद की हर बात को मानना और उस पर यकीन (विश्वास) करना प्रत्येक मुसलमान के लिये आवश्यक है। उनके प्रति प्रेम, श्रद्धा और आदर-सम्मान करना प्रत्येक मुसलमान का पहला कर्त्तव्य है।

ह० मुहम्मद के प्रति प्रेम-श्रद्धा और आदर-सम्मान की यों तो कितनी ही घटनाएं लिखी हुई हैं किन्तु हमने यहाँ कुछ घटनाएं नमूने के तौर पर लिखी है—

(१) ह० उमर ने जब ह० मुहम्मद की मृत्यु की खबर सुनी तो वह तलवार लेकर खड़े हो गए और कहने लगे कि जो व्यक्ति यह कहेगा कि हजरत की मृत्यु हो गई है तो मै उसका वध कर दूंगा। हजूर तो अपने ईश्वर के पास गए हैं और भेंट के पश्चात् शीघ्र वापस आ जायेंगे।

(२) ह० मुहम्मद जब थूकते थे तो जिसके हाथ वह थूक पड़ जाये तो वह उसको शरीर और मुंह पर मल लिया करता था।

(३) जो बात ह० मुहम्मद के मुंह से निकला करती थी, उसको पूरा करने के लिये सब लोग टूट पड़ते थे।

(४) ह० मुहम्मद की वजु (कुल्ली) का पानी लोग आपस में लड़-लड़ कर बाँटा करते थे और जमीन पर नहीं गिरने देते थे।

यदि किसी को कोई बूंद न मिले तो वह दूसरे के भीगे हाथों से मल कर अपने मुंह पर मल लिया करता था।

(५) लोग उनके सामने जब बोलते थे तो बहुत नीची आवाज़ से बोलते थे। उनकी ओर आँख उठाकर अदब (शिष्टाचार) के कारण नहीं देखते थे।

(६) यदि उनकी दाढ़ी या सिर का कोई बाल गिर जाता था तो उसको अति पवित्र जान कर उठा लिया करते थे।

(७) ह० मुहम्मद ने एक बार सिंगियाँ लगवाईं और जो रक्त निकला वह ह० अब्दुल्ला बिन ज़बीर को दबाने के लिये दे दिया। उन्होंने आकर कह दिया कि मैंने दबा दिया है। ह० मुहम्मद ने पूछा, 'कहाँ', ह० अब्दुल्ला ने कहा कि मैंने पी लिया है। ह० मुहम्मद ने कहा कि जिसके शरीर में मेरा रक्त जायेगा, उसे नरक की आग छू नहीं सकती।

(८) उहद के युद्ध में मुहम्मद साहब घायल हो गए। उनके शरीर से जो रक्त निकला उसे माजिद मालिक बिन सनान ने अपने होठों से चूस लिया और निगल गए। इस पर ह० मुहम्मद ने कहा कि जिसके शरीर में मेरा रक्त मिला है, उसे नरक की आग नहीं छू सकती।

(९) ह० मुहम्मद का टट्टी-पेशाब इत्यादि सब पवित्र हैं। इसलिये उसका कोई स्वरूप नहीं।
(देखो हिकायात सुहाबा, यानी सच्ची कहानियाँ, पृष्ठ १५०-१५१)

एक बार उम्मे एमन बाँदी ने हज़रत का पेशाब पी लिया था। मुहम्मद साहब ने उसे ऐसा करने से मना किया और हंस कर यह कहा कि अब कभी तेरे पेट में दर्द न होगा। (मदारिज उल नबवूह बाब १)

क़ुरान में मुहम्मद साहब को ईश्वर का रसूल मानने तथा उनके प्रति, श्रद्धा और आदर-सम्मान रखने का बार-बार वर्णन आया है।

इसके विषय में हम कुरान की कुछ आयतें पीछे "तौहीद" के शीर्षक में लिख आए हैं। अब कुछ यहाँ लिख रहे हैं—

(१) मोमिनो! ईश्वर और उसके रसूल से आगे न बढ़ो। मोमिनो! नबी की आवाज़ पर अपनी आवाज ऊंची न करो और उसके साथ जोर जोर से बातें न करो जैसे तुम एक दूसरे के साथ ज़ोर से बातें करते हो। ऐसा न हो कि तुम्हारे कर्म व्यर्थ हो जायें और तुम्हें पता भी न चले। जो लोग ईश्वर के रसूल के सामने अपनी आवाज़ें नीची करते हैं, वही हैं जिनके हृदय ईश्वर ने शिष्टाचार के लिये आज़माएं हैं। उनके लिये मोक्ष और अजरे अज़ीम (महान् फल) है। (सु० ४९, आ० १२)

(२) और न यह मुनासिब है कि नबी की जान से अपनी जानों को अधिक चाहें। (सु० ९, आ० ११९)

(३) नबी का मुसलमानों पर उनकी जानों से अधिक लगाव है और उसकी स्त्रियाँ उनकी माताएँ हैं। (सु० ३३, आ० ५)

(४) मोमिनो! नबी के घरों में प्रवेश न किया करो। मगर यह कि तुम्हें खाना खाने के लिये आज्ञा दी जाये। खाना पकने की राह न देखा करो, किन्तु जब तुम बुलाए जाओ, तब आओ। फिर जब खा चुको तो आप आपको चले जाओ। बातें सुनने के लिये जी लगा कर न बैठे रहो। यह तुम्हारी बात नबी को दुःख पहुंचाती थी। फिर नबी तुमसे शर्माता था और ईश्वर सच बात से नहीं शर्माता और जब तुम नबी की पत्नियों से कुछ सामान माँगने जाओ तो उनसे पर्दे के बाहर से माँग लिया करो। इसमें तुम्हारे और उन स्त्रियों के हृदयों के लिये अधिक पवित्रता है। और तुम्हें मुनासिब नहीं कि ईश्वर के रसूल को कष्ट दो। और न यह कि तुम नबी की पत्नियों से उसके पीछे कभी निकाह करो। बेशक यह ईश्वर के समीप बड़ा पाप है। (सु० ३३, आ० ५८)

ह० मुहम्मद के चमत्कार (मोजज़े)— मुसलमान लोग ह० मुहम्मद के अन्दर चमत्कार या मोजज़े दिखाने की शक्ति मानते

है। वह ऐसा विश्वास करते हैं कि उन्होंने अपने जीवन मे भाँति-भाँति के बहुत से चमत्कार दिखाए थे। हदीस इत्यादि पुस्तकों में उनके बहुत अधिक मोजज़े लिखे हुए हैं, किन्तु जहाँ तक कुरान को देखा गया है उसमें पहले नबियों, रसूलों और पैगम्बरों के चमत्कार दिखाने को तो माना गया है, किन्तु ह० मुहम्मद के चमत्कार दिखाने से कई वार इन्कार किया गया है। देखिये—

(१) मेरे पास वह चीज नहीं, जिसके मांगने मे तुम जल्दी करते हो। (वह कहते थे कि यदि चमत्कार नहीं हैं तो फिर आपत्ति ही भेज दे, जिससे तू डराता है)। ईश्वर के सिवाय किसी की आज्ञा नहीं। वह सच्चाई प्रकट करता है और वही अच्छा न्यायकारी है। तू कह, यदि मेरे पास वह वस्तु होती, जिसके मांगने में तुम जल्दी करते हो तो मेरा तुम्हारा फैसला ही हो जाता और ईश्वर अत्याचारियों को भली-भाँति जानता है और गुप्त बातों की कुञ्जी तो ईश्वर के पास ही है। उसके अतिरिक्त उनको कोई नहीं जानता। (सु० ६, आ० ५६-५८)

(२) तू कह, मैं तुमसे नहीं कहता कि मेरे पास ईश्वर के कोष हैं। और नहीं कहता कि मैं गुप्त बातें बताने वाला हूँ और नहीं कहता कि मैं फरिश्ता हूँ। मैं तो उसी आज्ञा (वही) क आधीन हूँ, जो मुझे होती है। (सु० ६, आ० ४६)

(३) तू कह, मोजज़े (चमत्कार) तो ईश्वर के पास हैं और तुम (मुसलमानों) को कौन समझाए कि जब उनके पास मोजज़ा (चमत्कार) आएगा तो वह जब भी न मानेंगे। (सु० ६, आ० १०८)

(४) और हमने मोजज़े (चमत्कार) भेजने इसलिये बन्द कर दिये कि अगले लोगों ने उन्हें झुठलाया था। (सु० १७, आ० ५८)

(५) तू कह, मैं अपनी जान के भले या बुरे का स्वामी नहीं हूँ। किन्तु जो कुछ ईश्वर चाहे। और यदि मैं गुप्त बातें जानता तो मैं बहुत सी विशेषताएं एकत्रित कर लेता और मुझे कोई बुराई न पहुंचती। मैं तो मोमिनों को केवल डराने और प्रसन्नता का

संदेश देने वाला हूँ। (सु० ७, आ० १८७)

(६) कोई रसूल बिना ईश्वर की आज्ञा, ईश्वर का कोई चमत्कार नहीं ला सकता। (सु० १३, आ० ३८)

(७) और काफिर कहते हैं कि तू रसूल नहीं है। तू कह, तुम्हारे और मेरे बीच ईश्वर की ही काफी साक्षी है और वह व्यक्ति भी साक्षी है, जिसे पुस्तक की खबर है। (सु० १३, आ० ४३)

ह० मुहम्मद के चमत्कारों, सिद्धान्तों और करामातों के विषय में यह तो रहा कुरान का कथन किन्तु इस पर भी मुसलमान उनके चमत्कारों के विश्वासी नजर आते हैं। साधारण मुसलमान तो उनमें बहुत से चमत्कार मानते हैं, किन्तु विद्वान मुसलमान भी उनमे कम से कम यह चार चमत्कार (मोजज़े) अवश्य मानते हैं—

(१) मोजज़ा शक़उलकमर—(चॉद के तोड़ने का चमत्कार)

(२) मोजज़ा शबे मेराज—(आकाश पर एक रात में ईश्वर से भेंट करने के लिये ह० मुहम्मद का जाना और वापस चले आने का चमत्कार)

(३) मोजज़ा शकउलसदर (सीना चीरने का चमत्कार)

(४) कंकरियां मारने का चमत्कार।

(१) मोजज़ा शक़उल कमर—कहा जाता है कि ह० मुहम्मद ने उंगली उठा कर चांद के दो टुकड़े कर दिये थे। एक भाग आस्तीन से निकाल दिया था। दूसरी बात इस चमत्कार के विषय में यह कही जाती है कि एक दिन कुछ काफिर हज़रत के पास बैठे थे। उन्होंने उनसे उनके नबी होने का चिह्न अर्थात् चमत्कार मांगा तो उस पर मुहम्मद साहब ने अपनी उंगली उठाई और चांद के दो टुकड़े कर दिये। एक टुकड़ा पूरब को और दूसरा पश्चिम को चला गया। जब उन लोगों ने खूब देख लिया तो वह दोनों टुकड़े फिर आपस में मिल गए। मुसलमान इन चमत्कारों की पुष्टि में कुरान की यह आयत पेश करते हैं—

वह घड़ी (कयामत) नजदीक आ लगी और चांद फट गया। और अगर यह लोग कोई चिह्न देखें तो मुंह फेर लें और कहें कि यह जादू है जो हमेशा से चला आता है। (सु० ५४, आ० १-२)।

सरसय्यद् अहमद खां ने अपनी तफसिरुल क़ुरान में लिखा है कि यह चमत्कार हज़रत ने नहीं दिखाया वरन् वह प्रलय के चिन्हों में से हैं।

मोजज़ा शबे मेराज—मेराज के अर्थ सीढ़ी के हैं। इस चमत्कार से यह तात्पर्य है कि एक ही रात में ह० मुहम्मद आकाश पर गए, स्वर्ग-नरक की सैर की, पहले नबी और पैगम्बरों से भेंट हुई, ईश्वर का साक्षात् दर्शन किया और फिर उसी रात को अपने घर वापस आ गए। मेराज के विषय में बहुधा मुसलमान विद्वानों में भिन्नता पाई जाती है। खलीफा नुरुद्दीन मेराज को भावना (कश्फी) सरसय्यद अहमद खां स्वप्न-दशा, कुछ विद्वान् आत्मिक और कुछ शारीरिक मानते हैं।

हदीसों में भी मेराज के विषय में काफ़ी मतभेद है। अतः हम संक्षेप में उन पुस्तकों में से एक उद्धरण प्रस्तुत करते हैं—

जब ह० मुहम्मद की आयु पचास वर्ष तीन महीने की हो गई तो वह ऊपर आकाश पर खुदा से मुलाकात करने को बुलाए गए। आकाश पर जाने से पहले जब्राईल और मैकाईल फरिश्ते ह० मुहम्मद के पास आए। उन्होंने आकर ह० मुहम्मद के सीने को नाभि तक चीरा, हृदय बाहर निकाला, उसे एक सोने की तश्तरी में रख कर ज़म-ज़म के पानी से धोकर फिर उसी जगह रख दिया। यह सब कुछ इसलिये किया, ताकि ह० मुहम्मद के हृदय में ईश्वर के प्रकाश को देखने की शक्ति आ जाये।

इसके पश्चात् वह दोनों फरिश्ते एक बराक़ (सफेद बड़ा गधा) और ७० हज़ार फरिश्ते साथ लेकर ह० मुहम्मद के पास आए और उन्हें उस पर चढ़ा कर ईश्वर से भेंट कराने ऊपर आकाश पर ले गए।

सातो आकाशों के दरवाजे खुलवाए और अन्दर गए। वहां जाकर ह० मुहम्मद ने सातों आकाशों की सैर की, स्वर्ग और नरक की दशा का निरीक्षण किया। पहले नबियों और रसूलों से भेंट की, नमाजें पढ़ीं और बैतुल कसा में जा पहुंचे। यहां पर शहद, शराब और दूध से भरे हुए तीन प्याले हजरत के सामने लाए गये। ह० मुहम्मद ने दूध का प्याला उठा कर पीया। इस पर फरिश्तों ने कहा कि यह आपने बहुत अच्छा किया जो दूध का प्याला पीया। अब आपके अनुयाई (उम्मती) हर प्रकार की आपत्तियां से छुटकारा पाएंगे। किन्तु यह जो थोड़ा दूध आपने प्याले में छोड दिया है, इस लिये थोड़ा पाप आपके अनुयाइयों में शेष रहेगा।

वहाँ से चल कर जब्राईल फरिश्ते के रहने के स्थान (सिद्ध रतुलमिनतहा) मे पहुंचे। वहाँ बर्राक को बेरी के पेड़ से बांध कर आगे चले। सत्तर हजार प्रकाश के पर्दे पार करके क़ाबे कौसीन मे आ गये। वहां ईश्वर का प्रकाश दिखाई पड़ा। ह० मुहम्मद ने झुक कर प्रणाम किया। ईश्वर ने कहा, तात। (हबीब) पृथ्वी, आकाश, कलम, दवात, तख्ती, वनस्पतियां, खनिजपदार्थ, सूर्य, चन्द्रमा, तारे, स्वर्ग और नरक मैंने तेरे प्रेम के कारण बनाए हैं। इस समय तुझे आज्ञा है कि मुझसे जो चाहे मांगले, मै तुझे दूंगा। ह० मुहम्मद ने प्रणाम करके कहा— हे ईश्वर! मेरे अनुयाई अपराधी हैं और मैं तेरे कष्टों से डरता हूं। तू मेरे अनुयाइयों के पापों को क्षमा करके उन्हे नरक की अग्नि से बचा दे। ईश्वर ने आधे पाप माफ कर देने को कहा। ह० मुहम्मद ने समस्त पाप क्षमा कर देने पर जोर दिया। इस पर ईश्वर ने कहा कि अच्छा जो एक बार कलमा पढ़ेगा उसे क्षमा कर दूंगा, चाहे वह पापी ही क्यों न हो, किन्तु काफिर को कदाचित् क्षमा नहीं करूंगा। ईश्वर ने ह० मुहम्मद से यह भी कहा कि हे तात (हबीब)! तू कुछ चिन्ता न कर, प्रलय के दिन तेरी सिफारिश या शफाअत से इतने मुसलमानों को क्षमा करूंगा कि तू प्रसन्न हो जायेगा। ईश्वर ने ह० मुहम्मद से यह भी कहा कि मैंने मुसलमानों के लिये प्रति दिन ५० वक्त की नमाज़ प्रति वर्ष ६ महीने के रोजे नियत किये हैं। इस पर ह० मुहम्मद ने निवेदन किया कि मेरे अनुयाई दुर्बल हैं, वह इस प्रकार भार नहीं उठा सकेंगे। इसी प्रकार बात-चीत होने के पश्चात् एक माह के रोज़े और

और पांच वक्त की नमाज की ईश्वर ने आज्ञा दे दी। ईश्वर और ह० मुहम्मद में और भी कुछ घनिष्ट बातें हुई। इसके पश्चात् जब्राईल फरिश्ता उसी सफेद बड़े गधे पर सवार कराके उन्हें उनके घर पर छोड़ गया।

प्रातःकाल ह० मुहम्मद ने इस मेराज का सब वृतान्त ह० अबुबक को बतलाया। उन्होंने सुनते ही उन सब बातों पर विश्वास कर लिया और उनके सच्चे होने की पुष्टि कर दी। इसी कारण ह० अबुबक्र को सद्दीक (पुष्टि करने वाला) का पद दिया गया। (देखो कसिसउल अनबिया) दूसरे लोगों ने जब यह कहानी सुनी तो उन्होंने यह झूठ और मन घड़न्त बतलाई। मुसलमान विद्वान मेराज की सचाई के प्रमाण में कुरान की यह आयतें प्रस्तुत किया करते हैं—

पवित्र है वह ईश्वर जो अपने बन्दे (मुहम्मद) को रातों रात मस्जिदे हराम (काबा) से मस्जिदे कसा (बैतुल मुकद्दस-यरुशलम) तक जिसके चारों ओर हमने बरकत दी है, ले गया ताकि हम उसे अपनी कुछ निशानियां दिखलाएं। (सु० १७, आ० १)

फिर सीधा बैठा और वह आकाश के ऊंचे किनारे पर था, फिर वह समीप आया और लटक आया, फिर रह गया। अन्तर दो कमान की बराबर या इससे भी निकट, फिर उसने अपने बन्दे की ओर जो वाणी उतारनी थी, उतारी, जो देखा उसमें (उसके) हृदय ने झूठ नहीं कहा। अब क्या तुम उससे उस वस्तु में झगड़ोगे जो उसने देखी? यद्यपि उसने उसे उतरते हुए एक बार और भी देखा है। परली सीमा की बेरी के निकट उसके पास रहने का स्वर्ग है। जब छा रहा था, उस बेरी पर जो कुछ कि छा रहा था। दृष्टि न बहकी और न सीमा से बढ़ी। निसन्देह उसने अपने ईश्वर के बड़े बड़े नमूने देखे। (सु० ५३, आ० ६-१७)

कुछ मुसलमान विद्वानों की यह सम्मति है कि इन आयतों से मेराज का कोई लगाव नहीं है, वरन् इनमे तो केवल कुरान के उतारे जाने की विधि पर प्रकाश डाला गया है।

सरसय्यद अहमद खां अपनी तफसीरूल कुरान के पृष्ठ २१ से

३३ तक इस प्रकार लिखते हैं—

बहुत सी बातें नबी और पैगम्बरों के सम्बन्ध में ऐसी प्रसिद्ध हो जाती हैं कि उनकी वास्तविकता की ओर लोग ध्यान ही नहीं देते। क्योंकि वह उनकी श्रद्धा से ऐसे प्रभावित हो जाते है कि उनको जांचने और समझने का कष्ट ही नहीं उठाते। मक्के के लोगों ने ह० मुहम्मद से बार-बार चमत्कार दिखाने को कहा, किन्तु वह सदैव चमत्कार दिखाने से इन्कार ही करते रहे। पहले नबियों के पास भी कोई चमत्कार न था। चमत्कार के प्रमाण में कोई तर्क नहीं है। चमत्कार का न होना इससे भी साफ हो जाता है कि ईश्वर ने कुरान में स्पष्ट रूप से बतला दिया है कि जो विधान उसने एक बार बना दिया है, उसमें कोई परिवर्त्तन नहीं हो सकता। ईश्वर का बनाया हुआ विधान उसका निश्चित वचन है। यह इसी प्रकार हुआ करेगा और यदि इसके विरुद्ध हो, जैसा कि चमत्कार से होना चाहिये, तो ईश्वर की सत्ता में दुर्बलता आती है।

ह० मुहम्मद से बहुत पहले से पारसी लोग ह० जरतुश्त की मेराज के विश्वासी चले आ रहे थे। इसके पश्चात् ह० अय्यूबको स्वप्न में मेराज हुआ था।

गुरु नानक को भी मेराज होना बतलाया जाता है। अत' यह बात स्पष्ट है कि ह० मुहम्मद से पहले मेराज की विचारधारा प्रचलित थी।

(३) मोजजा शकउल सदर—(सीना चीरने का चमत्कार) कहा जाता है कि जब ह० मुहम्मद की आयु चार वर्ष की थी तो एक दिन वह बाहर जंगल में थे। वहाँ कुछ पशु जो गिद्ध जैसे थे उन्हे उठाकर पर्वत पर ले गए। वहाँ उन्हें लिटा कर उनका पेट छाती से नाभि तक चीरा। उसमें जो रक्त काला था उसे निकाल डाला, फिर बरफ के पानी से हृदय को धोकर उसी स्थान पर रख कर सी दिया तथा नबी होने की मौहर लगा कर चले गए।

दूसरी बार ऐसा होना बतलाया जाता है कि जब ह० मुहम्मद

१० वर्ष के हुए तो जब्राईल और मैकाईल ने ह० मुहम्मद को लिटा कर उनका पेट चीर डाला, किन्तु इस चीर-फाड़ से कोई रक्त नहीं निकला। एक फरिश्ते ने पेट के अन्दर हाथ डाल कर पानी से सब मल धोकर ईर्षा और द्वेष के रक्त को निकाल कर प्रेम और दया का रक्त रख दिया। इस चीर-फाड़ से ह० मुहम्मद को कोई कष्ट नहीं हुआ। उन फरिश्तों ने एक चाँदी जैसी वस्तु हृदय के अन्दर रखदी और उस पर एक सफ़ूफ (Powder) रख कर पेट को वैसा ही कर दिया।

तीसरी बार ऐसा होना कहा जाता है कि एक दिन ह० मुहम्मद हिरा पर्वत की गुफा में थे तो वही ऊपर लिखे दोनों फरिश्ते वहां आए, उन्होंने उन्हे लिटाया और उनका सीना चीर कर उनके हृदय को जम-जम के पानी से धोया और उसमें से कोई वस्तु निकाली। इस चीर-फाड़ की भी ह० मुहम्मद को कोई खबर न हुई। फरिश्तों ने हृदय को फिर उसी जगह रखकर सीना ठीक कर दिया। कमर पर नबी होने की मौहर लगादी। जिस समय यह कुल कार्यवाही हुई और वह नबी बने उनकी आयु ४० वर्ष की थी।

चौथी बार उनका सीना उस समय चीरा गया जब उनकी आयु ५० वर्ष ३ महीने की थी और वह ईश्वर से भेंट करने के लिये आकाश पर गए थे। जिसका वर्णन हम मोजजा शबे मेराज में कर आए हैं (देखो कसीसुल अनबिया) कुरान में सीना चीरने का कोई वर्णन नहीं आया। केवल इतना तो अवश्य आया है कि ईश्वर ने हजरत का सीना खोल दिया और उनका हृदय साफ कर दिया।

(४) **कंकरियों का चमत्कार**—कहते हैं कि हुनेन के युद्ध में ह० मुहम्मद ने एक मुट्ठी धूल और कंकरियों की अपने काफिर शत्रुओं की सेना पर फेंक कर उस सेना को अन्धा कर दिया था। कुछ लोगों ने यह लिखा है कि ह० मुहम्मद ने कंकरियाँ नहीं फेंकी थीं वरन् अपना प्रभाव डाला था। इस चमत्कार के विषय में अधिक लिखना कुछ उचित नहीं जान पड़ता।

(५) क़यामत या प्रलय

जिस दिन समस्त प्राणी मर जायेंगे, तमाम संसार नष्ट हो

जायेगा, तारे टूट कर गिर पड़ेंगे, पर्वत रूई के गालों की भाँति उड़ते फिरेंगे तथा संसार की प्रत्येक वस्तु टूट-फूट कर नष्ट हो जायेगी, वह दिन कयामत या प्रलय का दिन कहलाता है।

प्रलय के विषय मे मुसलमानों का ऐसा विश्वास है कि प्रलय आने का ठीक समय ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। मुसलमानों की अन्य पुस्तकों में क़यामत के रंग-ढंग उत्पन्न हो जाने के विषय में भिन्न-भिन्न कहावतें लिखी हुई हैं। किसी किसी स्थान पर कयामत आने का दिन जुमा (शुक्रवार) और मोहर्रम की दसवीं तिथि लिखी है।

लिखा है कि कयामत से कुछ देर पूर्व इसराफील फरिश्ता रणसिंहा फूकेगा। उसकी आवाज़ इतनी भयानक और डरावनी होगी कि उस आवाज़ से सब जीवधारी मर जायेंगे। संसार की प्रत्येक वस्तु टूट-फूट कर नष्ट हो जायेगी। क़ुरान मे कयामत के विषय में यों तो बहुत सी आयते हैं किन्तु हमने तो उनमें से केवल कुछ नमूने के तौर पर लिखी हैं—

(१) और जिस दिन वह (कयामत) को कहेगा, हो जा, वह हो जायेगी। (सु० ६, आ० ७२)

(२) तुमसे कयामत के विषय में पूछते हैं कि कब क़ायम होगी। तू कह, उसका ज्ञान तो केवल मेरे ईश्वर को है। वही उसके समय पर उसे खोल दिखायेगा। वह घड़ी, आकाश और पृथ्वी में भारी बात है। तुम पर आयेगी तो अचानक आयेगी। (सु० ७, आ० १८६).

(३) (तू) पूछता है कि कयामत का दिन कब है। फिर जब आँखे पथरा जायँगी और चाँद गिर जायेगा और सूर्य और चन्द्रमा इकट्ठे किये जायंगे तो उस दिन मनुष्य कहेगा कि भागने का स्थान कहाँ है। (सु० ७५, आ० ५-१०)

(४) सो जब रणसिंहे में फूक फूंकी जायेगी और पृथ्वी और पर्वत उठाए जायंगे, फिर उस दिन होने वाली हो जायेगी। और

आकाश फट जायेगा और उस दिन बोदा हो जायेगा और फरिश्ते उसके किनारों पर होंगे और उस दिन ८ फरिश्ते तेरे ईश्वर का तख्त अपने ऊपर उठाये हुए होंगे। उस दिन तुम पेश किये जाओगे। (सु० ६६, आ० १२-१७)

(५) निःसन्देह जो तुम्हें वचन दिया गया है, वह अवश्य होने वाला है। सो जब तारे मिटाए जायें और जब आकाश में सुराख हो जायें और जब पर्वत उड़ाए जायें और जब रसूल नियत समय पर लाए जायें। (सु० ७७, आ० ६-१०)

(६) जिस दिन आकाश पिघले तांबे की भांति हो जायेगा और पर्वत ऐसे होंगे जैसे रंगी हुई ऊन। (सु० १०, आ० ७-८)

(७) फिर जब आकाश फट जायेगा तो गुलाबी रंग का हो जायेगा। (सु० ५५, आ० ३६)

(८) जिस दिन हम आकाश को इस तरह लपेटेंगे जैसे काग़ज़ को तूर मार लपेटता है। (सु० २१, आ० १०३)

(६) और सारी पृथ्वी कयामत के दिन अल्लाह की मुट्ठी में होगी। और सब आकाश उसके दाहिने हाथ में लिपटे हुए होंगे। (सु० ३६, आ० ६६)

(१०) जब सूर्य लपेटा जायेगा और जब तारे धुंधले पड़ जायेंगे और जब पर्वत चलाये जायेंगे और जब दस महीने की ग्याभन ऊंटनियाँ बेकार छुटी फिरेंगी। और जब हिंसक पशु एकत्रित किये जायेंगे और नदियां झोंकी जायेगी और जब जीवों के जोड़े बाँधे जायें और जब उस लड़की से जो जीवित गाड़ी गई थी पूछा जायेगा कि वह किस पाप के कारण मारी गई थी और जब ऐमाल नामे (विवरण-पत्रिका) खोले जायेंगे और जब आकाश की खाल उतारी जायेगी और जब नरक दहकाया जायेगा और स्वर्ग निकट लाया जायेगा, उस समय प्रत्येक ज्ञात कर लेगा जो उसने किया है (सु० ८१, आ० १-१३)

क़यामत के विषय में जो विचार-धारा यहूदियों और ईसाइयों

में प्रचलित थी, वही विचार धारा इस्लाम ने जारी रक्खी। मिस्रियों में पहले यह रिवाज चला आता था कि जब कभी लोगों को एकत्रित करने का अवसर आता था तो रणसिंहा बजा कर लोगों को एकत्रित किया जाता था। इसके पश्चात् यहूदियों और ईसाइयों मे भी यही विचार चलता रहा। इस्लाम में भी उन्हीं से रणसिंहा फूंकने का विचार आया।

सरसय्यद अहमद खां लिखते हैं कि इस्राफील फरिश्ते का रणसिंहा फूंक कर ससार की प्रत्येक वस्तु को नष्ट कर देना सिद्ध नहीं होता।

(६) मुर्दों का जीवित होना और हिसाब का दिन
Day of Judgement

प्रलय के बाद मुर्दों का जीवित होना और हिसाब के दिन ईश्वर का आकाश से आकर महशर के मैदान में सब मनुष्यों से हिसाब लेने का विचार पारसियों के समय से प्रचलित चला आ रहा था। पारसियों के पश्चात् कुछ कमी-बेशी के साथ वही विचार इस्लाम ने अपनाया।

मुसलमानों का इसके विषय में ऐसा विश्वास है कि कयामत के पश्चात् इस्राफील फरिश्ता फिर रणसिंहा फूंकेगा। उसकी आवाज़ से संसार की सब वस्तुएं फिर अपने अपने स्थान पर उपस्थित हो जायेंगी। समस्त मुर्दे जीवित हो जायेंगे। ईश्वर के प्रकाश से पृथ्वी चमक उठेगी। उस दिन ईश्वर एक तख्त पर बैठ कर जिसको आठ फरिश्ते उठाए हुए होंगे और बहुत से फरिश्ते साथ होंगे महशर के मैदान (कुरान में महशर के मैदान का कोई निश्चित स्थान नहीं लिखा है) मे आयेगा। वहां ईश्वर मोमिनों (सच्चे मुसलमानों) की ज़िद करने पर अपनी पिंडली खोलेगा। तब सब मोमिन उसे झुक कर प्रणाम (सिजदा) करेंगे। महशर के मैदान में समस्त मनुष्य और फरिश्ते एकत्रित किये जायेंगे। ईश्वर के सामने उनकी पेशी होगी। सबके कर्मों का हिसाब लिया जायेगा। हर एक के मुंह पर मौहर लगा दी जायेगी। उनके हाथ-पैर, कान और आंख इत्यादि से उनके कर्मों के विषय में पूछा

जायेगा। समस्त रसूल, नबी और पैग़म्बर उस समय उपस्थित होंगे जो अपनी उम्मत (अनुयाइयों) की पैरवी करेंगे। ह० मुहम्मद अपनी उम्मत की पैरवी करेंगे। प्रत्येक नबी अपनी अपनी उम्मत को क्षमा कराने के लिये ईश्वर से सिफ़ारिश करेगा। किन्तु क्षमा करना या न करना ईश्वर के अधिकार में होगा। ईश्वर ह० मुहम्मद की सिफ़ारिश पर मुसलमानों को इतनी अधिक संख्या में क्षमा करेगा कि ह० मुहम्मद मग्न हो जायेंगे। काफिरों की कोई सुनवाई नहीं होगी और न वह क्षमा किये जायेंगे। जो लोग स्वर्ग में जाने के योग्य समझे जायेंगे, उनके दाहिने हाथों मे तथा जो नरक में जाने योग्य होंगे उनके बाएं हाथों में उनके कर्मों की विवरण-पत्रिकाएं (ऐमाल नामे) होंगी। उस दिन पृथ्वी भी ईश्वर से अपनी बीती आप सुनाएगी। जिस दिन यह कुल कार्यवाही होगी, उसी दिन को हिसाब का दिन *Day of Judgement* कहते हैं।

ऊपर लिखी सब बातों की पुष्टी कुरान की नीचे लिखी आयतों से इस प्रकार होती हैं—

(१) उस दिन आठ फरिश्ते तेरे ईश्वर का तख़्त अपने ऊपर उठाए हुए होंगे। उस दिन तुम पेश किये जाओगे, कोई भेद तुम्हारा छिपा न रहेगा। जिनके ऐमाल नामे (विवरण-पत्रिकाएं) दाहिने हाथ मे दिये जायेंगे सो वह उत्तम जीवन मे होगा। (सु० ६९, आ० १५-२०)

(२) और पृथ्वी अपने ईश्वर के प्रकाश से चमक उठेगी और वहीं कार्यों की विवरण पत्रिकाएं रक्खी जायेंगी और नबी और साक्षी (गवाह) उपस्थित किये जायेंगे। (सु० २८, आ० ६७)

(३) औ तू देखेगा कि सारे फरिश्ते आकाश के चारों ओर हल्का बांधे खड़े हैं। अपने ईश्वर के गुणों के वर्णन के साथ साथ उसकी पवित्रता का भी बखान करते हैं और उनमें न्याय के साथ फैसला किया जायेगा। (सु० २९, आ० ७४)

(४) निसन्देह फैसले का दिन नियत है। जिस दिन रणसिंहा फूंका

जायेगा तो तुम गिरोह के गिरोह चले आओगे (सु० ७८, आ० १६, १७)

(५) जिस दिन जीव (Soul) और फरिश्ते कतार बांध कर खड़े होंगे, उस दिन सिवाय उसके, जिसे ईश्वर हुक्म दे और वह ठीक बोले, और कोई न बोल सकेगा (सु० ७८, आ० ३७)

(६) और जिस दिन हम हर उम्मत में उन्हीं में से एक गवाह उन पर खड़ा करेंगे और तुझे (हे मुहम्मद ।) उन (मक्के वालों) पर गवाह लाएंगे। (सु० १६, आ० ८८)

(७) जिस दिन पिंडली खोली जायेगी और सिजदे की तरफ बुलाए जायेंगे तो सिजदा न कर सकेंगे। उनकी आंखें नीचे झुकी हुई होंगी और उन (काफिरों) पर लज्जा और ग्लानि (ज़िल्लत) छार ही होगी। (सु० ६८, आ० ४२)

(८) उनके कान उनकी आँखें और उनके चमड़े उन पर गवाही देंगे, जो वह करते थे। और वह अपने चमड़ों से कहेंगे कि तुमने हम पर क्यों गवाही दी? (सु० ४१, आ० १६-२०

(९) उस दिन ज़मीन अपनी ख़बरें बतायेगी इसलिये कि तेरा ईश्वर उसे आज्ञा देगा। (सु० ९९, आ० ३ ४)

(१०) अल्ला जिसे चाहेगा बक्शेगा और जिसे चाहेगा दु.ख देगा। (सु० २, आ० २८३)

(११) और तू हर उम्मत को जांघ (जानो) पर बैठा देखेगा। हर उम्मत अपनी पुस्तक की ओर बुलाई जायेगी जैसा तुम करते थे। आज बदला पाओगे। (सु० ४५, आ० २७)

(१२) जिन दिन क़ब्रों से इस प्रकार दौड़ते हुए निकलेंगे कि गोया वह किसी निशान की ओर चले जा रहे हैं। (सु० ७०, आ० ४२)

(१३) और औरत हो या मर्द, (स्त्री हो या पुरुष) जिसने नेक काम किये और वह मुसलमान है, सो वही स्वर्ग में जायंगे और उन पर तिल भर अत्याचार न होगा। (सु० ४, आ० १०३)

(१४) जिन्होंने हमारी आयतें झुठलाईं और उनके प्रति घमंड दिखाया, उनके लिये आकाश के दर्वाजे न खोले जायेंगे और वह स्वर्ग में प्रविष्ट न होंगे। (सु० ७, आ० ३६)

(१५) तुम्हारा रब तुम्हें खूब जानता है, वह चाहे तुम पर दया करे या तुम्हें दंड दे। (सु० १७, आ० ५३)

यह बात तनिक विचारणीय है कि सृष्टि के आदि से जो लोग उत्पन्न होकर मरते चले आये हैं, क्या उन सबका हिसाब उसी दिन अर्थात् हिसाब के दिन, (Day of Judgement) ही होगा जिस के निश्चित समय का कोई पता नहीं। सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और अन्तर्यामी ईश्वर का न्याय हर समय क्यों नहीं होता ?

जन्नत-(स्वर्ग)—स्वर्ग के विषय में जो विचार-धारा यहूदियों और ईसाइयों की है, वही विचार-धारा मुसलमानों की भी है। क़ुरान ने स्वर्ग के सुखों और राग-रंग का बार बार उल्लेख किया है। अतः क़ुरान में स्वर्ग के विषय में इस प्रकार वर्णन आया है कि स्वर्ग-वासियों के रहने के लिये सोने चांदी की ईंटों और संगमरमर के मोती जड़े मकान होंगे। पहनने के लिये रेशमी कपड़े और सोने-चांदी और मोतियों के आभूषण होंगे। खाने-पीने के लिये शराब, कबाब और फलादि होंगे और मनोरञ्जन के लिये बहुत सुन्दर, सदा जवान रहने वाली युवतिया (हूर) और गिलमान (लड़के) होंगे। किन्तु क़ुरान में स्वर्गवासी-स्त्रियों को सुख और राग-रंग प्राप्त होने के विषय में कोई विवरण नहीं पाया जाता।

क़ुरान में स्वर्ग के विषय में बहुत अधिक आयतें आई हैं। किन्तु हमने उनमें से अनुमान लगाने के लिये कुछेक नीचे लिखी हैं—

(१) स्वर्ग की चौड़ाई आकाश और जमीन की चौड़ाई के बराबर है। (सु० ५७, आ० २०)

(२) किन्तु जो अल्लाह के सच्चे अनुचर (ख़ालिस बन्दे) हैं, उसके लिये रोज़ी (जीविका) नियत है। भांति भांति के मेवे और उनका सम्मान किया जायेगा। ईश्वर की देन (न्यामत) के बागों में तख्तों पर आमने सामने निथरी हुई शराब के प्यालों का उन

पर दौर चलेगा। वह शराब लाभ-दायक होगी, पीने वालों के लिये मजेदार। न उस शराब से सिर घूमेगा और न वह उसके कारण बेहुदा बकेंगे और उनके पास बड़ी आंखों वाली, नीची निगाह वाली स्त्रियां होंगी मानो वह अंडे में छिपे धरे। फिर प्रश्न करते हुए एक दूसरे की ओर मुंह करेंगे (सु० ६७, आ० ३८-४६)

(३) जड़ाऊ तख्तों के ऊपर उन पर आमने-सामने तकिया लगाए बैठे हैं। सदा जवान रहने वाले लड़के इनके पास लिये फिरते हैं गिलास और कूजे और नियरी शराब के प्याले। उससे न सिर दुखेगा और न बकवास लगेगी और मेवे जैसे वह पसन्द करे और परिन्दों का मांस, जिस प्रकार का चाहे और गोरे रंग की बड़ी बड़ी आँखों वाली स्त्रियां जैसे छिपे हुए मोती, यह उनके कर्मों का फल है। (सु० ५६, आ० १४-२४)

(४) ऐसे बिछावनों पर तकिये लगा कर बैठेंगे, जिनके स्तर ताफ्ते (एक प्रकार का कपड़ा) के होंगे और दोनों बागों का मेवा झुक रहा होगा। उन बागों में नीची निगाह वाली स्त्रियां हैं। उन स्वर्गवासियों से पूर्व किसी मनुष्य और जिन ने सम्भोग नहीं किया और वह ऐसी हैं, जैसे याकूत और मूंगा। उन दो बागों के अतिरिक्त और दो बाग हैं। दोनों बाग अत्यन्त गहरे हरे श्यामल रंग के हैं। उन बागों में दो चश्में उबल रहे हैं। उन दोनों में मेवे, खजूरें और अनार हैं। उन बागों में सुन्दर, भली स्त्रियां हैं, गोरे रंग की हैं, जो खेमों (डेरों) में रुकी बैठी हैं। उनसे पहले किसी मनुष्य और जिन ने सम्भोग नहीं किया। हरी चान्दनियों और बहुमूल्य सुन्दर कालीनों पर तकिया लगाए बैठे हैं। (सु० ५५, आ० ५२-७६)

(५) उनके रहने के लिये बाग हैं। उनके नीचे नहरें बहती हैं। उनको वहां आभूषण पहनाए जायेंगे। सोने के कड़े और पतले और गाढ़े रेशमी हरे कपड़े पहनेंगे। (सु० १८, आ० ३०)

(६) जो ईमान लाए और नेक काम किए, ईश्वर उनका बागों में

प्रवेश करेगा, जिनके नीचे नहरें बहती हैं, उनमें उनको सोने के कंगन और मोती पहनाए जायेंगे और उनके वस्त्र वहा रेशम के होंगे। (सु० २७, आ० २२ और सु० ३५, आ० ३२)

(७) और हमने गोरे रंग की बड़ी बड़ी आंखों वाली स्त्रियां उनसे व्याह दी हैं और जो लोग ईमान लाए और उनकी सन्तान ईमान में उनके पीछे चली, उनकी सन्तान को हम उनसे मिला देंगे और जिस प्रकार का मेवा और मांस वह चाहेंगे. हम उनके लिये रेल-पेल लगा देंगे। वहां वह एक दूसरे से प्याले झपट लेते हैं। न उनके सरूर में बकवास है और न पाप। और उनके आस-पास उनके जवान लड़के फिरते हैं। मानों वह ग़िलाफ में धरे हुए मोती हैं। (सु० ५२, आ० १६–२३)

(८) उस स्वर्ग का वर्णन, जिसका निष्पाप लोगों से वचन हुआ है, यह है कि वहां उस पानी की नहरें हैं जिसमें बदबू नहीं और दूध की नहरें हैं जिसका स्वाद नहीं बदला और शराब की नहरें हैं जो पीने वालों को स्वादिष्ट लगती है और साफ झाग उतारे हुए शहद की नहरें है और उनके लिये वहां हर प्रकार का मेवा है। उनके ईश्वर की ओर से माफ किया। (सु० ४७, आ० १४)

(९) यद्यपि भले लोग वह प्याले पीयेंगे जिसकी मलूनी काफूर है। वह एक चश्मा है, जिससे ईश्वर के अनुचर पीते हैं, जिसकी नालिया अपने डेरों में ले जाते हैं। (सु० ७६, आ० ४–५)

(१०) और उनको वहां ऐसे प्याले भी पिलाए जायेंगे जिनकी मलूनी सूंठ है। वह एक चश्मा है, जिसका नाम सल सबील है और उनके पास सदा रहने वाले नौ जवान लड़के फिरते हैं। जो तू उन्हे देखे तो बिखरे हुए मोती समझे। (सु० १६, आ० ११–२०)

(११) मौहर लगी ख़ालिस शराब उन्हे पिलाई जायेगी। उसकी मौहर कस्तूरी की होगी। (सु० ८३, आ० २५)

पंजाब के एक मुसलमान सय्यदलतीफ के हवाले से ऐसा लिखा हुआ मिलता है कि ऐसे उदार वचनों ने अरब के जंगली लोगों में जोश

की अग्नि उत्पन्न करती और उनकी वासनाएं भड़क उठीं तथा उनमें जगी स्फटि उत्पन्न हो गई।

सर सय्यद अहमद खां ने अपनी तफसीरुल कुरान प्रथम भाग के पृष्ठ ३८—३६ में कुछ इस प्रकार लिखा है—बस यदि स्वर्ग की वास्तविकता यही बाग और नहरें और मोती, चांदी और सोने की ईंटों के मकान, दूध, शहद और शराब के समन्दर और स्वादिष्ट मेवे और सुन्दर स्त्रियां और लौंडे हैं तो यह समझना कि स्वर्ग एक बाग़ की भाँति उत्पन्न हुआ है, उसमें संगमरमर और मोती के जड़ाऊ महल हैं, बाग़ में हरे-भरे वृक्ष हैं, दूध, शराब और शहद की नदियां बह रही हैं। हर प्रकार का मेवा खाने को प्राप्त होता है। साकी और साकिनें अति सुन्दर चांदी के कंगन पहने हुए जो हमारे यहां की घोसनें पहनती हैं, शराब पिला रही हैं। एक हब्शी एक हूर के गले में हाथ डाले पड़ा है, एक ने रान पर सिर धरा है, एक छाती से लिपट रहा है, एक बोसा ले रहा है, कोई किसी कोने में कुछ कर रहा है, और कोई किसी कोने में कुछ। कुछ ऐसा बेहुदापन है कि आश्चर्य होता है। यदि स्वर्ग यही हो तो निःसन्देह हमारी बुरी बातें इससे हज़ार दर्जे अच्छी हैं।

दोज़ख़ (नरक)

नरक के विषय में भी मुसलमानों का वही विचार है जो यहूदियों और ईसाइयों का चला आ रहा था। अतः मुसलमान दोज़ख़ के विषय में ऐसा मानते हैं कि नरक ऊपर आकाश पर है। नरक के बड़े अधिकारी का नाम मालिक है। नरक की देख-भाल के लिये ईश्वर ने बड़े भयानक और डरावने फरिश्ते नियुक्त कर रक्खे हैं। जिनमें से हर एक के ७०, ७० हज़ार हाथ और हर हाथ में ७०, ७० हज़ार उगलियां हैं। नरक के सब मकान अग्नि के हैं और वहाँ भांति-भांति के ज़हरीले और हिंसक पशु रहते हैं जो नरकवासियों को हर प्रकार का कष्ट देते रहते हैं। कहां तक कहा जाये नरक मे नरकवासियों को अति कष्ट दिये जाने का वर्णन किया गया है। नरक के विषय में कुरान की यह आयतें हैं—

(१) जिसके (नरक) सात द्वार हैं। हर द्वार के लिये उनमे से एक

फरिश्ता नियत है। (सु० १५, आ० ४४)

(२) उसे (काफ़िर) को पकड़ो, फिर तौक़ पहनाओ, फिर नरक में दाखिल करदो, फिर उसे जंजीर में जो ७० गज़ लम्बी है, जकड़ो। (सु० ६६, आ० ३०-३१)

(३) निःसन्देह नरक ताक मे है, सरकशों का ठिकाना है। उसमें वह मुद्दतों पड़े रहेंगे। वहां न ठण्डक का स्वाद चखेंगे, न कुछ पीना नसीब होगा, किन्तु गरम पानी और बहती पीप। (सु० ७८, आ० २१-२५)

(४) जो यह कहता है, कि क़ुरान सिर्फ जादू है, जो नक़ल होता चला आता है और कुछ नहीं, यह केवल आदमी का वचन है। मै उसे नरक मे डालूंगा और तू क्या समझा कि नरक क्या है। वह न बाक़ी रक्खे और न छोड़े। चमड़ा झुलसने वाली, उस पर १६ निगहबान हैं और हमने जो लोग नरक पर नियत किये हैं, वह और नहीं फरिश्ते हैं। (सु० ७४, आ० २२-३०)

(५) और जिन्होंने हमारी आयतों को हराने में चेष्टा की वही नरक वासी है (सु० २२ आ० ५०)

(७) अच्छा बुरा भाग्य ईश्वर की ओर से है-

इस सिद्धान्त को भी इसलाम से पहले यहूदी और ईसाई मानते चले आ रहे थे और वह दोनों मतानुयाई आवागमन के सिद्धान्त को नहीं मानते थे। उनका ऐसा कहना था कि आवागमन के सिद्धान्त को मानने से ईश्वर की सत्ता और उसके गुणों मे दुर्बलता आती है। ईश्वर वह सर्व शक्तिमान होना चाहिये कि जिसके हाथ से हर वस्तु निकली हो अर्थात् उसने हर वस्तु अपनी आज्ञा से उत्पन्न की हो। इसी सिद्धान्त के आधार पर उनका ऐसा विश्वास चला आ रहा था कि मनुष्य को जो सुख-दुख, शोक, संताप व्याधि, अभाव, कष्ट, पीड़ाएं क्लेश, आराम, ऐश्वर्य, राग-रंग हास-विलास इत्यादि मिलते हैं, वह उनके कर्मों का परिणाम नहीं है, वरन् ईश्वर ने अपनी शक्ति को प्रकट करने के लिये किसी को अमीर, किसी को ग़रीब

किसी को कोढ़ि किसी को अपाहिज किसी को हर प्रकार सुखी और किसी को हर प्रकार दुखी उत्पन्न किया है। चूंकि ईश्वर सबका मालिक और स्वामी है, अतः उसने जिसके लिये जो सुख-दुख देना उचित समझा वैसा ही उसका भाग्य बना कर संसार में उत्पन्न कर दिया। यहूदियों और ईसाइयों की यही विचार-धारा इसलाम में भी आगई। अत. कुरान में इस विषय में इस प्रकार आया है—

तू कह ! ईश्वर, देश के स्वामी, तू जिसे चाहे यश दे जिसे चाहे राज्य दे और जिससे चाहे राज्य छीन ले। तू जिसे चाहे यश दे जिसे चाहे अपयश दे। भलाई तेरे हाथ में है और तू हर वस्तु पर छाया हुआ है। (सु० ३, आ० २५)

ईश्वर के मानने वाले सभी ईश्वर को न्यायकारी मानते हैं, किन्तु इस प्रकार इस सिद्धान्त को मानने से ईश्वर का न्याय स्थिर रहता है या नहीं यह बात बुद्धिमानों के लिये विचारणीय है।

इसलाम के शेष सिद्धांत

मूर्त्ति-पूजा—कुरान ने मूर्त्ति-पूजा करने या ईश्वर के साथ किसी दूसरे को सम्मिलित करने से बार बार मना किया है और मूर्त्ति-पूजकों का ठिकना नरक बतलाया है। किन्तु साथ ही कुरान ने काबे के मन्दिर में श्रद्धा और हजरे असवद का आदर सन्मान पहले की भांति ही स्थिर रक्खा है।

देखने में आता है कि कुरान के बार बार मना करने पर भी मुसलमानों मे सैकड़ों प्रकार की पूजाएं प्रचलित हैं। उदाहरण के तौर पर उनमे से कुछ नीचे लिखी गई हैं—

अहमद सरहिंदी, शाहवलीउल्लाह, शे० अब्दुल कादिर जिलानी, ख्वाजा मोयुद्दीन चिश्ती, खलील बगदादी, साबरी, अहमद बरेलवी, सय्यद सालार, ख्वाजा अजमेरी, इमाम गज्जाली, मोयुद्दीन अरबी शाहमीना, इत्यादि बहुत से छोटे बड़े अज्ञात पीरों, फकीरों और औलियाओं को ईश्वर उपासक (वली अल्लाह) मान कर उनकी कब्रों और स्थानों को बड़ी श्रद्धा के साथ सिर झुका कर प्रणाम (सिजदे)

किये जाते है। उनकी कब्रों पर मिठाई, फल और गिलाफ इत्यादि सैकड़ो प्रकार के चढ़ावे चढाये जाते हैं। उनकी कब्रों के सामने हाथ जोड़ कर माथे रगड कर, खूब गिडगिडा कर कामनाएं पूर्ण करने के लिये उनसे बार बार निवेदन किया जाता है। ब्रहस्पतवार का दिन पीरों फकिरों और औलियाओं के लिये बड़ा पवित्र माना जाता है। उनके उत्सव और मेले बड़ी धूम-धाम, उत्साह और श्रद्धा के साथ प्रति वर्ष मनाये जाते हैं। उनकी कब्रों के धोए हुए पानी को अति पवित्र समझ कर माथों और आखों पर लगाया जाता है।

इसके अरिरिक्त कुछ और प्रचलित पूजाएं यह है—तावूते सकीना परस्ती (पूजा), गौस परस्ती, जिन परस्ती, भूत और चूडैल परस्ती, रसूल परस्ती मकबरे रसूल और कदम रसून परस्ती, कदमे इब्राहीम परस्ती, कर्बला और खाके नजफ परस्ती, अली परस्ती, काबा परस्ती, हजरे असवद परस्ती, जामेये (कपड़ा) काबा परस्ती, मदीना परस्ती, मूर्दों का तीजा, दसवां और चालिसवां, पीरों और औलियाओं का दसवां, ग्यारवॉ और सतरहवां, अमीर हमजा की शबरात, इमाम हसन और हुसैन का मोहर्रम, शाह अब्दुल हक़ का तोशा और हलवा, ह० बीबी की सहनक, ह० अली का मीठे चावलों का कुंडा, बुअली कलन्दर का मालीदा, इमाम हुसैन का हलीम और शर्बत, बाबा फरीद की खिचडी, सय्यद सुल्तान का मीठा रोट और रेवडिया, ख्वाजा मौय्यनुद्दीन की चावलो की देग, कब्रों पर जुमेरात के दिन चिराग़ जलाना, मिठाई चढ़ाना और बांटना, उन पर गिलाफ चढाना और स्नान कराना, ताजिये बनाना, उन पर मिठाई चढाना, प्रणाम करना, मुरादे, मांगना, बच्चों की आयु को बढ़ाने के लिये उनके नीचे से निकालना, मोहर्रम में पुन्य की प्राप्ति के लिये शर्बत पिलाना, पानी की मश्के छिडकवाना, या अली और या मुहम्मद की रट हानि को दूर करने तथा लाभ प्राप्त करने की इच्छा से लगाना, गुरू की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा के तुल्य मानना, तावीज, गडा और धागा वगैरा बनवा कर स्त्री, पुरुषो और बचों के गले या हाथों मे बॉधना, किसी पीर, फक़ीर या औलिया की भेंट सवा रुपया, किसी की सवा पांच आने और किसी की पाच पैसे समझ कर देना, कहां तक कहा जाये मुसलमनो में इसी प्रकार अलग अलग क्षेत्र और अलग अलग श्रद्धा के अनुसार और भी बहुत

सी पूजाएं प्रचलित हैं।

सच्चा दीन—मुसलमान इस्लाम को ही सच्चा दीन कहते हैं, कुरान में भी ऐसा ही आया है—जो ईमान लाए और जिन्होंने नेक काम किये और जो (मुहम्मद) पर उतरा है, उसे मान लिया, वही उनकी ओर से सच्चा दीन है। (सु० ४७, आ० १) और जो इसलाम के अतिरिक्त किसी और दीन को चाहेगा, वह उससे कदाचित् स्वीकार न किया जायेगा और वह अन्त में हानि उठाने वालों में होगा (सु० ३, आ० ८४)। उसी ने अपना रसूल हिदायत और सचा दीन देकर भेजा है ताकि वह इस सच्चे दीन को समस्त संसार के दीनों पर प्रतिष्ठित (ग़ालिब) करे। (सु० ९ आ० ३२)

ईमान—हृदय से विश्वास करके वाणी से स्वीकार करना, और उसी के अनुसार कार्य करने को ईमान लाना कहते हैं।

मोमिन—जो विना संकोच ईमान लाए और फिर संदेह न करे कुरान ने ऐसे व्यक्ति को ही मोमिन कहा है—मोमिन वह हैं जो ईश्वर और उसके रसूल पर ईमान लाए और फिर संदेह न करे। (सु० ४९, आ० १४) मोमिन के लिये यह आवश्यक है कि वह ईश्वर पर विश्वास करने के साथ ह० मुहम्मद को भी रसूल माने।

गुनाह (पाप)—ईश्वर की आज्ञाओं को भंग करने का नाम पाप है। क़ुरान ने सबसे बड़ा पाप नास्तिकता (कुफ्र) बतलाया है और कहा है कि नास्तिकता का पाप क्षमा नहीं हो सकता। दूसरे पाप तो ससार में ईश्वर की पूजा और उपासना करने से ही दूर हो जाते हैं।

कुफ्र—(नास्तिकता) जिन पीछे लिखे विशेष सात सिद्धान्तों पर क़ुरान ने ईमान लाना आवश्यक बतलाया है, उनमें से किसी एक को भी न मानना कुफ्र कहलाता है। कुरान ने काफिर को बहुत बुरा-भला कहा है—जो लोग काफ़िर हुए और काफिर ही मर गए, उन पर ईश्वर की और फरिश्तों की और सब आदमियों की लानत है। वह सदा

लानत में ही रहेंगे। न उनका कष्ट हलका होगा और न उन्हें मौहलत मिलेगी। (सु० २, आ० १६०-१६१)

काफ़िरों से सलूक—क़ुरान ने काफ़िरों के साथ इस प्रकार सलूक करने की बार-बार आज्ञा दी है—अहले किताब में से जो लोग ईश्वर और आख़िरी दिन पर ईमान नहीं लाते, ईश्वर और उसके रसूल की की हुई वस्तुओं को हराम नहीं जानते और सच्चा दीन (इसलाम) स्वीकार नहीं करते, तुम मुसलमानों, ऐसों से मुक़ाबला करो। यहां तक कि वह अपने हाथों से जज़िया (कर) दें और तुच्छ होकर रहें (सु० ६, आ० २८)

विधर्मी (मुर्तिद) और उसके साथ सलूक—जो कोई व्यक्ति इसलाम मत छोड़ कर किसी अन्य धर्म या मत में चला जाये तो उसे इसलाम ने विधर्मी (मुर्तिद) कहा है। क़ुरान ने ऐसे कार्य करने को वध करने से भी अधिक सख्त बतलाया है। अतः क़ुरान में यह आया है-और दीन से विचलाना वध से भी ज़्यादा सख्त है। (सु० २, आ० १६०)

ह० मुहम्मदके विरोधियों से सलूक-क़ुरान ने ह० मुहम्मद के विरोधियों के साथ इस प्रकार सलूक करने की आज्ञा दी है—वह जो ईश्वर से और उसके रसूल से लड़ते हैं और पृथ्वी पर लड़ाई-झगड़ा करने के लिये दौड़ते हैं, उनकी सज़ा यही है कि वध किये जायें या सूली पर चढ़ाए जायें या हाथ-पैर काटे जायें या उस देश से दूर कर दिये जाये। यह उनका सांसारिक अपमान है और अन्त में उनके लिये बड़ा कष्ट है, किन्तु जो तुम्हारा हाथ पकड़ने से पहले क्षमा चाहलें (तोबा करलें) तो जानो कि ईश्वर क्षमा प्रदान करने वाला दयालु है। (सु० ५, आ० ३२) जो लोग ईश्वर और उसके रसूल को कष्ट पहुंचाते हैं। ईश्वर ने संसार और अन्त में उन पर लानत की है और उनके लिये अपमान का कष्ट तैयार किया है। (सु० ३३, आ० ५६)

यहूदियों और ईसाइयों से सलूक— क़ुरान में लिखा है—निःसन्देह वह काफ़िर हैं जो मरियम के पुत्र मसीह को ईश्वर कहते हैं।

(सु० ५, आ० १६), मोमिनो! तुम यहूदियों और ईसाइयों को अपना मित्र न बनाओ, वह आपस में एक दूसरे के मित्र हैं और तुम में से जो कोई उनका मित्र बनेगा, निःसन्देह वह उनमे से ही होगा। (सु० ५, आ० ५०) मोमिनो! किताब वालों में से जो लोग तुम्हारे दीन का ठट्टा और खेल बनाते हैं, उनको और काफिरों को अपना मित्र न बनाओ। (सु० ५, आ० ५६)। सब किताब वाले बराबर नहीं हैं। (सु० ३, आ० ११२)

क़स्सास—(बराबरी का बदला)—क़ुरान ने बदला लेने की इस प्रकार आज्ञा दी है—मोमिनो! बात बनाने वालों (मुफ़तरी) का क़स्सास तुम्हारा कर्त्तव्य बताया गया। स्वतन्त्र के बदले स्वतन्त्र, दास के बदले दास, स्त्री के बदले स्त्री, फिर जिसको उसके भाई की ओर से कुछ क्षमा हो जाये तो चाहिये कि रिवाज के अनुसार पीछे लगे और उसकी ओर नेकी से दिया जाये। यह तुम्हारे ईश्वर की ओर से आसानी और उदारता है। (सु० २, आ० १७७)। और हे बुद्धिमानो! क़स्सास में तुम्हारे लिये जीवन है। (सु० २, आ० ७६)। सो जो तुम पर ज्याती करे, तुम उस पर ज्यादती करो जैसे उसने तुम पर ज्यादती की। (सु० २, आ० १६३)

लूट के माल का विभाजन—क़ुरान ने लूट के माल का विभाजन करने के लिये इस प्रकार आज्ञा दी है—तू कह! लूट का माल ईश्वर का और रसूल का है। (सु० ८, आ० १) और जान लो कि जो लूट का माल लाओ, उसका पाँचवा भाग ईश्वर और रसूल और उसके सम्बन्धियों तथा अनाथों और मौहताजों और यात्रियों के लिये है। (सु० ८, आ० ४०) बस जो लूट तुम लाए हो, हलाल पाक (पवित्र) है तुम खाओ और ईश्वर से डरो। ईश्वर क्षमा करने वाला दयालु है। (सु० ८, आ० ६८)। जो स्त्रियां तुम्हारे कब्जे में आ जाये उनसे निकाह कर सकते हो। (सु० ४, आ० २३)

मुसलमान का मुसलमान के साथ सलूक—और किसी मुसलमान को उचित नहीं कि वह किसी मुसलमान का वध करे। (सु० ४, आ० ६१)। और जो मुसलमान का जान बूझ कर वध करे,

उसका बदला नरक है। उसमें वह सदा रहेगा और हत्यारे (क़ातिल) पर ईश्वर का कोप और उसकी लानत है। और ईश्वर ने उसके लिये बड़ा कष्ट तैयार किया है। (सु०, ४, आ० ६२)

मुसलमान स्त्रियों का पद—तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारा खेत हैं। सो तुम अपने खेत में जैसे (जब) चाहे जाओ। (सु० २, आ० २२२) और पुरुषों का स्त्रियों के ऊपर पद है (सु० २, आ० २२८) पुरुष स्त्रियों पर अधिकारी है इसलिये कि ईश्वर ने एक को एक के ऊपर उच्चता प्रदान की है। और इसलिये भी कि वह अपने माल में से खर्च करते हैं। (सु० ४, आ० ३३)

विवाह या निकाह— यहूदियों के समय में मँगनी का यह रिवाज प्रचलित था कि या तो वह लिखित रूप में होती थी या कुछ साक्षियों के सामने वचन-बद्ध हो जाया करते थे मंगनी हो जाने के पश्चात स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पास आ जा सकते थे। किन्तु विवाह से पहले जो सन्तान उत्पन्न हो जाती थी वह अनुचित समझी जाती थी। कहा जाता है कि ह० ईसा का जन्म युसुफ की मरियम के साथ मंगनी हो जाने के बाद और विवाह होने से पहले ही हो गया था। इसलाम ने भी निकाह का वही रिवाज जारी रक्खा। क़ुरान ने विवाह के विषय में इस प्रकार आज्ञा दी है—और यदि तुम्हे डर है कि अनाथ लड़कियों में न्याय न कर सकोगे तो उनके अतिरिक्त स्त्रियों में से जो तुम्हें पसन्द आएं दो-दो, तीन-तीन, चार-चार निकाह में लाओ। और यदि यह डर हो कि बराबरी न कर सकोगे तो एक ही निकाह में लाओ। या जो वह तुम्हारे हाथों का माल हुआ (अर्थात् बांदियाँ) (सु० ४, आ० २) और उन स्त्रियों से निकाह न करो जिनसे तुम्हारे पिता निकाह कर चुके हो। किन्तु जो हो गया सो हो गया। (सु० ४, आ० २१)

तुम्हारे ऊपर हराम की गई तुम्हारी माएं और बेटियां और बहनें और फूफियां और खालाएं और भतिजियां और भानजियां और तुम्हारी माएं जिन्होंने तुम्हे दूध पिलाया और तुम्हारी बहनें और सासें और तुम्हारी औरतों की बेटिया जिनकी तुम पालना करते हो, तुम्हारी

उन औरतों से जिनके साथ तुम सम्भोग कर चुके हो। किन्तु यदि तुमने उनके साथ सम्भोग न किया हो, तो तुम पर कुछ पाप नहीं और तुम्हारे मुंह बोले बेटों (सलबी-मुतवन्ने) की स्त्रियां और यह कि दो बहनों को इकट्ठा करो, किन्तु जो आगे हो चुका, वह हो चुका। निसंदेह ईश्वर क्षमा करने वाला दयालु है। (सु० ४, आ० २२) और शौहर वाली (पति वाली) स्त्रियों को निकाह में लाना भी हराम है, किन्तु जो तुम्हारे अधिकार में आ जायें (अर्थात् जो किसी तरह से हाथ लग जायें) यह ईश्वर ने तुम पर लिख दिया है और उनके अतिरिक्त सब स्त्रियां निकाह करने को तुम्हें हलाल है। (सु० ४७ आ० २३) और जो तुममें से मुसलमान स्वतन्त्र स्त्रियों के साथ निकाह करने में समर्थ न हो वह तुम्हारी मुसलमान बांदियों के साथ, जो तुम्हारे अधिकार में हों निकाह करले। सो बांदियों से निकाह उनके स्वामियों की आज्ञा से करो। (सु० ४, आ० २४) और मुसलमान शुद्ध स्त्रियां और किताब वालों की (यहूदी, ईसाई और दाऊदी) स्त्रियां भी तुम्हें हलाल हैं। और मुशरिका (मूर्त्ति-पूजक इत्यादि) स्त्रियों को निकाह में न लाओ। जब तक वह ईमान न लाएं (मुसलमान न हो जायें) और अलबत्ता मुशरिका बीबी से मुसलमान बॉदी अधिक अच्छी है, अगरचे वह तुम्हें अच्छी मालूम हो। और मुशरिक पुरुषों से विवाह न करो, जब तक ईमान न लाएं और अगरचे मुसलमान दास मुशरिक से अधिक अच्छा है, अगरचे वह तुम्हें अच्छा मालूम हो। (सु० २, आ० २२०)

बलात्कार—(जिना) ईश्वर ने कुरान में बलात्कार के विषय में यह आज्ञा दी है—और किन्तु जो अपनी गुप्तेन्द्रियों (शर्मगाहों) को सुरक्षित रखते हैं किन्तु अपनी स्त्रियों या अपने हाथ के माल (बांदियों) से कि उसमें उन पर दोष नहीं। फिर जो कोई इसके अतिरिक्त ढूंढे तो वही लोग सीमा से बढ़ने वाले हैं। (सु० ७० आ० २८, २९) और अपनी बांदियों पर यदि वह बचना चाहे ज़िना (बलात्कार) न करो ताकि इस विधि से संसार के जीवन का असबाब कमाया चाहो। और जो कोई उनसे बलात्कार करेगा तो उनकी बेबसी पीछे (उनकी) ईश्वर क्षमा करने वाला दयालु है। (सु० २४, आ० ३२ और सु० ३३, आ० ४९)

मुतआ—मुतआ उसे कहते हैं कि कोई पुरुष एक स्त्री से कुछ समय के लिये, चाहे एक रात के लिये कुछ दाम या माल उजरत (भाड़े) के रूप में तय करके फिर उससे उस समय तक निकाह करके सम्भोग करे। यह रिवाज इसलाम से पहले से प्रचलित था। मुतआ की पुष्टि कुरान की इस आयत से की जाती है—

ईश्वर चाहता है कि तुम्हें बयान सुनाए और अगलों के मार्गों पर तुम्हें चलाए और तुम्हें क्षमा करे और ईश्वर जानने वाला चतुर है। और ईश्वर तुम पर ध्यान देना चाहता है। और जो लोग अपने राग-रंग के पीछे पड़े हैं कि तुम झुक जाओ मार्ग से बहुत दूर। ईश्वर तुम्हारा बोझ हलका करना चाहता है और मनुष्य दुर्बल पैदा किया गया है। मोमिनो! आपस में एक दूसरे का माल अनुचित रूप से मत खाओ। किन्तु आपस की मर्जी से सौदा हो तो कोई बुरा नहीं। निसंदेह ईश्वर तुम पर दयालु है (सु० ४, आ० २७-२८)

हलाला—हलाले का अर्थ यह है कि जब कोई पुरुष अपनी स्त्री को तलाक दे चुके तो उसके पश्चात् वह स्त्री उस पुरुष के लिये हलाल नहीं है। जब तक कि वह स्त्री किसी दूसरे पुरुष से विवाह करके सम्भोग न करले और वह दूसरा पुरुष उस स्त्री को तलाक़ न दे दे। उस पुरुष के तलाक़ दिये जाने और सम्भोग कर लेने के पश्चात् वह स्त्री हलाल समझी जायेगी। अत ईश्वर ने क़ुरान में यह कहा है—फिर यदि (दूसरी तलाक के बाद भी) वह उसे तलाक़ दे चुके तो इसके पश्चात वह स्त्री उस पुरुष के लिये हलाल नहीं है जब तक उसके अतिरिक्त किसी दूसरे पुरुष से निकाह न करले। फिर यदि वह भी तलाक़ दे डाले तो उनका फिर मिल जाना पाप नहीं है (सु० २, आ० २३१)

तलाक—इस्लाम से पहले यहूदियों और ईसाइयों में तलाक़ की प्रथा प्रचलित थी। एक यहूदी जितनी औरतों से चाहे जब विवाह कर सकता था और जब चाहे घर से किसी स्त्री को तलाक़ देकर निकाल सकता था। तौरेत ने स्त्रियों के साथ विवाह करने की संख्या और तलाक़ देकर सामान इत्यादि देने के विषय में कोई प्रकाश नहीं डाला।

इसके पश्चात् यहूदियों में एक समय चार स्त्रियाँ रखने का नियम बन गया था। ह० ईसा ने एक पुरुष के लिये एक स्त्री की ही व्यवस्था की थी और तलाक देना भी विशेष कारणों से ही उचित ठहराया था। इसलाम ने वही यहूदियों वाली एक समय में चार स्त्रियों की सख्या को क़ायम रक्खा, किन्तु तलाक देने और स्त्री को घर से खाली हाथ निकालने में कुछ संशोधन किया। अतः कुरान में आया है—

तलाक दो बार है, फिर विशेपता (खूबी) से रोक लेना है। या नेकी से विदा करना और तुम्हें हलाल नहीं कि अपने दिये हूए में से कुछ उनसे वापस लो। (सु० २, आ० २२८)

यदि तुमने स्त्रियों को उनके साथ सम्भोग होने से पहले तलाक़ दे दी या उनका मेहर नियत नहीं किया और तलाक़ दे दी तो तुम पर कुछ पाप नहीं (मेहर की रक़म देना आवश्यक नहीं) और यदि सम्भोग होने से पहले उनको तलाक़ दो और उनका मेहर तुम नियत कर चुके हो तो जो तुमने नियत किया है उसका आधा देना चाहिये। (सु० २, आ० २३५, २३६) और जब तुम स्त्रियों को तलाक़ दो, फिर वह अपनी इद्दत (चार महीने दस दिन रुकना) को पहुंचे तो उनको अपने पतियों से निकाह करने को न रोको, जबकि वह पहले की भांति आपस में राज़ी हो जायें। (सु० २, आ० ३१) तलाक़ के विषय में देखो सु० ६५।

पुनर्विवाह—अरब में कुरान से पहले पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित थी। क़ुरान ने भी इस प्रथा को क़ायम रक्खा। पुनर्विवाह के विषय में क़ुरान ने यह आज्ञा दी है—

और जो लोग तुममें से स्त्रियाँ छोड़ कर मर जाते हैं, तो वह स्त्रियाँ चार महीने दस दिन तक अपने आपको रोके, फिर जब वह अपनी इद्दत (चार महीने दस दिन) को पूरा करले तो तुम पर कुछ पाप नहीं ' इशारे से स्त्रियों को निकाह का संदेश दो (सु० २, आ० २२३) और अपनी विधवाओं का निकाह कर। (सु० २४, आ० ३१)

तोबा—मुसलमान तोबा का अर्थ यह बतलाते हैं कि पापी अपने पाप पर लज्जित होकर ईश्वर के समक्ष रोकर तथा गिड़गिड़ा कर

यह कहे कि ईश्वर मेरे पाप क्षमा करदे और हृदय में यह निश्चय करले कि भविष्य में कोई पाप न करूंगा तो ईश्वर पाप क्षमा कर देता है। ऐसा भी कहा जाता है कि ईश्वर स्वयं या ह० मुहम्मद की सिफारिश से अपराधी मुसलमानों के पापों को क्षमा करके, बिना दंड दिये उन्हें जन्नत में भेजदे। किन्तु यह याद रहे कि काफिर के पापों की क्षमा किसी दशा में भी नहीं होगी और शेष सबके पाप क्षमा हो सकते हैं। क़ुरान में तोबा करने और पापों के क्षमा हो जाने के विषय में बार बार वर्णन आया है। हमने स्थानाभाव के कारण उन्हें लिखने में संकोच किया है।

स्नान और तैम्मुम— क़ुरान में प्रतिदिन स्नान करने के विषय में तो कोई आज्ञा दिखाई नहीं पडती, किन्तु स्नान और तैम्मुम के बारे में जो क़ुरान ने आदेश दिया है, वह इस प्रकार है— मुसलमानों! जब तुम नमाज़ पढ़ने खडे हो तो अपना मुंह और हाथ कोहनियां तक धो लिया करो और अपने सिरों पर मसहा (भीगा हाथ फेरना) कर लिया करो और अपने पैरों को टकनों तक धो लिया करो और यदि अपवित्र हो तो स्नान कर लिया करो और जो बीमार हो या मुसाफिर या कोई तुममें से शौच से आए या तुममे स्त्रियों को छूआ और पानी न मिले तो पवित्र मिट्टी से तैम्मुम करो। उस मिट्टी से अपने मुंह और हाथ मल लिया करो। ईश्वर तुम पर कठिनाइयां नहीं डालना चाहता। (सु० ५, आ० ४)

पाकी (पवित्रता) और नापाकी (अपवित्रता)—यदि शरीर और कपड़े पवित्र हैं तो स्नान करना आवश्यक नहीं है। अपवित्रता दो प्रकार की होती है—एक ग़लीज़ा, दूसरी ख़फ़ीफ़ा।

ग़लीज़ा—मनुष्य का पेशाब टट्टी, हराम जानवरों का पेशाब-टट्टी रक्त और शराब इत्यादि ग़लीज़ा नापाकी कहलाती है।

ख़फ़ीफ़ा—हलाल जानवरों का पेशाब और बीट इत्यादि ख़फ़ीफ़ा नापाकी कहलाती है।

ऐसा भी लिखा हुआ मिलता है कि यदि ग़लीज़ा नापाकी गाढ़ी है, जैसे टट्टी इत्यादि तो ३½ मासे तक माफ़ है और यदि पतली है,

जैसे शराब या पेशाब इत्यादि तो चांदी के एक रुपये के फैलाव के बराबर माफ़ है। माफ़ का अर्थ यह है कि यदि इतनी नापाकी बदन या कपड़े पर लगी हुई हो तो वह नापाकी में नहीं गिनी जायेगी, वरन नमाज पढ़ सकते हो। खफीफ़ा नापाकी चौथाई कपडे या चौथाई अंग से कम हो तो माफ़ है। दूसरी तरह की नापाकियों से तो शरीर कुल्ली (वजू) कर लेने से ही पाक् हो जाता है। (देखो-तालीमुलइस्लाम, भाग २, पृष्ठ २१-२२)

हलाल और हराम पशु-पक्षी—क़ुरान में मुसलमानों के लिये सूअर, रक्त, मुर्दार और बिना गला काटे पशु (गैर मजबूह) को खाने के लिये बार-बार मना किया है। किन्तु लाचारी या भूख की दशा में उन मना की हुई वस्तुओं में से खा लेना बुरा नहीं बतलाया। अतः क़ुरान में आया भी है—मोमिनो! पवित्र वस्तुओं में जो हमने तुम्हें दी हैं, खाओ और ईश्वर का धन्यवाद करो, यदि तुम उसके बन्दे (सेवक) हो। अतिरिक्त इसके नहीं कि मुर्दार और लहु और सूअर का मांस और जो ईश्वर का नाम लेकर मारा न गया हो, तुम पर हराम है। किन्तु जो व्यक्ति ऐसी दशा में कि विद्रोही (बागी) और अवज्ञा करने वाला (नाफर्मान) न हो, लाचार हो जाये, उस पर उनका खाना कोई पाप नहीं। नि.सन्देह ईश्वर क्षमा करने वाला दयालु है। (सु० २, आ० १७१-१७२) तू कह, जो वही (वाणी) मुझ पर उतरी हुई है, उसमें किसी खाने वाले पर कोई वस्तु कि वह उसे खाए, हराम नहीं पाता, किन्तु वह वस्तु मुर्दार हो या बहता हुआ रक्त या सूअर का मास क्योंकि वह नापाक है। या कोई पाप की चीज़ हो कि मारने के समय ईश्वर के अतिरिक्त किसी और का नाम उस पर पुकारा जाये। फिर जो कोई लाचार हुआ और वह विद्रोही और आवश्यकता से अधिक खाने वाला न हो, (और वह खाले) तो तेरा ईश्वर क्षमा करने वाला दयालु है। (सु० ६, आ० १४४)

तौरेत ने भी इन्हीं चारों वस्तुओं को हराम बतलाया है। इस्लाम में यह विचार वहीं से आया हुआ मालूम होता है। क़ुरान में ऊपर लिखे विवरण के अतिरिक्त और कोई हलाल और हराम खाने का विवरण नहीं है। किन्तु यह कहा गया है—लोगो! जो कुछ पृथ्वी पर

हलाल और सुथरा है उसे खाओ। (सु० २, आ० १६७) मुसलमान विद्वानों ने पशु-पक्षियों को तीन श्रेणियों में बाँटा है—(१) हलाल (उचित) (२) हराम (अनुचित) (३) मकरूह (अपवित्र)।

किन्तु उनकी इन श्रेणियों के विभाजन में अधिक मतभेद पाया जाता है। यदि एक विद्वान ने किसी पशु को हलाल कहा है तो दूसरे ने उसे हराम कह दिया है और तीसरे ने उसे ही मकरूह (अपवित्र) बतला दिया है। तौरेत में जैसा पूर्ण विवरण हलाल और हराम पशुओं का दिया गया है—वैसा विवरण .कुरान ने स्पष्ट नहीं किया। ऐसा ज्ञात होता है कि मुसलमान उन बलिष्ट, हिंसक और विषधारी पशुओं और कीड़े-मकोड़ों को हराम और सुथरे, कमजोर तथा आधीन पशु-पक्षियों को खाना हलाल समझते हैं।

सूद—.कुरान ने मुसलमानों के लिये सूद का लेना मना किया है और सूद लेने वाले का ठिकाना नरक बतलाया है। यहूदियों ने यहूदियों से सूद लेना मना किया था, अन्य से नहीं।

उत्तराधिकार—.कुरान ने बेटों के साथ बेटियों को भी उत्तराधिकार का भाग देने की आज्ञा दी है। तौरेत ने भी यह आज्ञा दे रक्खी है।

बनिस्राइल जाति—बनिस्राइल जाति अरब देश की एक बहुत पुरानी जाति है। इसके विषय में हम यहूदी मत में काफी लिख आए हैं। इसी जाति में सब रसूल और पैग़म्बर उत्पन्न होने बतलाए जाते हैं। तौरेत, जबूर, इन्जील और कुरान में जिन नबी, रसूलों और पैगम्बरों के नाम और काम आए हैं, वह सब इसी बनिस्राइल जाति मे उत्पन्न हुए थे। जैसे तौरेत, जबूर और इन्जील ने इस जाति की प्रशंसा की है वैसी ही .कुरान ने भी करदी है। अतः .कुरान की कुछ आयते यह हैं—

हमने बनिस्राइल को पुस्तक और हिकमत (कौशल) और नबुअत दी और अच्छी वस्तुएं खाने को दीं और समस्त ससार पर उनकी प्रधानता प्रतिष्ठित की। '(सु० ४५, आ० १५) हमने जान-बूझ कर बनिस्राइल को सारे संसार के लोगों से पसन्द किया। (सु० ४४,

आ० ३१-३२) हे बनिसाइल! मेरे उस उपकार को याद करो जो मैंने तुम पर किया और यह कि सारे जहान के लोगों पर प्रधानता प्रतिष्ठित की। (सु० २, आ० ३६, ४६ और १२१)

मुक्ति के साधन

इसलाम ने मुक्ति के यह साधन बतलाए हैं—

जहाद में सम्मिलित होना, नमाज़ पढ़ना, रमजान के महीने में रोजे रखना, हज करना, पशु पक्षियों की बलि देना, ईश्वर की उपासना करना, भली बातों का आदेश देना और उन पर स्वयं चलना, माननीय व्यक्तियों का सम्मान करना, मस्जिद बनाना, अपने मत को पढ़ना और पढ़ाना, मत के पढ़ने वाले विद्यार्थियों की सहायता करना, निर्धनों, अनाथों और क्षुधा-पीड़ितों को भोजन खिलाना, ईश्वर, फरिश्तों, किताबों, रसूलों, कयामत, मुर्दों के ज़िन्दा होने और हिसाब के दिन पर ईमान लाना।

सदाचारी जीवन (Moral Life)

क़ुरान ने सदाचारी जीवन की जो व्याख्या की है, उसी प्रकार की व्याख्या उससे पहली पुस्तकों तौरेत, ज़बूर और इन्जील में भी की जा चुकी थी। उन पहली पुस्तकों से अधिक क़ुरान ने सदाचारी जीवन के विषय में जहाँ तक हमने देखा है, कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला। अत. क़ुरान ने सदाचारी जीवन के विषय में जो कुछ आज्ञा दी है वह इस प्रकार है—

ईश्वर के साथ किसी को शरीक न करो, माता-पिता से नेकी करो, ग़रीबी के डर से सन्तान को न मारो, बलात्कार और निर्लज्जता के निकट न जाओ। जिस प्राणी का ईश्वर ने वध करना हराम किया है, उसका वध न करो, किन्तु अधिकार पर, अनाथों के माल के निकट न जाओ। न्याय के साथ नाप और तोल पूरी करो। जब बोलो न्याय से बोलो, ईश्वर का वचन पूरा करो, मेरे मार्ग पर चलो, जिस बात का तुम्हे ज्ञान नहीं, उसके पीछे न हो, पृथ्वी पर इतराता हुआ न चल। (सु० १७, आ० ३०-३६)

ईश्वरीय पुस्तक (क़ुरान)

कुरान के विषय में मुसलमानों का ऐसा विश्वास है—

(१) कुरान ईश्वर की पुस्तक है।

(२) कुरान मनुष्य मात्र के लिये उतारा गया था। इसी लिये वह विश्व विस्तृत Universal पुस्तक है।

(३) कुरान विचार वद्धता और प्रवन्ध (फसाहत और बलागत) के विचार से एक चमत्कार या मोजजा है। इसके समान संसार की और कोई पुस्तक नहीं है।

(४) कुरान का एक एक शब्द सुरक्षित है। इसमें कभी कोई कमी-बेशी नहीं हुई और न हो सकती है। क्योंकि ईश्वर ने इसकी रक्षा का वचन दे रक्खा है।

(५) क़ुरान में ईश्वर ने अन्तिम विधान और नियम लिखे हैं। उससे पहले का विधान और नियम रद्द हो चुके हैं।

(६) ईश्वर ने अपनी पहली पुस्तकें एक एक ही बार उतार दी थीं, किन्तु कुरान लोगों की आवश्यकता को सामने रखते हुए थोड़ा-थोड़ा २३ वर्षों में उतारा था। इसका परिणाम यह हुआ कि वह लोगों के हृदयों में घर करता चला गया।

(७) कुरान में समस्त विद्याओं और गहरे विषयों का पूरा वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है।

(८) बनिस्राइल जाति में जो वैरभाव और मत-भेद चल रहा था, उसको मिटाने और सबको भाई-भाई बनाने के लिये कुरान उतारा गया था।

(९) संसार में ईश्वर की सत्ता को भूल कर लोग बुरी बातों मे पड़ गये थे। कुरान ने एकात्मकता (तौहीद) का प्रचार करके लोगो को सीधे मार्ग पर लगाया।

(१०) लोगों के हृदयों से पहले नबियों के जीवन-चरित्रों की याद फीकी पड़ गई थी, उन्हें ताज़ा कराने के लिये क़ुरान उतारा गया था।

पाठकों के विचार के लिये हमने क़ुरान से ही इन प्रश्नों पर कुछ प्रकाश डालने का यत्न किया है–

(१) क्या क़ुरान ईश्वर की पुस्तक है ?—निसंदेह क़ुरान में यह आया है कि यह पुस्तक ईश्वर की उतारी हुई है। यदि यह पुस्तक ईश्वर की उतारी हुई न होती तो अवश्य इसमें बहुत सा मत-भेद होता। क़ुरान कहता है–और यदि वह (क़ुरान) ईश्वर के अतिरिक्त किसी और का होता तो इसमें (क़ुरान) अवश्य बहुत सा मत-भेद पाते। (सु० ४, आ० ८१)

जब अरब के लोग क़ुरान की इस आयत से भी सन्तुष्ट न हुए कि यह ईश्वरीय पुस्तक है तो उन्हें क़ुरान ने इस प्रकार चेलेन्ज (चुनौती) दिया—और जो कलाम हमने अपने बंदे (मुहम्मद) पर उतारा है, यदि तुम्हें इसमें कुछ संदेह हो तो इस प्रकार की एक सूरत (छन्द) ले आवो और ईश्वर के सिवाय अपने साक्षियों को बुलाओ यदि तुम सच्चे हो। (सु० २ आ० २२) क्या वह कहते हैं कि मुहम्मद ने यह झूठ बनाया, तू कह, तुम इस जैसी एक सूरत (छन्द) ले आवो और ईश्वर के अतिरिक्त तुम बुला सकते हो, बुलाओ, यदि सच्चे हो। (सु० १०, आ० ३७) क्या कहते हैं कि उसने (मुहम्मद ने) यह झूठ बांधा है। तू कह कि ऐसी झूठ बांधी हुई तुम दस ही आयतें ले आवो। और ईश्वर के सिवाय जिसे पुकार सकते हो पुकारो, यदि सच्चे हो। (सु० ११ आ० १२) तू कह, यदि तुम सच्चे हो तो तुम ईश्वर की तरफ से कोई ऐसी किताब लाओ जो हिदायत में इन दोनों (क़ुरान और तौरेत) से बढ़ी हुई हो। मैं उस पर चलने लगूंगा। (सु० २८, आ० ४८)

जब अरब के लोग इस प्रकार भी सन्तुष्ट न हुए तो फिर सौगन्ध खा-खा कर उन्हें विश्वास दिलाना चाहा और यह निश्चय कराना चाहा कि अवश्य यह क़ुरान हमारा उतारा हुआ है। अतः क़ुरान में यह आया है–

सौगन्ध है इस क़ुरान नसीहत करने वाले की, कि निःसन्देह यह हमारा उतारा हुआ है। (सु० ३८, आ० १) सो आकाश और पृथ्वी

के ईश्वर की सौगन्ध, यह सच्ची वाणी (कलामेहक़) है, जैसा कि तुम बोलते हो। (सु० ५१, आ० २२)

इसी सम्बन्ध में क़ुरान की कुछ नीचे लिखी आयतें भी पढ़ कर मनन करने योग्य हैं—

इसे (क़ुरान को) रूहउलअमीन (जब्राईल) ने उतारा है, तेरे दिल पर ताकि तू डराने वालों में हो जाये, उच्च अरबी भाषा में और निःसन्देह यह क़ुरान पहले पैगम्बरों की पुस्तकों में लिखा है। क्या इन (मक्के वालों) के लिए यह चिन्ह काफी नहीं कि इस क़ुरान को बनिस्राइली विद्वान् जानते हैं। (सु० २६, आ० १६२-१६८) तू कह, जिसे पवित्र फरिश्ते ने तेरे ईश्वर की ओर से सच्चाई के साथ उतारा है ताकि ईमानदारों को साबित रक्खे और मुसलमानों को हिदायत और प्रकाश है। और हमें मालूम है कि वह (मक्के वाले) कहते हैं कि मुहम्मद को एक आदमी सिखाता है (यद्यपि) जिसकी ओर इशारा करते हैं (कि वह व्यक्ति सिखलाता है, उसकी भाषा अजमी है और यह उच्च अरबी भाषा है। (सु० १६, आ० १००-१०२) निःसन्देह यह क़ुरान एक सन्देश-वाहक (पैगाम लाने वाले) सरदार का वचन (कौल) है और यह किसी कवि (शाईर) का वचन नहीं (सु० ६९, आ० ३९-४०)

क़ुरान में ११४ सूरतें हैं। प्रत्येक सूरत के आरम्भ में 'बिसमिल्लाह इलरहमानउल रहीम' लिखा हुआ है। इसका अर्थ यह है कि आरम्भ ईश्वर के नाम से जो बड़ा मेहरबान और दयालु है। यह बात बुद्धिमानों के लिए विचारणीय है कि ईश्वर अपनी पुस्तक (क़ुरान) में अपना नाम स्वयं लेकर आरम्भ करता है या ईश्वर का नाम लेकर क़ुरान को कहने वाला कोई दूसरा व्यक्ति हो सकता है ?

'मुस्लिम हदीस' के हवाले से एक दन्त-कथा (रिवायत) इस प्रकार लिखी है कि एक दिन ह० उमर ह० मुहम्मद के पास बैठे हुए थे। दैवयोग से वहा एक व्यक्ति आया जो सफेद वस्त्र पहने हुए था और जिसके बाल काले थे। ह० मुहम्मद ने उससे कुछ प्रश्नोत्तर किये। फिर वह चला गया। ह० मुहम्मद ने ह० उमर से पूछा—'हे उमर !

तू जानता है, यह कौन व्यक्ति था'। ह० उमर ने कहा—'हजूर ही ज्यादा जानते हैं'। इस पर ह० मुहम्मद ने कहा—'यह जब्राईल था ताकि तुम्हें मजहब की बातें सिखाये'।

(२) क्या कुरान विश्व विस्तृत (Universal) पुस्तक है ?- ईश्वरीय ज्ञान या ईश्वरीय पुस्तक में क्या २ गुण होने आवश्यक हैं, इसके विषय में हम पीछे वैदिक-धर्म में पृष्ठ ५२ पर लिख आये हैं। क़ुरान में ऐसी आयतें अवश्य मौजूद हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि क़ुरान समस्त संसार के लिए नसीहत है। किन्तु इसके साथ ही क़ुरान की कुछ आयतों से ऐसा भी प्रकट होता है कि ह० मुहम्मद केवल अपनी जाति-क़ुरैश के लिए रसूल बन कर आये थे और क़ुरान केवल मक्के वालों को डराने के लिए उतारा गया था। उनमें से कुछ पुरानी आयतें यह हैं—

और जिस दिन हम हर उम्मत में उन्हीं में का एक गवाह उन पर खड़ा करेंगे। और तुझे (ऐ मुहम्मद) उन (मक्के वालों) पर गवाह लायेंगे। (सु० १६, आ० ८८) और हमने जो रसूल भेजा, वह अपनी ही जाति की बोली बोलता था, ताकि उनके आगे खोल सके। (सु० १४, आ० ३) और हर उम्मत के लिए एक रसूल है। फिर जब उनका रसूल आता है तो न्याय के साथ उनके बीच निर्णय होता है और उन पर अत्याचार नहीं होता। (सु० १०, आ० ४६) हर उम्मत अपनी पुस्तक की तरफ़ बुलाई जायेगी। (सु० ४५, आ० २७) और यह (वही-वाणी) तेरे और तेरी जाति के लिए एक नसीहत है। (सु० ४३, आ० ४४) इस प्रकार हमने तुझे एक उम्मत (मक्के वाले) में भेज दिया है ताकि तू उन्हें वह सुनाये जो तेरी ओर हमने वही (वाणी) की है। और मक्के वाले ईश्वर को नहीं मानते। (सु० १३, आ० २९) क़ुरान उतारा ताकि तू उस कौम (अरब) को डराये। जिनके बाप-दादा नहीं डराये गये। बस वह लापरवाह हैं। (सु० ३६, आ० ५) हमने तुम्हारी तरफ़ (ऐ क़ुरैश) पुस्तक उतारी है। उसमें तुम्हारा वर्णन है (अर्थात् नसीहत)। क्या तुमको बुद्धि नहीं ? (सु० २१, आ० ९)। और यह (क़ुरान) किताब है जो हमने उतारी है। पहली पुस्तकों की पुष्टि करने वाली है और इसलिये उतारी है कि तू इससे

मक्का शहर और उसके आस-पास वालों को डराए। और हमने मक्के वालों को पुस्तक पहुंचाई है जिसके ज्ञान का हमने व्याख्या सहित वर्णन किया है। (सु० ७, आ० ५१) और इसी प्रकार हमने तुझ पर अरबी भाषा में क़ुरान उतारा है, ताकि तू बड़ी बस्ती (मक्का) और उसके आस-पास वालों को डराए। (सु० ४२, आ० ६)

स्पष्ट पुस्तक की सौगन्ध, हमने उसे अरबी .क़ुरान पढ़ाया ताकि तुम मक्के वाले समझो। (सु० ४३, आ० १-२) हमने इस .क़ुरान को अरबी भाषा में उतारा है। सम्भव है तुम समझो। (सु० १२, आ० २)

क़ु.रान की नीचे लिखी कुछ आयतों से ऐसा ज्ञात होता है कि क़ु.रान मनुष्य मात्र के लिये नहीं उतारा गया—

निःसंदेह जो लोग नास्तिक (मुनकिर) हुए, उनके लिये बराबर है, तू उनको डराये या न डराये, वह न मानेंगे। ईश्वर ने मौहर करदी है, उनके हृदयों पर और उनके कानों पर और उनकी आंखों पर पर्दा पड़ा है और उनके लिये बड़ा कष्ट है। (सु० २, आ० ५-७) और लोगो, तुममें से हर किसी को हमने एक विधान (शरय्यत) और एक राह दी है और यदि ईश्वर चाहता तो तुम सबको एक ही दीन पर कर देता। किन्तु वह तुम्हे अपने दिये हुये में आजमाता है। (सु० ५, आ० ४७) निःसन्देह ईश्वर काफ़िर जाति को हिदायत नहीं करता। और उनमें से कुछ हैं कि तेरी ओर (.क़ुरान) सुनने को कान लगाते हैं और हमने उनके हृदयों पर पर्दे डाल रक्खे हैं कि न समझें और उनके कानों में बोझ रख दिया। (सु० ६, आ० २४) और यदि तेरा ईश्वर चाहता तो सब लोग जो पृथ्वी पर हैं इकट्ठे ईमान ले आते। बस क्या तू मनुष्यो पर जब्र करता है कि वह मोमिन (मुसलमान) हो जाये। और किसी से हो नहीं सकता कि बिना ईश्वर की मर्जी के ईमान लाये (सु० १०, आ० ६८-६६) यह (काफिर) वही हैं जिनके हृदयों, कानों और आँखों पर ईश्वर ने मौहर लगाई। (सु० १६, आ० १०७)

(३) क्या कुरान विचार बद्धता और प्रबन्ध (फसाहत और बलागत) के विचार से एक मोजज़ा (चमत्कार) है?—

बहुधा मुसलमान विद्वान् तो यही कहते हैं कि कुरान जैसी

इबारत (शब्द योजना) कोई नहीं बना सकता, किन्तु क़ुरान ने स्वयं इससे इन्कार किया है। अतः क़ुरान में एक स्थान पर यह आया है—कि हे मुहम्मद! तेरे ऊपर मैंने (.क़ुरान) कठोर और कड़ी (सक़ील) भेजा है। सब जानते हैं कि कड़ी और कठोर वाणी बहुत उच्च नहीं होती। इसके अतिरिक्त किसी पुस्तक की उच्चता को जाँचने के लिये अधिकतर शब्द-योजना पर ही ध्यान नहीं दिया जाता वरन् उसके विषय और भावों को भी देखा जाता है। .क़ुरान में कोई भी विषय क्रम से वर्णन नहीं किया गया, वरन् एक बात को बार-बार दोहराया गया है। इस बात को .क़ुरान ने भी सु० ७, आ० ५३ में इस प्रकार माना है—और हमने इस .क़ुरान में मनुष्यों के लिये हर एक कहावत का भाँति-भाँति से वर्णन किया है। सभी विद्वान् जानते हैं कि एक बात को एक पुस्तक में बार-बार वर्णन करने से पुस्तक की सुन्दरता में कमी आ जाती है। .क़ुरान की कुछ आयतें तो ऐसी प्रतीत होती हैं कि मानों ईश्वर की ओर से हैं और कुछ आयतें ऐसी दिखाई पड़ती हैं कि मानों कोई मनुष्य कह रहा है।

कुछ इस्लामी पुस्तकों में ऐसा लिखा हुआ भी मिलता है कि उस समय में कुछ लोगों ने क़ुरान जैसी आयतें बनाई थीं, किन्तु उन लोगों को काफ़िर और मलेच्छ आदि नामों से पुकारा जाकर वध करा दिया गया था। ह० मुसलिमा ने मोहम्मद साहब के समान ही उस समय में नबी होने का दावा किया था और 'फारूक' नामक धार्मिक पुस्तक बनाई थी। कहते हैं कि वह पुस्तक विषय और प्रबन्ध की दृष्टि से बहुत उच्चकोटि की थी, किन्तु ह० मुसिलिमा की भी हत्या करादी गई थी। उन्हीं दिनों एक स्त्री ने भी नबी होने का दावा करके कुछ पुस्तकें लिखीं थीं जो बहुत उच्चकोटि की कही जाती थीं। भारतवर्ष में फैजी ने बिना नुक़्ते के ही .क़ुरान लिख दिया था।

ऐसा देखने और पढ़ने में आता है कि प्रत्येक देश में प्रत्येक भाषा का कोई न कोई ऐसा लेखक और कवि अवश्य हुआ है कि जिसकी कोई तुलना नहीं कर सकता। जैसे यूनानी भाषा में हाूम, संस्कृत भाषा में ऋषि वाल्मीक और कालीदास, फारसी में सुहबान, ब्रज भाषा में सूरदास और देव-बिहारी, अवधी में तुलसीदास, मैथिल

में विद्यापति और बंगला में टैगोर, पंजाबी में वारिस शाह, पेशावरी में सालेहमुहम्मद, ग्रीक और रोमन में होमर और वर्जिल, जर्मनी में गेटे, इटैलियन में डान्टे, अंग्रेजी मे चौसर, स्पेंसर, शैक्सपीयर मिल्टन, वर्डस्वर्थ, कीट्स और शैली आदि।

सर सय्यद अहमद खाँ ने लिखा है कि यदि किसी पुस्तक के समान कोई दूसरी पुस्तक न बनाई जा सके तो यह तर्क (दलील) उस पुस्तक के लिये ईश्वर की ओर से होने का नहीं हो सकता। संसार में बहुत सी ऐसी पुस्तकें हैं कि उन जैसी कोई नहीं बना सका, अतः वह पुस्तकें विचार बद्धता और प्रबन्ध की दृष्टि से चमत्कार नहीं कहला सकतीं।

(४) क्या कुरान का एक एक शब्द सुरक्षित है, इसमें कभी कोई कमी-बेशी नहीं हुई और न हो सकती है? क्या ईश्वर ने इसकी रक्षा का वचन दे रक्खा है?—

क़ुरान में ऐसा तो अवश्य लिखा है कि यह क़ुरान हमने आप उतारा है और हम इसके सरक्षक हैं। किन्तु कुछ प्रश्न यह उत्पन्न होजाते हैं—ईश्वर ने अपनी पहली पुस्तकों की रक्षा का कोई प्रबन्ध क्यों नहीं किया था और क़ुरान के साथ ही यह विशेषता क्यों रक्खी गई? ईश्वर अपनी पहली पुस्तकों में युगों तक लोगों को अदल-बदल और मिलावट करते हुए देखता रहे, किन्तु उनकी रक्षा की कोई चेष्टा न करे? ईश्वर ने उन चालाक और स्वार्थी लोगों को इतना अवसर क्यों दिया कि वह ईश्वर की पुस्तकों में कमी-बेशी और मिलावट कर करके दीन को खराब करते रहें? क्या किसी मनुष्य की यह शक्ति और योग्यता हो सकती है कि वह ईश्वर की पुस्तकों में किसी प्रकार की कमी-बेशी और मिलावट कर सके? क्या ईश्वर को अपने विधान को कभी रद्द करने या उसमें कमी-बेशी करने की आवश्यकता पड़ सकती है? क्या ईश्वरीय विधान अटल है या उसमें मनुष्य द्वारा बनाए गए विधान की भाँति कमी-बेशी करने की आवश्यकता पड़ा करती है? यह ऐसे प्रश्न हैं, कि जिन पर विद्वानों को विचार करके सन्तुष्ट होना आवश्यक है।

क़ुरान में कुछ ऐसी आयतें दिखाई पड़ती हैं जिनसे कुछ

कुरानी आयतों के रद्द होने की स्वीकृति पाई जाती है। अतः लिखा है—ईश्वर जो चाहे उसमें मिटा दे और जो चाहे रक्खे और उसके पास असिल पुस्तक है। (यानि लोहे महफ़ूज) (सु० १३, आ० ३८)

जो कोई आयत हम रद्द (मन्सूख) करते हैं या भुला देते हैं तो उससे अच्छी या उसी जैसी और आयत पहुंचा देते हैं। (सु० २, आ० १०५)

अब (हे मुसलमानो!) क्या तुम आशा रखते हो कि वह यहूदी तुम्हारी बात मानेंगे और उनमें एक फिरका था कि ईश्वर की वाणी (कलाम) सुनते थे, फिर उसको बदल डालते थे, समझने के पश्चात्, और वह जानते थे। (सु० २, आ० ७५) और जब हम एक आयत के स्थान पर दूसरी आयत बदलते हैं और ईश्वर खूब जानता है, जो उतार रहा है तो वह कहते हैं कि तू तो बनावट बनाने वाला (मुफ़्तरी) है। (सु० १६, आ० १००)

जहाँ तक देखा गया है मुसलमान विद्वानों में कु़रान की कुछ सूरतों, शब्दों और आयतों की संख्या और उनके रद्द होने या न होने के विषय में प्रायः मतभेद चला आ रहा है। शीआ, सुन्नियों और अहमदियों में इस विषय पर बहुधा विरोध रहता है।

(५) क्या कुरान में ईश्वर का अन्तिम विधान और नियम लिखे हैं? क्या उससे पहले का विधान और नियम रद्द होचुके हैं?—

मुसलमानों की ओर से ऐसा कहा जाता है कि स्वार्थी लोगों ने पहली ईश्वरीय पुस्तकों में कमी-बेशी और मिलावट करके दीन को खराब कर दिया था। इस कारण ईश्वर ने अपनी उन पहली पुस्तकों को रद्द करके अपना अन्तिम विधान कु़रान के द्वारा संसार में भेज दिया। अब प्रलय तक ईश्वर का यही विधान और नियम (शरय्यत) चलते रहेंगे। इनमें कोई कमी-बेशी नहीं हो सकेगी।

मुसलमानों की इस विचार-धारा पर कुछ विद्वान् सन्देह प्रकट

करते हुए यह कहते हैं—ईश्वर ने कुरान की सु० १०, आ० ६३ में जब यह कहा है—'ईश्वर की बातें बदलती नहीं', तो फिर ईश्वर को अपने पहले विधान और नियमों को बदल कर क्यों दूसरा विधान और नियम उतारने की आवश्यकता पड़ी ? यदि यह कहा जाये कि लोगों ने ईश्वरीय विधान में कुछ अदल-बदल और कमी-बेशी करदी थी, इस कारण उन पहली पुस्तकों को रद्द करने की आवश्यकता पड़ी। यह अदल-बदल और कमी-बेशी करने की बात मनुष्य के रचे ग्रन्थों में तो लागू हो सकती है, किन्तु ईश्वर के बनाये विधान और नियमों पर लागू कदाचित् नहीं हो सकती। मनुष्य में इतनी शक्ति और योग्यता कहां है कि वह ईश्वर के विधान और नियमों में एक बिन्दु का भी अन्तर कर सके।

मुसलमान केवल उन्हीं पुस्तकों को ईश्वरीय पुस्तक मानते हैं जो बनिस्राइल जाति के नबियों, रसूलों और पैग़म्बरों पर अरब देश में क़ुरान से पहले उतारी गई थीं। दूसरे देशों की दूसरी जातियों पर तो वह किसी ईश्वरीय पुस्तक का उतरना मानते ही नहीं। इसलिए मानना पड़ता है कि स्वार्थी लोगों ने तौरेत, जबूर आर इन्जील में ही कुछ कमी-बेशी और मिलावट आदि करके दीन को ख़राब किया होगा, इसी कारण ईश्वर ने उन्हें रद्द (मन्सूख़) करके क़ुरान उतारा होगा।

अब विचारणीय बात यह है कि क़ुरान के उतारे जाने के समय तौरेत, जबूर और इन्जील इन्हीं वर्तमान रूपों में मौजूद थीं। उनमें जो कुछ भी काट-छांट या कमी-बेशी किसी ने की होगी तो वह क़ुरान के उतारे जाने से पहले करदी होगी, तभी तो क़ुरान के उतारे जाने की आवश्यकता पड़ी किन्त कुरान ने अलग २ खोल कर यह नहीं बतलाया कि पहली ईश्वरीय पुस्तकों में अमुक २ सिद्धान्तों में लोगों ने कमी-बेशी करदी थी और अब उन कमी-बेशियों को दूर करके वास्तविक सिद्धान्त यह दिये जा रहे हैं। किन्तु क़ुरान ने तौरेत, जबूर, और इन्जील को उन्हीं रूपों में प्रामाणिक माना है, जिन रूपों में वह क़ुरान के उतारे जाने के समय मौजूद थीं। तौरेत, जबूर और इन्जील का वही रूप आज भी चला आ रहा है जो क़ुरान के उतारे जाने के समय मौजूद था। फिर यह समझ में नहीं आता कि उन्हे ईश्वर ने कब, कैसे, कहां और क्यों रद्द कर दिया था।

नीचे लिखी क़ुरान की कुछ आयतों से पहली ईश्वरीय पुस्तकों का रद्द किया जाना सिद्ध नहीं होता, वरन् उनकी पुष्टि किया जाना सिद्ध होता है—

(१) और तेरी ओर (ऐ मुहम्मद) हमने सचाई से किताब उतारी है (अर्थात् क़ुरान) जो पहली किताबों की पुष्टि और रक्षा करने वाली हैं। (सु० ५, आ० ४७)

(२) लेकिन वह (क़ुरान) पहली किताबों की पुष्टि करने वाली है। (सु० १०, आ० ३६)

(३) और यह (क़ुरान) जो हमने उतारी है बरकत वाली है। पहली पुस्तकों की पुष्टि करने वाली है। और इसलिए उतारी कि तू इससे असल शहर (मक्का) और उसके आस-पास वालों को डराये। (सु० ६, आ० ९१)

(४) उसने तुझ पर सच्ची किताब उतारी जो पहली किताबों की पुष्टि करती है। और इससे पहले तौरेत और इन्जील उतारी। (सु० ३, आ० २-३)

(५) यह इसलिए कि तुम यह न कहो कि हमसे पहले केवल २ ही फ़िरक़ों (यहूदी और ईसाई) पर किताब उतारी हुई थी और हम उनके पढ़ने पढ़ाने से लापरवाह (ग़ाफ़िल) थे। या कहो कि यदि हम पर किताब उतारी होती तो हम यहूदी और ईसाई से अधिक हिदायत पर होते। सो अब तुम्हारे ईश्वर से तुम्हारे पास दलील (तर्क) आगई है। (सु० ६, आ० १५५, १५६)

क़ुरान ने पहली पुस्तकों की केवल पुष्टि ही नहीं की किन्तु तौरेत और इन्जील की बड़ाई और सम्मान करते हुए यह आदेश भी दिया है कि यदि तुम्हें क़ुरान के विषय में कुछ सन्देह हो तो यहूदियों और ईसाइयों से पूछ लिया करो। अत इस विषय में क़ुरान की कुछ आयतें यह हैं—

(१) सो (ए मुहम्मद) जो कुछ हमने तेरी ओर उतारा है, यदि तुझे उसमें कुछ सन्देह है तो उनसे पूछ जो तुझसे पहले से पुस्तक पढ़ रहे हैं (यहूदी और ईसाई)। (सु० १०, आ० ९३)

(२) सो यदि तुम नहीं जानते तो याद रखने वालों (अर्थात् यहूदी और ईसाई) से पूछ लो। (सु० २१, आ० ६)

(३) हमने तौरेत उतारी। उसमें हिदायत और प्रकाश (नूर) है। (सु० ५, आ० ४३)

(४) हमने ईसा, पुत्र मरियम को तौरेत का सच्चा बताने वाला बनाकर भेजा। और हमने उसे इन्जील दी। उसमें हिदायत और प्रकाश (नूर) है। और वह तौरेत को जो उससे पहले उतारी हुई थी सच्चा करने वाली है। (सु० ५, आ० ४५, ४६)

(५) कहते हैं कि (तौरेत और क़ुरान) दोनों जादू हैं जो एक दूसरे के समान हैं। और कहते है कि हम तो दोनों को नहीं मानते। तू कह यदि तुम सच्चे हो तो ईश्वर की ओर से कोई ऐसी पुस्तक लाओ जो इन दोनों से बढ़ी हुई हो। मै उसी पर चलने लगूंगा। (सु० २८, आ० ४७-४८)

(६) ईश्वर ने अपनी पहली पुस्तकें एक २ ही बार उतार दी थीं। किन्तु क़ुरान लोगों की आवश्यकता को सामने रखते हुए थोड़ा २ करके २३ वर्षों में उतारा था। इसका परिणाम यह हुआ कि क़ुरान लोगों के हृदय में घर करता चला गया।

मुसलमानों की इस विचार धारा की पुष्टि क़ुरान की इस आयत से भली भांति होती है—

और काफिरों ने कहा कि उस पर क़ुरान इकट्ठा एक बार क्यों न उतारा। हमने इसी तरह उतारा ताकि हम तेरा हृदय उससे स्थिर रक्खें। और हमने उसे ठहर २ कर पढ़ा है। और जो उदाहरण वह तेरे पास लाते हैं। हम उसको उचित उत्तर और अच्छा बयान तुझे देते रहते हैं। (सु० २५, आ० ३१-३२)

इस विचार-धारा पर भी कुछ यह विचार करना पड़ता है कि किसी

विधान का पहले बनाया जा कर लोगों में प्रचलित करके उन्हें यह समझा देना कि अमुक २ कार्य अच्छे और सुखदायक हैं और अमुक २ कार्य बुरे और दुःखदायक हैं। या यह ज्यादा अच्छा है कि ईश्वरीय विधान २३ वर्ष के लम्बे समय तक बराबर उतर कर लागू होता रहे और उसमें भी आवश्यकतानुसार काट-छांट या अदला-बदली होती रहे। ईश्वर के सभी मानने वाले ईश्वर को सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, अन्तर्यामी और त्रिकालदर्शी मानते हैं। ऐसे महान् गुणों वाले ईश्वर के लिये आवश्यकतानुसार विधान बनाकर उतारना कहां तक उचित है? यह बात बुद्धिमानों के लिए गम्भीरता से विचारणीय है।

(७) क्या कुरान ने समस्त विद्याओं और गहरे विषयों का पूरा वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ किया है?

क़ुरान मे यह आया है—हमने क़ुरान मे कोई चीज लिखने में नहीं छोड़ी। (सु० ६, आ० ३७) और हमने तुझपर वह किताब उतारी जिस में हर विषय का वर्णन है। (सु० १६, आ० ८८) किन्तु एक जगह यह कहा गया है—और जिस बात का तुझे ज्ञान नहीं। उसके पीछे न हो। निःसन्देह कान और आंख और हृदय इन सब की उनसे पूछ ताछ होगी। (सु० १७, आ० ३५) क़ुरान में जिन २ विद्याओं और गहरी बातों का वर्णन किया गया है, वह संक्षेप में इस प्रकार हैं—

जीव और प्रकृति—जीव और प्रकृति के विषय मे यहूदियों और ईसाइयों अर्थात् समेटिक (Semetic) मत वालों में जो विचार धारा चली आ रही थी, लगभग वही विचार-धारा इसलाम में भी कायम रही। अतः क़ुरान ने जीव (Soul) के विषय में कुछ विशेष प्रकाश नहीं डाला। क़ुरान ने जीव को केवल ईश्वर की आज्ञा से उत्पन्न होना बतलाया है इससे अधिक न कुछ कहा गया और न कुछ समझाया गया क़ुरान में यह आया है—और रूह (जीव) मानवी (इन्सानी) के बारे में तुमसे पूछते हैं (कि वह क्या चीज है) तू कह जीव मेरे ईश्वर की आज्ञा से है। और तुम्हें थोड़ा ज्ञान दिया गया

है। (सु० १७, आ० ८४)

प्रकृति, (Matter) के विषय में क़ु.रान में विशेष रूप से कोई वर्णन नहीं किया गया। जीव को तो ईश्वर की आज्ञा से उत्पन्न होना बतलाया गया किन्तु प्रकृति के बारे में कुछ भी तो नहीं कहा गया। क़ु.रान में एक जगह यह आया है—वह आकाशों और पृथ्वी का नई तरह (बिना प्रकृति) बनाने वाला है। और उसने हर चीज़ को पैदा किया। इससे स्पष्ट है कि ईश्वर ने अपनी आज्ञा या (नूर) से संसार को उत्पन्न किया था। जींव और प्रकृति भी इसी प्रकार उत्पन्न किये गये थे क़ुरान ने स्पष्ट रूप से यह माना है कि जीव स्वर्ग या नरक मे प्रलय के पश्चात् सदा सदा तक रहेंगे। इस का अर्थ यह हुआ कि उत्पन्न किये हुए जीव अनादि हैं। इस पर कुछ विद्वान् यह सन्देह प्रकट करते हैं कि अभाव से भाव (नेस्ती से हस्ती) और उत्पन्न की हुई वस्तुओं का अनादि होना असम्भव है। वास्तव में जीव और प्रकृति का विषय बड़ा कठिन और गम्भीर है, यही कारण प्रतीत होता है कि क़ुरान ने उनके विषय में कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला और मुसलमानों को उनकी गहराई में जाने से मना करते हुए कहा कि जिस वस्तु का तुम्हें ज्ञान नहीं है, उसके पीछे मत हो। जीवात्मा और प्रकृति का ईश्वर के साथ क्या सम्बन्ध है? यह सम्बन्ध कब से है और कब तक रहेगा? स्वर्ग और नरक में जीवों को भेज देने के पश्चात् भी ईश्वर नवीन जीव और प्रकृति उत्पन्न करके संसार रचेगा या नहीं? यदि नहीं रचेगा तो फिर अनन्त और अनादि ईश्वर क्या करता रहेगा? इस सृष्टि के रचने और उसमें जीव और प्रकृति उत्पन्न करने से पूर्व ईश्वर क्या करता रहा था? यह प्रश्न ऐसे है जिनका सन्तोषजनक उत्तर क़ुरान से नहीं मिलता।

सृष्टि उत्पन्न करने की विधि—क़ु.रान ने संसार और उसकी समस्त वस्तुओं को उत्पन्न करने की विधि इस प्रकार बतलाई है—वह, पृथ्वी और आकाश का नवीन निकालने वाला (उत्पन्न करने वाला) है। जब किसी कार्य की आज्ञा देता है तो केवल कहता है कि 'कुन फ़ैकून' होजा और वह हो जाता है। (सु० २, आ० ११६) जब हम किसी वस्तु का इरादा करते हैं तो उसके लिए हमारा केवल यही कहना

है कि हम कहते हैं कि 'हो जा' बस वह हो जाती है। (सु० १६, आ० ३९) वह जब कोई काम नियत करता है तो केवल कहता है उसको कि 'हो जा' सो वह हो जाता है। (सु० ३, आ० ४६)

सृष्टि उत्पत्ति—सृष्टि उत्पत्ति के विषय में क़ुरान का सिद्धान्त भी उन्हीं ६ दिनों में सृष्टि उत्पन्न करने का है जिन ६ दिनों में तौरेत में सृष्टि उत्पन्न करने का वर्णन किया गया है। तौरेत में सृष्टि ६ दिन में उत्पन्न करने का पूरा वर्णन है। क़ुरान में उस विस्तार से वर्णन दिखाई नहीं पड़ता। अतः कुरान में सृष्टि उत्पत्ति का इस प्रकार वर्णन आया है—

(१) वह (ईश्वर) आसमानों और पृथ्वी का नवीन प्रकार (बिना माद्दा) बनाने वाला है। (सु० ६, आ० १००)

(२) तुम्हारा ईश्वर वह भगवान है जिसने आकाश और पृथ्वी ६ दिन में बनाये। फिर आकाश पर कायम हुआ। (सु० १०, आ० २)

(३) और वही है जिसने आकाश और पृथ्वी ६ दिन में बनाये और उसका तख्त पानी पर था। (सु० ११, आ० ६)

(४) तू कह क्या तुम उससे इन्कार करते हो जिसने पृथ्वी को २ दिन में उत्पन्न किया ? और उसी ने पृथ्वी में, उसके ऊपर पर्वत कायम किये और उसके अन्दर बरकत रक्खी और उसमें उसकी खोराक ४ दिन में ठहराई। पूछने वालों के लिये पूरा (उत्तर) हुआ। फिर आकाश की ओर ध्यान दिया और वह धुआं हो रहा था। फिर उससे और पृथ्वी से कहा कि तुम दोनों प्रसन्न या अप्रसन्न होकर चले आओ दोनों बोले हम प्रसन्नता से आये हैं। फिर उन (आसमानों) को २ दिन में ७ आसमान बनाया। और प्रत्येक आसमान में उसकी आज्ञा उतारी। और सबसे पहले (समीपवर्ती) आसमान को हमने दीपकों से सजाया और सुरक्षित रक्खा (सु० ४१, आ० ८-११)

(४) क्या उन काफ़िरों ने न देखा कि आकाश और पृथ्वी दोनों

मिले हुए थे। फिर हमने उन्हें अलग किया और हर वस्तु को हमने पानी से जीवित किया। (सु० २१, आ० २६)

(६) ईश्वर वह है जिसने बेसतून आकाश ऊंचे किये जिन्हे तुम देखते हो। (सु० १३, आ० १)।

(७) जिसने ऊपर तले ७ आकाश बनाये। (सु० ६७, आ० २)।

(८) ईश्वर वही है जिसने तुम्हारे लिए पृथ्वी की सब वस्तुओ को उत्पन्न किया। फिर आकाश की ओर चढ़ गया। सो उनको ७ आसमान ठीक किया। (सु० २, आ० २८)।

(९) और हमने तुम्हारे ऊपर सात मजबूत आसमान बनाये। (सु० ७८, आ० १२)।

(१०) और आसमान को हमने अपने हाथों की शक्ति से बनाया और हम शक्ति वाले (मकदूर वाले) हैं और जमीन को हम ने बिछाया सो हम क्या खूब बिछाने वाले है (सु० ५१, आ० ४६—४७)।

(११) और आसमान से पानी उतारा। और तुम्हे पिलाया और तुम्हारे पास इसका कोष नहीं है (सु० १५, आ० २१)।

आप इसी पुस्तक के यहूदी मत में जो सृष्टि उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है, उससे कुरान की सृष्टि उत्पत्ति की तुलना करके अधिक निश्चय करलें। साथ ही वैदिक धर्म में जो सृष्टि उत्पत्ति का वर्णन किया गया है उसे भी देखलें।

कुछ दूसरी इसलामी पुस्तकों में ७ आसमानों की गणना इस प्रकार बताई गई है:—

पहला आकाश जिसमें खाने का सामान रक्खा है, दूसरा आकाश जिसमें पन्छी उड़ते हैं, तीसरा आकाश जिसमें ओले बनते हैं, चौथा आकाश जिसमें से वर्षा आती है, पांचवा आकाश जिसमें तारे गिरते है, छटा आकाश जिसमें तारे मौजूद है, सातवां आकाश जहां स्वर्ग है।

कुछ पुस्तकों मे ऐसा लिखा है—पहला आकाश धुएं का, दूसरा आकाश पानी का, तीसरा आकाश लोहे का, चौथा पीतल का; पांचवा चांदी का, छटा सोने का और सातवां जम्मरूद का है।

फरिश्तो, जिनों और मनुष्यों की उत्पत्ति—कु़रान मे आया है—लोगो! हमने तुम्हे एक पुरुष और एक स्त्री से पैदा किया और तुम्हारी जातियां और परिवार बनाए, ताकि तुम आपस में पहचान रक्खो। (सु० ४९, आ० १२) लोगो! अपने ईश्वर से डरो, जिसने तुम्हे एक व्यक्ति (अर्थात् आदम) से उत्पन्न किया और उसी से उसका जोडा बनाया और उन दोनों से बहुत से पुरुष और स्त्री फैलाई (सु० ४, आ० १, सु० ७, आ० १८८, और सु० ६, आ० ९७)

जिसने जो वस्तु बनाई, खूब बनाई और मनुष्य की उत्पत्ति एक गारे से आरम्भ की। फिर उसकी प्रणाली वीर्य के सत (खुलासा) से बनाई, फिर उसे संवारा और उसमें अपनी जीवात्मा (रुह) फूंकी और तुम्हारे लिये कान, आँख और हृदय पैदा किये। (सु० ३२, आ० ६-८)

'ईश्वर वही है, जिसने तुम्हें मिट्टी से बनाया (सु७ ६, आ० १) और हमने इन्सान को मिट्टी के सत से बनाया (सु० २३, आ० ११) मनुष्य को ठीकरी जैसी खिनखिनाती अर्थात् बजने वाली (खुश्क) मिट्टी से पैदा किया और जिनों को आग के अंगारों (शोलों से उत्पन्न किया। फरिश्तों को आग से बनाया। (सु० ७, आ० ११)

जिस प्रकार तौरेत में ईश्वर और शैतान का सवाद आया है, उसी प्रकार कु़रान में भी कई स्थानों पर वही संवाद आया है। इस विषय में (सु० ७, आ० १०-२४, सु० १५, आ० २६-४४, सु० ३८, आ० ७०-८५, सु० २०, आ० ११५-१२२) देखिये।

जिनों और मनुष्यों को उत्पन्न करने का प्रयोजन—कु़रान में जिन और मनुष्य उत्पन्न करने का प्रयोजन यह लिखा है—

और मैंने जिनों और मनुष्यों को केवल इसलिये उत्पन्न किया है कि वह मेरी पूजा-उपासना करें। मैं उनसे कुछ रोज़ीना (वंधी-भेट) नहीं

चाहता और न यह चाहता हूँ कि वह मुझे (खाना) खिलाएं। (सु० ५१, आ० ५५-५७)

सूर्य, चन्द्रमा, तारे और हवा क्या हैं?—कु़रान ने इनके विषय में इस प्रकार कहा है—तुझसे नए चाँद के विषय में प्रश्न करते हैं, तू कह, कि यह लोगों के और हज के लिये ठहरे हुए समय हैं। (सु० २, आ० १८८) और उसी ने रात और दिन सूर्य और चन्द्रमा बनाया, यह सब आकाश में तैरते हैं। (सु० २१, आ० ३२) और उसी ने सूर्य और चन्द्रमा को उत्पन्न किया हैं। प्रत्येक नियत समय तक चलता हैं। (सु० ३१, आ० २८, सु० ३५, आ० १०) फिर हमने सूर्य को अपनी ओर समेट कर आहिस्ता-आहिस्ता खींच लिया और वही जिसने रात को तुम्हारे लिये ओढ़ना और नींद को आराम बनाया और दिन को उठने का समय निश्चित किया। वह जिसने आकाश में बुर्ज बनाए और उसमें दीपक अर्थात् सूर्य और प्रकाशमान चन्द्रमा रक्खा। (सु० २५, आ० ४५, ४६, ६०)

हे मुहम्मद! यहूदी तुझसे जू़उलकरनैन का वृतान्त पूछते हैं, तू कह, अब उसका वृतान्त मैं तुम्हारे सामने पढ़ता हूँ। हमने उसे पृथ्वी पर शक्ति दी और हर वस्तु का सामान भी उसे दिया। फिर वह एक मार्ग पर चला। यहां तक कि जब वह सूर्य डूबने के स्थान पर जा पहुँचा तो उसने सूर्य को कीचड के चश्में मे डूबा हुआ पाया और वहां उसने एक जाति को देखा (सु० १८, आ० ८२-६०) और हमने सबसे निकटवर्ती आकाश को दीपकों से सजाया और उन दीपकों को शैतानों के लिये फेंक मार बनाया। (सु० ६७, आ० ४) हमने हवा को सुलेमान के काबू में कर दिया कि जहां वह पहुंचना चाहता, उसी ओर उसकी आज्ञा से धीरे-धीरे चलती (सु० ३८, आ० ३५)

पहाड़ क्या हैं?—कु़रान ने पहाड़ों के विषय में यह ज्ञान प्रदान किया है—क्या हमने पृथ्वी को बिछौना नहीं बनाया और पहाड़ों को मेंखे (सु० ७८, और आ० ५-६) और जमीन में पर्वत बोझ की भांति डाल दिये ताकि वह जमीन तुम्हें लेकर झुक न पड़े (सु० ३१, आ० ६) और उसने पृथ्वी में पर्वतों को इसलिये गाड़ा कि वह तुम्हे

लेकर कहीं झुक न पड़े (सु० १६, आ० १४) और हमने पृथ्वी में पर्वत बनाए कि जमीन मनुष्यों को लेकर हिल न जाये। (सु० २१, आ० ३०) हमने पहाड़ दाऊद के आधीन कर दिये थे कि वह उसके साथ माला फेरते। (सु० २१, आ० ७८)

क़ुरान में जिन जिन विद्याओं का वर्णन जिस जिस रूप में आया है वह हमने संक्षेप में ऊपर लिख दिया है। अत' जहाँ तक हमने क़ु़रान का ध्यान पूर्वक अध्ययन किया है, ऐसा पता चलता है कि क़ु़रान मे निम्न लिखित विद्याओं का कोई इशारा नहीं पाया जाता—गणित विद्या (Mathematics, = Arithmetic, Algebra and Trigonometry), ज्योतिष विद्या (Astronomy), भौतिक विद्या, (Physics); रसायन विद्या (Chemistry,); दर्शन शास्त्र (Philosophy), शिल्प विद्या या चीर-फाड़ और जर्राही की विद्या (Surgery and Anatomy); चिकित्सा सम्बन्धी विद्या (Madical Science) प्राणी-धर्म-गुण विद्या- (Physiology), वनस्पति विद्या (Botany) जीव-जन्तु विद्या (Zoology); पशु चिकित्सा (Veterinary) (Science) संगीत कला (Music), जगतोत्पत्ति विद्या (Cosmogony); सासारिक पदार्थों की विद्या (Cosmology); मनो-विज्ञान (Psychology); इत्यादि।

अरब के कुछ विद्वानों ने ऐसा माना है कि यदि मिश्र का प्राचीन साहित्य सीरियन और ईसाई लोग अरब में न लाते और वह कोष हमारे हाथ न आता तो हमे कुछ भी पता न चलता। भारतीय, यूनानी और सीरियन पुस्तकों का अनुवाद अरबी भाषा में कराया गया था। ख़लीफ़ा अब्बासी अरबी भाषा मे अनुवाद कराने के बड़े शौक़ीन थे। उन्होंने बहुत सी विदेशी पुस्तकों का अरबी भाषा में अनुवाद कराया। मामूं (Mamun) ने बुद्धि-गृह (बैतउलहिकमत–House of Wisdom) की स्थापना की थी, जिसमें बहुत से अनुवादक (Translators) और दूसरे विद्वान् रहते थे। इसहाक इत्यादि यूनानी मुसलमानों ने सन् ८७०-६१० ई० में अफलातून और अरस्तु आदि दार्शनिकों की पुस्तकों का अरबी भाषा मे अनुवाद किया था। आलकिन्डी (Al-Kindi) सन् ८७३ ई० में, फ़राबी (Farabi) सन् ६५० ई० में, अख़वानउलसफ़ा सन् ६७० ई० में, इबनेसीना (Ibn-Sina) सन् १०३७ ई०, में प्रसिद्ध

मुसलमान दार्शनिक और विद्वान् हुए हैं। उन्होंने भारतीय, यूनानी, मिश्री और सीरियन पुस्तको का अरबी भाषा में अनुवाद किया था। इसके पश्चात् ही मुसलमानों में ज्ञान की विचार-धारा उत्पन्न हुई थी। यह बात सभी निष्पक्ष विद्वानों ने मानी है।

कुछ विद्वान् ऐसी शंका करते हैं कि क़ुरान को उतरे लगभग १४०० वर्ष हुए हैं और सृष्टि उत्पत्ति को मुसलमानों के मतानुसार भी लगभग ८००० वर्ष हो गये हैं। तो क्या क़ुरान से पहले ईश्वर ने वह ज्ञान और विद्या जो क़ुरान मे दी गई बतलाई जाती है। क़ुरान से पहले किसी को नहीं दी थी? यदि नहीं दी गई थी तो इतने लम्बे समय तक ईश्वर ने सबको गंवार, जाहिल और बुद्धिहीन क्यों रक्खा?

(८) क्या बनिस्राइल जाति के वैर-भाव और मतभेद मिटाकर सबको भाई-भाई बनाने में क़ुरान सफल हुआ?

जहाँ तक इस्लामी इतिहास और दूसरी इतिहास सम्बन्धी पुस्तकों को ध्यानपूर्वक देखा गया है, हमें क़ुरान का वह ध्येय (Object) पूर्ण होता दिखलाई नहीं पड़ा। इसके विरुद्ध ऐसा तो दिखाई पड़ता है कि बनिस्राइल जाति में क़ुरान के प्रचलित होने पर बजाय मेल-मिलाप होने और एक सम्मिलित प्लेटफॉर्म पर आने के उनमे अधिक मतभेद और टक्कर पैदा हो गई। यहूदियों, ईसाईयों और दाऊदियों का इस्लाम के साथ अधिक विरोध बढ़ गया। उन सब के इस्लाम के साथ बहुत से लड़ाई-झगड़े और रक्तपात हुए। एक ने दूसरे के साथ जो जो अत्याचार किये, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। बनिस्राइल जाति में मेल-मिलाप होना तो रहा दूर की बात, यहूदियों, ईसाइयों और दाऊदियों की मुसलमानों के साथ पूरी शत्रुता हो गई और वही दशा आज तक चली आ रही है। क़ुरान ने सु० ४, आ० ६१-६२ में मुसलमान को मुसलमान का वध करने से मना किया है। किन्तु इस पर भी इन १४०० वर्षों के अन्दर इस्लाम में बहुत से सम्प्रदाय उप-सम्प्रदाय उत्पन्न होकर उनमें बहुत से मतभेद उत्पन्न होते चले गए। उन मतभेदों के कारण इसलाम में स्वयं बहुत से लड़ाई-झगड़े पैदा हुए और एक ने दूसरे पर दिल खोल कर अत्याचार किये। जब तक

ह० मुहम्मद जीवित रहे, मुसलमान ज्यों-त्यों करके एक बने रहे, किन्तु उनके मरने के साथ ही इसलाम दो भागों में बंट गया। इमामत और खिलाफत के झगड़ों का आरम्भ हो गया। शीया और सुन्नी सम्प्रदायों की नींव पड गई। वहाबियों और नेचरयों मे मतभेद बढ़ता चला गया। यह भिन्नता आज भी उसी रूप मे दिखाई पड़ रही है। पिछले वर्ष पाकिस्तान में दूसरे मुसलमानों ने अहमदी सम्प्रदाय वालों का दिल खोल कर वध किया। जिनकी सख्या लाखों तक पहुँचती है।

किन्तु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि ह० मुहम्मद ने अरब के मुसलमानों का अपने जीवन में काफी सुधार किया और वह एक सीमा तक सफल भी हुए। इस्लाम के पारस्परिक लड़ाई-झगडों और मतभेदों का निर्णय इस्लामी इतिहास पढ़ने से भली-भाँति हो सकता है। यहाँ उनके दोहराने का पर्याप्त स्थान नहीं है।

क़ुरान में बनिस्राइल जाति को भाई-भाई बनाने का सु० २, आ० २१२ में वर्णन आया है। अतः इस पर यह ध्यान देना चाहिये कि ह० ईसा को सूली पर चढ़ा कर मार देने को यहूदी और ईसाई दोनो मानते थे। इस विषय में उन दोनों में कोई मत-भेद न था, किन्तु क़ु.रान ने इस विषय पर अपना एक अलग यह निर्णय दिया कि ईसा को सूली पर नहीं लटकाया गया वरन् ईश्वर ने जीवित ही उन्हें अपने पास उठा लिया था। ह० ईसा का बिना पिता के ईश्वर की शक्ति से कुमारी मरियम के पेट से उत्पन्न होने का निर्णय ईसाइयों के पक्ष में दे दिया किन्तु ह० ईसा का ईश्वर का बेटा न होने का निर्णय ईसाइयों के विरुद्ध और यहूदियों के पक्ष मे दे दिया गया। इस विषय का क़ु.रान की सु० ४, आ० १५५-१५७ और १७० में वर्णन आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि क़ु.रान ने यह दरम्यानी निर्णय इसलिये दिया था कि बनिस्राइल जाति के यहूदी और ईसाई दोनों प्रसन्न होकर क़ु.रानी निर्णय को मान कर ईमान ले आएँगे और मुसलमान बन जायेंगे। किन्तु क़ु.रान के इस निर्णय को उन दानों में से किसी एक ने भी न माना और यही कारण बनिस्राइल जाति में मत-भेद उत्पन्न होने का विशेष कारण बन गया।

(६) क्या संसार में लोग ईश्वर की सत्ता को भूल कर

बुरी बातों में पड़ गए थे और कुरान में एकात्मकता (तौहीद) का प्रचार करके लोगों को सीधे मार्ग पर लगाया ?—

इस विषय में हम पीछे तौहीद के शीर्षक (Heading) में काफी लिख आए हैं। यहां उनको दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

(१०) क्या लोगों के हृदयों में पहले नबियों और पैगम्बरों के जीवन चरित्रों की याद फीकी पड़ गई थी और क़ुरान ने उनकी याद फिर ताज़ा करादी ?—

कुरान ने, जहाँ तक देखा गया है बनिस्सराइल जाति के कुछ नबी और पैगम्बरों के अतिरिक्त किसी और नबी या पैगम्बर का कोई वर्णन नहीं किया। पारसियों या दूसरे देशों के किसी नबी, पैगम्बर या अवतार-कर्त्तार का कुरान मे कोई वर्णन ऐसा नहीं है कि जिसे पढ़ कर यह निश्चय कर लिया जाये कि अमुक अमुक देश में अमुक-अमुक नबी, पैगम्बर अवतार या कर्त्तार हुए। क़ुरान मे जिन नबियों और पैग़म्बरों का वर्णन आया है, उन सबका और उनके अतिरिक्त दूसरे नबियों और रसूलों का वर्णन तौरेत मे व्याख्या सहित पहले से ही मौजूद था। क़ुरान ने तौरेत की अपेक्षा किसी नबी या रसूल की अधिक व्याख्या नहीं की। इसके अतिरिक्त तौरेत में बनिस्राइल जाति के नबी और पैगम्बरों का क्रम से वर्णन आया है। उस प्रकार का वर्णन क़ुरान मे नजर नहीं पड़ता। क़ुरान में कई एक नबियों के जीवन के विषय में तौरेत से बहुत सी बातों मे मत-भेद है। इस मत-भेद के कारण भी बनिस्राइल जाति में वैर-भाव उत्पन्न हुआ। कुरान से पहले अरब और उसके आस-पास के सब लोग उन सब रसूलों और पैगम्बरों के जीवन चरित्रों से परिचित थे। फिर यह समझ में नहीं आता कि कुरान ने यह याद कैसे ताजा कराई ?

क़ुरान कब, किस स्थान पर और किस प्रकार उतारा गया।

मुसलमान विद्वानों में इन विषयों पर भिन्न २ दन्त

हैं, किन्तु उन में से यह तीन अधिक प्रसिद्ध मानी जाती हैं—एक दन्त-कथा यह है कि ईश्वर ने शबेकद्र में लोहे महफ़ूज़ से क़ुरान जब्राईल फरिश्ते को एक बार ही दे दिया था। उसने उसे प्रथम आकाश में लेकर रख लिया था। फिर जब्राईल २३ वर्ष तक थोड़ा २ आवश्यतानुसार उसे ह० मुहम्मद पर उतारता रहा। दूसरी यह है कि रमजान के महीने में समस्त क़ुरान एक ही बार आकाश से संसार में भेज दिया गया था। तीसरी बात यह कही जाती है कि जब्राईल फरिश्ता ईश्वर की वाणी सुन कर ह० मुहम्मद पर उतारता था। ह० मुहम्मद को जिस समय जिस आयत की आवश्यकता होती थी, जब्राईल उसी समय ईश्वर की वाणी लेकर आ जाया करता था।

क़ुरान में इस प्रकार आया है—

निःसन्देह हमने क़ुरान शबेकद्र में उतारा है। और तूने क्या समझा शबेकद्र क्या है। शबेकद्र हजार महीनों से अधिक अच्छा है। इसमें फरिश्ते और जीव (Soul) अपने ईश्वर की आज्ञा से उतरते हैं। (सु० ६७, आ० १-४) विस्तृत पुस्तक की सौगन्ध हमने इस (क़ुरान) को मुबारिक रात में उतारा। (सु० ४४, आ० २, ३) रमजान का महीना है जिसमें क़ुरान उतारा गया। (सु० २, आ० १८४)

क़ुरान की आयतें आवश्यकतानुसार मक्के में, मदीने में और यात्रा के समय ह० मुहम्मद के जीवन भर उतरती रहीं। मुसलमान विद्वानों में मक्की, मदनी और सफ़री आयतों के बारे में मत-भेद है। कोई किसी आयत को मक्की या मदनी या सफ़री कहता है, तो दूसरा इसके विरुद्ध मानता है। उन विद्वानों में इस बात पर भी मत-भेद है कि क़ुरान में सबसे पहले क्या और सबसे अन्त में क्या उतरा था।

कुछ पुस्तकों में क़ुरानी आयतों या ईश्वरीय-वाणी के उतरने की यह विधि लिखी हैं-जिस समय ह० मुहम्मद पर वही (ईश्वरीय-वाणी) उतरती थी तो उस समय उनका सर चकराने लगता था और मुँह से गिड़गिड़ाहट की आवाज निकलने लगती थी, चेहरे का रंग पीला हो जाया करता था, दाँत कटकटाने लगते थे, पसीना अधिक आ जाया करता था, किसी समय तो ऐसा ज्ञात होने लगता था कि मानों जान

निकाली जा रही है। एक दूसरे स्थान पर ऐसा लिखा है कि वही घन्टे की झनझनाहट और फ़रिश्तों के परों की सनसनाहट के साथ उतरा करती थी।

क़ुरान कब लिखा गया—यह बात तो स्पष्ट है कि ह० मुहम्मद के जीवन में क़ुरान पुस्तक के रूप में मौजूद न था। उनके समय में क़ुरान की आयतें खजूर के पत्तों, पत्थर के टुकड़ों, कागज के पर्चों, ऊंट की हड्डियों, ऊंट की काठियों और मनुष्यों के हृदयों में मौजूद था। ह० मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् क़ुरान का उतरना समाप्त हो गया था।

ह० उमर के ज़ोर देने पर ह० अबुबक्र ने क़ुरान को एकत्रित कराने का निश्चय किया और जैदबिनसाबित को बुलाकर कहा कि तुम क़ुरान के उतरते समय हज़रत के पास उपस्थित रहते थे। इसलिए क़ुरान को एकत्रित करने का कार्य तुम्हें सौंपा जाता है। जैदबिनसाबित ने काफ़ी समय में अति परिश्रम के साथ क़ुरान को एकत्रित किया। उन्होंने लिखा है कि पहाड़ों के टुकड़ों को एकत्रित करना क़ुरान के एकत्रित करने से अधिक आसान होता। उन्होंने क़ुरान एकत्रित करके ह० अबुबक्र को दे दिया। ह० उमर के समय तक उस क़ुरान की रक्षा होती रही। उनकी मृत्यु के पश्चात् वह क़ुरान श्रीमति हफ़सा, उनकी बेटी अर्थात् ह० मुहम्मद की धर्म-पत्नी के पास रहा।

इसके पश्चात् ह० उसमान जब ख़लीफ़ा बने तो उन्होंने श्याम और इराक के मुसलमानों में क़ुरान की कुछ आयतों में अन्तर देखा। इस पर उन्होंने दूसरी बार (सन् ६५१ ई०) में क़ुरान लिखवाने का प्रयत्न किया। श्रीमति हफ़सा से वह क़ुरान भी मंगवाया गया। अब्दुल्लाबिन-ज़बीर, सईदबिनअलआस, अब्दुलरहमानबिनआरिस और जैदबिनसाबित को फिर क़ुरान लिखने पर लगा कर उनको यह हिदायत भी दे दी कि जहाँ कहीं तुम्हारे और जैदबिन साबित वाले क़ुरान में कोई अन्तर नज़र पड़े तो उसे क़ुरैश की भाषा में ही लिखना, क्योंकि क़ुरान उसी भाषा मे उतरा था। उन चारों ने मिलकर क़ुरान की चार प्रतियां तैयार कीं और बीबी हफ़सा का क़ुरान उन्हीं को वापस कर दिया गया। वह चारों प्रतियाँ ह० उसमान ने मुस्लिम राज्य में इधर-उधर भेज कर यह आज्ञा कर दी कि इस क़ुरान के अतिरिक्त और जो किसी क़ुरान की

प्रतियाँ मौजूद हों, उन सबको जला कर नष्ट कर दिया जाये। (तारीख अबीउलफिदा) यह वर्तमान कुरान वही कुरान है जो ह० उसमान ने इस प्रकार लिखवाया था। इस कुरान में ३० सिपारे, ११४ सूरत और ६६६६ आयतें हैं। इस कु़रान का कोई विषय क्रम से नहीं लिखा गया। इसमें बहुधा एक ही बात या एक ही विषय को कई २ बार कहा गया है। इसी कारण इसकी इतनी अधिक आयतें हो गई हैं।

बीबी हफ़सा वाला कुरान मदीने के हाकिम मर्वान ने इसलिए नष्ट करा दिया था कि कहीं लोग ह० उसमान वाले कु़रान में कोई सन्देह न करने लगें। ह० सालिम और ह० अली ने भी कु़रान एकत्र किया था, किन्तु वह कु़रान भी नष्ट करा दिये गये थे।

हदीसें

कुरान के पश्चात् मुसलमानों की धार्मिक पुस्तकें हदीस हैं। हदीसों में ह० मुहम्मद की कहावतें लिखी जाना कहा जाता है। कुछ हदीसों में पारस्परिक मत-भेद भी पाये जाते हैं। इसी लिए कुछ विश्वसनीय और कुछ अविश्वसनीय समझी जाती हैं। मौलवी सनाउल्ला अमृतसरी ने तो अपना एक अलग सम्प्रदाय 'अहले हदीस' के नाम से ही स्थापित कर दिया था। हदीसें ह० मुहम्मद की मृत्यु के काफी समय पश्चात् लिखनी आरम्भ हुई थीं, सबसे अन्तिम हदीस सातवीं शताब्दी में लिखी गई थी। कुछ प्रसिद्ध हदीसें यह हैं—मुता, सनद, बुखारी, मुस्लिम, सनन और जामेय तुरन्दी इत्यादि।

सर सय्यद अहमद खाँ ने ऐसा लिखा है कि दूसरे दीन की बातों को पसन्द करके अपने दीन में इस प्रकार सम्मिलित कर लेना कि फिर कुछ यह अन्तर न रहे कि यह बातें किस दीन की हैं, वरन् वह बातें इस्लाम की ही बात हों। जिस प्रकार बनिस्राइल की विद्याओं और युनानी कौशल आदि को मुसलमानों ने अपने दीन में सम्मिलित कर दिया है और अपने भाष्यों और हदीसों को उन्हीं कहावतों और सिद्धान्तों से भर दिया है। उन दिनों बहुत से ऐसे माननीय व्यक्ति भी उपस्थित थे जो दिन-रात झूठी हदीसें बनाया करते थे और उसको पुन्य (सवाब) तथा इस्लाम का महत्त्व बढ़ाना मानते थे। विद्वानों के वचन

ह० मुहम्मद की ओर से प्रतिपादित कर दिये जाते और सिकन्दर के मुकुट के मोती ह० मुहम्मद की दाढी में पिरोते थे ताकि मरने के पश्चात् इस्लाम का महत्त्व बढ़ें और हमारा तथा ह० मुहम्मद का नाम हो।

मुस्लिम सम्प्रदाय

जहा तक निष्पक्ष विद्वानों ने मुसलमानों के सम्प्रदायों के सिद्धांतो की खोज की है, वह इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि मुसलमानों में ७५ तो वड़े वड़े सम्प्रदाय हैं और यदि उनके उपसम्प्रदायों की गणना की जाये तो वह ३०० से कुछ ऊपर पहुंचते हैं। मुस्लिम सम्प्रदायों मे एक दूसरे से वहुत से सिद्धांतों में मत भेद हैं। यही कारण है कि मुसलमानों का एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से ईर्षा, घृणा और द्वेष रखता है। उनमें परस्पर साम्प्रदायिक झगड़े और भयंकर रक्तपात भी होते चले आ रहे हैं।

सुन्नी सम्प्रदाय के चार वड़े उपसम्प्रदाय और शीआ सम्प्रदाय के भी चार वड़े उपसम्प्रदाय हैं। मौलवी अब्दुल्ला चकडालवी का 'अहले कु.रान', मौलवी सनाउल्ला अमृतसरी का 'अहले हदीस' गुलाम अहमद कादयानी का 'अहमदिया', और सरसय्यद अहमद खा का इस्लाम और विश्वास दूसरे मुसलमानों के इस्लाम और विश्वास से वहुत सी सैद्धातिक वातों में सर्वथा भिन्न है। ख्वाजा शाही, देववंदी, वरेलवी और फरंगी महल के फतवे एक दूसरे से भिन्न है। मुसलमानों में यह भिन्नता एक लम्बे समय से चली आ रही है और वह एक दूसरे के लिये ववाल जान वने हुए हैं।

कहा जाता है कि संसार के समस्त मुसलमान कु.रान की आयतो के एक ही अर्थ करते हैं किन्तु यह वात भी कुछ ठीक नहीं जान पडती। क्योंकि देखने मे यह आता है कि कुछ भाष्यकारों ने कु.रानी आयतों का भाष्य इस प्रकार किया है कि जिससे आदम और हव्वा से मनुष्य जाति का उत्पन्न होना, फरिश्तों, जिनों और शैतानों के अस्तित्व पर विश्वास करना, जानवरों के वलिदान, और जहाद (Holy

War) की आज्ञा होना, स्वर्ग और नर्क के अस्तित्व का आकाश पर होना और ह० ईसा का बिना पिता के उत्पन्न होना। कुछ भाष्यकारों ने इन सब बातों की व्याख्या दूसरे ढंग से की है। सर सय्यद अहमद खां ने अपनी तफ्सीर-उल क़ुरान में इन ऊपर लिखी बातों का भाष्य बिल्कुल ही ऐसे भिन्न ढंग से किया है जिस में इन बातों के अस्तित्व से इन्कार किया गया है। सर सय्यद अहमद खां ने यह ही नहीं किया वरन् जिस किसी ने उनके भाष्य के विरुद्ध कोई भाष्य किया है, उसे बहुत बुरी तरह फटकारा है। शिआ, सुन्नी और अहमदी विद्वानों के क़ुरानी भाष्यों में एक दूसरे से बहुत बड़ा अन्तर दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त बहुत से मुसलमान विद्वानों से क़ुरान की सूरतों, आयतों, शब्दों की संख्या, आयतों के भंग और छिन्न भिन्न होने आदि में भी काफी मतभेद पाया जाता है। कोई विद्वान किसी सूरत और आयत को और कोई विद्वान किसी दूसरी सूरत या आयत को भंग और छिन्न भिन्न मानता है। पादरी अनवारुलहक़ की पुस्तक 'नासिखोमन्सूख' में क़ुरान की आयतों और सूरतों के भंग होने और छिन्न भिन्न किये जाने के विषय में पूरा वर्णन पाया जाता है।

ह० मुहम्मद के जीवन तक तो मुसलमानों में कोई विरोध उत्पन्न न हुआ, किन्तु उनके मरते ही उनमें इमामत और खिलाफत का झगड़ा खड़ा हो गया। शीआ और सुन्नी सम्प्रदायों की नींव पड़ गई। शीआ और सुन्नियों में जो मत भेद और विरोध उत्पन्न हुए उनपर संक्षेप में इस प्रकार प्रश्न किये जाते हैं.—

ह० मुहम्मद ने अपने पश्चात किसी को खिलाफत के लिए नियत किया था या नहीं ? यदि किया था तो वह कौन था, यदि नहीं किया था तो क्यों ?

ह० मुहम्मद के पश्चात् खलीफा किसको माना गया, या जो खलीफा बना उसमें समस्त गुण थे या नहीं जो एक खलीफा में होने चाहियें ?

शीआ—खलीफा या ईमाम (Head of Islam) पैगम्बर के

लिये ईश्वर स्वंय नियत करता है। पैग़म्बर के अनुयाइयों (उम्मत) को उसके नियत करने का कोई अधिकार नहीं है। उम्मत का तो केवल यह कर्त्तव्य है कि वह इमाम की आज्ञा माने।

सुन्नी—ईश्वर ईमाम नियत नहीं करता, वरन पैग़म्बर की उम्मत स्वयं खलीफ़ा नियत करती है।

शीआ—खलीफ़ा या ईमाम में चमत्कार दिखाने की शक्ति होती है। चमत्कार ही इस बात की पहचान है कि ईश्वर ने किसको ईमाम नियत किया।

सुन्नी—चमत्कार दिखाना आवश्यक नहीं है, वरन ईमाम या खलीफ़ा में केवल यह बातें होनी आवश्यक हैं:—

वह नाबालिग़ (अबोध) न हो, वह पागल आदि न हो, वह दास न हो, वह पुरुष हो, वह न्यायकारी हो, वह वीर हो, वह सहासी हो, वह धार्मिक सिद्धांतों का ज्ञाता हो, उसके पास सुगमता से सब जा आ सके।

शीआ—ह० मुहम्मद ने अपने जीवन में अली को खलीफा नियत कर दिया था। ह० अली ही सब खलीफाओं में श्रेष्ठ थे क्योंकि ह० मुहम्मद और ह० अली दोनों एक ही नूर से उत्पन्न हुये थे।

सुन्नी—मुहम्मद साहब ने किसी को खलीफा या ईमाम नियत नहीं किया था, वरन् यह बात अपनी उम्मत पर छोड़ दी थी।

शीआ—मुहम्मद साहब ने एक बार नहीं वरन् कई बार कहा था कि मेरे पश्चात् ह० अली खलीफ़ा होंगे और उनके पश्चात् उनकी सन्तानें।

शीआ लोग ह० अबुबक्र आदि में वह गुण नहीं मानते जो ह० अली में मानते हैं। इसके अतिरिक्त वह ह० अबुबक्र पर यह दोष भी

लगाते हैं कि उन्होंने ह० मुहम्मद के माल असबाब में से क़ुरान की आज्ञानुसार बीबी फातमा (ह० की बेटी) को उनका अधिकार नहीं दिया था। जब ह० अली ने ह० अबुबक्र को ख़लीफ़ा मानने से इन्कार कर दिया तो उनके साथ अनुचित व्यवहार किया गया था। शीआ लोग ह० अबुबक्र, ह० उमर और ह० उसमान को उचित ख़लीफा नहीं मानते वरन् अनाधिकारी खलीफा समझते हैं। यही कारण है कि उनके नामों पर तब्बर्राह (अश्लील शब्द) पढ़ते हैं, जबकि सुन्नी उनके नामों पर मदाह (प्रशंसा) पढ़ते हैं। तब्बर्राह और मदाह सहाबा का झगडा शीआ और सुन्नियों में एक प्रसिद्ध झगडा है।

सुन्नी—ह० अबुबक्र, ह० उमर, ह० उसमान और ह० अली, आदि को उचित खलीफा मानते हैं।

शीआ—ह० मुहम्मद के समय से ११ ईमाम होना मानते हैं और १२वें ईमाम महदी के भविष्य में उत्पन्न होने पर विश्वास करते हैं। वह ११ ईमाम यह हैं:—

ह० अली सन् ४० हिजरी में मारे गये, हसनबिनअली को उन की पत्नी ने सन् ५० हिजरी में ज़हर देकर मारा। हुसैन बिन अली ६१ हिजरी में कर्बला के मैदान में बाल बच्चों सहित क़त्ल किये गये। अली बिन हुसैन सन् ९५ हिजरी में जहर देकर मारे गये। मु० बिन अली (बाकिर) सन् ११६ हिजरी में जहर देकर मारे गये। जाफ़िर बिन मुहम्मद (सादिक) सन् १४८ हिजरी में जहर देकर मारे गये। इन्होंने शीआ सम्प्रदाय का दुबारा संगठन किया था। 'कैफ़ी' नामक पुस्तक लिखी जिसे यह लोग पवित्र पुस्तक समझते हैं। इसी लिये शीआ लोगों को जाफ़रया भी कहते हैं। मूसा (काज़िम) को हारुनउल-रशीद ने कारागार में डालकर बहुत कष्ट दिये और अंत में वह सन् १८३ हिजरी में जहर देकर मार दिये गये। अली (रज़ा) बिन मूसा २०३ हिजरी में जहर देकर मारे गये। मुहम्मद (तकी) बिन अली भी सन् २०३ हिजरी में जहर देकर मारे गये। और अली (नकी) बिन मुहम्मद सन् २५४ हिजरी में जहर देकर मारे गये।

शीआ उपसम्प्रदाय—शीआ उपसम्प्रदाय में जब कुछ मत-भेद

उत्पन्न होते चले गए तो उनके भी ४ उपसम्प्रदाय ईमामिया, असनाय-अशरिया, गालिया और तनासुखया बन गए और फिर उनमें भी ईमामत और खिलाफत के झगड़े उत्पन्न होगए। इन शीआ उपसम्प्रदायों मे एक उपसम्प्रदाय 'नज्जारिया' है। इसका वृतान्त संक्षेप में इस प्रकार है—

'नज्जारिया—जब ह० आमिर के वध हो जाने पर ह० नज्जार ईमाम नियत हुए तो मुस्तैली सम्प्रदाय वालों को यह बात बहुत बुरी लगी और वह उनका वध करने की चेष्टा करने लगे। ह० नज्जार अपने वध के भय से हस्न बिन सबाह् के साथ अलेक्जेन्ड्रिया की ओर चले गए। दूसरी पार्टी वालों ने वहीं जाकर आक्रमण किया। ह० नज्जार को पकड़ कर मिश्र में लाए। उन्होंने ईमामत अपने बेटे हादी के सिपुर्द करदी और वह मर गये। नज्जारिया सम्प्रदाय को हशाशीन भी कहते हैं और हस्न बिन सबाह् उसके शैख (Leader) कहे जाते थे। इस सम्प्रदाय के नवयुवक फिदाई कहलाते थे। वह (फिदाई) किसी बड़े और कठिन काम पर लगाए जाते थे। काम पर लगाने से पूर्व उन्हे हशीश पिलाई जाती थी जो भंग के पत्तों आदि से तैयार होती थी। उन फिदाइयों ने बहुत से उन लोगों का वध कर दिया था जो हस्न बिन सबाह् से विरोध रखते थे या उनके धार्मिक सिद्धान्तों को नहीं मानते थे।

हस्न बिन सबाह का स्वर्ग—हस्न बिन सबाह् ने सन् १०६० ई० में ईरान और सीरिया के बीच के क्षेत्र में एक स्वर्ग बनाया था। मार्कोपोलो, एक योरुपियन यात्री ने उस स्वर्ग के विषय में इस प्रकार लिखा है—

वहाँ पर बड़ी ऊंची दीवारों से घिरे हुए बाग़ थे। उनमे रंग-बिरंगी फूलों की क्यारियां और फलदार वृक्ष थे। बड़ी अच्छी और सुन्दर सड़कें थीं। साफ़ और पवित्र पानी की नहरें चल रही थीं स्थान-स्थान पर फव्वारे बनाए गए थे। वहां बहुत से चित्रकारी आदि से सुसज्जित भव्य कमरे थे, उनमें ईरानी कालीन बिछे हुए थे और यूनान के बहुमूल्य कपड़ों के परदे लटक रहे थे। सोने-चांदी और बिल्लोर की

तश्तरियां और शराब पीने के प्याले रक्खे थे। बड़ी सुन्दर बड़ी-बड़ी आंखों वाली और इरहरे शरीर वाली कुमारी जवान लड़कियां और ऐसे ही सुन्दर और कोमल शरीर वाले लड़के काफी संख्या में रक्खे गए थे।

हस्न बिन सबाह जब किसी फिदाई से कोई कठिन कार्य कराना चाहता था तो उसको पहले हशीश का प्याला पिला कर मूर्छित करके उस बहिश्त (स्वर्ग) में भिजवा देता था। वहां वह फिदाई कई दिन तक राग-रंग में लीन रहता था। उसके पश्चात वह शैख के सन्मुख उपस्थित किया जाता था। शैख उसे फिर उस कठिन काम को करने की आज्ञा देता था। इस प्रकार उस स्वर्ग के राग रंग की इच्छा से फिदाइयों ने बहुत से रक्त-पात और अत्याचार किये। हस्न बिन सबाह के पश्चात् और भी शैख हुए, जिन्होंने इसी प्रकार फिदाइयों से अत्याचार कराए। मुगल मंगू खां के समय में हलाकु खां ने इस नज्जारिया सम्प्रदाय का कुल राज्य जीत कर अपना अधिकार कर लिया और नज्जारियों का निर्दयता के साथ वध करा दिया। उनमें से जो बच-बचा गए, वह ईरान, श्याम और कोहिस्तान आदि प्रदेशों में जाकर रहने लगे। कोहिस्तान वाले नज्जार हुसैनी कहलाते हैं। नज्जारियों के कुछ सिद्धान्त यह हैं—शैख की आज्ञा को बिना किसी सकोच के मानना, ईमाम को ईश्वर का अवतार मानना, शैख रशीदउद्दीन को ईश्वर का अन्तिम अवतार मानना, आकाश पर स्वर्ग और नरक होने से इन्कार करना, प्रत्येक मनुष्य की मृत्यु ही उसके लिये प्रलय है।

खोजे अर्थात आगाखानी, इस्माइलया, कादयानी, बोहरे, गुमी और शमशी सम्प्रदायों के विषय में हम पीछे 'इस्लाम के प्रसार' शीर्षक में लिख आए हैं। इन सब सम्प्रदायों में एक दूसरे से काफी मत-भेद है।

अलीउलहयान—ऐसा मानते है कि जब मनुष्य ईश्वर की याद भूल जाते हैं और उसकी आज्ञाओं को मानना छोड़ देते हैं तो उस समय ईश्वर मनुष्य के रूप में संसार में आकर अपनी आज्ञाओं का पालन कराया करता है। वह कहते हैं कि ह० आदम से लेकर ह० अली तक संसार में ईश्वर कई बार आया और अन्त में ह० अली के रूप में प्रकट हुआ। यह लोग अली के नाम के जपने में बड़ा पुन्य मानते है।

ह० मुहम्मद को भी अली अल्लाह ने ही पैगम्बर बना कर भेजा था। यह वर्त्तमान कुरान वह कुरान नहीं है जो अली अल्लाह ने मुहम्मद साहब को दिया था, वरन् यह अबुबक्र, उमर और उस्मान का लिखवाया हुआ है। इसके अतिरिक्त और भी कई अन्य धार्मिक बातों मे मत-भेद हैं।

अलूइया—यह अपने को ह० अली की सन्तान बताते हैं। वर्तमान कुरान को ईश्वर की वाणी नहीं वरन् उस्मान का लिखा हुआ मानते है। वह कहते हैं कि ह० अली का शरीर सूर्य के साथ मिल गया था, इसलिये अब सूर्य ही हमारा सहायक है। सूरज अली अल्लाह है। अली अल्लाह ने बड़े-बड़े चमत्कार, सिद्धि और करामात दिखलाए थे। वे मांस खाने से घृणा करते है और कहते हैं कि अली अल्लाह ने यह कहा था कि अपने पेटों को पशु-पक्षियों की कब्रें मत बनाओ। ये लोग ह० अबुबक्र, ह० उमर और ह० उस्मान को अली अल्लाह का शत्रु समझते हैं। ये अली अल्लाह की प्रतिमा को सिर झुकाना उचित समझते हैं। ये कुछ अशों तक आवागमन भी मानते हैं।

सादिकया— यह लोग ह० मुहम्मद और ह० मुस्लिमा इन दोनों को नबी और पैग़म्बर मान कर कहते हैं कि जो ऐसा नहीं करता वह सच्चा मुसलमान नहीं है। यह कुरान और ह० मुस्लिमा की पुस्तक फारूक प्रथम और फारूक द्वितीय (सानी) पर विश्वास रखते हैं। उनका कथन है कि ह० मुहम्मद ने चन्द्रमा के दो टुकड़े कर दिये थे और ह० मुस्लिमा ने चन्द्रमा को बुला कर अपनी गोद मे बिठा लिया था। यह धार्मिक बातो मे हस्तक्षेप करना बुरा समझते हैं। काबे की ओर मुँह करके नमाज़ पढना कुफ्र बतलाते हैं और कहते हैं कि ईश्वर सब जगह मौजूद है इसलिये किधर ही मुँह करके नमाज पढ़ सकते हैं। ईश्वर का कोई घर नहीं है। नमाज मे पैगम्बर का नाम लेना अच्छा नहीं है। उसकी लड़की से विवाह करना चाहिये जिससे पहले कोई रिश्तेदारी न हो। एक समय में एक स्त्री का रखना ही उत्तम है। खतना कराने से यहूदी हो जाता है। रमजान के रोजे मन्सूख हो गये थे। नशीली कोई वस्तु नहीं खानी चाहिये। ह० अबुबक्र को बहुत बुरा-भला कहते हैं, क्योंकि उन्होंने ह० सलीमा का वध करा दिया था। इनके अतिरिक्त और भी कुछ मत-भेद हैं।

सुन्नी–Traditionalist—यह वह मुसलमान हैं जिन्होंने ह० मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् ह० अबुबक्र को, उनके पश्चात् ह० उमर को और उनके पश्चात् ह० उस्मान को खलीफ़ा चुना था। यह लोग चारों खलीफ़ाओं की प्रशंसा करते हैं और चारों खलीफ़ाओं को उचित खलीफ़ा समझते हैं। वह कहते हैं कि जिसने अबुबक्र से प्रेम किया वह ईश्वर के प्रकाश से प्रकाशित हुआ, जिसने उमर से प्यार किया, उसने दीन को सही रूप में माना, जिसने उस्मान से स्नेह किया उसने दीन को सीधा किया और जिसने अली में श्रद्धा की उसने दीन की रस्सी को दृढ़ किया। जो इन सहाबा का अपमान करता है वह पापी है। उनका कोई कार्य स्वीकार न होगा। इस सुन्नी सम्प्रदाय में भी कुछ बातों पर मत-भेद उत्पन्न हुए और उनके यह चार उपसम्प्रदाय बन गये—हन्फ़ी, मालकी, शॉफी, और जम्बली।

शीआ और सुन्नियों मे नमाज की विधि, रोजा, खैरात, हज की विधि, निकाह, तलाक और उत्तराधिकार आदि में एक दूसरे से काफी मत-भेद है।

सूफ़ी (Sufism)

अरब में इस्लाम के प्रचलित हो जाने पर वहाँ क़ुरान के विषय में मुसलमानों का यह विश्वास हो गया था कि कुरान की शिक्षा सीधी-सादी है। वह ईश्वरीय पुस्तक है। ईश्वर कुरान, और उसके रसूल मुहम्मद पर विश्वास करके ही ईमान पुष्ट हो सकता है।

पश्चिमी एशिया में यहूदियों, यूनानियों, ईसाइयों और रोमन इत्यादि के बहुत से केन्द्र थे और पूर्वी एशिया में ईरानियों, बौद्धों और हिन्दुओं की विचार-धारा के केन्द्र थे। जब कुछ मुसलमान अफलातून (Plato) और अरस्तु (Aristotle), पारसी, महायान बौद्धों और शंकर की वेदान्तिक विचार-धारा से ९वीं शताब्दी में प्रभावित होकर कुरान की सच्चाई पर कुछ सन्देह करने लगे तो खलीफा मामून (८१३–८३३ A.D.) ने ऐसे सन्देह करने वालों को बहुत से कष्ट दिये और साथ ही यह आज्ञा जारी करादी कि यदि कोई कुरान की सच्चाई पर सन्देह प्रकट करेगा या किसी प्रकार की कोई आलोचना

करेगा तो उसका वध करा दिया जायेगा। अत. इस आज्ञा के अनुसार बहुत से मुसलमान मारे गए।

आठवीं शताब्दी के अन्त में 'सूफी' शब्द उन लोगों के लिये प्रयोग में आने लगा था कि जो इस्लाम की शिक्षा को पूर्णरूप से मानते थे और जो अपना जीवन सादगी, ज्ञान और ध्यान में लगाने से ईश्वर ज्योति की प्राप्ति समझते थे।

शब्द सूफी के अर्थ यात्रा के कहे जाते हैं, तथा यह भी कहा जाता है कि सूफी मार्ग मनुष्य का ईश्वर से मेल करा देता है। सूफी मार्ग दूसरे ईश्वर प्राप्ति के मार्गों से भिन्न बतलाया जाता है और यह कहा जाता है कि यह मार्ग उनको प्राप्त होता है. जिन पर ईश्वर की दया-दृष्टि होती है। इधर ९वीं शताब्दी मे शंकर के वेदान्ती-मत का भारत में जोर आरम्भ हुआ, उधर अरब और उसके आस-पास के देशों में सूफीइज्म की विचार-धारा का प्रसार होने लगा। मुसलमानों पर अफलातून, अरस्तु, प्लोटिनस, (Plotinus) फिलो (Philo), जरतुश्त मनी (Mani), महायान (बौद्ध) और वेदान्त का रंग चढ़ने से इस्लाम में तीन यह विचार-धाराएं उत्पन्न हो गई थीं - एक जबरिया Predestinarians = प्रारब्धवादी दूसरी कादरिया-Libertarians = अधर्मी और तीसरी मुतज्जिल-Free will Thinker स्वतन्त्र विचारक।

मुतज्जिल विचार-धारा का चलाने वाला एक व्यक्ति वासिल बिन अता था। कुछ समय पश्चात् मुतज्जिल विचार-धारा में भी कुछ मत-भेद उत्पन्न हुए और उनमें भी तीन विचार-धाराएं कुछ मत-भेदों के साथ उत्पन्न हो गई थीं। उनमे एक मुतकल्लमीन, दूसरी फलसफी या विद्वान् और तीसरी सूफी या वेदान्ती (Mystics) थीं। मुतकल्लमीन वह कहलाते थे जो धर्म को तर्क (Reason) से मानने पर जोर देते थे। फिलसॅफी या दार्शनिक वह थे जो यूनान की फिलॉसफी से प्रभावित होकर प्रत्येक विषय को दार्शनिक तौर पर जॉचते थे। सूफी केवल ईश्वर प्राप्ति पर ही जोर देते थे। इन तीनों विचार-धारा वालों में अच्छे-अच्छे दार्शनिक और विद्वान् हुए हैं।

सूफी लोग कहते थे कि ईश्वर प्राप्ति का सम्बन्ध हृदय से है। उन पुराने सूफियों में मन्सूर नामक एक प्रसिद्ध सूफी हुआ था, जिसका सन् ९२२ ई० में वध करा दिया गया था। इसके पश्चात् सूफीइज्म पर

बहुत सी किताबे लिखी गई तथा बहुत से प्रसिद्ध सूफी हुए। सन् १२०० ई० से फिर सूफीइज्म का जोर बढ़ना आरम्भ हुआ और कुछ मुसलमानो के मस्तिष्क में यह प्रश्न उत्पन्न हुए—'ईश्वर की सत्ता कैसी है? उसका मनुष्य से क्या सम्बन्ध है? क्या कुरान ईश्वरीय पुस्तक है? मनुष्य काम करने या सोचने मे स्वतन्त्र है या नहीं? भलाई और बुराई की क्या पहचान है?

सन् १०५८ से ११११ A. D. तक ईमाम गज्जाली ने सूफीइज्म के प्रसार में काफी योग दिया और उसमें दर्शन की चाशनी दी। अतः सूफी लोग अपना सिद्धान्त इस प्रकार प्रकट करने लगे कि यह जीवन एक यात्रा के समान है। इसका अन्तिम ध्येय ईश्वर प्राप्ति है। यात्री को बहुत देख-भाल कर यात्रा करनी चाहिये। यदि वह मार्ग भूल जायेगा तो अपने लक्ष तक नहीं पहुच सकेगा। ईश्वर प्राप्ति का सम्बन्ध हृदय के साथ है। हृदय ही ईश्वर का साक्षात् अनुभव कराता है। यह इन्द्रियां तो सांसारिक ज्ञान ही प्राप्त करा सकती है, ईश्वरीय ज्ञान नहीं। ईमाम गज्जाली ने यह भी कहा कि हृदय के प्रकाश से ही सच्ची प्रसन्नता प्राप्त होती है। हृदय को पवित्र और साफ बना कर मजहब के सिद्धान्तों (Shariat) पर चलने से इच्छा (Desire) और मोह (Passions) को समाप्त करके अपने को उसकी याद में मिटा देने से बका (The Divine Reality) मिल सकती है। और कोई दूसरी विधि ईश्वर प्राप्ति की नहीं है। जो मनुष्य ऐसा करता है उसके बीच से परदा हट जाता है और ईश्वर की ज्योति स्पष्ट रूप से ज्ञात होने लगती है।

गज्जाली के पश्चात् उसकी इस विचार-धारा का प्रसार करने वाले इब्नेतुफिया (११८५ A. D.), अब्दुल कादिर जिलानी (११६६ A. D,), अहमदउल रफिया (११८२ A. D,) और शहाबुद्दीन सोहरावर्दी (१२३४ A. D.) मोहयूद्दीन इब्न उल एराबी (११६४ A.D.) ने इमाम गज्जाली के विचारों का समर्थन किया और मोहयूद्दीन इब्न उल एराबी ने सूफी मत के प्रसार में विशेष योग देकर अपना सिद्धान्त इस प्रकार प्रकट किया—कोई वस्तु सत्य नहीं है, ईश्वर अद्वितीय (Absolute) है। यह संसार उसी का रूप है। मुहम्मद को खुदा ने

पूर्ण बना कर संसार में भेजा था। जब ईश्वर और जीवात्मा के बीच से पर्दा हट जाता है तो जीवात्मा पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेती है। उसे ईश्वर के अतिरिक्त और कोई ज्ञात नहीं होता। जो मनुष्य अपनी इस प्रकार यात्रा समाप्त करके अपने लक्ष की प्राप्ति का उपाय करता है उसे साक्षात् ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं।

इब्नुल एराबी ने यह भी कहा कि समस्त मतमतान्तर सच्चे हैं। उन सबका एक ही मार्ग है जो ईश्वर तक पहुंचता है। मूर्त्ति-पूजक इत्यादि भी सब उसी की याद करते हैं। प्रत्येक मतानुयाई अपने अपने सिद्धान्त पर ठीक हैं। जो जैसे उसको याद करता है, वही उसका सच्चा भक्त या आरिफ है। इसलिये सबसे उत्तम ईश्वर प्रेम है, चाहे वह किसी रूप में किया जाये। इब्नुल एराबी के विचारों को गीत तथा कविताओं में रचा गया, बहुत से संत और दरवेश उनके उन गीतों को बड़ी श्रद्धा से गाते हैं। उसने सूफीइज्म पर बहुत सी पुस्तकें लिखीं। सूफियों ने उसे ऊंचे दर्जे का सन्त ठहराया और दूसरे मुसलमानों ने उसे काफिर बतलाया। नूरुद्दीन जामी (१४१४ से १४६२ A.D.), अब्दुल करीम (१३६५ से १४१७ A.D.) भी मशहूर सूफी हुए हैं।

भारत में सूफीइज्म— १३वीं शताब्दी तक भारत का काफी भाग मुसलमानी राज्य में आ चुका था। उसी समय से बाहर के मौलवी और सूफी लोग इस देश में काफी संख्या में आ २ कर अपने मजहब का प्रचार करने लगे थे। सेन्ट्रल एशिया से मुसलमानो के आने से पहले और भी बहुत सी जातियों ने इस देश पर आक्रमण किए और उन सबको हिन्दुओं ने अपनी सोसायटी में सम्मिलित कर लिया था। किन्तु मुसलमान हिन्दुओं की सोसायटी में सम्मिलित न हो सके। इसका कारण यह था कि मुसलमानों का सम्बन्ध अरब देश से था, जहां पर इसलाम ने जन्म लिया था।

सबसे पहला प्रसिद्ध सूफी जो लाहौर में आकर रहने लगा था उसमान बिन अली था। उसने सूफीइज्म पर एक प्रसिद्ध पुस्तक 'कश्फउलमुहीब' लिखी थी। इसके पश्चात् और भी बहुत से सूफी इस देश में आकर बस गये। जब वह लोग इस देश में आकर बसे तो उनकी जान-पहचान वेदान्ती सन्तों और सन्यासियों से हुई। चुनांचे

सूफियों ने स्थान २ पर अपने केन्द्र बना लिए वह साधु-सन्तों जैसा लिबास रखने लगे और उन्हीं जैसी योग की क्रियायें करने लगे। उनमें से कुछ पीर या मुर्शिद या शैख (Leader) अर्थात् नेता बनकर चेले और चेलियां बनाने लगे। चूंकि सूफीइज्म की विचार-धारा वेदान्त विचार-धारा से बिलकुल मिलती-जुलती थी, इसलिए बहुत से हिन्दू सूफीइज्म से प्रभावित हो गये।

सूफियों के आने से पहले इस देश में वेदान्त की २ विचार-धाराएं प्रचलित थीं। उनमें से शंकर की विचार-धारा अद्वैतवाद (All is God) थी और रामानुज की विचार-धारा यह प्रचलित हो रही थी कि सब कुछ ईश्वर से ही उत्पन्न हुआ है (All is from God)। यही दोनों विचार-धारायें भारत के सूफियों ने अपना लीं। किन्तु वेदान्तियों और सूफियो मे अन्तर यह रहा कि सूफियों ने ह० मुहम्मद को ईश्वर का रसूल और कुरान को ईश्वर की किताब मानकर अपना सहारा उन पर अवश्य रक्खा। दाराशिकोह हिन्दुओं और मुसलमानों के सिद्धान्तों को जानता था। उसने उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया। उसने सूफीइज्म और अद्वैतवाद पर कई एक पुस्तकें लिखीं। उसका कहना था कि सूफीइज्म और अद्वैतवाद का प्रयोजन ईश्वर प्राप्ति ही है। अतः उसने हिन्दू वेदान्तियों और मुसलमान सूफियों को एक ही प्लेटफॉर्म पर लाने का प्रयत्न किया किन्तु वह उसमे सफल न हो सका। इसका कारण यह था कि वेदान्तियों के सामने ह० मुहम्मद को रसूल मानने और कुरान को ईश्वरीय पुस्तक जानने का सिद्धान्त रुकावट पैदा करता था।

भारतवर्ष में आगे चलकर सूफियों में परस्पर कुछ मत-भेद उत्पन्न हुए और उनकी अलग २ चिश्तिया, कादिरिया, सोहरावर्दिया, और नक़शबन्दिया चार शाखाएँ बन गई।

सूफी-सिद्धान्त—

(१) प्राकृतिक वस्तुओं के साथ सम्बन्ध जोडने से मनुष्य अपवित्र बन जाता है और वह अपने असल तत्त्व को भूल जाता है। तब ही मनुष्य और ईश्वर के बीच एक पर्दा पड़ जाता है।

(२) ईश्वर का बराबर अभ्यास करने, उसके साथ प्रेम बढ़ाने और सत्य पर चलने से वह पर्दा हट जाता है।

(३) ईश्वर की खोज करने वाले का नाम ही मुसाफिर (सालिक) है।

(४) ईश्वर की खोज करने से पहले पश्चाताप (तोबा) करना चाहिये और फिर शरय्यत (Law) को मानकर उसके अनुसार जीवन बनाना चाहिये।

(५) पवित्र-विचार बनाकर और समस्त इच्छाओं को मार कर ईश्वर की याद अर्थात् भक्ति में लग जाना चाहिये।

(६) योगाभ्यास और ध्यान में जीवन लगाकर यह विचार समाप्त कर देना चाहिये कि मैं ईश्वर से भिन्न हूँ।

(७) जब ऐसा हो जाता है तब सचाई (Reality) ज्ञात होकर ईश्वर का साक्षात् दर्शन या वस्ल (Unity) प्राप्त होकर परमानन्द मिलता है।

शैख अहमद सरहिन्दी (१५६४-१६२४ A. D.) ने नक्शबन्दी फिरके की नींव रखकर यह कहा कि ईश्वर, उसके रसूल ह० मुहम्मद और उसकी किताब कुरान पर विश्वास करना ही काफी है। भारत में सूफियों ने इसलाम के फैलाव में काफी योग दिया।

ह० मुहम्मद

ह० मुहम्मद का जन्म २० अपरैल सन् ५७१* ई० को अरब के मक्के शहर की कुरैश जाति में हुआ था। दादा ने मुहम्मद और माँ ने अहमद नाम रक्खा था। उनके पूर्वज का नाम अब्दमनाफ था। अब्दमनाफ से हाशिम, हाशिम से अब्दुलमतलब, अब्दुलमतलब से अब्दुल्ला और अब्दुल्ला से ह० मुहम्मद पैदा हुए थे। उनकी माता का नाम आमना और चचा का नाम अबुतालिब था। उनके दादा अब्दुल मतलब काबे के मन्दिर के पुजारी थे और उन्हें हाशमी कहते थे। इसी लिये ह० मुहम्मद को भी हाशमी कहते हैं। उनके माता-पिता मूर्त्ति-पूजक थे।

कहा जाता है कि ह० मुहम्मद खतना किए हुए और नाभी कटे हुए उत्पन्न हुए थे। कुछ विद्वानों ने लिखा है कि जब्राईल फरिश्ते ने आकर उनकी खतना की थी और कुछ ने ऐसा लिखा है कि पैदा होने के सात दिन पश्चात् खतना कराई गई थी। ह० मुहम्मद अपनी माता के गर्भ में ही थे कि उनके पिता का देहान्त† हो गया।

जब ह० मुहम्मद ६ वर्ष के हुए तो वह एक दिन अपनी माता के साथ मदीने से आ रहे थे कि रास्ते में ही उनकी माता का भी देहान्त हो गया। अब उनके पालन-पोषण का भार उनके दादा पर आ पड़ा, किन्तु वह भी दो वर्ष ही पालन-पोषण कर पाए थे कि उनकी भी मृत्यु हो गई। उनके चचा अबुतालिब ने उनका पालन-पोषण करना आरम्भ कर दिया। अबुतालिब के १० बेटे थे, किन्तु वह ह० मुहम्मद से भी अपने पुत्रों जैसा ही प्रेम करते थे।

ह० मुहम्मद अपने चचा की भेड़-बकरियां जंगल में चराने जाया करते थे। जब वह दस वर्ष के हुए तो जब्राईल और मैकाईल

---

*कुछ ने जन्म तिथि २६ अगस्त सन् ५७० ई० लिखा है।

†इसके विषय में भी मतभेद है। कुछ ने लिखा है कि आयु ७ माह की थी जब पिता का देहान्त हुआ और कुछ ने यह लिखा है कि वह दो वर्ष के थे, जब उनके पिता की मृत्यु हुई।

फरिश्तों ने उनका सीना चीर कर दया और प्रेम का खून उनके अन्दर भर दिया था। एक बार पहले भी, जब वह चार वर्ष के थे तब भी उनका सीना इसी प्रकार उन्हीं फरिश्तों ने चीरा था। इसका खुलासा विवरण हम पीछे 'चमत्कार' शीर्षक में लिख आये हैं।

इसी प्रकार भेड़-बकरी चराते हुये उनकी आयु २२ या २३ वर्ष की होगई और उनके लिखाने-पढ़ाने की ओर किसी ने कोई ध्यान न दिया—इस प्रकार वह उम्मी* (अनपढ़) रह गये।

ह० मुहम्मद नें श्रीमती खदीचा के यहां नौकरी करली। श्रीमती खदीचा मक्के शहर की एक धनी व्यापारिनी थीं। वे दो बार की बेवा और कई बच्चों की माँ थीं। वे अरब में ताहिरा के नाम से प्रसिद्ध थीं। ह० मुहम्मद उनकी भेड़-बकरी चराते रहे। उनके काम से वह अति प्रसन्न हुईं और फिर वह उन्हें सामान देकर काफिले के साथ दूसरे देशों में भेजने लगीं। इस व्यापार के सम्बन्ध में ह० मुहम्मद को श्याम, यमन, बसरा इत्यादि देशों में जाकर वहां के रीति-रिवाज और दूसरे हालात, जानने तथा जांचने के अवसर मिलते रहे। ह० मुहम्मद काफी बुद्धिमान, चतुर, समझदार और दूरदर्शी पुरुष थे और साथ ही वह अत्यन्त ईमानदार, स्पष्ट और व्यवहार कुशल थे।

श्रीमती खदीचा के साथ निकाह करने के लिये कुछ लोगों ने उनसे कहा था, किन्तु उन्होंने उन सबको इन्कार कर दिया था। जब ह० मुहम्मद की आयु २५ वर्ष की हुई और श्रीमती खदीचा की आयु ४० वर्ष की होगई तो श्रीमती खदीचा ने स्वयं ह० मुहम्मद से निकाह करने की इच्छा प्रकट की। मुहम्मद साहब ने प्रसन्नता पूर्वक इस बात को स्वीकार कर लिया और निकाह होगया। श्रीमती खदीचा ने अपना समस्त माल असबाब अपने पति को सौंप दिया और ह० मुहम्मद ने अपने व्यापार का सिलसिला पहले की भांति चालू रक्खा। जब तक

---

*हकीम नूरुद्दीन ने अपनी किताब से शब्द उम्मी का यह विवरण दिया है कि मक्के का दूसरा नाम उम्मीउल करा है और ह० मुहम्मद वहां के रहने वाले थे इसलिए वह उम्मी कहलाते हैं।

श्रीमती ख़दीचा ह० मुहम्मद के निकाह में रहीं उस समय तक ह० मुहम्मद ने कोई दूसरा निकाह नहीं किया।

ह० मुहम्मद मक्के शहर से बाहर हीरा* पर्वत की एक गुफा में बहुधा ईश्वर की उपासना के लिये जाया करते थे। अतः जब उनकी आयु ४० वर्ष की हुई तो उसी गुफा मे वही दोनों फरिश्ते अर्थात् जब्राईल और मैकाईल आये। उन्होंने फिर तीसरी बार उनका सीना चीरा♂ और उनकी पीठ पर नबी होने की मौहर लगाकर चले गये। ह० मुहम्मद घबराये हुये घर आये और यह सब वृत्तांत अपनी धर्मपत्नी को सुनाया। उन्होंने इस घटना को सत्य मान कर विश्वास कर लिया और यह सब घटना अपने चचेरे भाई चिरकाविन नोफिल को सुनाई। वह ईसाई था और तौरेत तथा इन्जील को भली-भांति जानता था। उसने उस आने वाले का नाम जब्राईल फरिश्ता बतलाकर इस प्रकार समझाया कि वह ईश्वर के यहां से पैगम्बरों और रसूलों के पास वही (ईश्वर वाणी) लाने पर नियत है। पहले वही फरिश्ता ह० मूसा के पास भी वही लाया करता था। यह सुनकर श्रीमती ख़दीचा सन्तुष्ट हुईं और वह हजरत के नवी होने पर ईमान लाईं। इसके साथ ही उन्होंने इस घटना की खबर सारे शहर मे भी खूब फैलाई।

इस प्रकार ह० मुहम्मद जब ईश्वर के पैगम्बर बन गये तो लिखा है कि जब्राइल का उनके पास वही लेकर आना-जाना आरम्भ होगया। ह० मुहम्मद को जिस समय जिस वही की आवश्यकता होती थी, उसी समय जब्राईल वही लेकर तुरन्त आजाया करता था। ह० मुहम्मद ३ वर्ष तक बराबर शांति के साथ लोगों को ईश्वर की एकात्मकता (तौहीद) की शिक्षा देते रहे और इस्लाम मत ग्रहण कराने के लिये बराबर प्रयत्न करते रहे। कहते हैं कि इस समय में केवल ४ व्यक्ति अर्थात् श्रीमती ख़दीचा, जैद, अबुबक्र और अली उन पर ईमान लाकर मुसलमान बने। इसके पश्चात् भी उन्होंने कई वर्ष तक इस्लाम मत का प्रचार किया, किन्तु उन्हे कोई विशेष सफलता प्राप्त न हुई, केवल ४० व्यक्तियों ने उन्हे ईश्वर का नवी और पैग़म्बर माना और ईमान लाये।

*मक्के से तीन मील की दूरी पर हीरा नाम का एक पर्वत है।

♂इसका विवरण भी पीछे 'चमत्कार' शीर्षक में लिख आये हैं।

जिन दिनों ह० मुहम्मद ने अपने इस्लाम मत का प्रचार आरम्भ किया था, उन दिनों अरब देश में मूर्त्ति पूजकों का प्रभाव था। उनके सामने कोई मुँह खोलने का साहस नही कर सकता था। प्रारम्भ में तो ह० मुहम्मद अपना प्रचार गुप्त रूप से करते रहे किन्तु जब वह अधिक समय तक उसको गुप्त न रख सके तो उनके प्रचार का सब भेद मूर्त्तिपूजकों, यहूदियों और ईसाइयों पर खुल गया। वह सब लोग उन्हें भांति-भाति के कष्ट देने लगे। ह० मुहम्मद ने मुसलमानों को कष्टों से बचाने के लिये उन्हें मक्का से मदीने भेज दिया। लिखा है कि जब ह० मुहम्मद की आयु पचास वर्ष की हुई तो उसी जब्राईल फरिश्ते ने चौथी बार आकर उनका सीना चीर कर साफ किया और ऊपर आकाश पर ईश्वर से भेंट कराने के लिए बर्राक पर चढ़ाकर लेगया। इसका पूरा विवरण भी हम 'चमत्कार' शीर्षक में लिख आये हैं।

ह० मुहम्मद ईश्वर से विदा होकर उसी रात मे फिर मक्का शहर मे उसी मकान मे आगये, जहां से गए थे।

प्रातः होते ही ह० मुहम्मद ने इस चमत्कार की घटना को ह० अबुबक्र से कहा। उन्होंने इस घटना पर पूर्ण रूप से विश्वास करके इसकी सचाई की पुष्टि करदी। इसके पश्चात् यह घटना सारे मक्के शहर मे फैल गई। कुछ लोगों ने इस घटना को सही मानकर उस पर विश्वास किया और बहुत से लोगों ने इसे मनघड़न्त और बनावटी जानकर हँसी उड़ाई।

कहते हैं कि जब ह० मुहम्मद की यह शबेमेराज की घटना इधर-उधर फैलकर प्रसिद्ध होगई तो कुछ लोग उन पर ईमान लाकर इस्लाम मत मे सम्मिलित होने लगे। अतः थोडे ही समय मे मुसलमानों की संख्या २०० और ३०० के बीच होगई। दूसरे लोग ह० मुहम्मद और उनके अनुयाइयो को भांति-भांति से तंग करने लगे, उनके शत्रुओं में एक व्यक्ति अबुजुहल था। वह और उसकी पार्टी के लोग ह० मुहम्मद को जान से मारने के षडयन्त्र रचने लगे। उनके इन षडयन्त्रों का पता ह० मुहम्मद को चल गया। उन्होंने अपने मित्रों (साहबा) से इसके विषय में सम्मति ली और साथ ही एक आयत इस विषय की उतर

आई "कि मक्का छोड़कर मदीने की ओर चले जाओ और हिजरत कर जाओ।"

ह० मुहम्मद ने मुसलमानों को पहिले ही मदीने भेज दिया था। अतः वह १२ सितम्बर सन् ६२२ ई० की रात को ह० अबूबक्र को साथ लेकर चुपके से मक्का छोड़कर मदीने की ओर चल दिये। इसी रात को अबुजुहल और उसकी पार्टी ह० मुहम्मद के मकान पर उन्हें मारने के लिये पहुँची, किन्तु जब वह उन्हें वहां न मिले तो वह भी मदीने की ओर चल पड़े। ह० मुहम्मद ने उन्हें पीछे आता देखकर अपने को एक गार में छिपा लिया। लिखा है कि उस गार पर मकड़ी ने आकर जाला तान दिया और कबूतरों ने अण्डे दे दिये ताकि शत्रुओं को उनके वहां छिपने का सन्देह न रहे। शत्रु वहां आये और देखकर चले गये। ह० अबुबक्र और ह० मुहम्मद उस गुफा में तीन दिन तक रहे। जब खतरा टल गया तो वहां से निकलकर २५ सितम्बर सन् ६२२ ई० को यसरब पहुंच गये। इसी तिथि से यसरब का नाम मदीना प्रसिद्ध होगया।

ह० मुहम्मद ने मदीने पहुँचकर मुसलमानों और यहूदियों में मेल-मिलाप कराकर उनमें कुछ यह शर्तें लिखित रूप में करादीं—

मुसलमान और यहूदी एक जाति होंगे। दोनों जातियां अपने अपने दीन पर रहेंगी और एक जाति दूसरी जाति को कोई कष्ट न देगी। लड़ाई में एक जाति दूसरी जाति की सहायता करेगी। यदि मदीने पर कोई हमला करेगा तो दोनों जातियां मिलकर उसका मुकाबला करेंगी। जब सन्धि होगी तो दोनों जातियां मिलकर सन्धि करेंगी। दोनों जातियों में जब कोई झगड़ा होगा तो उसका फैसला ह० मुहम्मद करेंगे।

ह० मुहम्मद मदीने में पहुँचकर भी कभी चैन मे न रहे। मक्के के कुरैश लोग उनके साथ छेड़छाड़ करते रहे। हिजरत के दूसरे वर्ष मुसलमानों और कुरैशों में बदर के मैदान में लड़ाई हुई। इस लड़ाई में मुसलमानों को सफलता प्राप्त हुई। इस हार से कुरैश जाति का सिर झुक गया और वह बदला लेने के प्रयत्न करने लगी। अतः मदीने से तीन मील की दूरी पर उहद के मैदान में कुरैश सेना जम गई।

मुसलमानों ने मुक़ाबला किया। इस लड़ाई में ह० मुहम्मद के चार दांत टूट गये तथा बहुत घायल हुये। इस युद्ध मे मुसलमानों की काफी हानि हुई और बहुत से मुसलमान मारे गये। यहूदी लोगों ने गुप्त रूप से कुरैशों की सहायता की। ह० मुहम्मद ने उनसे उस समझौते के तोड़ने का कारण पूछा। इस पर यहूदियों और मुसलमानों मे लड़ाइयां हुई। यहूदियों को मार-पीट कर मदीने से निकाला गया और वह खैबर में जाकर बस गये। मदीने में यहूदियों की एक उप जाति बनुकरीजा रह गई थी। उन्होंने मुसलमानों से सन्धि करली थी। उस उप जाति ने भी कुरैशों से अपना गुप्त मेल कर लिया था। अतः बनुकरीजा के समस्त योद्धाओं का वध कर दिया गया। उनके बच्चों और स्त्रियों को दास तथा दासियां बनाया गया। उनके माल को लूट कर मुसलमानों में बांट दिया गया। इस प्रकार मदीने से यहूदियों को नष्ट कर दिया गया।

हदीबिया के मैदान मे मुसलमान और कुरैशों के बीच दस वर्ष के लिये सन्धि होगई थी। कुरैशों ने उस सन्धि को बीच मे ही तोड़ दिया था। इस पर कुरैशों और मुसलमानों मे फिर लड़ाई हुई। मक्के को पराजित किया गया। काबे के मन्दिर की मूर्तियों को तोडा गया और वहां के लोगों को मुसलमान बनाया गया। इसके पश्चात् हनैन का युद्ध हुआ जिसमे मुसलमानों की काफी हानि हुई। कहां तक कहा जाये मुसलमानों के काफिरों, कुरैशों, यहूदियों और दूसरी 'जाति वालों से सत्ताइस प्रसिद्ध युद्ध हुये। उनमे से बदर, उहद, खदक, बनी करीजा, बनीमुस्तलक, खैबर, तायफ आदि नाम के युद्ध अधिक प्रसिद्ध हैं। इन युद्धों मे ह० मुहम्मद स्वयं सम्मिलित हुए। वह कई बार घायल हुए और उनकी जान के लाले पड़े। इन युद्धों के अतिरिक्त और भी युद्ध हुए, जिनमें केवल सेना को ही भेजा गया। इन सब युद्धों की सख्या ८१ लिखी है।

समस्त अरब देश पर मुसलमानों का अधिकार होगया और वहां के रहने वाले सब मुसलमान बन गये या बना लिये गये। ह० मुहम्मद खिलाफत का कार्य भली भांति चलाने लगे।

सन् १० हिजरी मे ह० मुहम्मद ने १ लाख से अधिक मुसलमानों के साथ हज किया। ह० मुहम्मद ने उस समय मुसलमानों से यह कहा

कि ईश्वर की पुस्तक को दृढ़ता के साथ पकड़े रहना। मेरे पश्चात् कोई और नबी या रसूल नहीं आयेगा और न ही कोई दूसरी पुस्तक आयेगी और न ही कोई उम्मत उत्पन्न होगी। याद रक्खो हे मुसलमानों! प्रलय के दिन तुम्हारे विषय में मुझसे पूछा जायेगा। उस समय तुम क्या उत्तर दोगे? इस प्रश्न पर चारों ओर से आवाजें आने लगीं कि आपने ईश्वर का सन्देश हम तक पहुंचा दिया है और रसूल होने का अधिकार पूर्ण कर दिया है। ह० मुहम्मद ने मुसलमानों से यह भी कहा कि आप लोग ईश्वर की उपासना करते रहना। पांच वक्त नमाज़ पढ़ना। एक माह के रोज़े रखना। यदि आप लोग यह कार्य करते रहेंगे तो आप लोग अवश्य ही स्वर्ग मे प्रवेश पा सकेंगे। लिखा है कि उसी समय एक यह आयत उतरी—आज मैंने तुम्हारे दीन को पूर्ण कर दिया है और तुम पर अपना ऐहसान किया और तुम्हारे लिये इसलाम दीन को पसन्द किया। उसी दिन ह० ने १६३ ऊंटों को अपने हाथ से बलिदान किया और ३७ ऊंट ह० अली ने उनके नाम से बलिदान किये।

इस हज करने के कुछ समय पश्चात् ह० मुहम्मद का स्वास्थ्य गिर गया। दर्द पहलू का दौरा पड़ गया। सिर के दर्द और बुखार के चक्कर में पड़ गये। होते-होते उनकी बीमारी बढ़ती चली गई, प्रायः बेहोशी रहने लगी, दर्द और बेचैनी ज्यादा बढ़ती चली गई। काफी दिनों तक बीमार पड़े रहे। अन्त में बीबी आयशा की रान पर सिर रखकर मृत्यु की कठिनाइयों को भोग कर स० ११ हिजरी में ६३ वर्ष की आयु में इस संसार से चल बसे। वह मदीने में दफन किये गये।

ह० मुहम्मद का कद मध्यम, मस्तक चौड़ा, नाक लम्बी और ऊंची, दांत साफ और चमकीले, सिर और दाढ़ी के बाल पेचीदा थे। उनकी भुजाओं, कन्धों और छाती पर काफी बाल थे, उनका रंग गंदुमी था और आवाज में कुछ भारीपन था। बात करते समय वह बहुत मधुर भाषा बोलते थे। स्वभाव कोमल था, क्रोध कम आता था। दूसरों के साथ दिल खोलकर, मिलते थे; व्यर्थ बातें करना पसन्द न करते थे। जब बोलते तो एक बात को कई बार दोहराया करते थे। खिलखिला कर कभी नहीं हँसते थे, वरन् हल्का मुस्करा दिया करते थे। वह प्रायः हरे रंग के वस्त्र पहना करते थे, किन्तु जुमे के दिन लाल रंग

की चादर ओढ़ कर सिर पर सात हाथ लम्बी पगड़ी बांधा करते थे। प्रतिदिन के वस्त्र चादर, कुर्ता और तहमद था। प्रत्येक रात को दाहिनी आंख मे तीन बार और बाईं आंख में दो बार सुरमा लगाया करते थे। इत्र और खुशबूदार तेल लगाने का अधिक शौक था। जो कार्य करते प्रथम दाहिनी ओर से बिसमिल्लाह कहकर आरम्भ किया करते थे। छोटी अगुली मे एक चादी की अगूठी, जिस पर अल्लाह और मुहम्मद रसूलल्हा लिखा हुआ था, पहना करते थे। मुर्ग का मांस और सिरके के साथ रोटी खाने का अधिक शौक था। हलुवा, जैतून का तेल और कद्दू भी बहुधा खाते थे। जादू के प्रभाव और नजर लग जाने से डरते थे। अपने घर का कार्य अधिकतर अपने हाथ से ही किया करते थे। युद्ध कौशल से अच्छी जानकारी रखते थे। वह एक अच्छे घुड़सवार थे, बच्चों से अधिक प्रेम करते थे। छूतछात की बीमारियों से बहुधा बचते थे।

हदीसों और दूसरी बहुत सी पुस्तकों मे उनकी सिद्धि करामात और चमत्कारों के विषय मे बहुत अधिक लिखा हुआ मिलता है। चमत्कारों और उनके प्रति प्रेम के विषय में हम पीछे काफी लिख आये हैं।

स्त्रियां

ह० मुहम्मद की स्त्रियों और सन्तानों के विषय मे भी जानकारी करा देना कुछ अनुचित न होगा। अतः कुछ पुस्तकों मे स्त्रियों की संख्या १४, कुछ में ६ और कुछ मे ११ और किसी किसी पुस्तक में यह संख्या १६ तक लिखी है। किन्तु जिस पर अधिक विद्वान् एक मत है, वह संख्या ११ है।

१—श्रीमती खदीचा—यह दो बार की बेवा और कईं एक बच्चों की मां थीं। ह० मुहम्मद पहले इनके यहां नौकर रहे और फिर इनसे ५९५ ई० में निकाह होगया। निकाह के समय मुहम्मद साहब की आयु २५ वर्ष और खदीचा की आयु ४० वर्ष थी। इब्राहीम को छोड़कर ह० की सब सन्तानें उन्हीं से उत्पन्न हुई थीं। यह ह० मुहम्मद के निकाह

में २५ वर्ष तक रहीं। उनके जीवन में हज़रत ने कोई दूसरा निकाह नहीं किया। ख़दीचा का देहान्त ६५ वर्ष की उमर में हुआ था।

२—श्रीमती सौदा—यह भी बेवा थीं और बदन की कुछ भारी थीं। खदीचा के मरने के कुछ दिनों पश्चात् इनसे निकाह कर लिया था। जब उनकी कुछ अधिक आयु होगई तो ह० मुहम्मद ने उन्हें तलाक देने की सोची। इस पर सौदा ने कहा 'या रसूलिल्हा मुझे पति की इच्छा नहीं है, किन्तु यह चाहती हूं कि स्वर्ग में आपकी स्त्रियों में शामिल रहूँ। इसलिये आप मुझे तलाक न दें। मैं अपनी वारी आयशा को देती हूँ। हज़रत ने यह स्वीकार कर लिया और तलाक न दी। उनकी वारी का दिन आयशा की वारी में सम्मिलित होने लगा।

३—श्रीमती आयशा—यह ह० अबुबक्र की बेटी थीं और ह० मुहम्मद की खान्दानी भतीजी थीं। मुहम्मद साहब की स्त्रियों में यही एक ऐसी थीं, जिनसे कुँवारे पन में निकाह हुआ था। शेष सब निकाह बेवा स्त्रियों से हुए थे। जब यह निकाह हुआ तो ह० मुहम्मद की आयु ५० वर्ष और आयशा की आयु ६ वर्ष की थी। जब वह ६ वर्ष की हुई तो विदा होकर हज़रत के घर आगई थीं। जब वह विधवा हुई तो उनकी आयु केवल १८ वर्ष की थी। ह० मुहम्मद सब स्त्रियों की अपेक्षा इनसे अधिक प्यार करते थे। इनकी मृत्यु ६६ वर्ष की आयु में हुई। इनसे कोई सन्तान नहीं हुई थी।

४—श्रीमती हफ़सा—यह ह० उमर की बेटी थीं। यह भी बेवा थीं। इनके निकाह की बात-चीत ह० अबुबक्र से चल रही थी। उन्होंने इस कारण निकाह से इन्कार कर दिया था कि ह० मुहम्मद इनसे स्वयं निकाह करना चाहते थे। ह० उस्मान ने भी इसी कारण इनसे निकाह करने से इन्कार कर दिया था। ह० मुहम्मद से इनका निकाह होगया। उन्होंने एक बार उन्हें तलाक भी देदी। यह बात ह० उमर को बुरी लगी। अतः उसी समय ईश्वर के यहां से यह आयत उतर आई—उनको स्त्री रक्खा जाये। फिर हज़रत ने ऐसा ही किया। इनकी मृत्यु ६३ वर्ष की उमर में हुई।

५-श्रीमती जैनब (प्रथम)-यह पहले दो बार बेवा हो चुकी थी। तीसरी बार ह० मुहम्मद ने इनसे निकाह किया। वह निकाह के पश्चात् केवल ८ महीने तक जीवित रहीं। ह० मुहम्मद के जीवन में श्रीमती ख़दीचा और श्रीमती जैनब (प्रथम) की मृत्यु हुई थी। शेष सब स्त्रिया उनकी मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहीं।

६-श्रीमती उम्मे सलमा-यह भी पहले बेवा और कई बच्चों की मां थीं। इनसे भी ह० अबुबक्र निकाह करने के इच्छुक थे। किन्तु जब उन्होंने ह० मुहम्मद की रुचि देखी तो उन्होंने अपना इरादा छोड़ दिया। इनकी मृत्यु ८६ वर्ष की उम्र में हुई थी।

७-श्रीमती जैनब (द्वितीय)-यह ह० मुहम्मद की फूफी की बेटी थीं। उन्होंने अपने मुतबन्ने (दत्तक पुत्र) जैद बिन हारसा से उनका निकाह करा दिया था। जैद बिन हारसा ने उन्हे कुछ दिनों पश्चात् तलाक दे दी थी। इद्दत के दिन पूरे होजाने पर ह० मुहम्मद ने उनके पास निकाह का सन्देश भेजा किन्तु वह इसके लिये तैयार न हुईं और यह कहला भेजा कि मै अभी कुछ नहीं कह सकती। एक दिन नमाज के समय उन्होंने ईश्वर से यह प्रार्थना की कि मुझसे तेरे रसूल निकाह करना चाहते है यदि मै इस योग्य हूँ तो मेरा निकाह उनसे करदे। इधर ह० मुहम्मद पर इस विषय की एक आयत उतर आई—बस जैद ने अपनी आवश्यकता पूरी करली। हे मुहम्मद! जैनब को मैंने तेरी बीबी बनाया ताकि मुसलमानों पर अपने मुतबन्ना बेटों (दत्तक पुत्रों) की बीवियों को अपनी बीवी बनाने में तंगी न रहे। जब वह इनसे अपनी इच्छा पूर्ण करे चुकें और ईश्वर का हुक्म तो होकर ही रहता है। (सु० ३३, आ० ३६)

इस आयत के उतरते ही ह० मुहम्मद ने श्रीमती जैनब के पास यह शुभ-सन्देश भेजा। इस सन्देश को सुनते ही वह प्रसन्न होकर बोली कि या रसूलल्हा निकाह पढ़िये। इस पर हज़रत ने उत्तर दिया कि मेरा तुम्हारा निकाह ऊपर आकाश पर अल्लाह ने पढ़ दिया है और जब्राईल उसका गवाह है। इस निकाह पर लोगों ने कुछ आपत्ति की और यह कहा कि हज़रत ने यह अच्छा नहीं किया कि मुतबन्ने की स्त्री से विवाह

कर लिया। इस आपत्ति को दूर करने के लिये अल्लाह मियां ने यह आयत उतारी जो बात ईश्वर ने नबी के लिये ठहरादी है उसमें नबी पर कुछ तंगी नहीं। इसी प्रकार ईश्वर का दस्तूर रहा है। उन लोगों में जो पहले हो गुजरे हैं। मुहम्मद तुम में से किसी का बाप नहीं है, वह तो ईश्वर का भेजा हुआ रसूल और अन्तिम नबी है।

(सु० ३३, आ० ३७ और ३९)

इस आयत के उतरते ही सब लोग सन्तुष्ट होगए। श्रीमती जैनब का पचास वर्ष की आयु मे देहांत हुआ।

८—श्रीमती जोयरया—यह लड़ाई में बन्दिनी बनाकर लाई गई थीं। जब लूट के माल का विभाजन होने लगा तो यह साबित बिन कैस को दी गई। साबित ने उनसे यह कह रक्खा था कि जब भी तुम मुझे ९०) रुपये दे दोगी, मैं तुम्हे स्वतन्त्र कर दूंगा। अतः वह ह० मुहम्मद के पास उस रक़म के लिए आई। ह० मुहम्मद ने उनसे कहा कि मैं यह रकम देने के लिये तैयार हू। यदि तुम मुझसे निकाह करलो। वह तैयार होगईं और निकाह होगया। लिखा है कि सब स्त्रियों की अपेक्षा यह अधिक सुन्दर थीं। निकाह के समय आयु २० वर्ष के लगभग थी। इनकी मृत्यु ६५ वर्ष की आयु में हुई।

९—श्रीमती उम्मे हबीबा—जब इनका पति ईसाई होगया तो ह० मुहम्मद ने इनसे निकाह कर लिया।

१०—श्रीमती सफ़िया—यह भी लड़ाई में बन्दिनी बनाकर लाई गई थीं। इनकी आयु १७ वर्ष की थी, जब हज़रत ने इनसे विवाह किया। इनकी मृत्यु ६० वर्ष की आयु मे हुई।

११—श्रीमती मैमूना—यह भी पहले बेवा थीं। एक दिन ह० मुहम्मद मक्का आरहे थे तो मार्ग में ऊंट पर चढ़ी हुई श्रीमती मैमूना मिल गईं। हज़रत ने उन्हें देखकर उनसे कुछ बात-चीत की और निकाह करने को कहा। वह राजी होगई और निकाह होगया। इनकी मृत्यु ८१ वर्ष की आयु में हुई।

कुरान में ईश्वर ने उनकी स्त्रियों के विषय में यह आज्ञा जारी की थी, और तुम्हें उचित नहीं कि रसूल को कष्ट पहुंचाओ और न यह कि तुम नबी कि स्त्रियों से उनके पीछे कभी निकाह् करो। बेशक, यह अल्लाह् के सामने एक बड़ा पाप है। (सु० ३३, आ० ५१)

बांदियां (दासियां)

कुछ विद्वानों ने ह० मुहम्मद की बांदियों की संख्या १४ तक बतलाई है। किन्तु उनमे से पांच यह तो ऐसी हैं कि जिन पर सब सहमत हैं:—

(१) मारिया। (२) रिहाना। (३) उम्मे ऐमन। (४) सलमा। (५) बरसबी। इन बांदियों में से केवल मारिया के पेट से ह० मुहम्मद द्वारा ह० इब्राहीम उत्पन्न हुए थे और किसी बांदी से कोई सन्तान नहीं हुई थी।

सन्तानें

ह० मुहम्मद के तीन बेटे कासिम, अबदुल्ला और इब्राहीम थे। चार बेटियां जैनब, रुकय्या, उम्मे कलसूम और फातमा थीं। इब्राहीम को छोड़कर यह सब सन्तानें श्रीमती खदीजा से उत्पन्न हुई थीं। लड़के तो छोटी उमर में ही मर गए थे, किन्तु बेटियां जीवित रही थीं। उम्मे कलसूम का निकाह् ह० उस्मान से और फातमा का निकाह् ह० अली से हुआ था और शेष दोनों लड़कियों का निकाह् और दूसरे लोगों से हुआ था। ह० हसन और हुसैन फातमा के ही लड़के थे।

ह० मुहम्मद के जीवन-चरित्र के विषय में कुछ मतभेद:—

विद्वानों की सम्मति में जहां तक देखा गया है। ह० मुहम्मद के जीवन-चरित्र के विषय में निम्नलिखित बातों पर मत-भेद पाया जाता है। ऐसी दशा में हमारे सामने यह कठिनाई आती है कि इनमे से किसको प्रामाणिक और किसको अप्रामाणिक माना जाये—

१— उत्पत्ति की तिथि, मास और वर्ष में भिन्नता है।

२—उनके पिता की मृत्यु के विषय में मतभेद है। कुछ कहते हैं कि वह गर्भ में थे जब उनके पिता मरे। कुछ कहते हैं कि वह दो वर्ष के थे और कुछ कहते हैं कि वह सात महीने के थे जब पिता मरे।

३-उनकी खतना के विषय में भी मतभेद हैं। कुछ कहते हैं कि खतना किए हुए ही उत्पन्न हुए थे, कुछ ने लिखा है कि उनकी खतना जन्म से सातवें दिन कराई गई थी।

४—नबी होने से पहले वह किस धर्म को मानते थे, इसमें भी मतभेद है। किसी ने कहा कि कोई दीन नहीं मानते थे। किसी ने कहा कि यहूदी मत के मानने वाले थे। किसी ने कहा कि ईसाई मत को मानते थे और किसी ने कहा कि वह मूर्ति-पूजक थे।

५—शबेमेराज की तिथि, मास और वर्ष में मतभेद है। कोई आत्मिक, कोई शारीरिक और मानसिक और कोई स्वप्नावस्था बतलाता है।

६—वह किस-किस युद्ध मे स्वयं सम्मिलित हुये इसमें भी मतभेद है।

७—उनकी स्त्रियों, दासियों और सन्तानों के विषय में काफी मतभेद है।

८—उनकी मृत्यु की तिथि, मास और वर्ष में मतभेद होने के अतिरिक्त उनकी आयु में भी मतभेद है। किसी ने मृत्यु के समय आयु ६० वर्ष, किसी ने ६३ वर्ष और किसी ने ६५ वर्ष तक लिखी है।

साहबा (मित्र)-Companions—यों तो ह० मुहम्मद के बहुत से मित्र थे किन्तु उनमें से ह० अबुबक्र, ह० उमर, ह० उस्मान और ह० अली प्रमुख थे। इन चारों में से ह० अबुबक्र और ह० उमर उनके स्वसुर थे और ह० उस्मान और ह० अली उनके दामाद थे।

ह० अबुबक्र—ह० मुहम्मद की मृत्यु के पश्चात् यह ६२ वर्ष की आयु में खलीफा बने। दो वर्ष से कुछ ऊपर खिलाफत का कार्य

किया। कहा जाता है कि इन्हे एक यहूदी ने जहर देकर मार दिया था और यह भी कहा जाता है कि वह बुखार से मरे थे।

ह० उमर—यह ६३४ ई० मे खलीफा बने। इन्होंने इस्लाम के प्रसार मे खूब योग देकर इस्लाम राज्य का प्रसार किया। एक दिन नमाज पढ़ते हुये एक व्यक्ति फिरोज ने उन पर छूरे से आक्रमण करके उन्हें घायल कर दिया। इसके पश्चात् वह ७ दिन जीवित रहकर चल बसे। उन्होंने १० वर्ष से कुछ अधिक समय तक खिलाफत का कार्य चलाया।

ह० उस्मान—बहुत लड़ाई झगडे के पश्चात् खलीफा बने। वर्तमान कुरान इन्हीं का लिखवाया हुआ है। इनके समय में मुसलमानों में पारस्परिक खिलाफत के विषय पर षडयन्त्र चलते रहे। कुछ विद्रोहियों ने उनके मकान पर आक्रमण करके ६५५ ई० में उनका वध कर दिया।

ह० अली—ह० उस्मान के पश्चात् ह० अली खलीफा बने। उनके समय में भी खिलाफत के विषय पर बड़े लडाई-झगड़े रहे। मुसलमानों में 'खारजी' नामक पार्टी बन गई जो ह० अली और अमीर माविया इन दोनों की खिलाफत से अप्रसन्न थी। अतः इस पार्टी के कुछ लोगों ने यह निश्चय किया कि ह० अली और अमीर माविया दोनों को मार दिया जाये। इसी दल के एक व्यक्ति ने मस्जिद में जाकर ह० अली पर तलवार से आक्रमण करके उन्हें घायल कर दिया। इसके पश्चात् तीन दिन तक वह जीवित रहे। तत्पश्चात् चल बसे। ह० अली के दो लडके हसन और हुसैन थे। फिर खिलाफत और इमामत का झगड़ा इनमें भी चलता रहा।

वेदान्त

वेदान्त

वेदान्त मत का ही दूसरा नाम अद्वैतवाद मायावाद और शंकर मत है। इसका प्रारम्भ भी भारतवर्ष से ही होना सिद्ध होता है। वेदान्त मत की विचार-धारा का प्रसार इस देश में आठवीं शताब्दी से हुआ था। इस कारण इसको लगभग १२०० वर्ष प्राचीन कह सकते हैं।

इस मत के प्रचलित होने से पहले इस देश मे बौद्धों और जैनियों का अधिक प्रभाव था। वह दोनों ईश्वर की सत्ता से इन्कार करते थे। उसी समय इस देश में उपनिषदों के विषय मे दो विचार धारायें उत्पन्न होकर प्रचलित होरही थीं। एक विचार धारा वाले अद्वैतवादी Absolutists थे और दूसरे द्वैतवादी Dualists कहलाते थे। शकर महाराज के महा गुरु गौड़पादाचार्य और गुरु गोविन्दाचार्य बौद्ध और जैन धर्मों के विरोधी थे। गौड़पादाचार्य ने मड्डूक उपनिषद् पर कारिका नाम की एक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक में उन्होंने बौद्धों और जैनियों के सिद्धान्तों का विरोध करते हुये उपनिषदों, भगवत्गीता और ब्रह्मसूत्र की शिक्षा पर अद्वैतवाद की नींव रक्खी थी। उसी समय दक्षिण मे कुमारिल भट्ट (८०० A D) एक और विद्वान थे। उन्होंने भी उन दोनों मतों का खडन करते हुए अद्वैतवाद का प्रचार किया, किन्तु उन्हें उसमें कोई विशेष सफलता न मिली।

शंकर महाराज अपने गुरु से पढ़-लिख कर जब निवृत्त हुए तो उन्होंने साख्य, न्याय, वैशेषिक और पूर्व मीमांसा दर्शनों, बौद्ध तथा जैन मतों का खडन करते हुए अपने गुरु की भांति अद्वैतवाद का प्रचार करना आरम्भ किया।

शकर महाराज के समय में इस देश के उत्तरी भाग में बौद्ध और दक्षिणी भाग में जैन धर्म की तूती बोल रही थी। बड़े-बड़े राजा महाराज बौद्ध या जैन धर्मों के अनुयाई थे। उनके सामने कोई कुछ

बोलने का साहस नहीं कर सकता था। ऐसी दशा में शंकर महाराज ने भारतवर्ष के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक उन मतों का खंडन करते हुए भ्रमण किया। बौद्ध और जैनियों को शास्त्रार्थ के लिये चुनौती दी। उनके साथ बहुत से शास्त्रार्थ हुए जिनमे उन्हे बहुधा सफलता प्राप्त होती चली गई।

बौद्ध और जैन कपिल मुनि के सांख्य दर्शन के आधार पर कर्म योग की अपेक्षा सन्यास मार्ग को उत्तम समझे हुए थे। उनका ऐसा विश्वास था कि घर-बार छोड़कर और कर्मयोग त्याग कर ही सच्चा ज्ञान अर्थात् मोक्ष या निर्वाण प्राप्त हो सकता है। शंकर महाराज ने भी ज्ञान-प्राप्ति के लिये वैराग्य लेना आवश्यक बतलाया। उन तीनों विचार धाराओं की इस शिक्षा से इस देश के बड़े-बड़े राजे महाराजे और शूर वीर अपना-अपना राज पाठ त्याग कर और लंगोट बांधकर जंगलों में चले गये। इसका परिणाम यह हुआ कि यह देश अपनी शक्ति, अपना बाहुबल और अपनी वीरता खोकर निर्बल और शक्तिहीन होता चला गया। फिर एक दिन ऐसा आगया कि इस शिरोमणि देश को दूसरों के आधीन होकर लज्जित और नत-मस्तक होना पड़ा।

शकर महाराज ने अपनी विचारधारा का इस प्रकार प्रतिपादन किया कि ससार की समस्त वस्तुओं में केवल एक शुद्ध और नित्य पारब्रह्म परमेश्वर ही भरपूर है। मनुष्य की आत्मा भी वास्तव में पारब्रह्म का ही रूप है। आत्मा और परमात्मा की एकता का सच्चा ज्ञान प्राप्त किये बिना कोई मनुष्य निर्वाण या मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। श्री शंकर महाराज ने अपनी शिक्षा और प्रचार का आधार श्रुति, स्मृति, गीता, उपनिषद् और दूसरे आयरिश ग्रन्थों पर ही रक्खा। उन्होंने इन सब शास्त्रों की शिक्षा अद्वैतवाद ही सिद्ध करने की चेष्टा की थी। प्राचीन वैदिक धर्म वालों और नवीन वेदान्तियों में यह अन्तर होगया कि प्राचीन वैदिक धर्म वालों ने उन सब सत-शास्त्रों का प्रयोजन यह सिद्ध किया था कि ईश्वर और जीव भिन्न-भिन्न हैं। जीवात्मा नित्य है। इसके स्वाभाविक गुण ज्ञान और प्रयत्न हैं। इस विचार धारा को मानने से वह द्वैत वादी कहलाते थे। शंकर महाराज ने उन सब सत् शास्त्रों का प्रयोजन यह बतलाया कि जीव की कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं

है। किन्तु अविद्या ग्रस्त ब्रह्म ही जीव होजाता है। इसी का नाम द्वैत-वाद अर्थात् मायावाद है। कुछ विद्वानों ने ऐसा लिखा है कि शंकर महाराज ने द्वैतवाद का सिद्धान्त उस समय के अनुकूल उचित और लाभप्रद समझकर चलाया था।

लिखा है कि शकर महाराज को जब अपने प्रचार मे सफलता प्राप्त होती चली गई तो बहुत से बौद्ध और जैन अपने मतों को छोडकर शकर मत ग्रहण करते चले गए। बहुत से बौद्धों और जैनियों ने अपने २ मन्दिरों की मूर्त्तियां तोड़ दी थीं, बहुत सो ने अपनी मूर्त्तियों को अपमान से बचाने के लिये जगलों और पहाड़ों में दबा दिया था। वही मूर्त्तियां खुदाई होने पर आजकल कहीं कहीं निकल आती हैं। बहुत सी भिक्षुशालायें उजाड़ होगई थीं। शकर महाराज ने पाली और प्राकृत भाषाओं के स्थान पर संस्कृत भाषा को फिर जीवित किया। पंचदेव पूजा का रिवाज प्रचलित किया गया। भारत के चारों कोनों पर एक-एक मठ स्थापित किया गया। वर्णाश्रम व्यवस्था फिर से स्थापित की गई। शंकर महाराज के दस वर्ष के परिश्रम से बौद्ध और जैन मतों का पतन होता चला गया।

ब्राह्मण या पौराणिक मत का जोर होकर ब्रह्मा-Creater, विष्णु-Preserver और शिव-Destroyer की पूजा का जोर बढ़ना आरम्भ होकर ब्राह्मणों का फिर जनता पर प्रभाव बढ़ता चला गया। शंकर महाराज के पश्चात् क्षत्रिय राजाओं, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, माधवाचार्य, निम्बार्काचार्य और ज्ञानेश्वर आदि ने जैन और बौद्ध मतों को काफी हानि पहुँचाई। साथ ही इन आचार्यों ने अपने २ समय में मायावाद का भी खडन किया।

शंकर महाराज ने सन्यास मार्ग को मुक्ति का साधन बतलाकर बहुत से लोगों को सन्यासी बनाया और अपने एक अलग सन्यास संघ की स्थापना की। स्थान-स्थान पर सन्यासियों के लिये गद्दियां बनाकर उन्हें महन्तों के आधीन कर दिया गया। उन गद्दियों के नाम लाखों रुपये वार्षिक आमदनी की जायदादें होगई जहां पर महंत और सन्यासी लोग बड़े ठाठ-बाट से रहने लगे।

शंकर महाराज ने ईश्वर की भूली हुई सत्ता को फिर से जीवित किया। आत्मा और परमात्मा की एकता की शिक्षा दी। इस संसार को एक भ्रम बतलाया। शंकर महाराज के पश्चात् उनके शिष्यों मे कुछ मतभेद उत्पन्न होते चले गये, जिनका वर्णन हमने संक्षेप में आगे चल कर किया है। शंकर महाराज का सन्यासी संघ कुछ समय तक तो धर्म का प्रचार करता रहा, किन्तु फिर उसने धर्म-प्रचार आदि कार्यों को छोड़ कर केवल भक्ति मार्ग को ही मोक्ष का साधन समझा। सन्यासी लोग इधर-उधर से भीख मांग कर अपना निर्वाह करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि भिखमंगों की संख्या में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती चली गई।

शंकर मत के मानने वाले इस समय भी इस देश में कई लाख हैं। योरोप-अमेरिका आदि देशों मे भी इस मत का प्रभाव पाया जाता है। इस मत के विचारों का समर्थन करने वाले अच्छे २ विद्वान् हो चुके हैं और इस समय भी उपस्थित हैं। मुसलमानों का सूफ़ीइज्म वेदान्त मत की शिक्षा से ही प्रभावित हुआ था।

अद्वैतवाद के सिद्धान्त

अद्वैतवाद के कि जिसे वेदान्त, शंकर मत या मायावाद भी कहते हैं कुछ महत्वपूर्ण सिद्धान्त निम्नलिखित हैं:—

१—ब्रह्म और जीव—यह दोनों एक हैं।

२—समस्त संसार भ्रम और कल्पना है।

३—संसार में जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह सब ब्रह्म का ही भिन्न-भिन्न रूप है।

४—ब्रह्म के अतिरिक्त और किसी वस्तु की कोई सत्ता नहीं है और यह ब्रह्म अद्वितीय, अनादि और अनन्त है।

५—ब्रह्म शुद्ध, पवित्र और सच्चिदानन्द है। वह कोई कार्य नहीं करता और न ही किसी वस्तु को बनाता या बिगाड़ता है।

६—ब्रह्म में एक अलग शक्ति वर्तमान है जिसे माया, प्रकृति, अविद्या और अज्ञान के नाम से पुकारा जाता है। यह शक्ति ब्रह्म में अनादि है। वास्तव में ब्रह्म में यह शक्ति भ्रम मात्र तथा कल्पित है। जैसे रस्सी से साप की कल्पना होजाती है, इसी प्रकार ब्रह्म में यह माया शक्ति भ्रम रूप अर्थात् झूठी शक्ति है।

७—ब्रह्म में संसार के निमित्त कारण (इल्लते फाइली) और उपादान कारण (इल्लते मादी) वर्तमान हैं। जैसे मकड़ी बाहर से कोई वस्तु नहीं लेती वरन् अपने अन्दर से ही तार निकाल कर जाला बना लेती है और फिर उसी में खेलती कूदती है। ठीक इसी प्रकार ब्रह्म अपने अन्दर से ससार को बनाकर स्वयं उसमें रम जाता है।

८- जब ब्रह्म यह इच्छा करता है कि मैं बहुत से रूपों में प्रकट हो जाऊं तब तुरन्त यह रंग-बिरंगा संसार नाना रूपों में बन जाता है।

९- सुख-दुख और भय इत्यादि गुण जीव के नहीं वरन् शरीर हृदय और बुद्धि के हैं।

१०—जीव ब्रह्म की छाया है। जैसे शीशे के टूट जाने से छाया में कोई कमी नहीं आती इसी प्रकार जब तक अन्तःकरण है तब तक ब्रह्म की छाया रहती है। किन्तु जब अन्तःकरण नष्ट होजाता है तब जीव मुक्त होजाता है और फिर ईश्वर और जीव एक होजाते हैं।

११—छः वस्तुयें अनादि हैं। शुद्ध ब्रह्म, ईश्वर, जीव, माया या अविद्या, माया और ब्रह्म का पारस्परिक भेद। इनमें शुद्ध ब्रह्म तो अनन्त और अनादि है। शेष पांचों मौजूद तो रहती हैं, किन्तु ज्ञान प्राप्त होजाने पर नष्ट होजाती हैं।

१२—यह आवश्यक नहीं है कि जो वस्तु अनादि हो, वह अनन्त भी अवश्य हो।

१३—जिस जीव को जितना ज्ञान होजाता है, उसके अज्ञान का नाश चेतन ब्रह्म के सहारे से उतना ही होजाता है और शेष अज्ञान उसी प्रकार बना रहता है।

ब्रह्म

अद्वैत वादी ऐसा मानते हैं कि शुद्ध ब्रह्म सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वज्ञ, सर्व व्यापक, अद्वैत, अनादि और अनन्त है। उसके अतिरिक्त और किसी वस्तु की सत्ता नहीं है। ब्रह्म में एक शक्ति और है जिसे माया, प्रकृति अविद्या या अज्ञान कहते है। वह शक्ति न सत्य है और न असत्य। वरन् एक भ्रम और मिथ्या वस्तु है। शंकर के पश्चात् जब अद्वैत सिद्धान्तों पर मतभेद उत्पन्न होगया तो कई एक सम्प्रदाय बन गये। उनमें से निम्नलिखित सम्प्रदायों के ब्रह्म के विषय में इस प्रकार भिन्न भिन्न मत हैं:—

उच्छेद वाद—यह अज्ञान या माया शक्ति ब्रह्म मे अनादि काल से कल्पित है। इस माया और ब्रह्म के मिलने से ईश्वर उत्पन्न होता है जिसे सबल ब्रह्म भी कहते हैं। या यों कहिये कि जितना ब्रह्म के साथ माया का संयोग नहीं है, उतना ब्रह्म तो शुद्ध रहता है और जितना ब्रह्म के साथ माया का संयोग होजाता है, वह सबल ब्रह्म कहलाता है।

यह सवल ब्रह्म या ईश्वर ही सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान इत्यादि गुणों वाला है जो समस्त ससार की रचा करता है।

आभासवाद—यह कहता है कि माया में ब्रह्म का आभास (छाया) पड़ता है। यह आभास और माया तथा उतना ही ब्रह्म का भाग जिसका कि आभास पड़ता है। इन तीनों के समूह का नाम ईश्वर है।

प्रतिबिम्ब—का ऐसा मत है कि माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब (अक्स) पड़ता है। यह प्रतिबिम्ब और वह उतना ब्रह्म का भाग जितने का कि प्रतिबिम्ब पड़ता है, ईश्वर कहलाता है।

जीव

शंकर महाराज तो जीव के विषय में यह मानते थे कि जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है वरन् ब्रह्म का ही अंश है। जिस प्रकार अग्नि से चिन्गारियां निकलती हैं इसी प्रकार ब्रह्म से जीव की उत्पत्ति समझनी चाहिये।

शंकर के पश्चात् जीव के विषय में भी उन सम्प्रदायों में मतभेद उत्पन्न हुए, उनका संक्षेप में इस प्रकार विवरण है—

उच्छेद वाद—अविद्या और ब्रह्म का उतना भाग जिसके आश्रय वह अविद्या का भाग वर्तमान है, वह कूटस्थ कहलाता है। इन दोनों के समूह का नाम जीव है।

आभास वाद—इनमें से कुछ तो छाया, अविद्या और कूटस्थ इन तीनों के समूह को जीव कहते हैं और कुछ अन्तःकरण में कूटस्थ की छाया, अन्तःकरण और कूटस्थ इन तीनों के समूह को जीव कहते हैं।

प्रतिबिम्ब वाद—कूटस्थ ब्रह्म का अक्स, अविद्या और कूटस्थ इन तीनों के समूह को जीव कहते हैं।

माया

समस्त ब्रह्मांड, प्रकृति ईश्वर की माया है।

माया के अर्थ करने मे मायावादियों में कुछ मतभेद है। शंकराचार्य ने माया के अर्थ अविद्या, अज्ञान और मोह किये हैं। स्वामी विवेकानन्द ने देश, काल और परिणाम के समुदाय को माया कहा है। मायावाद में केवल एक तत्व जिसे निर्गुण और अव्यक्त (वर्णन रहित) ब्रह्म कहते हैं माना जाता है और यह कहा जाता है कि यह दिखाई देने वाला जगत और जीव उसी एक तत्व निर्गुण ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं।

संसार और जीव की उत्पत्ति

ब्रह्म में संसार के निमित्त कारण और उपादान कारण मौजूद हैं। जैसे मकड़ी बाहर से कोई वस्तु नहीं लेती वरन् अपने भीतर से तार निकालकर जाला बुनती है और फिर उसी में खेलती कूदती है, ठीक इसी प्रकार ब्रह्म अपने अन्दर से संसार को रचकर स्वयं उसमें रम जाता है। यह संसार ब्रह्म उस समय रचता है, जब वह यह इच्छा करता है कि मैं बहुत से रूपों वाला बन जाऊं। तब तुरन्त यह विचित्र ब्रह्माण्ड बन जाता है। इसको समझाने के लिये मिट्टी और घडा समुद्र और लहर सोना और आभूषण के दृष्टांत इस प्रकार दिये जाते हैं कि मानो दस तोले सोना था, उसके पहले कड़े बने, तब वह सोना कड़े कहलाने लगा। कड़े तुड़वाकर हँसली बनी, फिर वही सोना हँसली कहलाने लगी। इसी प्रकार टूटने और बनने पर उस सोने का नाम आभूषण के नाम से पुकारा जाने लगा। ऐसे ही संसार में एक ही तत्व है। इसी तत्व के यह भिन्न २ नाम और रूप हैं। इस तत्व का नाम सत्ता सामान्य (General Sovereignty) है।

मुक्ति के साधन

ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करके उस पर अपना पूर्ण विश्वास रखना ही

मुक्ति का साधन है। ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होजाने के पश्चात् फिर कर्म करने की आवश्यकता नहीं होती।

ब्रह्म ज्ञान—जीव और ब्रह्म एक है। उन दोनों में कोई भेद नहीं है। वास्तव मे यह दिखाई देने वाला संसार स्थिर नहीं है वरन् भ्रम और कल्पित है। ऐसे विश्वास का नाम ही ब्रह्म ज्ञान है।

ब्रह्मज्ञानी—जो सबके अन्दर और सब स्थानों पर ब्रह्म को देखता और मानता है, वह ब्रह्मज्ञानी कहलाता है। ब्रह्मज्ञानी को अच्छे या बुरे कर्मों का कोई दोष नहीं लगता।

परम पुरुषार्थ—ब्रह्मज्ञानी के लिये सदा ब्रह्मज्ञान का ही हृदय में विश्वास रखना और सदा उसी का अभ्यास करना परम पुरुषार्थ कहलाता है।

ब्रह्म रूप—जब ब्रह्मज्ञानी करने या न करने योग्य कार्यों का विचार छोड़ देता है तब उसके हृदय में कोई इच्छा शेष नहीं रहती। वह संसार को मिथ्या और कल्पित समझने लगता है। उसका विश्वास ऐसा अटल होजाता है कि ज्ञानी पुरुष प्रत्येक कार्य करता दिखाई तो देता है किन्तु वह कुछ भी नहीं करता। जब ऐसी दशा होजाती है तो उसका नाम ब्रह्म रूप होजाता है।

ब्रह्म और जीव एक हैं!

जैसे ब्रह्म सत् चित और आनन्द स्वरूप है वैसे ही जीव में यह तीनों गुण उपस्थित हैं। इसलिये दोनों वास्तव में एक ही है। इसके समर्थन में वह कुछ उपनिषदों के उद्धरण इस प्रकार देते हैं। 'तत्वमसी' तू वह है, 'अयम आत्मा ब्रह्म'—यह आत्मा ब्रह्म है। 'अहम ब्रह्मास्मि'—मैं ब्रह्म हूं।

यह जगत मिथ्या और कल्पित है!

द्वैत वादी कहते हैं कि यह संसार न तो सत्य है और न असत्य

है अर्थात् यह मौजूद है भी और नही भी वरन् यह मिथ्या और कल्पित है।

सत–उस वस्तु को कहते हैं जो तीनों कालों में एक समान स्थिर रहे। ऐसा केवल ब्रह्म ही है। संसार की और कोई वस्तु ऐसी नहीं है।

असत–उस वस्तु को कहते हैं जिसकी सत्ता असम्भव हो और जो कदाचित् मौजूद न हो सके जैसे बांझ का लड़का और आकाश के फूल। चूंकि उत्पत्ति से पहले यह जगत मौजूद न था, किन्तु इस समय मौजूद है। प्रलय में नष्ट होकर मौजूद न रहेगा। इसलिए इसको न सत कह सकते हैं और न असत, वरन् इसको मिथ्या और कल्पित कहना ही उचित है। जैसे रस्सी से सांप का सीप में चांदी का और रेत में पानी का भ्रम होजाता है या स्वप्न मे भांति २ की वस्तुयें दिखाई पड़ जाती हैं, किन्तु वह सब वस्तुयें मिथ्या और कल्पित हैं ठीक इसी प्रकार यह जगत भी मिथ्या और कल्पित है।

मोक्ष पाकर जीव और ब्रह्म एक होजाते हैं।

ब्रह्म ज्ञानी का शरीर उसकी प्रारब्ध के अनुसार स्थिर रहता है। अर्थात् जब तक उसका प्रारब्ध शेष है, तब तक शरीर स्थिर रहता है। जब तक शरीर स्थिर रहता है, तब तक खाना-पीना चलना-फिरना इत्यादि शरीर के कार्य भी जारी रहते हैं किन्तु जब ब्रह्मज्ञानी की प्रारब्ध समाप्त होजाती है, तब उसके शरीर का भी नाश होजाता है और फिर उसका कभी जन्म नहीं होता। जीव मुक्त होकर आनन्द में मग्न होजाता है और जीव ईश्वर में लय होकर जीव और ब्रह्म दोनों एक होजाते हैं। फिर दोनों में कोई अन्तर नहीं रहता। न ही मुक्ति से फिर कभी वापस आना पड़ता है।

अद्वैतवाद और द्वैतवाद

अद्वैतवादी और द्वैतवादी दोनों ही ईश्वर की सत्ता को अनादि

और अनन्त मानते हैं।' किन्तु इनमें ईश्वर, जीव और प्रकृति की व्याख्या करने में कुछ मतभेद चला आरहा है। उन मतभेदों में से कुछ विषयों की नीचे संक्षिप्त तुलनात्मक व्याख्या की गई है—

अद्वैत वाद	द्वैत वाद
१—शुद्ध ब्रह्म न कुछ करता है और न कुछ कर सकता है।	१—यदि शुद्ध ब्रह्म न कुछ करता है और न कुछ कर सकता है तो ऐसे ब्रह्म की सत्ता मानने से कोई लाभ नहीं।
२—सबल ब्रह्म ही जगत का कर्त्ता, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान इत्यादि गुणों वाला है।	२—यदि सबल ब्रह्म को ही जगत का कर्त्ता, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान इत्यादि गुणों वाला माना जाये तो फिर शुद्ध ब्रह्म व्यर्थ सिद्ध हो जायेगा। माया, कि जिसे एक कल्पित और मिथ्या शक्ति बताया जाता है, वह शुद्ध ब्रह्म से भी बढ़ जायेगी।
३—ब्रह्म में एक अलग शक्ति वर्तमान है जिसे माया प्रकृति, अविद्या और अज्ञान के नाम से पुकारा जाता है। यह शक्ति ब्रह्म में अनादि है। वास्तव में यह शक्ति ब्रह्म में भ्रम मात्र और कल्पित है।	३—माया कोई द्रव्य (जौहर) है या गुण? यदि द्रव्य कहो तो द्वैत वाद सिद्ध होजाता है, यदि गुण कहो तो गुण गुणी के साथ स्थिर रहता है। इसलिये उसके लिये कोई द्रव्य अवश्य होना चाहिये। अद्वैत वादी ब्रह्म के अतिरिक्त किसी और द्रव्य की सत्ता मानते ही नहीं कि जिसका गुण माया हो, तो फिर वह गुण ब्रह्म का ही मानना पड़ेगा। यदि माया को

अद्वैत वाद	द्वैत वाद
	ब्रह्म का गुण मान लिया जाये तो उसमें यह दोष उत्पन्न होजाते हैं— १–ब्रह्म शुद्ध नहीं रहेगा। २–वह माया का गुण भी ब्रह्म के साथ अनादि और अनन्त मानना पड़ेगा। क्योंकि गुण और गुणी का सम्बन्ध अनिवार्य है। यदि यह कहा जाये कि 'माया' न द्रव्य है और न गुण है, वरन् एक मिथ्या और कल्पित वस्तु है तो इस पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि उसको कल्पित करने वाला कौन है–ईश्वर या जीव? अत: उसको कल्पित करने वाला न ईश्वर और न जीव ही हो सकता है। जबकि ईश्वर और जीव की सत्ता माया की सत्ता पर निर्भर मानी जाती है। इसके अतिरिक्त पहले माया की सत्ता माननी पड़ेगी, तभी तो ईश्वर और जीव की सत्ता हो सकेगी। अत: लाचार होकर माया को कल्पित करने वाला केवल ब्रह्म ही मानना पड़ेगा, क्योंकि ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई सत्ता मानी नहीं जाती, जो माया को कल्पित

अद्वैत वाद	द्वैत वाद
	करे। जब ब्रह्म कल्पित करने वाला माना जायेगा, तो उस दशा में ब्रह्म माया या अज्ञान की कल्पना करने से शुद्ध नहीं रहेगा, वरन् अज्ञानी हो जायेगा। यदि यह कहा जाये कि माया या अज्ञान ब्रह्म के एक भाग में है तो ब्रह्म के भाग मानने पड़ेंगे। उनमें से एक भाग शुद्ध और एक भाग अशुद्ध कहना पड़ेगा। अतः यह गुण ब्रह्म का नहीं है। वह खंडित कभी नहीं होता। वह एक रस है।
४—जीव की स्वतन्त्र सत्ता नहीं है वरन् वह ब्रह्म का ही अंश है। सुख-दुःख इत्यादि बुद्धि और अन्तःकरण के धर्म हैं जीवात्मा के नहीं।	४—सुख-दुःख आदि बुद्धि और अन्तःकरण के धर्म नहीं हैं वरन् जीवात्मा के धर्म हैं। सुख-दुःख भोगना चेतन का धर्म है, जड़ का नहीं। बुद्धि और अन्तःकरण जड़ पदार्थ हैं चेतन नहीं, इस लिये सुख-दुःख आदि उनका धर्म नहीं हो सकता।
५—माया और ब्रह्म के मिलने से या माया में ब्रह्म का आभास (छाया), या प्रतिबिम्ब (अक्स) पड़ने से और वह ब्रह्म का भाग जिस पर कि आभास या प्रतिबिम्ब पड़ता है मिलकर ईश्वर कहलाते हैं।	५—आभास (छाया), प्रतिबिम्ब (अक्स) की सत्ता असम्भव है। क्योंकि आभास या प्रतिबिम्ब साकार वस्तु का साकार वस्तु में हो सकता है, निराकार का नहीं हो सकता। जब ब्रह्म और माया को निराकार मानते हो तो फिर

अद्वैत वाद	द्वैत वाद
	उनका प्रतिबिम्ब और आभास असम्भव होजाता है।
६—ब्रह्म, ईश्वर, जीव, माया, माया और ब्रह्म का पारस्परिक सम्बन्ध और माया और ब्रह्म का पारस्परिक भेद अनन्त और अनादि है। ब्रह्म तो अनन्त और अनादि ही रहता है किन्तु शेष पांचों वस्तुयें जब ज्ञान होजाता है तब नष्ट होजाती हैं। यह नियम नहीं है कि जो वस्तु अनादि हो वह अनन्त भी हो।	६—यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो अद्वैतवादी भी ब्रह्म और माया (प्रकृति) को अनादि और अनन्त मानते हैं, शेष चारों को ज्ञान होने पर नष्ट होना स्वीकार करते हैं। वास्तव में नियम यह है कि जो वस्तु अनादि होगी, वह अनन्त भी अवश्य ही होगी जैसे एक किनारे की नदी नहीं हो सकती ऐसे ही कोई वस्तु केवल अनन्त और अनादि नही हो सकती।
७—सब शरीरों में एक ही जीवात्मा है। जैसे ब्रह्म सत्-चित और आनन्द स्वरूप है, ऐसे ही जीव में भी यह तीनों गुण मौजूद हैं, इसलिये वह दोनों एक ही हैं, भिन्न नहीं हैं, यही बात सत शास्त्रों के इन वाक्यो से भी सिद्ध होती है— 'प्रज्ञान मानन्दम् ब्रह्म'—अर्थात् जो प्रज्ञान जीव है। सो आनन्द स्वरूप ब्रह्म है। 'अहं ब्रह्मास्मि'—अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ। भ्रम से अपने को जीव समझ	७—जीवात्मा सब शरीरों मे एक नहीं है, वरन् प्रत्येक शरीर में अलग-अलग एक-एक जीवात्मा है। यदि ब्रह्म और जीव में कुछ गुण एक जैसे भी हों तो इससे ब्रह्म और जीव एक नहीं हो सकते। ब्रह्म और जीव के कुछ गुणों मे भिन्नता भी है। जैसे ब्रह्म सर्वज्ञ, जीव अल्पज्ञ और ब्रह्म अति सूक्ष्म, जीव सूक्ष्म है, ब्रह्म जीवन-मरण, डर और शंका आदि बातों से पवित्र है, जीव इन बातों से पवित्र नहीं है।

अद्वैत वाद	द्वैत वाद
लिया है। अब ज्ञान होने से मैंने समझ लिया है कि मैं वास्तव में ब्रह्म हूँ। 'तत्वमसि'—वह तू है, अर्थात् जीव तो वही ब्रह्म है और नहीं। अयमात्मा ब्रह्म—अर्थात् यह आत्मा ब्रह्म है।	ब्रह्म एक है, जीव अनेक हैं और अलग २ हैं। ब्रह्म और जीव को एक सिद्ध करने के लिये जो शास्त्रों के हवाले दिए गए हैं, उनसे भी ब्रह्म और जीव एक सिद्ध नहीं होते— प्रज्ञान मानन्दम् ब्रह्म—इसके अर्थ यह है कि ब्रह्म से बड़ा और कोई नहीं। वही समस्त ससार के रचने वाला, मोक्ष आनन्द और सुख पहुँचाने वाला असीम ज्ञानवान है। उसमें अविद्या, अन्धकार और अज्ञान का होना सम्भव नहीं। अहं ब्रह्मास्मि—के अर्थ यह हैं कि मैं ब्रह्म से व्याप्य हूँ और ब्रह्म मुझमें व्यापक है। जब जीव मोक्ष प्राप्त कर लेता है और ब्रह्म के साथ आनन्द प्राप्त करने लगता है। ऐसी दशा में जीव को ब्रह्मस्थ कह सकते हैं। या जब जीव ईश्वर के प्रेम में इतना मग्न हो जाता है कि उसे ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ ध्यान नहीं रहता, तब ऐसा वाक्य कह सकते हैं, किन्तु इससे ऐसा सिद्ध नहीं होता कि जीव और ब्रह्म एक ही हैं। तत्वमसि—का अर्थ यह है कि वह

अद्वैत वाद	द्वैत वाद
	ब्रह्म जानने योग्य है जो समस्त संसार और जीव की आत्मा है। वह सत स्वरूप और अपनी आत्मा आप है। जीव उस अन्तर्यामी से बधा है। अथमात्मा ब्रह्म—के अर्थ यह हैं कि विचार शील पुरुष अन्तर्यामी परमात्मा को प्रत्यक्ष ज्ञान से देख कर कहता है कि यह जो मेरा अन्तर्यामी सर्वात्मा है, यही ब्रह्म है। अर्थात् मेरा भी यही आत्मा है। इसके अतिरिक्त वेदों, उपनिषदों और दूसरे शास्त्रों में ब्रह्म और जीव के भिन्न-भिन्न होने के विषय में और भी वाक्य पाये जाते हैं।
८—यह संसार भ्रम और कल्पित है, अर्थात् न सत है और न असत।	८—जीव अल्पज्ञ है, प्रकृति सत और जड़ रूप है। यह दोनों सदा से ब्रह्म के आधीन चले आरहे हैं। ब्रह्म सर्वज्ञ और सबका स्वामी है। जैसे ब्रह्म सत स्वरूप है, वैसी ही उसकी प्रजा अर्थात् जीव और प्रकृति भी सत स्वरूप है। वैसे ही यह संसार उसकी सम्पत्ति, भी सत है, मिथ्या या कल्पित नहीं है।

अद्वैत वाद	द्वैत वाद
१–मोक्ष पाकर जीव और ब्रह्म एक होजाते हैं और फिर दोनों मे कोई अन्तर नहीं रहता और न ही मुक्ति से वापस आना पड़ता है।	१–जीव स्वभाव से अल्पज्ञ और परिमित गुण वाला है। इसलिए वह मुक्ति पाकर सर्वज्ञ या अपरिमित गुणों वाला ब्रह्म के समान कदाचित नहीं हो सकता। न ही जीव ब्रह्म में लीन होकर वह दोनों एक हो सकते हैं। मुक्त जीव ईश्वर से अलग रहकर परमानन्द प्राप्त करके मग्न रहता है। मुक्त जीव के साथ यह भौतिक शरीर नहीं रहता। किन्तु उसके स्वाभाविक और शुद्ध गुण उसके साथ होते हैं। उसके साथ पांच ज्ञानेन्द्रियां और बुद्धि आदि अवश्य रहती हैं, जिनसे वह आनन्द भोगता है। मुक्त जीव के सब कार्य शुद्ध होते हैं और वह अपनी स्वाभाविक शक्ति से सब कुछ करता है। मुक्ति की एक अवधि नियत है। मुक्ति का आनन्द भोग कर जीव को फिर कार्य क्षेत्र में आना पड़ता है। (इसके साथ देखो 'वैदिक-धर्म' में मुक्ति का विषय)।

श्री शंकराचार्य

श्री शंकराचार्य का जन्म मालावार क्षेत्र के एक ग्राम मे पंडित भूषट मेटी या शिव गुरु के यहां सन्* ७८८ में हुआ था। उनकी माता का नाम सुभद्रा था। वे शिव के उपासक थे। लिखा है कि शंकर महाराज शिव की आराधना करने से उत्पन्न हुए थे, इस कारण उनका नाम शंकर रक्खा गया था। जब शकर केवल तीन वर्ष के थे तो उनके पिता का देहान्त होगया। जब वह पांच वर्ष के हुए तो उनका यज्ञोपवीत संस्कार कराकर गुरु श्री गोविन्द पादाचार्य के पास पढ़ने लिखने के लिये भेज दिये गये।

शंकर महाराज लिखने-पढ़ने में बड़े कुशल, कुशाग्र और मेधावी थे। उन्होंने ६ वर्ष की आयु में ही वेद आदि सब शास्त्रों को पढ़कर कण्ठस्थ कर लिया था। २२ वर्ष की आयु में वह पढ़-लिखकर और तत्व ज्ञानी बनकर अपने गुरु से विदा हुए। उस समय दक्षिण मे जैन मत का और शेष भारतवर्ष में बौद्धमत का प्रभाव छाया हुआ था। लोग ईश्वर की सत्ता को भूले हुए थे। श्री शंकराचार्य ईश्वर और जीवात्मा की सत्ता का निश्चय कराने तथा जैन और बौद्ध मतों की शिक्षा का खंडन करने के लिये मैदान में उतरे। उन्होंने इन दोनों मतां के पडितों को ललकार कर कहा कि यदि आत्मा और परमात्मा दोनों भ्रम और कल्पित हैं तो फिर संसार में कोई वस्तु शेष नहीं रह सकती और समस्त वस्तुयें नाशवान माननी पड़ेंगी। ऐसी दशा में सुख-दुःख अनुभव करने वाली कोई वस्तु स्थिर न रहेगी।

श्री शंकर महाराज ने अपनी विद्वता से सारे देश में एक खलबली पैदा करदी। बौद्ध और जैन पंडित सोच में पड़ गये। स्वामी जी ने उन्हे शास्त्रार्थ के लिये चुनौती दी। अतः सबसे पहला शास्त्रार्थ

---

*इनके जन्म की तिथि के विषय मे विद्वानों मे मत-भेद है, किसी ने सन् ४०० ई० लिखा है किसी ने कुछ और लिखा है, किन्तु अधिकांश विद्वानों ने सन् ७८८ ई० का समर्थन किया है।

सुधन्वा राजा की अध्यक्षता में प्रसिद्ध बौद्ध पंडितों से हुआ। इस शास्त्रार्थ में यह निश्चय हुआ था कि जो कोई शास्त्रार्थ में हार जायेगा उसे जीतने वाले का धर्म ग्रहण करना पड़ेगा। यह शास्त्रार्थ कई दिन तक चलता रहा। अन्त में शंकर महाराज विजयी हुए। महाराज सुधन्वा और वह बौद्ध पंडित शंकर मत के अनुयाई वन गये। महाराजा ने स्वामी जी के धर्म प्रचार और उनकी रक्षा के लिये उचित प्रवन्ध कर दिया।

इसी प्रकार उनके और भी बहुत से बौद्ध और जैन पंडितों से शास्त्रार्थ हुए। उन सबमें एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महा पंडित मंडन मिश्र से हुआ। उन दोनों की विचारधारा में कुछ विषयों पर मतभेद था। यह शास्त्रार्थ मंडन मिश्र की धर्मपत्नि सरस्वती (भारती) की अध्यक्षता में होकर कई दिन तक चलता रहा। मंडन मिश्र ने हारकर शंकर मत ग्रहण कर लिया और सन्यासी वन गये। इसी बीच में सरस्वती और शंकर महाराज का कामशास्त्र पर शास्त्रार्थ हुआ। अन्त में सरस्वती को भी हार स्वीकार करनी पड़ी। अब तो शंकर महाराज की चारों ओर कीर्ति फैल गई। उन्होंने दक्षिणी भारत से लेकर काश्मीर और नैपाल तक अपने मत का प्रचार किया। बहुत से लोगों को अपने मत का अनुयाई बनाया। उन्होंने बौद्ध और जैन मतों की जड़ों को खोखला कर दिया। बहुत से जैन और बौद्ध मन्दिर तोड़ दिए गए। बहुत सी मूर्त्तियां अपमान से बचाने के लिए जंगलों और पहाड़ों में गाड़ दी गई जो आजकल कहीं २ निकल आती हैं।

शंकर महाराज ने भारतवर्ष के कई वार चक्कर लगाए। इसी प्रकार घूमते हुए वह वद्रीनारायण पहुंचे वहां कुछ दिनों ठहर कर अथर्ववेद के प्रचार के लिये जोषी मठ की स्थापना की। इसी प्रकार घूमते-फिरते वह जगन्नाथ पुरी में आगये। वहां ऋगवेद के प्रचार के लिये भूगोवर्धन मठ की स्थापना की गई। इसी प्रकार फिर घूमते-फिरते और शास्त्रार्थ करते हुए वह रामेश्वरम् आगये। इस स्थान पर यजुर्वेद के प्रचार के लिये संघगिरी नामी मठ की स्थापना की इसी मठ वाले गिरी, पुरी और भारती नाम से प्रसिद्ध हुए। इसके बाद पश्चिम में आकर उन्होंने शारदा मठ की स्थापना सामवेद के प्रचार के लिए

की। शंकर महाराज ने इन मठों की स्थापना करके अपने शिष्यों को इन मठों का महन्त बना दिया। इन सब मठों के महन्त जगतगुरु शंकराचार्यों के नाम से ही प्रसिद्ध होते चले आरहे हैं।

इन कार्यों से निवृत्त होकर स्वामी जी ने बौद्ध भिक्षुओं के मुकाबले के लिये अपना वैदिक सन्यास मंडली नाम का संघ स्थापित किया। इस संघ वाले गेरुये वस्त्र पहना करते थे और ब्रह्मचारी रहकर अधिकतर समय धर्म प्रचार में ही लगाया करते थे। इस संघ ने भी बौद्ध और जैन मतों को काफी हानि पहुँचाई।

शंकर महाराज का अभिनव गुप्त जैन से भी शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें अभिनव गुप्त हार गया। उसने अपनी इस हार को बहुत अधिक अनुभव किया। अतः वह शंकर महाराज की जान लेने के उपाय सोचने लगा और वह स्वामी जी का शिष्य बनकर उनके साथ रहने लगा। स्वामी जी अपने कुछ शिष्यों को लेकर काश्मीर चले गये। वहां कुछ दिन ठहर कर केदारनाथ वापस चले आए। अभिनव गुप्त ने अवसर पाकर स्वामी जी को जहर दे दिया। स्वामी जी का समस्त शरीर फूट गया और नासूर होगए। लगभग छः माह वह बीमार पड़े रहे। अन्त में ३२ वर्ष की आयु में (सन् ८२० ई०) में शरीर छोड़ने से पहले उन्होंने अपने शिष्यों को कुछ उपदेश देकर समाधि लगाकर शरीर त्याग दिया।

स्वामी जी भारत की उन महान आत्माओं में से थे जो ईश्वरीय प्रेरणा से कभी-कभी और किसी-किसी विशेष युग में जन्म लेती हैं। वह बाल ब्रह्मचारी थे। ३२ वर्ष की अल्पायु में समस्त भारत को रौंदकर इतना आश्चर्यजनक धार्मिक युग-परिवर्तन देखकर दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है। स्वामी जी ने भागवत् गीता, उपनिषदों और ब्रह्म सूत्र आदि के भाष्य किये और कई एक प्रसिद्ध पुस्तकें लिखीं।

स्वामी श्री शंकराचार्य के पश्चात् उन चारों मठों के महन्तों और सन्यासियों ने शंकर महाराज की भांति धर्म प्रचार का कार्य चालू रक्खा, किन्तु कुछ समय पश्चात् धर्म कार्य बन्द होता चला गया।

अन्त में सन्यास और कर्म मार्ग को छोड़कर वह लोग ठाठ-बाट से रहने लगे। उनके मठों में लाखों रुपये वार्षिक की आमदनी होती है। शंकर महाराज ने वैदिक धर्म की उन्नति की और शिव मत तथा वर्णाश्रम व्यवस्था को पुर्नजन्म दिया। शंकर मत के साधू वैरागी कहलाते हैं। उनकी संख्या इस देश में कई लाख है।

सिख-पंथ

और

कबीर-पंथ

सिख-पंथ

समस्त भारतवर्ष पर मुसलमान राजाओं ने लगभग १००० वर्ष तक राज्य किया। वह यहां के हिन्दुओं पर अपने मत और संस्कृति का भांति-भांति से प्रभाव डालने लगे। करोड़ों हिन्दू उनसे प्रभावित होकर मुसलमान बने, किन्तु १००० वर्ष के लम्बे समय को ध्यान में रखते हुए हिन्दुओं पर इस्लाम का उतना प्रभाव नहीं पड़ा कि जितना दूसरे देशों पर पड़ा था। मुसलमानों ने इस देश में इस्लाम के प्रसार में सभी कुछ किया, किन्तु उन्हें इसमें पूर्ण सफलता न मिल सकी।

इस देश में इस्लाम को सफलता न मिलने के कुछ कारण हैं। उनमें से कुछ एक यह हैं—बहुधा सभी हिन्दू अपने धर्म और सभ्यता के अधिक सच्चे और पक्के थे। वह अपने धर्म और सभ्यता को बचाने के लिये सदैव अपने प्राणों पर खेलते हुये इस्लाम का डट कर मुकाबला करते रहे। मुसलमानों के साथ खाने-पीने और भीतरी मेल मिलाप करने से सदा अपने को बचाते रहे। यह ही नहीं हुआ, यदि किसी हिन्दू का झुकाव इस्लाम की ओर देखा गया तो उसे तुरन्त बिरादरी से निकालकर घृणा से देखने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि बहुधा हिन्दुओं ने इस्लाम के साथ अपना सम्पर्क नहीं बढ़ाया। सारे देश में इस्लाम का मुकाबला करने के लिये बड़ा-बड़ा धार्मिक आन्दोलन होते रहे, जो हिन्दू धर्म और हिन्दू सभ्यता का सिक्का हिन्दुओं के दिलों में जमाते रहे। पंजाब में गुरु नानकदेव ने इस्लाम के प्रभाव को समाप्त करने के लिये सिख-पन्थ की नींव डाली, गुरु गोरखनाथ ने कनफटे जोगी बनाकर हिन्दू धर्म और हिन्दू सभ्यता को बचाने के लिये इस्लाम का डट कर मुकाबला किया। काशी में स्वामी रामानन्द ने वैरागी साधुओं का एक सघ स्थापित करके उन्हें यह शिक्षा दी कि वह हिन्दू धर्म और कर्मकांड की रक्षा का प्रबन्ध करें। रामानन्द के शिष्य सन्त कबीरदास ने हिन्दू और मुसलमानों को एक सम्मिलित प्लेटफार्म पर लाने का प्रयत्न किया। बंगाल में चैतन्य महाप्रभु ने हिन्दू धर्म की रक्षा करने के लिये हिन्दुओं के अन्दर श्रद्धा और विश्वास पैदा

किया। गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण इत्यादि पुस्तकें लिखकर हिन्दुओं में श्री रामचन्द्र का आदर्श स्थापित करके नई आशा और नया धार्मिक उत्साह पैदा किया। गुजरात में वल्लभाचार्य ने हिन्दू भावना को अधिक उभार दिया। महाराष्ट्र में स्वामी रामदास ने शिवाजी महाराज को हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये तैयार किया। पंजाब में गुरु गोविन्द सिंह ने सिखों में उत्साह पैदा करके एक सिख को सवा लाख मुसलमानों के साथ लड़ जाने की शिक्षा दी। राणा प्रताप, बन्दा वैरागी, हरीसिंह नलवा इत्यादि बहुत सी महान् और वीर आत्मायें इस देश में उत्पन्न होती रहीं कि जो हिन्दू धर्म और हिन्दू सभ्यता की बराबर रक्षा करती रहीं। कुछ ऐसे ही कारणों से इस्लाम मत इस देश में पूर्ण रूप से सफल न हो सका।

गुरु नानकदेव के समय में हिन्दुओं का वास्तविक धर्म समाप्त सा हो चुका था। ब्राह्मण लोग स्वर्ग और नरक के ठेकेदार बनकर अपना स्वार्थ पूरा कर रहे थे। जाति-पांति और छुआछूत के बखेड़े व्याप्त थे। हिन्दुओं में पारस्परिक कोई संगठन न था। कहां तक कहा जाये, उस समय हिन्दुओं की दशा बड़ी खराब और शोचनीय थी।

१५ वीं शताब्दी में इस देश पर बहलोल लोदी राजा राज्य करता था। गुरु नानकदेव का उसी के समय में जन्म हुआ था। गुरु नानकदेव जब कुछ बड़े हुए तो उन्होंने देखा कि मुसलमान हिन्दुओं पर भांति-भांति के अत्याचार कर रहे हैं और हिन्दुओं के साथ अन्याय का व्यवहार होरहा है तथा हिन्दुओं पर भांति भाति के प्रतिबन्ध लगे हुए हैं तो उनका कोमल हृदय इन सब बुरी बातों को हटाने के लिये तिलमिला उठा।

गुरु नानकदेव से लेकर अन्तिम गुरु गोविन्द सिंह तक १० गुरु हुए, जिन्होंने ब्राह्मणों की प्रधानता को समाप्त करने, मूर्ति पूजा और बुरे रीति-रिवाजों को हटाकर केवल एक ईश्वर की पूजा और उपासना करने की शिक्षा दी।

वास्तव में यदि ध्यान पूर्वक देखा जाये तो गुरु नानकदेव या किसी और गुरु ने अपना कोई नया मत या पंथ स्थापित नहीं किया

था और न ही उन्होंने कभी कोई नवीन पथ चलाने का विचार प्रकट किया था। वह तो हिन्दू जाति को एक लड़ी में पिरोकर संगठित करने के लिये ही सदा परिश्रम करते रहे। उनकी विचारधारा एक सीमा तक प्राचीन हिन्दू शास्त्रों पर ही निर्भर थी। किन्तु यह कह देना कुछ अनुचित न होगा कि गुरु नानकदेव की विचार धारा में दार्शनिक रंग न था। उन्होंने तो केवल एक ईश्वर भक्ति की ओर ही लोगों का ध्यान आकर्षित किया था। वे जटिल और गम्भीर प्रश्नों पर विचार करने से लोगों को मना किया करते थे।

गुरु गोविन्द सिंह ने जो पांच (कक्के) धारण करने की आज्ञा दी थी, वह उस समय की व्याकुलता सामरिक उत्साह को सामने रख कर ही दी थी वरना इसमें उनका कोई स्वार्थ न था।

गुरु नानक देव से लेकर गुरु गोविन्द सिंह तक, अर्थात् सभी गुरु मुसलमान सम्राटों के विरुद्ध इस कारण नहीं थे कि वह मुसलमानों से घृणा करते थे, वरन् वह केवल इसलिये उनका विरोध करते थे कि उस समय के मुसलमान सम्राटों की ओर से हिन्दुओं पर भांति-भांति के अत्याचार होरहे थे और उन पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे। गुरु गोविन्दसिंह की खुले तौर पर मुगल सम्राट से टक्कर हो गई और कई भयानक युद्ध हुए। गुरु गोविन्द सिंह मुग़ल राज्य को समाप्त तो न कर सके किन्तु यह मानना पड़ेगा कि उन्होंने मुग़ल राज्य के चूलों को हिलाकर इतना दुर्बल बना दिया था कि फिर शीघ्र ही पंजाब से मुगल राज्य समाप्त होगया था। गुरु गोविन्द सिंह ने हिन्दू धर्म और हिन्दू जाति की पूर्ण रूप से रक्षा करने का प्रयत्न किया और उन्हें संगठित करने की भरसक चेष्टा की। उन्होंने इस शुभ कार्य में अपना सब कुछ तो खो ही दिया था, किन्तु उन्होंने अपने चार लाड़ले बेटों को भी इसी महान् उद्देश्य के लिए न्यौछावर कर दिया था।

जब इस देश से मुगल राज्य समाप्त होकर अंगरेजी शासन का समय आया तो अंगरेजों ने इस देश पर अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिये Divide and Rule 'विभाजित करो और शासन करो' की नीति पर राज्य करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने अपनी यह नीति इसलिये अपनाई ताकि यहां के रहने वाले कभी संगठित न हो सकें

और परस्पर ही लड़ते-मरते रहें। अंगरेजों ने कभी हिन्दू को उभारा तो कभी मुसलमान को सहारा दे दिया। उनकी इस नीति से हिन्दू और मुसलमानों मे वैर-भाव उत्पन्न होकर दिन-प्रतिदिन लड़ाई झगड़े और रक्तपात होने लगे। कुछ दूरदर्शी अंगरेजों ने यह सोचा कि यदि हिन्दू और सिख आपस में संगठित रहे तो एक समय ऐसा अवश्य आ सकता है कि वह हमारे राज्य को समाप्त करदें। इसीलिये उन्होंने हिन्दू और सिखों का भी विभाजन करना आवश्यक समझा। अतः उन्होंने कुछ सिख नेताओं को इस प्रकार समझाना आरम्भ कर दिया—"सिख हिन्दुओं से एक सर्वथा भिन्न जाति है। सरकार सिक्खों को अलग अधिकार देकर ऊंचे उठाना चाहती है, इसलिये सिखों को चाहिये कि वह हिन्दुओं से अलग होकर सरकार से अपने अधिकारों की मांग करें। हिन्दुओं के साथ रहने से सिखों को सदा हानियां ही पहुँचती रहेंगी।" वह सिख नेता अगरेजों की इस प्रकार की चिकनी चुपड़ी बातों में आकर लालच मे डूब गए। उन्होंने हिन्दुओं से भिन्न होने की घोषणा करदी और वह सब सरकार से अपने अलग अधिकार मांगने लगे। इस प्रकार अगरेज ने सिखों को हिन्दुओं से बिल्कुल अलग कर दिया। अब सिख अपने को हिन्दुओं से अलग ही समझते हैं। सिखों की सख्या इस समय बीस लाख के लगभग बताई जाती है। वैसे तो वह सारे देश में फैले हुए हैं किन्तु पंजाब प्रांत में उनकी विशेष संख्या है।

गुरु नानकदेव का मूल-सिद्धान्त

गुरु नानकदेव ने अपना मूल सिद्धान्त इन चार बातों पर आधारित किया था—ईश्वर (God), सत्य (Truth), भलाई (Goodness) और ज्ञान (Knowledge).

वह कहते थे कि सत्य ही उच्च वस्तु है। किन्तु सत्य से ऊंची वस्तु उच्च आचरण है।

सिख पन्थ के सिद्धान्त

ईश्वर—ईश्वर एक है। उसी को ओंकार कहते है। वही सत्य है। उस पर काल का कोई प्रभाव नहीं है। ईश्वर सृष्टि-कर्त्ता है। सृष्टि रचने में उसे किसी के सहारे की आवश्यकता नहीं पड़ती। ईश्वर अमर और नित्य है और न ही वह कभी आवागमन के चक्कर में पड़ता है। समस्त अच्छे गुण ईश्वर में व्यापक हैं। ईश्वर को अकाल पुरुष भी कहते हैं। ईश्वर इन चर्म चक्षुओं से दिखाई नहीं देता। उसके देखने की आँखें और हैं। वह अन्तर्यामी है। उसी का प्रकाश सब वस्तुओं में है। जो ईश्वर की सत्ता से इन्कार करता है, वह मूर्ख है। ईश्वर है और अवश्य है।

जीव—मनुष्य के अतिरिक्त समस्त जीवधारी मनुष्य की सेवा के लिये बनाये गये हैं। समस्त जीव ईश्वर ने अपनी इच्छा से उत्पन्न किये हैं। तमाम जीव अपने अपने कर्मानुसार आवागमन के चक्कर में पड़ कर सुख-दुःख भोगते हैं।

प्रकृति—प्रकृति भी ईश्वर की ही उत्पन्न की हुई है।

सृष्टि उत्पत्ति—ईश्वर ने इस सृष्टि को रचा है। किन्तु यह किसी को पता नहीं कि यह सृष्टि कब रची गई। सृष्टि के रचने से पहले वह सर्व-व्यापक था। ईश्वर सृष्टि की कई बार रचना कर चुका है और कितनी ही बार इसका नाश कर चुका है। ईश्वर का सब

खेल बाजीगर जैसा है। जब बाजीगर खेल दिखाता है तो वह सैकड़ों रूप धारण कर लेता है और जब वह खेल नहीं दिखाता तो अपने वास्तविक रूप में आजाता है।

सृष्टि उत्पत्ति का प्रयोजन—यह है कि जीवात्माओं को पवित्र बनने का पूरा अवसर मिल जाये।

गुरु की महिमा—प्रत्येक सिख को चाहिये कि वह अपने को गुरु के अर्पण करदे और उसमें अटूट श्रद्धा रक्खे। उसे अपनी इच्छा से नहीं वरन् गुरु की इच्छा से चलना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसके आवागमन का चक्र समाप्त होजाता है। बिना सच्चे गुरु की सहायता के छुटकारा नहीं हो सकता। जो फल की इच्छा न रखकर गुरु की आज्ञा पर चलता है, उसी को ईश्वर की प्राप्ति होती है। गुरु का शरीर गुरु नहीं है, वरन् उसकी अमृत वाणी गुरु है। गुरु के शब्दों को अटल समझकर उन पर चलना चाहिए। सतसग के अभ्यास से ईश्वर का प्रकाश होता है।

आगे चलकर कुछ लोग गुरुओं को ईश्वर के समान समझने लगे। गुरु गोविन्द सिंह ने यह बात बुरी बतलाकर कहा कि जो मुझे ईश्वर कहेगा, वह नरक में जायेगा। गुरुओं में बहुत से चमत्कार और सिद्धियां मानी जाती है।

अवतार वाद—ईश्वर अवतार धारण नहीं करता, वरन् वह कभी-कभी ऐसे महापुरुषों को उत्पन्न करता है कि जो लोगों को सीधे-सच्चे मार्ग पर लगादें। सिख गुरु ऐसे ही महापुरुष माने जाते है। श्री रामचन्द्र और कृष्णचन्द्र इत्यादि अवतार नहीं थे। उन्होंने स्वयं ईश्वर का स्मरण किया था।

ईश्वर प्राप्ती—मन को शुद्ध किये बिना ईश्वर के दर्शन कदाचित नहीं हो सकते। वेदों के पढ़ने, जनेऊ पहनने, रामनाम के साफे ओढ़ने, माला फेरने, मूर्त्तियों के सामने गिड़गिड़ाने और चन्दन, फल-फूल इत्यादि चढ़ाने से ईश्वर नहीं मिल सकता। उससे मिलने की

एक ही यह विधि है कि मन और चित्त को पवित्र बनाकर उसकी उपासना की जाये।

तीर्थ—तप करने, दया करने, मन को वश में रखने, दान देने, ईश्वर के गुणों का मनन करने, जीवन को पवित्र बनाने, ऋषि-मुनियों तथा सन्तों की संगति करने और परमात्मा की सच्चे हृदय से उपासना करने का नाम ही तीर्थ है। गंगा इत्यादि तीर्थों पर जाकर स्नान करने से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

पर्व—दसों इन्द्रियों को वश में करने का नाम पर्व है।

श्राद्ध—पेटू और स्वार्थी लोगों ने श्राद्ध की प्रथा स्थापित की है। जब गगा का पानी आकर मेरे खेत में सिंचाई नही कर सकता तो हमारा दिया हुआ भोजन इत्यादि मृत-आत्माओं को कैसे पहुँच सकता है?

प्रसूत और पातक—प्रसूत नाम कीड़े का है और पातक नाम गन्दगी का है। इन दोनों बातों से बचना आवश्यक है। झूठ बोलना, लालच करना, दूसरों की स्त्रियों को बुरी दृष्टि से देखना, बुरी बातों का बकना या सुनना प्रसूत और पातक कहलाते हैं।

पांच कक्के—यह पांच वस्तुयें, जो 'क' से आरम्भ होती है, हर एक सिख के लिए हर समय अपने पास रखनी आवश्यक हैं—वह पांचों वस्तुये यह हैं:—(१) केश। (२) कड़ा। (३) कछ। (४) कघा और (५) कृपाण।

अमृत—गुरु वाणी का उच्चारण करते हुये कृपाण से पानी में बताशे घोलकर जो शर्बत तैयार किया जाता है, उसे अमृत कहते हैं। अमृत पिलाने का नाम पाहल है। अमृत पीकर और पांचों कक्के धारण करके ही सिख पंथ में सम्मिलित हुआ जा सकता है।

उपवास—यह उपवास के सिद्धान्त पर विश्वास नहीं रखते।

स्वर्ग और नरक—यह स्वर्ग और नरक के अस्तित्व को मानते हैं।

आवागमन—यह आवागमन को मानते हैं।

छुआछूत—यह छुआछूत को नहीं मानते।

गुरु ग्रन्थ साहब—गुरु ग्रन्थ को ज्ञान की पुस्तक जानकर उनका बड़ा आदर सम्मान करते हैं। यह वेदों को ईश्वरीय ज्ञान तो नहीं मानते किन्तु उन्हें ज्ञान की पुस्तक समझकर उनका सम्मान अवश्य करते हैं। पुराण आदि ग्रन्थों को यह बनावटी और मनघड़न्त समझते हैं।

सदाचारी जीवन

दूसरों की स्त्री और धन से सदैव बचो। शक्तिशाली होकर दूसरों को हानि न पहुंचाओ। अपनी कमाई का कुछ भाग दूसरों की सहायता पर व्यय करो। अपने चरित्र को ऊंचा बनाओ। झूठ बोलने से सदैव बचो।

सम्प्रदाय—सिक्खों में अकाली, पन्थी, निर्मले और नामधारी इत्यादि सम्प्रदाय हैं और उनके साधु उदासी और रामदासी इत्यादि हैं। उनमें आपस में छोटाई-बड़ाई के अन्तर हैं।

दस-गुरु

सिख लोग इन दस गुरुओं का बहुत अधिक सम्मान करते हैं और उन्हें अमर समझकर उनमें बहुत से चमत्कार और सिद्धियां होने पर विश्वास करते हैं। वह दस गुरु यह हैं:—(१) गुरु नानक। (२) गुरु अंगद। (३) गुरु अमरदास। (४) गुरु रामदास। (५) गुरु अर्जुन। (६) गुरु हर गोविन्द। (७) गुरु हर राय। (८) गुरु हर किशन। (९) गुरु तेग़ बहादुर। (१०) गुरु गोविन्द सिंह।

(१) गुरू नानक—सम्राट वहलोल लोदी के समय अर्थात् सन् १४६६ ई० में गुरू नानक लाहौर जिले के ग्राम तिलौंडी जिसे ननकाना साहब भी कहते हैं, में महत्ता कालूराय पटवारी के यहां क्षत्रिय वंश में पैदा हुए थे।

जब वे सात वर्ष के हुए तो उन्हें पाठशाला में भेज दिया गया। लिखने-पढ़ने में उनका कुछ विशेष चित्त न लगा, इसलिये वह पाठशाला से बहुधा भाग कर जंगलों में चले जाया करते और साधु-सन्तों की संगति किया करते थे। जो कुछ उनके पास होता, वह मांगने वालों को दे दिया करते थे। उनकी इन बातों से उनके पिता उनसे अप्रसन्न रहते और कभी-कभी डरा और धमका भी दिया करते थे।

पिता ने यह दशा देखकर उनका चौदह वर्ष की आयु में विवाह कर दिया। विवाह होने के पश्चात् भी उनका रुझान उसी ओर रहा। उन्होंने हिन्दू जाति की बिगड़ी हुई दशा को दूर करके उसे सीधे-सच्चे मार्ग पर लगाने के विषय में सोच-विचार किया और केवल ईश्वर भक्ति की ओर ही सबको प्रवृत्त करने का निश्चय कर लिया।

गुरू नानक देव ने ईश्वर भक्ति और पवित्र विचारों का प्रचार आरम्भ कर दिया। उन्होंने अपने दो मुसलमान प्रेमियों—बाला और मर्दाना को साथ लेकर भारतवर्ष का भ्रमण किया और वे लोगों को इस प्रकार समझाने लगे:—

सच्ची ईश्वर भक्ति और प्रेम से ही ईश्वर को पा सकते हैं। संसार में सुख और शान्ति इसी प्रकार स्थापित हो सकती है। सचाई पर चलने और न्याय के साथ व्यवहार करने से ईश्वर प्रसन्न होता है। हिन्दू और मुसलमान सब उसी एक ईश्वर के पुत्र हैं।

भारतवर्ष में इस प्रकार प्रचार करने के पश्चात् वह काबुल, कन्धार और अरब इत्यादि देशों में गये। वहां जाकर भी उन्होंने अपने इन्हीं विचारों का प्रचार किया। एक दिन वह काबे के मन्दिर के निकट काबे के मन्दिर की ओर पैर किये पड़े थे। उस समय वहां एक मुसलमान आगया। उसने उनसे कहा कि तू ईश्वर के घर की ओर पैर किये हुये

पड़ा है, यह बहुत बुरी बात है। इस पर गुरू नानकदेव ने उत्तर दिया कि मेरे पैर उस तरफ फेर दो जिस ओर ईश्वर उपस्थित न हो। यह उत्तर सुनकर वह मुसलमान लज्जित होकर चला गया।

उन देशों में प्रचार करने के पश्चात् वह अपने घर वापस आ गए। यहां आकर उन्होंने एक ग्राम बसा कर उसका नाम करतारपुर रक्खा और वहीं रहने लगे। अन्त मे उसी ग्राम मे रहते हुए सन् १५३६ ई० में ७० वर्ष की आयु मे उन्होंने शरीर छोड़ दिया। उस समय शेरशाह सूरी देहली का सम्राट था।

गुरू नानक जितने त्यागी थे, उतने ही गृहस्थी भी थे। वह बड़े सभ्य, शिष्ट, न्याय-प्रिय, सहनशील और दयालु थे। उन्होंने हिन्दू जाति की महत्वपूर्ण सेवा की। उनसे हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रसन्न थे। शरीर छोड़ने से पहले उन्होंने अपने एक आज्ञाकारी सेवक 'लहना' को अपना उत्तराधिकारी बनाया और छाती से लगाकर यह कहा कि तू मेरा अग है। मेरे पश्चात् मेरे कार्यों को पूरा करने वाला तू ही दिखाई पडता है। गुरु नानक के पश्चात् लहना गुरु अंगद के नाम से प्रसिद्ध हुए।

गुरू नानकदेव के दो पुत्र थे। एक का नाम लखमीचन्द और दूसरे का नाम श्री चन्द था। लखमीचन्द तो दो विवाह करके गृहस्थ मे फंस गये, किन्तु श्री चन्द गृहस्थ त्याग कर साधू बन गये। गुरू नानकदेव ने अपने इन दोनो बेटों को अपनी गुरुयाई के उत्तराधिकार से वचित करके लहना को उत्तराधिकारी बना दिया था। श्री चन्द के अनुयाई साधू उदासी कहलाते हैं।

गुरू नानकदेव के साथ बहुत सी सिद्धि और चमत्कारों को प्रतिष्ठित किया जाता है और ऐसा भी कहा जाता है कि उन्हें मेराज हुआ था। अर्थात् वह ऊपर आसमान पर ईश्वर से मिलने गये थे। ईश्वर की उनसे आमने-सामने बातें हुई थीं। गुरू नानकदेव से पहले ह० मुहम्मद को और उनसे पहले ह० जरतुश्त को भी मेराज होना बतलाया जाता है।

(२) गुरू अंगद–गुरू अगद गुरू नानकदेव के उत्तराधिकारी बनकर उनके उद्देश्य को पूरा करने के लिए प्रचार करने लगे। उन्होंने अपने अनुयाइयों का एक अलग संघ बनाया। हिन्दी भाषा के स्थान पर गुरुमुखी भाषा को प्रतिष्ठित किया। गुरू नानकदेव के बाला और मर्दाना साथियों से मिलकर गुरू नानकदेव के वचनों को लेख-बद्ध कराया, जो इस समय गुरू ग्रन्थ के नाम से प्रसिद्ध है। गुरू नानकदेव की जन्म साखी भी लेख-बद्ध कराई गई। उन्होंने अपने डेरे के साथ एक लगर जारी किया जिसमें सब वर्ण के लोग बैठकर एक दूसरे के हाथ का खाना खाने लगे।

गुरू अंगद की १५५२ ई० में मृत्यु हुई। उन्होंने अपने भक्त अमरदास को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। ग्राम खंडोर में उनकी समाधि बनाई गई, जहां प्रति वर्ष मेला होता है। उनमें भी बहुत से चमत्कार और सिद्धियां बतलाई जाती हैं।

(३) गुरू अमरदास–इन्होंने गोंदवाल ग्राम बसाया और वहां एक बावली बनाकर उसी स्थान पर रहने लगे। उन्होंने अपनी पुत्री के कहने से गद्दी सदा के लिये अपने जमाई और उसकी सन्तानों के लिये अर्पण करदी।

(४) गुरू रामदास–यह गुरू अमरदास के जमाई थे और गुरू अमरदास के बड़े भक्त थे। उन्होंने १५७७ ई० में अमृतसर को बसा कर उसका नाम रामदासपुर रक्खा। वहां एक तालाब बनवाकर एक झोंपड़ी में रहने लगे। सम्राट अकबर उनका बड़ा श्रद्धालु था।

(५) गुरू अर्जुन–यह गुरू रामदास के बेटे थे। यह बड़े ज्ञानी और वीर थे। इन्होंने पहले चारों गुरुओं की वाणी को एकत्रित कराकर लेख-बद्ध कराया और उसका पढ़ना और सुनना तथा उसके अनुसार कार्य करना अपने अनुयाइयों के लिये आवश्यक बतलाया। इन्होंने अमृतसर का तालाब पक्का बनवाकर 'हर मन्दिर' की स्थापना की और उसी प्रकार का एक तालाब और मन्दिर तरन-तारन में भी बनवाया गया। अब से अमृतसर गुरुओं का गढ़ बन गया। बैसाखी

का दिन दरबार के लिये नियत किया गया। वह अपना दरबार बड़ी सजधज के साथ किया करते थे। उनके पास बहुत से हाथी घोड़े इत्यादि थे।

दीवान चन्दूलाल गुरू अर्जुन से कुछ वैर-भाव रखता था। उसने सम्राट जहांगीर से इनकी शिकायत की। जहांगीर ने उन पर दो लाख रुपया दण्ड स्वरूप देने की आज्ञा जारी करदी। उन्होंने दण्ड देने से इन्कार कर दिया। इस पर उन्हे कारागार में डाल दिया गया। उन्हे खौलते पानी मे और जलते हुए रेत पर डलवाया गया। फिर उनको चमड़े के थैले मे बंद करने की आज्ञा दी। थैले में बंद होने से पहले गुरु अर्जुन ने नहाने की आज्ञा चाही, जो उन्हे देदी गई। रावी मे उतर कर उन्होंने ऐसा गोता लगाया कि फिर नजर न आये। सन् १६०६ ई० में गुरू अर्जुन देव का इस प्रकार देहान्त हुआ। अबसे सिखों में बलिदान का उत्साह बढ़ने लगा।

(६) गुरू हर गोविन्द—यह गुरू अर्जुन देव के बेटे थे। यह बड़े सुन्दर और वीर थे। अपने पिता का बदला लेने के लिये यह बेचैन रहते थे। उन्होंने ईश्वर-भक्ति और उपासना की अपेक्षा सिखों को बलवान बनाने की ओर अधिक ध्यान दिया। मांस खाने और हर समय शस्त्र धारण किये रहने की आज्ञा दी। वह अपनी शक्ति को बढ़ाने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनमें बहुत से चोर, डाकू और लुटेरे आकर सम्मिलित होगए। उनके अनुयाई टोलियां बना-बना कर इधर-उधर लूट-खसोट के लिये जाने लगे और लूट के माल मे से कुछ भाग गुरू को अर्पण करने लगे। सिख लोगों ने गुरू को सम्राट के नाम से प्रसिद्ध करना आरम्भ कर दिया और उनका दरबार बड़ी सजधज के साथ होने लगा।

सम्राट जहांगीर ने नीति से काम लेकर गुरू हर गोविन्द को पंजाब प्रांत का सूबेदार नियत कर दिया। एक बार जहांगीर काश्मीर जारहा था। वह गुरू से अप्रसन्न होगया और उन्हें बन्दी बनाकर ग्वालियर के किले में भेज दिया, किन्तु कुछ दिनों पश्चात् उन्हें छोड़ दिया गया। लाहौर के सूबेदार से उनकी अनबन होगई। उसके साथ

कई एक लड़ाईयां हुईं, जिनमें उन्हें बहुत कुछ हानियां उठानी पड़ी। लाचार होकर वह अमृतसर छोड़ और पहाड़ी क्षेत्र मे जाकर किरतपुर में रहने लगे। सन् १६४४ ई० में उसी स्थान पर उन्होंने शरीर त्याग दिया। उन्होंने सिखों में सामरिक उत्साह पैदा किया।

(७) गुरू हरराय—यह गुरू हर गोविन्द के छोटे बेटे थे। उन्होंने सन् १६४५ से १६६१ तक गुरुयाई की। उनके समय में पटियाला, नाभा और जींद के राजा सिख पन्थ में सम्मिलित हुए। उन्होंने अपने छोटे बेटे हरकिशन को गुरूयाई के लिये नियत किया।

(८) गुरू हरकिशन—गुरू हरकिशन के भाई रामराय ने औरगजेब के पास जाकर गद्दी न मिलने की शिकायत की। औरंगजेब ने गुरू हरकिशन को देहली बुलवाया गुरू हरकिशन देहली मे ही चेचक की बीमारी से सन् १६५४ ई० मे ७ वर्ष ८ माह की आयु में स्वर्गवासी होगये। उन्होंने मरने से पहले अपने दादा गुरू हर गोविन्द के छोटे भाई गुरू तेग बहादुर को अपना उत्तराधिकारी नियत किया।

(९) गुरू तेग़ बहादुर—वह बड़े दयालु, कृपालु और उदार-चित्त थे। वह अपना अधिकतर समय ईश्वर भक्ति में लगाया करते थे। गुरू हर राय के बड़े बेटे रामराय ने औरंगजेब को गुरू तेग़ बहादुर के विरुद्ध उकसा दिया था। औरगजेब सिक्खों की इस बढ़ती हुई शक्ति को सहन न कर सका। इधर रामराय के हृदय में गद्दी का लालच रह २ कर उठता था।

औरंगजेब ने गुरू तेग बहादुर को देहली बुलवाकर मुसलमान होजाने को कहा। किन्तु उन्होंने इससे स्पष्ट इन्कार कर दिया। औरंगजेब ने उन्हें मौलवियों के साथ शास्त्रार्थ करने को कहा। गुरू महाराज ने शास्त्रार्थ करते हुए इस्लाम-मत के दोषों पर प्रकाश डाला। इससे औरगजेब अप्रसन्न होगया और उन्हें पकड़कर बन्दी बना लिया। फिर देहली के बाजार में भांति २ के कष्ट देकर उनका वध करा दिया गया। देहली के चादनी चौक बाजार मे जो गुरू द्वारा शीशमहल के नाम से प्रसिद्ध है, वह उन्हीं की स्मृति में बना हुआ है।

गुरू तेग बहादुर के पश्चात् उनका बेटा गोविन्द सिंह उनका उत्तराधिकारी बना। औरंगजेब रामराय से अति प्रसन्न था, क्योंकि वह उसे सिक्खों के सब भेद बतला दिया करता था। औरंगजेब ने रामराय से प्रसन्न होकर टिहरी के राजा के नाम एक आदेश भेजा जिसके द्वारा रामराय को बहुत सा वह क्षेत्र, जहां इस समय देहरादून बसा हुआ है, मिल गया। इसी स्थान पर रामराय का गुरुद्वारा बना हुआ है, जहां प्रति वर्ष झण्डे का मेला लगता है। गुरू तेग बहादुर के बलिदान से सिक्खों में सामरिक उत्साह उत्पन्न होगया। उन्होंने गुरू नानक की शिक्षा से मुँह मोड़कर अपने को युद्ध के लिये तैयार करना आरम्भ कर दिया और सिक्खों का एक सामरिक समूह बना लिया जो युद्ध के लिये तैयार रहने लगा।

(१०) गुरू गोविन्द सिंह—उनका जन्म सन् १६६६ ई० में हुआ था। गद्दी पर बैठते समय उनकी आयु केवल १५ वर्ष थी। राम राय और धीरूमल जो उन्हीं के परिवार से थे, हर समय उनका विरोध करने पर तैयार रहते थे। सिक्खों का समूह भी औरंगजेब की कठोर नीति से टूटता-फूटता जारहा था।

गुरू गोविन्द सिंह हिन्दू धर्म की रक्षा के विषय में बहुधा घण्टों बैठकर सोचा करते थे। उनके हृदय में अपने पिता के रक्त का बदला लेने का विचार भी रह-रह कर उठा करता था। अतः वह पहाड़ी क्षेत्र में चले गये और गुप्त रुप से अपनी शक्ति बढ़ाने लगे। वहां उन्होंने अनेक युद्ध कौशल सीखे। संस्कृत और फारसी भाषा में योग्यता प्राप्त की। हिन्दुओं के प्राचीन शास्त्रों और इतिहास को पढ़कर मनन किया। अन्त में उन्होंने हिन्दुओं को संगठित करने का निश्चय कर लिया। पहले उन्होंने जाति-पाति और छुआछूत के बखेड़ों को हटाने पर ध्यान दिया और अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया—यदि ध्यान से देखा जाये तो चारों वर्ण पान, सुपारी, कत्था और चूने की भांति एक हैं। यह चारों वस्तुयें मिलकर ही पान का स्वाद प्रदान करती हैं। एक दिन वह केश गढ़ की पहाड़ी पर उपदेश दे रहे थे। उन्होंने कहा कि देवी तुम्हारा बलिदान चाहती है। तुममें से कौन ऐसा है जो देवी को प्रसन्न करने के लिये अपने प्राण देने को तैयार है। उनकी इस बात से सन्नाटा छा

गया। कुछ देर पश्चात् एक व्यक्ति ने खड़े होकर अपने को बलिदान के लिये प्रस्तुत किया। वह उसे डेरे में ले गये। वहां उन्होंने एक बकरे को मारा और रक्त से भरी हुई तलवार लेकर बाहर आये। फिर सिखों से बलिदान के लिये कहा। उसी प्रकार प्रत्येक वर्ण का एक-एक आदमी बारी-बारी से बलिदान के लिये लेकर डेरे में बिठाते रहे और रक्त से भरी तलवार लेकर बाहर आते रहे। इसके पश्चात गुरु गोविन्द सिंह उन पांचों को डेरे से बाहर ले आये और यह कहा कि यह पांचों प्यारे है। उन्हे अमृत पिलाया गया और उनके हाथ से सबको अमृत पिलवाया गया। इस प्रकार गुरु गोविन्द सिंह ने जाति-पाति और छुआछूत के बखेड़ों को समाप्त किया और अपने अनुयाइयों का नाम खालसा (Holy brother-hood) रक्खा। उन्होंने उनसे यह भी कहा कि वह अपने सिर और दाढ़ी के बाल रक्खें, हाथ में लोहे का कडा पहनें, कछ धारण करें। बालों की सफाई के लिये कघा हर समय रक्खें और अपनी रक्षा के लिए हर समय कृपाण धारण करे। जब वह एक दूसरे से मिला करें तो रामराम या नमस्कार के बदले 'वाह गुरु जी की फतह' या 'वाह गुरु जी का खालसा' या 'सत श्री अकाल' बोला करें ? उन्होंने साथ ही प्रत्येक खालसा के नाम के साथ शब्द सिंह लगाने का उपदेश दिया।

गुरु गोविन्द सिंह ने गुरु हर गोविन्द की नीति को अपनाकर ईश्वर भक्ति की अपेक्षा शक्ति बढ़ाने को उत्तम समझा। उन्होंने खालसा का यह कर्तव्य बतलाया कि वह हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये अपने प्राणों की कदाचित् परवाह न करे।

गुरु गोविन्द सिंह ने अपनी और सिखों की सुरक्षा के लिये पांवटा, रोपड़ और आनन्दपुर में दुर्ग बनवाये। प्रत्येक खालसा को यह उपदेश दिया कि वह सवा लाख मुसलमानों के मुकाबले मे लड़ने के लिये हर समय तैयार रहे। इस प्रकार जब गुरु गोविन्द सिंह अपने आदमियों को संगठित कर चुके तो वह अपने आदमियों की टोलियां बना बनाकर मुसलमानों और विश्वासघाती हिन्दुओं को लूटने के लिये भेजने लगे। उन्होंने यह इसलिये किया ताकि प्रत्येक खालसा के हृदय से कायरता दूर होकर उसमें सामरिक जीवन की प्रवृत्ति आजाये। जब

गुरू गोविन्द सिंह की शक्ति अधिक हो गई तो सन् १६६५ ई० में वह औरंगजेब के विरुद्ध स्पष्ट रूप से खड़े हो गए। शाही सेना के साथ सिखों के कई वार युद्ध हुए, जिनमें उन्हें वहुधा सफलता प्राप्त होती रही। गुरू गोविन्दसिंह के दो छोटे वेटे जोरावर सिंह और फतहसिंह शत्रु के हाथ पड़ गए। शत्रु ने उन्हें मुसलमान होने को कहा। उन्होंने मुसलमान वनने से इन्कार कर दिया। इस पर उन दोनों को जीवित सरहिन्द की दीवार में चिनवा दिया गया।

जव प्रतिदिन के युद्धों से गुरू गोविन्द सिंह को अधिक हानि पहुँच गई और उनके वेटे भी मारे गये तव गुरू का हृदय पंजाव से उठ गया। वह दक्षिण की ओर गोदावरी के तट पर तप करने के लिये चले गए। दक्षिण में उनकी माधोदास महन्त से, जो वाद में वन्दा वैरागी के नाम से प्रसिद्ध हुआ, भेंट हुई। उसने अपनी सेवायें उनके अर्पण करदीं। गुरू गोविन्द सिंह ने उन्हें खालसा का लीडर वनाकर और यह उपदेश देकर पजाव भेज दिया की झूठ कदाचित न वोलना, गृहस्थ में न फंस जाना, गद्दी पर कदाचित् न वैठना और सव सिखों के साथ समान व्यवहार करना। वन्दा वैरागी हिन्दू धर्म की रक्षा करने की शपथ लेकर पजाव आया। वन्दा वैरागी ने पंजाव में आकर आशा से अधिक कार्य किया।

गुरू गोविन्द सिंह ने अपने साथ गुलखां और अताउल्ला खां कि जो उनके शतरंज खेलने के साथी थे, दक्षिण जाते समय अपने साथ ले लिये थे। एक रात को उसी गुलखां ने अवसर पाकर गुरू गोविन्द सिंह को सोते हुए छुरे से घायल कर दिया। गुरू गोविन्द सिंह ने तो उसका सिर उसी क्षण काट दिया किन्तु अताउल्ला वहां से भाग गया। उस छुरे का घाव उनके इतना गहरा लगा कि वह घाव अच्छा ही न हो सका। अन्त में उनका सन् १७०८ ई० में हैदरावाद दक्षिण में गोदावरी के तट पर पुन्डीर् स्थान पर ४२ वर्ष की आयु में देहान्त हो गया। उस स्थान पर एक विशाल गुरूद्वारा वनाया गया जो अोचल नगर के नाम से प्रसिद्ध है। गुरू गोविन्दसिंह में भी सिख लोग वहुत से चमत्कार और सिद्धियां होने पर विश्वास करते हैं।

गुरू गोविन्दसिंह के तीन धर्मपत्नियां थीं। एक का नाम माता जीतो, दूसरी का नाम माता सुन्दरी और तीसरी का नाम माता साहब देवी था। माता जीतो से तीन लड़के और माता सुन्दरी से एक गोद लिया हुआ लड़का अजीतसिंह था।

गुरू गोविन्दसिंह एक अच्छे विद्वान् और कवि थे। उन्होंने बहुत सी पुस्तकें लिखीं। उनमें से रहतनामा, जाप जी साहब, विचित्र नाटक, चन्डी चित्रावली प्रथम, चडी चित्रावली द्वितीय, ज्ञान प्रबोध, चोबीस अवतार, इमाम मेंहदी, हरी अवतार, रूद्रावतार, श्री मुख्यवाक, हजारी शब्द, स्त्री चरित्र, हिकायत फारसी और तनख्वाह नामा को छोड़कर शेष सब पुस्तकें एक पुस्तक रूप में हैं, जिन्हें दसवें गुरू ग्रन्थ के नाम से पुकारा जाता है।

कबीर-पन्थ

इस पन्थ को कबीर साहब ने चलाया था। इस पन्थ वाले मूर्ति पूजा का खण्डन करते हैं किन्तु कबीर साहब की सज्जा, गद्दी, तकिया, खड़ाऊं और दीपक आदि वस्तुओं को पूजते हैं। वेदादि पुस्तकों पर विश्वास नहीं करते। आवागमन को मानते हैं। मांस खाने को बुरा समझते हैं। कबीर साहब की सिद्धि और करामातों पर विश्वास करते हैं। माथे पर बरछी का आकार बनाते हैं। चंदन और तुलसी की कंठी पवित्र समझकर बांधते हैं।

कबीर पंथियों में अधिकतर छोटी जाति के हिन्दू और मुसलमान सम्मिलित हैं। उनकी कोई विशेष संख्या नहीं है उनको संत भी कहते हैं।

संत कबीर

संत कबीर के जन्म के विषय में मतभेद है। अधिकांश विद्वान् उनका जन्म सम्वत् १४५६ वि० में मानते हैं। उनका पालन-पोषण जुलाहे के घर होना तो सब ही लोग मानते है किन्तु उनके जन्म के सम्बन्ध में कुछ लोगों का कथन है कि वह विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

लिखा है कि एक दिन प्रातः काल नीरू और नीमा काशी शहर की एक गली में से जा रहे थे तो एक नाली के निकट एक फूलों की टोकरी में छिपे हुए एक बच्चे को देखा। वह उस बच्चे को उठा कर घर ले आये। उनके कोई सन्तान न थी। उन्होंने उस बच्चे का बड़े लाड़-प्यार से पालन-पोषण करना आरम्भ कर दिया। सन्त कबीर ने भी अपने को पूर्व जन्म का ब्राह्मण मानते हुए इस जन्म का जुलाहा कहा है इस विषय में उनका यह दोहा प्रसिद्ध है—

काली का मैं बासी बांमन, नाम मेरा परबीना।
एक बार हरि-नाम-बिसारा, पकरि जोलाहा कीना॥

संत कबीर की बचपन से ही ईश्वर-भक्ति की ओर रुचि थी। वह बहुधा साधु-सन्तों के पास जाकर राम-चर्चा सुना करते थे। एक दिन वह स्वामी रामानन्द की सेवा में जाकर उनके शिष्य बन गये और उनका अधिक रुझान वैष्णव मत की ओर हो गया। कबीर साहब अपने विचारों का प्रचार हिन्दू और मुसलमान दोनों में ही किया करते थे। वह आयु भर हिन्दूओं और मुसलमानों को एक सम्मिलित प्लेटफार्म पर लाकर उनमें प्रेम और सगठन उत्पन्न करने के लिए प्रयत्न करते रहे।

सत कबीर जितने गृहस्थी थे उतने ही त्यागी भी थ। वह अपना निर्वाह कपड़ा बुनकर किया करते थे। उन्होंने हिन्दुओं को मूर्तिपूजा से और मुसलमानों को कब्र इत्यादि के पूजने से घृणा दिलाई। कबीर पढ़े-लिखे बिलकुल न थे। वह राम, रहीम, ईश्वर और अल्लाह में कोई भेद न करते थे। वह अवतार वाद, जप, छाप और तिलक इत्यादि से विरोध करते थे। मांस खाना बहुत बुरा कहा करते थे। उन्होंने बहुत से दोहे लिखे जो साखी कहलाते हैं। उनकी मृत्यु काशी शहर में स० १५७५ वि० में होनी बतलाई जाती है। उनकी स्त्री का नाम 'लोई' था। उनके कमाल नाम का एक पुत्र और कमाली नाम की एक पुत्री थी। उनकी मृत्यु पर हिन्दू और मुसलमानों में कुछ तकरार हुआ। मुसलमान इन्हें गाड़ना चाहते थे और हिन्दू जलाना चाहते थे। कुछ लोगों ने आपस में सम्मति मिलाकर उनके मृतक शरीर को गायब करके उनके स्थान पर कुछ फूल रख दिये थे। दोनों जातियों के लोगों ने इसे चमत्कार समझा और उन फूलों को आपस में बांट कर अपने २ विश्वास के अनुसार गाड़ और जला दिया। राजा वीरसिंह ने उनकी समाधि बनवाई और आल्हा खां ने एक कब्र तैयार कराई। मनसूर खां ने उस समाधि के नाम कुछ जागीर कर दी जो अब तक चली आ रही है।

अन्य
मत-मतान्तर

ब्रह्म-समाज

१८ वीं शताब्दी मे इस देश मे काफी अविद्या छा रही थी। बचपन मे विवाह कर देने का जोर चल रहा था। विधवाओं में वृद्धि होती जा रही थी। उन्हें मनहुस समझा जाकर उन पर अत्याचार हो रहे थे। सती होने का खूब जोर था। देवी-देवताओं की मूर्तियों के सामने पशुओं और मनुष्यों की बलियां चढ़ा करती थीं। बंगाल प्रान्त में इन सब बातों के अतिरिक्त वाममार्गियों की तन्त्र-विद्या का बड़ा जोर था। उनके जादू, मन्त्र, तन्त्र और मूठ इत्यादि बातों से लोग कांपते थे। गुरू लोग मांस खाने, गांजा और शराब पीने में दिल की शान्ति समझते थे। कुल-गुरू और कुल पुरोहित की आज्ञा के बिना कोई विशेष काम नहीं हो सकता था। भागवत आदि पुराणों का खूब चर्चा था। विधवायें घरों में अत्याचारों से तंग आकर या तो आत्मघात कर लेती थीं या घरों से निकल कर ईसाई या इस्लाम मतों को ग्रहण कर लेती थीं। कहां तक कहा जाय उस समय हिन्दुओं की दशा बहुत शोचनीय थी।

बंगाल के हिन्दुओं की ऐसी दुर्दशा और बुरे रीति रिवाजों को देखकर सन् १८२८ ई० मे हिन्दुओं के धार्मिक रीति रिवाजों और सोसाइटी में कुछ सुधार करने के विचार से राजाराम मोहनराय ने आत्मीय सभा की नींव रक्खी जो आगे चलकर ब्रह्म-समाज के नाम में परिवर्तित कर दी गई थी। ब्रह्म-समाज ने बंगाल में हिन्दुओं का काफी सुधार किया और एक ईश्वर की ही पूजा-उपासना की शिक्षा दी। राजा जी के पश्चात् केशव चन्द्रसैन ने ब्रह्म समाज के नियमों मे अदल बदल करके उस पर ईसाई-मत का आवरण चढ़ा दिया था।

ईसाई मत का आवरण चढ़ जाने से साधारण हिन्दुओं पर उसका कोई प्रभाव नहीं पडा। उसमें केवल कुछ अंग्रेजी पढ़े लिखे और पश्चिमी सभ्यता पर चलने वाले ही सम्मिलित हुए। ब्रह्म-समाज अधिकतर बंगाल में ही काम करती रही। दूसरे प्रान्तों पर इसका कोई

विशेष प्रभाव न हुआ। महादेव रानाडे ने ब्रह्म-समाज और आर्य-समाज को मिलाकर एक संस्था बना देने में काफी जोर लगाया किन्तु आर्य-समाज के नेताओं ने ब्रह्म-समाज को आर्य-समाज में मिलाने से यह कह कर इन्कार कर दिया कि ब्रह्म-समाज के सिद्धान्त आर्य-समाज के सिद्धान्तों से भिन्न हैं। ब्रह्म- समाजियों की सख्या इस समय कुछ अधिक नहीं है। पहले तो इस समाज ने देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सैन, प्रफुलाचन्द्र राय, बृजेन्द्र नाथ और रविन्द्रनाथ टैगोर आदि सम्मिलित थे।

ब्रह्म-समाज के सिद्धान्त

१—ईश्वर एक है। वह अनादि और अनन्त है। उसके समस्त गुण भी अनादि और अनन्त हैं। २—ईश्वर ने अपनी शक्ति से जीवों और प्रकृति को उत्पन्न किया है। जीव अनन्त हैं। ३—संसार में कोई पुस्तक ईश्वरीय नहीं है। ४—प्रत्येक धर्म या मजहब की अच्छी बात मानने योग्य है। ५—ईश्वर दयालु है। वह यदि चाहे तो पाप क्षमा कर देता है। ६—जीव उन्नति करते २ अपरिमित शक्ति प्राप्त कर सकता है। ७—पश्चाताप से ईश्वर पाप क्षमा कर देता है। ८—आवागमन का सिद्धान्त व्यर्थ है। मूर्तिपूजा करना उचित नहीं है। ९—ईश्वर अवतार धारण नहीं करता। १०—किसी देवी या देवता की कोई सत्ता नहीं है। ११—जाति-पाति और ऊंच नीच का भेद करना बुरा है। १२—सब मनुष्यों के साथ मिल-जुलकर खाने-पीने से प्रेम और सगठन मे वृद्धि होती है। १३—यज्ञोपवीत धारण करने और सिर पर चोटी रखने से कोई लाभ नहीं इत्यादि।

राजाराम मोहन राय

राजा मोहनराय हुगली जिले के एक ग्राम राधा नगर में सन् १७७४ ई० में एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे। उनके माता-पिता वैष्णव थे।

राजा जी ने पहले तो एक पाठशाला में अरबी, फारसी और उर्दू की शिक्षा पाई और फिर काशी में जाकर कई वर्ष तक संस्कृत पढ़ी। उन्होंने दर्शन और उपनिषद आदि शास्त्रों का अध्ययन किया। उनके माता-पिता ने बचपन में ही उनके तीन विवाह कर दिये थे।

काशी से पढ़कर जब घर वापस आये तो उनके पिता का देहान्त हो गया। जब उनकी आयु २२ वर्ष की हुई तो वह अंग्रेजी पढ़ने लगे। अंग्रेजी में भी उन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। वह अरबी, फारसी, उर्दू, बंगला, अंग्रेजी, लेटिन और फ्रेंच आदि भाषाओं में अच्छे योग्य पुरुष बन गये।

सन् १८०० ई० में उन्होंने ईस्ट इन्डिया कम्पनी के दफ्तर रंगपुर में नौकरी कर ली। सन् १८१३ ई० में नौकरी छोड़कर देश सुधार का काम आरम्भ कर दिया। सन् १८१४ ई० में वह अपने ग्राम से आकर कलकत्ते में रहने लगे। यहां आकर उन्होंने अपने प्रचार के कार्य को तेज कर दिया। उनकी विचार-धारा से बंगाल के हिन्दू नाराज हो गये और उन्हें मार देने के प्रयत्न करने लगे। राजा जी ने पण्डितों पादरियों और मौलवियों से कई एक प्रसिद्ध शास्त्रार्थ किये।

राजाराम मोहनराय के इस प्रचार से कुछ आदमी उनके अनुयाई बन गये। अतः सन् १८१५ ई० में उन्होंने अपने मकान पर आत्मीय-सभा की स्थापना की। उसमें प्रति सप्ताह सभासद एकत्रित होकर प्रार्थना आदि करने लगे। सन् १८२८ ई० में उन्होंने इस सभा का नाम बदलकर ब्रह्म-समाज रख दिया। इस सभा का सभासद प्रत्येक वर्ण का मनुष्य हो सकता था।

राजाराम मोहनराय ने सबसे पहले अंग्रेज सरकार की नीति के विरुद्ध अपनी आवाज उठाकर यह कहा कि भारत भारतवासियों के लिए है-India for Indians राजा जी ने अन्धः विश्वास को मिटाकर बुद्धि के अनुसार कार्य करने पर जोर दिया। स्त्री-शिक्षा को आवश्यक बतलाया। बचपन में विवाह करना मना किया। बाल-

विधवाओं के पुनर्विवाह कर देने पर जोर दिया। लार्ड विलियम बैंटिक से कह कर सन् १८२९ ई० मे सती प्रथा को हटाने के लिए कानून जारी कराया। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने पर जोर दिया। कलकत्ते में सबसे पहला हिन्दू कालिज उन्हीं के परिश्रम से खोला गया।

१५ नवम्बर सन् १८३० ई० को राजा जी योरुप की यात्रा को चले गये। अन्त में २७ सितम्बर सन् १८३३ ई० को इंग्लैंड के ब्रिस्टल शहर मे उनका देहान्त हो गया। राजा जी ने बहुत से ग्रन्थ रचे थे।

प्रार्थना समाज

सन् १८६८ ई० मे बम्बई के एक डाक्टर श्री आत्माराम ने धर्म प्रचार के लिए ब्रह्म समाज के ढगों पर प्रार्थना-समाज स्थापित की थी। इसके अधिकांश वही विचार थे जो ब्रह्म समाज के थे। इसकी कुछ शाखायें अहमदाबाद इत्यादि नगरों में भी स्थापित हो गई थीं। सर आर० जी० भडारकर, जे० राणाड़े, सर एन० जी० चन्द्रवारकर और रामाबाई इत्यादि इसके प्रमुख समासद थे। इस समय इसकी कोई विशेष सख्या नहीं है।

थियोसोफिकल सोसाइटी

अमरीका के न्यूयार्क नगर मे इस सोसाईटी की स्थापना सन् १८७५ ई० में कर्नल अलकाट H. Olcott. और श्रीमती ब्लेवस्टकी Madam Blavatsky ने की थी। आरम्भ में तो इस सोसाइटी की काफी उन्नति हुई। उस समय इसकी शाखायें योरुप, अमरीका, एशिया, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड इत्यादि मे स्थापित हो गई थी। किन्तु इसके पश्चात् जब इस सोसाईटी के कुछ भेद खुलते चले गये तो इसकी उन्नति में भी बाधा पड़ता चला गया।

अमरीका में कर्नल अलकाट और मैडम ब्लेवस्टकी ने स्वामी दयानन्द का नाम सुन रक्खा था। अतः उन्होंने उनके साथ पत्र-

व्यवहार करना आरम्भ कर दिया और उन्हें यह विश्वास दिलाया कि थियोसोफिकल सोसाइटी आपको अपना गुरु मानने पर तैयार है। ये दोनों महानुभाव अमरीका से चलकर भारतवर्ष में आए और फरवरी सन् १८७९ ई० में सहारनपुर आकर वह स्वामी दयानन्द जी से मिले। स्वामी जी ने पहले तो उनका बड़ा सम्मान किया किन्तु जब उनकी विचारधारा और रंग ढग में अन्तर देखे तो उन्हें आर्य समाज से निकाल दिया गया। इसका कुछ विवरण हम पिछे ईसाई मत में पृष्ठ ३७४ से ३७६ पर भी लिख आए हैं। उन दोनों महानुभावों ने अपनी अलग थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना कर दी और उसके कुछ अंग्रेजी पढ़े लिखे व्यक्ति सभासद हो गये। आयरलैंड की एक लेडी एनीबीसेन्ट ने जो भारत में रहती थी उनके पश्चात् उनका स्थान ले लिया। इस समय इस सोसाइटी के अनुयाईयों की कोई विशेष संख्या भारतवर्ष में नहीं है।

सिद्धांत

इस सोसाइटी के यह तीन मूल सिद्धान्त हैं—(१) समस्त संसार में भाई चारे का व्यवहार करके प्रेम बढ़ाना और सब धर्मों और मतों का आदर सम्मान करना। (२) मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी शक्तीयों को गुप्त विद्या के अभ्यास से बढ़ाकर ज्ञानी बनें ताकि संसार में शान्ति का फैलाव और दुखों से छुटकारा हो। (३) समस्त धर्मों और मत मतान्तरों में सचाई अवश्य है इसलिये सब धर्मों और मत मतान्तरों की सच्ची बातों को ग्रहण करना चाहिये ताकि घृणा के विचार समाप्त होकर प्रेम में उन्नति हो। सब मजहबों के मूल सिद्धांत एक ही हैं। इनमें जो अन्तर दिखलाई दे रहा है वह देश, काल और कुछ व्यक्तियों की दशा के कारण दिखलाई दे रहा है।

थियोसोफिकल सोसाइटी में किसी भी धर्म, मत और वर्ण का व्यक्ति सम्मिलित होकर थियोसोफिस्ट बन सकता है। थियोसोफि के ... मिटाकर बुद्धि के अनुसार ...

...आवश्यक बतलाया। बचपन ...

...शान्ति शान्ति !